"डॉ॰ वृन्दावन लाल वर्मा एवं आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में ऐतिहासिक, साँस्कृतिक सन्दर्भों का तुलनात्मक अनुशीलन।"

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी साहित्य विषय में
डी.फिल् उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
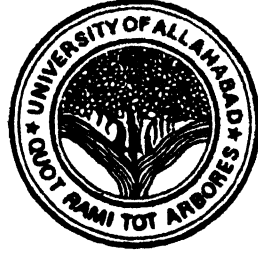
शोध निर्देशक
डॉ. भूरे लाल
प्रवक्ता,
हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

शोध छात्र
दिनेश चन्द्र यादव
एम. ए. हिन्दी
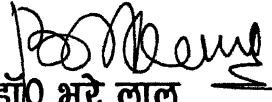
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
२००२

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि *श्री दिनेश चन्द्र यादव* ने "डा0 वृन्दावन लाल वर्मा" और आचार्य "चतुरसेन शास्त्री" के उपन्यासों में ऐतिहासिक, सॉंस्कृतिक संदर्भो का तुलनात्मक अनुशीलन" शीर्षांकित इस 'शोध-प्रबन्ध' को दो वर्षो से अधिक दिनों तक उपस्थिति रहकर मेरे निर्देशन में पूर्ण किया है। यह इनकी मौलिक कृति है।

मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

दिनाँक 20.12.2002

डॉ0 भूरे लाल
प्रवक्ता
हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद (उ0 प्र0)

प्रातः स्मरणीय परम् पूज्य चाचा जी

श्री "मेवा लाल यादव" जी

के चरण कमलों में सादर समर्पित
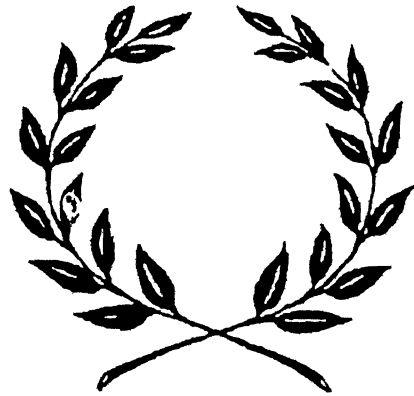
डॉ0 'वृन्दावन लाल वर्मा' और आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' के उपन्यासों में ऐतिहासिक सॉस्कृतिक संदर्भो का तुलनात्मक अनुशीलन शीर्षांकित शोध प्रबन्ध पर अध्येयता को इसकी प्रारम्भिक प्रेरणा इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद स्नातकोत्तर अध्ययन के दौरान पूज्यनीय गुरूवर डॉ0 भूरे लाल प्रवक्ता हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से मिली । इस विषय पर उनके प्रारम्भिक परिचय ने मुझे जिज्ञासु बना दिया । मैं इस विषय पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को अपने पूर्ण कलेवर में संजो देने के लिये परम श्रद्धेय गुरूवर डॉ0 'भूरे लाल जी' जिनसे स्नेह पूर्वक प्रेरणा, सुझाव एवं चैन से मैं अपने शोध-निर्देशक की शरण में आया ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय चयन से लेकर अन्तिम परिणति तक पहुँचने में श्रद्धेय गुरूवर डॉ0 भूरे लाल जी से नित्य प्रति जो प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला है, जिसके आभाव में उक्त अध्ययन सम्भव ही नहीं था । विश्वविद्यालय के विभिन्न कार्यो में व्यस्त रहते हुए भी श्रद्धेय गुरूवर ने शोध-निर्देशक के रूप में जो मार्ग दर्शन किया है, उसे लिए मैं सर्वथा नतमस्तक हूँ ।

निःसंदेह इतने दुरूह एवं विस्तृत विषय पर शोध कार्य करना मेरे लिए कठिन ही नहीं अपितु असम्भव भी था । किन्तु गुरूकृपा से असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं । अतः इस कार्य में मेरे पूज्यनीय गुरूवर ने जो सराहनीय भूमिका निभाई है, उनके उपकारों के प्रति आभार ज्ञापन में शब्द दारिद्रय का अनुभव करता हूँ । जिनके योग्य निर्देशन में मैंने शोध कार्य प्रारम्भ किया । उनका आशीर्वाद एक मात्र सम्बल था । जिससे यह कार्य पूर्ण हो सका । उन्होंने जिस उत्तरदायित्व, रूचि, स्नेह के समन्वय के साथ-साथ शोध प्रबन्ध को व्यवस्थिति रूप में दिया । इसके लिए मैं विशेष रूप से ऋणी हूँ । सम्प्रति मैं

जो कुछ भी हूँ, वह पूज्य गुरूजी का ही प्रसाद है। मेरे पास शब्द नहीं हैं और न ही उन्हें आभार ज्ञापित कर उनकी महत्ता को कम करना चाहता हूँ ।

इस शोध-कार्य में मुझे मेरे पूज्यनीय बड़े पिता श्री 'राम मूरत यादव' एवं पिता श्री 'बाबू राम यादव' ने हमें समय-समय पर इस कार्य हेतु प्रोत्साहित करते रहे, साथ ही छोटे चाचा 'राम अधार यादव,' एवं बड़े भ्राता 'रमेश चन्द्र यादव' का इस कार्य को पूर्ण करने हेतु हमेशा मार्ग दर्शन एवं प्रेरणा मिलती रही। इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन में मेरे पिता तुल्य चाचा जी श्री 'मेवा लाल यादव जी' का अमोघ योगदान रहा है, क्योंकि उन्हीं के द्वारा बचपन से लेकर शोध-छात्र तक की जीवन रूपी यात्रा में उन्होंने मेरे एवं अन्य सदस्यों को शिक्षा ग्रहण कराने में इतने उदार और सदाशय न रहे तो यह कार्य कदाचित् सम्भव न हो पाता ।

अतः इनके प्रति कुछ भी व्यक्त करना औपचारिकता मात्र होगी । यह शोध प्रबन्ध उन्हीं की प्रेरणा और आशीष से मैं पूर्ण कर सका हूं । इसलिए मैं उनके प्रति आजीवन आभारी और सहिष्णु हूँ । मैं अपने अनुज इंजी0 'भरत यादव' के प्रति साधुवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने अपनी बुद्धिमता का सही रूप से प्रयोग करते हुए उचित समय पर मेरे साथ हर पल सहयोग एवं छोटे भाई के कर्त्तव्य का निर्वाहन करते हुए मुझे हमेशा तनिक भी यह आभास भी नहीं होने दिये, कि उन्हें भी रंचमात्र किसी चीज का कष्ट हो रहा है । इसलिए मैं उनके विवेक को आदर पूर्वक स्वीकार करता हूँ ।

मैं अपने हिन्दी विभाग के उन विद्वजनों, विभागाध्यक्ष- डॉ0 'राजेन्द्र कुमार,' डॉ0 'सत्य प्रकाश मिश्रा,' डॉ0 'मुश्ताक अली,' डॉ0 'लालसा यादव' तथा उन सभी कर्मचारी गण को भी आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके व्यक्तितत्व और उपदेश का मेरे ऊपर सदैव प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव रहा है । जिनसे जो स्नेह एवं सानिध्य सुलभ हुआ है, वह मुझ अकिंचन के लिए अत्यंत

आह्लादकारी एवं प्रोत्साहक बना । मैं अपनी जीवन संगिनी श्रीमती मुन्नी यादव का भी आभार व्यक्त करता हूँ, जिनकी स्नेहिल प्रेरणा से मेरे आत्म-विश्वास में नव ज्योति एवं नव स्फूर्ति का संचार होता रहा और मैंने इन सभी प्रेणनाओं से प्रेरित होकर अपने लक्ष्य को समयाधीन पूर्ण करने में सफल हो सका । अतः कुछ अन्य मित्रों जैसे- अरविन्द यादव, राम प्रकाश राय, राजेन्द्र विश्वकर्मा, सुल्तान सिंह यादव, विश्व नाथ प्रताप सिंह, निर्भय भारती एवं विनोद गौतम जैसे घनिष्ठ मित्रों ने इस दिशा में मुझे उचित मार्ग दर्शन एवं प्रोत्साहन देते रहे ।

मैं अपनी तरफ से अरूण सिंह (प्रबन्ध निदेशक, सिंह कम्प्यूटेक, तेलियरगंज इलाहाबाद) के निर्देशन में मिथिलेश पाण्डेय (प्रबन्धक सिंह कम्प्यूटेक) ने अपने पूर्ण समर्पण एवं जिम्मेदारी में अपनी हस्त-दक्षता के साथ अल्प समय में रात और दिन के कठिन परिश्रम से हमारे शोध-ग्रंथ को लिपिबद्ध करके इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रस्तुत करने में जिस निष्ठा एवं सद्भावना का परिचय दिया है, वह मेरे लिए दिन प्रतिदिन के क्षणों में अविस्मरणीय रहेगा । इसलिए मैं अपनी तरफ से इन लोगों के प्रति सहृदय कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ , साथ ही विनोद पटेल, सुजीत सिंह एवं विजय कपिल जैसे मित्रों का भी आभारी हूँ, जिन्होंने हमारे इस कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया।

मैनें शोध-प्रबन्ध को पूरा करने के लिए पुस्तकों के सम्बन्ध में सहायता प्राप्ति हेतु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, बुन्देल खण्ड विश्वविद्यालय झांसी, हिन्दी साहित्य अकादमी, प्रयाग, रूहेल खण्ड विश्वविद्यालय बरेली, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ के पुस्तकायलों के पुस्तकालाध्यक्षों द्वारा प्रदान किये गये सक्रिय योगदान का भी मैं कृतज्ञ हूं । मैं इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के पुस्तकालाध्यक्ष, एवं कर्मचारीगण को भी हृदय से आभार व्यक्त

करता हूं, जिन्होंने मुझे समय-समय पर शोध सामग्री उपलब्ध कराने में भरपूर योगदान दिया ।

अतः मैं अंत में समस्त ज्ञाताज्ञात समस्त शुभ चिन्तकों के प्रति श्रद्धावनत् होता हुआ प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को विद्वजनों के समक्ष नीर-क्षीर विवेक हेतु प्रस्तुत कर रहा हूं । मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे अपरिहार्य त्रुटियों को क्षमा करते हुए प्रदत्त शोध-प्रबन्ध की समीक्षा करेंगे ।

दिनाँक : 20/12/2002

श्रद्धावनत् :

दिनेश चन्द्र यादव

दिनेश चन्द्र यादव

एम० ए० (हिन्दी)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद
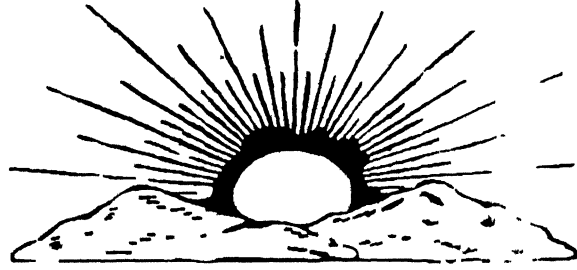
आमुख

साहित्य में मानव जीवन तथा समाज अपने सम्पूर्ण विविधता के साथ अभिव्यक्ति पाता है, अथवा यों कहा जाय- साहित्य का विषय सम्पूर्ण मानव जीवन है । उसका कोई विभाग नहीं है, उसके कलेवर में मानवता का सम्पूर्ण जीवन अपनी सम्पूर्ण विविधता और क्रिया-प्रतिक्रिया में फलित होता है । साहित्य में जीवन कितने विस्तृत रूप में, कितनी गहराई में और कितने प्रकार के पात्रों का आश्रय लेकर अभिव्यक्ति पा सकता है । इसका सर्वश्रेष्ठ और प्रत्यक्ष निदर्शन आज के उपन्यास में करता है ।

उपन्यास आधुनिक युग का एक यथार्थवादी रचना प्रकार है । यह कथा की धारा की साथ-साथ मानव जीवन की अनेक घटनाओं को समेटता चलता है, सच पूछा जाय तो साहित्य की सभी विधाओं में आज उपन्यास ही ऐसा साहित्यिक माध्यम है जिसके द्वारा हम अपने सामाजिक जीवन और उससे समबद्ध राजनीति एवं धर्म के क्षेत्र में उठने वाली अधिकांश समस्याओं पर विचार कर सकते हैं । यही कारण है कि इसे आधुनिक साहित्य की एक प्रमुख अथवा सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है । यद्यपि इसका इतिहास अभी अधिक पुराना नहीं है ।

लेकिन सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों में उपन्यासकार का उद्देश्य देश-काल-समाज का यथावत् निर्जीव चित्र उतार देना मात्र ही नही होता, बल्कि उसे आदर्शोन्मुख करने की भावना का अविरल श्रोत उसके मानस पटल पर बहता रहता है । यही कारण है कि वर्तमान स्थिति परिस्थिति से लोहा लेने के लिये, मानव को निरंतर प्रेरित करता रहता है । यह बात न केवल सामाजिक उपन्यासों के साथ लागू है बल्कि ऐतिहासिक उपन्यासों में भी उपन्यासकार ऐतिहासिक यथार्थ को लेकर ऐसे कथानक और चरित्र का निर्माण करना चाहता है, जो वर्तमान समाज को प्रेरणा प्रदान कर सके । वह अतीत

काल की स्थिति परिस्थितियों को इस प्रकार उभार कर सजीव रूप में अपने उपन्यासों में रखना चाहता है । जिसके परिणामों के आधार पर हम वर्तमान समाज को उसके दोषों अथवा दुर्बलताओं को बचा सकें । वह इतिहास के माध्यम से वर्तमान की समस्याओं का हल प्रस्तुत करना चाहता है । आदर्श की प्रतिष्ठापना के लिए वह आवश्यकता प्रतीत होने पर कल्पना का सहारा भी लेता है । ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए वर्तमान का महत्व अतीत इतिहास से कुछ भी कम नहीं होता, वह वर्तमान की उपेक्षा नहीं कर सकता । उज्जवल भविष्य निर्माण के लिए अतीत और वर्तमान दोनों का समान महत्व होता है । आलोच्य उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा और आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों प्रकार के उपन्यासों की रचना की है, पर गुण और परिणाम दोनों ही दृष्टियों से उनके ऐतिहासिक उपन्यास सामाजिक उपन्यासों से श्रेष्ठ माने जाते हैं । अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की बदौलत इन दोनों लोगों को एक अच्छी ख्याति मिली है । परिणामतः इनके उपन्यासों पर आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाश में आने लगी हैं, पत्र-पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित होने लगे हैं । सन् 1960 में डॉ0 "शशि भूषण सिंहल" ने उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा पर शोध प्रबन्ध लिखकर पी0 एच0 डी0 की उपाधि प्राप्त की थी । इस सम्बन्ध में डॉ0 "शशि भूषण सिंहल" ने वर्मा जी के सन् 1955 तक प्रकाशित सभी उपन्यासों का विवेचन प्रस्तुत किया है । पूरे शोध प्रबन्ध को उन्होंने आठ अध्यायों में बांटकर वर्माजी के उपन्यास का वर्गीकरण किया गया है । इसी तरह आचार्य "चतुरसेन शास्त्री" का 'कथा साहित्य' नामक शोध-प्रबन्ध को डॉ0 "शुभकार कपूर" ने प्रस्तुत कर उनके सभी उपन्यासों और कहानी संग्रह तथा अन्य कृतियों का परिचय कराया है । इसके बाद अनेक विद्वानों ने इन दोनों लोगों पर अनेक शोध-ग्रंथ लिखे तथा विपुल सामग्री उपलब्ध कराई । उपन्यासकार का विवरण देते समय इन लोगों ने इस बात का विशेष ध्यान

रखा है कि उनका सामाजिक उपन्यास में जितना अधिक महत्व है, उससे कम महत्व ऐतिहासिक उपन्यासों में नहीं है । लेकिन मेरे द्वारा लिखित शोध-प्रबन्ध दोनों लोगों के ऐतिहासिक उपन्यासों को दृष्टिकोण में रखते हुए यह उद्घाटित करने का प्रयत्न किया गया है कि वर्मा जी और शास्त्री जी के ऐतिहासिक, सॉस्कृतिक उपन्यासों का तुलनात्मक रूप से कौन सा पक्ष अधिक और कौन सा पक्ष कम उद्घाटित हो पाया है । अभी तक के प्राप्त शोध-ग्रंथों में वर्माजी और शास्त्री जी के तुलनात्मक दृष्टिकोण को लेकर सम्भवतः किसी शोध ग्रंथ की रचना नहीं की गई है । ताकि इन दोनों लोगों के औपन्यासिक व्यक्तित्व और विचारदर्शन को उपन्यास के क्षेत्र में तुलनात्मक रूप से स्पष्ट कर सकें । अतः मैंने उत्सुकता पूर्वक और शास्त्री जी के उपन्यासों का अध्ययन करते हुए यह देखने की कोशिश की है कि मूलतः किस समस्याओं और किस तरह के परिवेश को इन लोगों ने अपने उपन्यासों का आधार बनाया है, साथ ही यह भी प्रकट करने की कोशिश किया हूँ कि इनके उपन्यासों में ऐतिहासिक सॉस्कृतिक संदर्भो में पात्र, कथानक तथा संवाद एवं अन्य पहलुओं पर दोनों लोगों का किस तरह का दृष्टिकोण व्याप्त हुआ है । इन्हीं सब विचार मंथन को ध्यान में रखते हुए हमने वर्मा और शास्त्री जी के विपुल कथा साहित्य जिसका अध्ययन मेरे लिए संभव नहीं है, मैंने उनके ऐतिहासिक उपन्यासों में ऐतिहासिक सॉस्कृतिक संदर्भो को उद्घाटित करने की कोशिश की है ।

अतः हमारा प्रस्तुत शोध ग्रंथ पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है । जिसमें हमने वर्मा और शास्त्री जी के व्यक्तित्व, कृतित्व एवं औपन्यासिक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए उनके विचार एवं दृष्टिकोण की प्रासंगिकता को भी स्पष्ट करने की कोशिश की है ।

अध्याय एक में मैंने साहित्य के स्वरूप पर विचार करते हुए उसमें संस्कृति के रूप को स्पष्ट करने की कोशिश की है, साथ में उपन्यास शब्द के

उद्भव पर विचार करते हुए यथार्थ जीवन और औपन्यासिक जीवन पर दोनों लोगों के दृष्टिकोण को अपने शोध-ग्रंथ में मैंने उद्घाटित किया है। प्रेमचन्दोत्तर औपन्याशिक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए वर्मा और शास्त्री जी के ऐतिहासिक उपन्यास की एक नई धारा को भी बताने की कोशिश की है। इतिहास का संस्कृति में किस प्रकार के सम्बन्ध का उपन्यासों में इतिहास के माध्यम से रूपान्तरण हुआ है, उसकी प्रक्रिया पर भी ध्यान देने की मैंने कोशिश की है। इतिहास ओर रोमांस या इतिहास और कल्पना में वर्मा जी और शास्त्री जी के मत को उद्घाटित किया है।

अध्याय दो में वर्मा और शास्त्री जी के जीवन परिचय एवं उनके ऐतिहासिक उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय देकर कथानक को स्पष्ट किया हूँ। साथ में अध्याय दो के अंतर्गत मैंने केवल वर्माजी के ऐतिहासिक सॉंस्कृतिक संदर्भो में नारी चित्रण एवं राजा, महाराजा, सामंत एवं प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक काल में देश के वातावरण में व्याप्त जनजीवन को भी मैंने अपने शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

अध्याय तीन में मूलतः मैंने आचार्य चतुरसेन शास्त्री के औपन्यासिक व्यक्तित्व एवं सॉंस्कृतिक परिवेश के साथ औपन्यासिक समय का भी उद्घाटन किया हूं। शास्त्री जी के पात्रों पर मैंने विशेष रूप से ध्यान देकर यह बताने की कोशिश करता हूं कि शास्त्री जी ने किस तरह मनुष्य के अंदर अपनी प्रतिभा से प्रत्येक तरह की छिपी हुई भावनाओं को भी अच्छे-बुरे रूप में अपने उपन्यासों में स्थान दिया है।

अध्याय चार के अंतर्गत मैंने वर्माजी और शास्त्री जी के विचारों, पात्रों, कथानकों औपन्यासिक समय दोनों लोगों के दृष्टिकोण के अंतर और समानता पर भी विचार करने की कोशिश किया हूँ, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि ऐतिहासिक उपन्यास की धारा में वर्माजी और शास्त्री जी में किस तरह की

वैचारिक भिन्नता विद्यमान है और उपन्यास को किस दृष्टिकोण से वे दोनों लोग प्रस्तुत करते हैं ।

अध्याय पाँच में मैंने उपसंहार के अंतर्गत वर्मा और शास्त्री जी के उपन्यासों में चित्रित कथानक को ध्यान में रखते हुए यह देखने और बताने की कोशिश किया हूँ कि उपन्यास के यथार्थ और रोमांस के रूप में दोनों लोगों ने अपने कथानकों को किस तरह से भिन्न रूप में व्यक्त करने की कोशिश करते हैं । अंत में परिशिष्ट के अंतर्गत मैंने दोनों लोगों के उपन्यासों की उपलब्ध सामग्री वाले ग्रंथों एवं पत्रिकाओं की सूची प्रस्तुत की है ।

✲ ✲ ✲ ✲ ✲

विषय-सूची

अध्याय-1

अध्याय - प्रथम

अध्याय-1

(क)

1. साहित्य

विद्वानो ने साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति को अनेक ढग से सिद्ध किया है–" साहितस्य भाव साहित्यम "– अर्थात सहित होने का भाव ही साहित्य है, इसमे शब्द तथा अर्थ सहित होते है, और यही सहितावस्था साहित्य के रूप मे गेय होती है। कोई भी साहित्य बिना शब्द तथा अर्थ के सामन्जस्य से सभव नही होता। इस प्रकार साहित्य का जन्म शब्द तथा अर्थ के मिश्रण से होता है। इससे अलग भी विद्वानो ने साहित्य शब्द की ब्युत्पत्ति की है कि –सहितयो भाव साहित्यम्– अर्थात् सहित शब्द का अर्थ और भाव ही साहित्य हे। शब्द तथा अर्थ का ऐसा समन्वय जो लोक कल्याणकारी तथा मगलमय हो, वही साहित्य है। इस परिभाषा मे सहित शब्द पर बड़ा बल दिया गया है। जिसके अनुसार साहित्य को हितकारी, लोकमगलकारी तथा जन कल्याणकारी बताया गया है।

इसी प्रकार सपूर्वक "धा" धातु से 'क्त' प्रत्यय लगने पर 'दधातेरिहः' अष्टाध्यायी के इस सूत्र से "धा" को "हि" आदेश होने पर सहित शब्द व्युत्पन्न हुआ है। अर्थात "सम्" उपसर्ग और "धा" धातु से मिलकर साहित्य शब्द बना है। इस तरह सहित शब्द के दो अर्थ है– 1– सह = साथ होना 2– स+हितम्=हितेन अर्थात हित के साथ होना, जिससे हित का सम्पादन हो। "सहित" शब्द के उपर्युक्त दोनों अर्थो की व्याख्या विद्वानो ने अपने अपने दृष्टिकोण से की है। जिससे "साहित्य शब्द" का निर्माण होता है। "बाबू गुलाबराय" के अनुसार –" सह साथ होने के भाव को प्रधानता देते हुए हम कहेगें कि जहा शब्द और अर्थ तथा विचार और भाव के परस्परानुकूलता के साथ सहभाव हो वही साहित्य है। [1]

साहित्य का अर्थ " हितेन सह सहित " लगाते हुए हम कहेगे कि साहित्य वही है। जिससे मानव हित का सम्पादन हो, हित उसे कहते हैं जिससे कुछ बने कुछ लाभ हो– "विदधातीतिहितम्" आनन्द भी एक लाभ है। [2] 'सहित' का अर्थ है दो का योग, अथवा 'धीयते' जो धारण किया जाय वह हित है और हित के साथ जो रहे वह सहित है और उसका भाव हे साहित्य अथवा सहयोग में अन्वित भाव ही साहित्य है। " साहितयोर्भाव साहित्यम्" के आधार पर भी कहा गया है। कि शब्द और अर्थ दोनों के मेल को साहित्य कहते हैं। [3]

इस प्रकार साहित्य शब्द सहित शब्द के आधार पर बना है जिसमे हित का भाव तथा सामन्जस्य का भाव दोनों निहित है और विद्वानों ने दोनो के ही रूप को प्रमाणिकता प्रदान की है।

बाबू गुलाब राय – काव्य के रूप पृष्ठ स0 – 2
डॉ0 दशरथ ओझा – पृष्ठ स0 – 2
डॉ0 सूर्यकान्त – साहित्य मीमासा पृष्ठ स0 – 20

सत्यता तो यह है कि साहित्य शब्द की कलात्मक अभिव्यक्ति है। जिसमे सार्थकता का तत्व निष्णात है। साथ ही अर्थ अपना ठोस आधार प्राप्त करता है। इन उभय संबधो से वाक्य की रचना होती है। वाक्यो मे निहित भाव ही साहित्य के रूप में साकार होते हैं।

कभी कभी साहित्य शब्द उक्तासय से अलग भी प्रयुक्त होता है। और व्यापकता की अभिव्यक्ति करता है। व्यापक अर्थ मे साहित्य वाङ्मय का पर्याय बन जाता है। जिसमे दर्शन, धर्म, काब्य, नाटक, व्याकरण, कोश, उपन्यास, कहानी, आदि का उल्लेख होता है। आज का सभी कुछ व्यवसायिक विज्ञापन, फिल्म साहित्य, वैज्ञानिक साहित्य आदि सभी वाङ्मय में अपना स्थान रखते है इस प्रकार शब्द और अर्थ के सहित भाव से चरित सभी रचनाएं साहित्य कहलाती है और साहित्य की व्यापकता को परिपोषित करती है।

2. साहित्य और संस्कृति

'साहित्य' तथा 'संस्कृति' एक दूसरे के पूरक है, साहित्य संस्कृति का ज्ञापन कराता है। वही सस्कृति भी विशेष कालखण्ड के साहित्य का ज्ञान कराती है। मानव चेतन है, विवेक, बुद्धि, तर्क उसके अधिकार की वस्तु है। इन्ही के सहारे उनके विचार क्रियाशील बनते है, इन्ही के सहारे उसके विचार रचनात्मक प्राप्यों के होते हुए बौद्धिकता की ओर बढते है। बौद्धिक चेतना के इसी माध्यम से साहित्य के अनन्य रूपों का जन्म होता है, विकास तथा परिमार्जन होता है। यह सत्य है कि साहित्य विचारों की सचित निधि है। मानव के मानसिक उत्कर्ष की महान उपलब्धि है। सदियों की अर्जित उच्च परम्परा है। तथा मनीषियो, बुद्धिजीवियो, की जीवित तपस्या है। साहित्य विचारों का सागर है, संस्कृति उन्ही विचारो को परिशुद्ध करने की कला और उससे प्राप्त अवस्था है। संस्कृति के सौदर्य से संयुक्त वैचारिक परिपार्श्व पुनः साहित्य के कारण बनते है और मानव इतिहास में अनुपम योगदान करते है।

सत्यता तो यह है कि मानव संवेंदनाओं की व्यापकता, सौंदर्यबोध की शुद्धता, नैतिक वृत्ति के उद्दीपन तथा संतुलन बहुत कुछ साहित्य से होता और इसी प्रकार के साहित्य की एक संस्कृति प्रयत्न के रूप में साकार हो उठती हैं। मानव के सांस्कृतिक चेतना को अनुप्राणित, विकसित तथा परिमार्जित करनें में साहित्य का बड़ा ही योगदान है। दर्शन भी संस्कृति को एक दृष्टि प्रदान करता है, लेकिन साहित्य उसे दृष्टि तो प्रदान करता ही है। साथ में गति तथा व्याप्ति भी प्रदान करता है। इस तरह निश्चय ही साहित्य किसी राष्ट्र की संस्कृति का पालक, वाहक,और संरक्षक भी होता है। साहित्य जहां संस्कृति का संरक्षक है, वहीं अपने स्वरूप प्रेरणाओं के लिए संस्कृति का अनुग्रहीत भी है। यह संस्कृति ही है जो किसी विशेष कालखण्ड के कवियों तथा लेखकों को कुछ विशेष रचना की ओर अनुप्रेरित करता है और इस प्रकार वह संस्कृति द्वारा

प्रशासित भी होता है। साहित्य तथा संस्कृति का प्रवाह समानान्त भी है, और प्रतिकूल भी है, साहित्यकार कभी सस्कृति से अनुप्रेरित हो रचना की ओर बढता है, और कभी संस्कृति से विपरीत भी आचरण करने लगता है। उदाहरण के लिए 'वृन्दावन लाल वर्मा जी' ने अपनी बुन्देलखण्डी सस्कृति तथा वहाॅ के वीर और जुझारू पात्रों को भी सहित्य मे स्थान देते है, तथा "चतुरसेन शास्त्री जी" देश की विकृति और समाज की स्पष्ट सस्कृति को भी अपने उपन्यासों में चित्रित करते है ।

साहित्य पुरानी मान्यताओं को प्रत्यक्ष रूप प्रदान करता है और भावी मान्याताओ की सभावनाओ की प्राथमिकता को पोषित करता है, निश्चय अतीत के विश्वासो और मान्यताओ मे नवस्फूर्ति, नया जीवन तथा नवीन गति प्रदान करने का श्रेय साहित्यकार को प्राप्त होता है, जो प्रकारान्तर से संस्कृति के ही विभिन्न रूपों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दिग्दर्शन कराता है। साहित्य का निश्चित प्रयोजन है, लक्ष्य है, यह आत्माभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है। इसी तरह से उपन्यास साहित्य का एक भेद है। और साहित्य है, भाषा के माध्यम से जीवन की अभिव्यक्ति । मानव ने अपने जीवन में जो देखा और बरता है, उसके सार्वजनिक अभिरूचि एवं महत्तव के अगो पर जो कुछ विचार और अनुभव किया है, उन सबकी सजीव विवरण ही साहित्य है। [1] अभिव्यंजना की दृष्टि से साहित्य के अन्तर्गत रचनाओ के पांच भेद कविता, नाटक, निबध, गद्य, काव्य, उपन्यास, और कहानी लिखे जाते रहे है। जीवन और उपन्यास साहित्य के अटूट सबधो को लक्ष्य करते हुए डॉ0 "श्यामसुन्दर दास" ने उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा कहा है। [2]

3. उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति

हिन्दी साहित्य में उपन्यस भी गद्य की एक विधा है, अंग्रेजी में आज जिसे हम लोग नॉवेल कहते हैं , बांग्ला में उसे उपन्यास नाम से अभिहित किया जाता है और बांग्ला के समान ही हिन्दी मे भी यह विधा उपन्यास के नाम से सम्बोधित की जाती है।

उपन्यास शब्द की व्युत्पत्ति उप+नि+अस+धञ के योग से बना है जिसका अनेक अर्थ होता है जैसे निकट रखना, धरोहर, अमानत, वक्तब्य, प्रस्ताव, सुझाव, भूमिका, प्रस्ताव सकेत आदि उल्लेखनीय हैं 'उप' उपसर्ग से निकट का बोध होता है–'न्यास' धरोहर का बोध कराता है इसलिए सामान्य रूप से उपन्यास का अर्थ हुआ कि मनुष्य के निकट रखी हुई वस्तु वर्तमान समय में इसका अर्थ विस्तृत हो गया है–अर्थात इसके अर्थ को पाठक इस रूप में समझ सकता है। कि वह वस्तु या कृति जिसको पढ़कर ऐसा लगे कि यह हमारी ही है और इसमें हमारे ही जीवन का प्रतिबिम्ब है, इसमें हमारी ही कथा हमारी भाषा में कही गयी है।

1 ऐन इन्ट्रोडक्शन द स्टडी ऑफ लिट्रेचर – पृष्ठ स0 – 11 – डब्लू एच हडसन
2 साहित्यालोचन – पृष्ठ सं0 – 147

इसी प्रकार अग्रेजी में 'नॉवेल' शब्द 'लैटिन' के NOVUS शब्द से ब्युत्पन्न होकर आया है, NOVUS का शाब्दिक अर्थ नवीन होता है। अग्रेजी में नावेल शब्द कुछ दिनों तक 'नवीन' और 'लघु गद्य कथा' दोनों अर्थ को प्रतिपादित करता है। किन्तु अठारहवी शताब्दी के पश्चात् साहित्य विद्याा के रूप में यह प्रतिष्ठित हो गया आज जिस अर्थ मे उसका प्रयोग होता है। वह अर्थ भी निश्चित हो गया है।

इतावली भाषा मे नॉवेल पारम्परिक रूप से प्रतिकूल मौलिक कहानी ही नही होता, वरन् वह कहानी होती है, जो वर्तमान मे ही घटित हो अथवा जिसे घटित हुए अधिक समय न हुआ हो इससे यह बात स्पष्ट हो जाती हैं कि नॉवेल नवीनता को द्योतन तो करता ही है साथ ही वह इस तथ्य का भी द्योतन करता है कि उसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वर्तमान जीवन से है। उपन्यास जो सुदूर भूत के समय का चित्रण करता है, उसे ही ऐतिहासिक उपन्यास कहते हैं, यह एक विशिष्ट नाम है, और संभवतः विशिष्ट नाम इसलिए दिया जाता है कि यह विशिष्ट वस्तु का निरूपण करता है। यह संभवत. इस रूप मे इस कारण से ग्रहण किया जाता है कि इसमें जिन वस्तुओ का निरूपण होता है,उसकी वास्तविकता संदिग्ध ही रहती है। क्योंकि उन्हे न तो लेखक ने, न ही पाठकों ने प्रत्यक्ष रूप से अनुभूत किया है । नवीन अर्थ को प्रधान्य देने के कारण गुजराती के विद्वान नॉवेल को 'नवल कथा' कहते हैं और उर्दू साहित्य में नॉवेल शब्द ही ग्रहण कर लिया गया है। मराठी मे, नॉवेल को " कादम्बरी" कहते हैं। संस्कृत का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बरी की रोचकता, सरसता और कथा वस्तु के आधार पर यह नामकरण हुआ है जो एक ओर परम्परा का प्रकाशन करता है और दूसरी ओर नॉवेल की मूलभूत विशेषता की ओर इगित करता है। हिन्दी में व्यवहृत उपन्यास शब्द से भी कतिपय विशेषता का भी बोध होता है।

आधुनिक युग में जिस साहित्य विशेष के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। उसकी प्रकृति को स्पष्ट करनें में यह शब्द सवर्था समर्थ है। वैसे तो उपन्यास शब्द का प्रयोग प्राचीन सस्कृत साहित्य में भी मिलता है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' मे भी इसका उल्लेख मिलता है अतः इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि उपन्यास हमारे लिए कोई नवीन शब्द नही है और गुणाढ्य की " वृहत कथा", "पंचतन्त्र" (विष्णु शर्मा) तथा बौद्ध जातक कथाओ में भी इसका उल्लेख मिलता है।

"आक्सफोर्ड इंग्लिस डिक्सनरी" में नॉवेल का अर्थ– एक काल्पनिक गद्यात्मक कथा या कहानी जो यथेष्ट लम्बी हो, जिसमें यथार्थ जीवन के प्रतिनिधि पात्र और क्रियायें, क्रम, अधिक जटिल प्लांट में चित्रित की जाती है।

★

उपन्यास निःसन्देह काल्पनिक साहित्यिक विधा है तो भी इसकी विषय वस्तु प्रायः यथार्थ घटनाओ से गृहीत की जाती है और लेखक जो वर्णनात्मक प्रणाली अपनाता है, वह मूलतः यथार्थ का वातावरण निर्मित करता है। उपन्यास द्वैत महाकाव्य से भिन्न होता है जो यदि पूर्णतः एतिहासिक नही होता तो कुछ सीमा तक अकाल्पनिक अवश्य होता है। यद्यपि महाकाव्य का विषय पौराणिक होता है, और इसमे जो वर्णनात्मक प्रणाली अपनाई जाती है वह विश्वसनीयता पर अधिक बल नही देती है । उपन्यास और महाकाव्य में जो वैषम्य है वह ऐतिहासिक दृष्टि से अधिक स्पष्ट है। उपन्यास का उदय सभ्यता के अधिक विकसित स्तर पर हुआ है। और औपन्यासिक दृष्टि तथ्य और कल्पना की पारस्परिक अन्तर अधिक रही है।

यह दृष्यमान जगत परमात्मा की बृहद सृष्टि है, जो यथार्थ है उसे एक उपन्यासकार अपने उपन्यास की सृष्टि इस आधार पर करता है जो आकार प्रकार में उससे बहुत छोटी होती है। यथार्थ जीवन मे पात्रों घटनाओं एवं स्थानों की सख्या बहुत अधिक होती है तथा वे अस्त व्यस्त होते है। वे पूर्णतः अप्रमाणित, असम्बद्ध, असंगत, क्रमरहित, एव उद्देश्य रहित होते हैं। अतः एक कुशल उपन्यासकार उपन्यास की रचना करते समय यथार्थ जीवन के समस्त आवश्यक तथ्यो को निकाल देता है। वह उपयुक्त कथानको को लेकर आवश्यक घटनाओ, स्थानों, पात्रों, एवं तत्सम्बन्धित समस्याओं एव समाधानों पर औपचारिक जीवन की सृष्टि करता है। जो सम्भाव्य, सम्बद्ध, एवं उद्देश्यपूर्ण होती है। काट–छाट से छोटी हो जाती है। अर्थात यथार्थ जीवन की अपेक्षा औपन्यासिक जीवन का आकार लघु हो जाता है।

उपन्यास मे उपन्यासकार अपने अनुभव एवं कल्पना के आधार पर यथार्थ जीवन की पुनः प्रस्तुति करता है। "बाबू गुलाबराय" ने उपन्यास शब्द का अर्थ सामने रखना बताया है। जिसका यही अभिप्राय, कि उपन्यास मे यथार्थ के लघुरूप को पाठक के सामने रखा जाता है। एक प्रकार से उसे जीवन से परिचित कराया जाता है। उपन्यासकार यथार्थ जीवन के विविधरूपों की जॉच पड़ताल करता है, साथ ही वह अपने जीवन मे अनेक दुख, सुख, कटु और मृदु समयों का अनुभव करते हुए उसी आधार पर उपन्यास की रचना करता है। इस प्रकार वह उपन्यास मे यथार्थ जीवन के सम्भाव्य लघुरूप की स्थापना करता है।

हिन्दी के कुछ विद्वानों ने उपन्यास में जीवन की अभिव्यक्ति होने के कारण तथा उसमें कल्पना प्रयोग के कारण उसे " जीवन की कथा" , "जीवन की कहानी", "जीवन का काल्पनिक रूप" कहा है। डा0 "श्यामसुन्दर दास" ने जीवन और उपन्यास के इस अटूट संम्बन्ध को लक्ष्य करते हुए उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन का काल्पनिक कथा कहा है।

हिन्दी उपन्यास कला – डॉ0 राम लखन शुक्ल ★

रूप'' कहा है। डॉ0 "श्यामसुन्दर दास"ने जीवन और उपन्यास के इस अटूट संम्बन्ध को लक्ष्य करते हुए उपन्यास को मनुष्य के वास्तविक जीवन का काल्पनिक कथा कहा है।

उपन्यास जीवन का प्रतिबिम्ब होता है। इसमे मनुष्य के जीवन की सच्चाई झलकती है। उपन्यास के माध्यम से मनुष्य स्वय से परिचित होता है। इसमे मनुष्य की सवेदनाओं, सवेगो, जिजीविषाओं के साथ कुठाओं वर्जनाओं आदि से सम्बन्धित जीवन के क्रमशः सुन्दर एव घिनौने रूप को समग्रता के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार उपन्यास आत्मान्वेषण का माध्यम होता है। इसमे विभिन्न संस्कृतियों के सम्मिलन से मानवीय चेतना पर पड़ने वाले प्रभाव एंव तद्जन्य परिर्वतन को अभिव्यक्त किया जाता है। [1]

डॉ0 ''सुरेश सिन्हा'' उपन्यास के विषय में विचार प्रस्तुत करते हुए लिखते है कि ''उपन्यास मनुष्य की अर्न्तनिहित सामर्थ्य की पहचान है। वह आत्मान्वेषण की प्रक्रिया है जो जटिल परिवेश एंव परिर्वतनशील सदर्भो मे मनुष्य के आन्तरिकता की खोज है। जो सवेदना के धरातल पर संप्रेषित होकर यथार्थ संगीतियों–विसगतियो से साक्षात् करने की दिशा देता है।''

दु:ख और सुख की अनुभूति मानव जीवन की सच्चाई है । प्रकृति प्रत्येक जीवन को कसौटी पर अवश्य ही कसती है। मनुष्य की आन्तरिक शक्ति एव उसके सामर्थ्य इस अवसर पर प्रकट होती है लेकिन उसका वास्तविक रूप जितना दु:ख में प्रकट होता है, उतना सुख में नही । सुख की अपेक्षा दु:ख में इस शक्ति की तीव्रता एवं घनत्व अधिक होता है। मानव मूल्यो की स्थापना इस शक्ति की तीव्रता एंव घनत्व के आधार पर की जाती है यह जीवनी शक्ति दु:ख निरोध का साधन होती है। सवेदना की सरिता उपन्यास के माध्यम से इस शक्ति के प्रभाव को मानव हृदय में पीढ़ी दर पीढी प्रवाहित करती रहती है। उपन्यास में यही वह तथ्य है जो मानव मन पर गहरा प्रभाव डालता है। इसी से प्रेरित होकर मनुष्य अपनी बुराईयों से लड़ता है। वह जीवन को असुंदर बनाने वाले समस्त कारणो से जूझता है। इसी तथ्य के कारण उपन्यास यथार्थ परख होते हैं। उपन्यासकार इस शक्ति को प्रेषणीय एंव ग्राह्य बनाने के लिए उपन्यास मे कल्पना का प्रयोग करता है। [2]

अतः उपरोक्त विवेचन को ध्यान में रखने से स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास एक ऐसी कृति है जिसमें संगत, सम्भाव्य, स्वाभाविक एवं सोद्देश्य जीवन का चित्रण होता है। जो मनुष्य के कल्याण हेतु प्रेरणा श्रोत बन जाता है ।

1 माना कि हिन्दी कोष – प्रधान सम्पादन – रामचन्द्र वर्मा
पृष्ठ सख्या – 335– 356
2 डॉ0 सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास – द्वितीय सस्करण 1972 (कुछ बातें)

उपन्यास मे मानव जीवन की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए उसका जीवन से गहरा सबध होता है। उपन्यासों में मानव जीवन के विविध पक्षों का सर्वांगीण चित्रण होता है। उसमे मानव मन के विविध पक्षो, उनकी भावनाओं, उमगो, संवेदनाओं, समस्याओ एव उनके निदानो का यथार्थ एव सजीव निदर्शन होता है। जिन्हे अन्य साहित्यिक विधाओ मे उपन्यास की तरह एक साथ अभिव्यक्त नही किया जा सकता है। इस प्रकार मनुष्य के पर्याय जीवन का सम्पूर्ण चित्र उपन्यास मे उपलब्ध होता है। यद्यपि उपन्यास में चित्रित जीवन का आधार यथार्थ जीवन ही होता है लेकिन अनेक सर्दभों मे औपन्यासिक जीवन की यह भिन्नता उपन्यासकार के विवेक एव कल्पना प्रयोग से प्रस्तुत की जाती है। यथार्थ जीवन बहुत विस्तृत तथा अप्रत्याशित होता है। इसमें अनेक असंभव एवं अस्वाभाविक क्रियाकलाप होते है। यह पूर्णतः असंबद्ध होता है। क्योकि इसमें कार्य कारण सम्बन्ध नही होता । इसके अलावा यह असगत एवं क्रमहीन होता है। इसके पात्रों तथा घटनाओं आदि मे संगति नही होती है। इसकी घटनाए पूर्वापर क्रम से रहित होती है। इसमें अस्पष्टता तथा अनेक अर्न्तविरोध होते है। जिससे यह अरूचिकर हो जाता है। यथार्थ जीवन में पात्रों, स्थानो एव घटनाओं का बाहुल्य होता है। ऐ परस्पर अनिश्चित एवं असबद्ध होते है इसकी घटानाए साभिप्राय नही होती है। तथा पात्र किसी उद्देश्य विशेष को लेकर कार्य प्रवृति नहीं होते है। तथा इन्ही सब कारणो से यथार्थ जीवन एकदम अस्वाभाविक एव अरूचिकर हो जाता है।

5. यथार्थ जीवन से औपन्यासिक जीवन की भिन्नता

उपन्यास मे चित्रित जीवन यथार्थ जीवन से पर्याप्त भिन्न होता है। यह भिन्नता उपन्यासकार के कल्पना प्रयोग से आती है। लेखक वास्तविक जीवन की असंगति सबद्धहीनता, एवं क्रमहीनता को हटाकर अपने कल्पना से उपन्यास में संगत, संबद्ध, क्रमयुक्त एवं स्वाभाविक जीवन को चित्रित करता है जिससे उसमे पर्याप्त भिन्नता आ जाती है। लेकिन यह भिन्नता औपन्यासिक जीवन को एकदम अयथार्थ नही बनाती है। यथार्थ जीवन से औपन्यासिक जीवन की भिन्नता दर्पण में पडे किसी प्रतिविम्ब की भातिं तद्रूप होती है। एक उपन्यासकार की कल्पना यथार्थ के समानान्तर होती है विपरीत नही। उपन्यासकार उपन्यास में निहित जीवन मे आमूल–चूल परिर्वतन नही दिखा सकता है। वह-'मरूस्थल में सागर नही लहरा सकता है'। न ही 'बर्फीली चोटियो में धूल भरी आंधियां दिखा सकता है'। इस प्रकार औपन्यासिक जीवन यथार्थ जीवन से कुछ भिन्न होता है। परन्तु एकदम भिन्न नही हो सकता है।

उपन्यास में गतिशील जीवन का चित्रण किया जाता है। यथार्थ जीवन में पात्र एवं घट्नाएं आदि अस्त व्यस्त होती है। उपन्यासकार अपनी कल्पना से उन्हे सही स्थान पर रखकर उन्हे क्रमयुक्त करता है। जिससे उपन्यास में गति एवं प्रभाव पूर्णता आती है। यथार्थ जीवन की

★

भिन्नता दर्पण मे पड़े किसी प्रतिविम्ब की भाति तद्रूप होती है। एक उपन्यासकार की कल्पना यथार्थ के समानान्तर होती है विपरीत नही। उपन्यासकार उपन्यास मे निहित जीवन मे आमूल–चूल परिर्वतन नही दिखा सकता है। वह मरूस्थल में सागर नही लहरा सकता है। न ही बर्फीली चोटियो मे धूल भरी आँधिया दिखा सकता है। इस प्रकार औपन्यासिक जीवन यथार्थ जीवन से कुछ भिन्न होता है। परन्तु एकदम भिन्न नही हो सकता है।

उपन्यास मे गतिशील जीवन का चित्रण किया जाता है। यथार्थ जीवन में पात्र एव घटनाए आदि अस्त व्यस्त होती है। उपन्यासकार अपनी कल्पना से उन्हे सही स्थान पर रखकर उन्हे क्रमयुक्त करता है। जिससे उपन्यास में गति एवं प्रभाव पूर्णता आती है। यथार्थ जीवन की घटनाओं पात्रो एवं उनके क्रिया–कलापों में या तो कार्यकारण का सबद्ध होता है या तो बहुत अस्पष्ट वर्णन होता है। उपन्यासकार अपनी कल्पना एवं अनुभव के आधार पर उनमे कार्यकारण संबद्ध स्थापित कर उसे सुसंबद्ध करता है। उपन्यास में पात्रों के यथार्थ जीवन का ही चित्रण नही होता इसमे उपन्यासकार पात्रों के मनोगत भावों, सवेदनाओ, गूढ रहस्यो, आदि को प्रकट करता है। [1]

उपन्यास मे चित्रित जीवन का यथार्थ कुछ न कुछ आदर्शोन्मुख होता है। यथार्थ जीवन को उपन्यास में ज्यो का त्यो उतारा नही जा सकता है । उपन्यासकार जीवन की घटनाओ को अपनी मनोरम कल्पना से सुसंगत स्वाभाविक एवं क्रम युक्त बनाता है। ऐसा वह इसलिए करता है। क्योंकि उपन्यासकार के मस्तिष्क में एक अपेक्षित जीवन होता है। जो उसका आदर्श होता है और जिसे वह उपन्यास में चित्रित करना चाहता है। वह वास्तविक जीवन में जो कुछ देखता है या उसके विचार में जो नही होना चाहिये या जो होना चाहिये, वह यथार्थ से सर्वथा भिन्न नही होता है उपन्यास मे यदि कल्पना की अतिशयता होती है तो वह औपनासिक जीवन प्रभावहीन, अस्वाभाविक एवं प्रेरणा हीन हो जाता है। उससे पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन भी नही हो पाता हैं। अतः उपन्यासकार अपने उपन्यास मे कल्पना के समुचित प्रयोग पर बल देता हैं। उनकी दृष्टि मे कल्पना के समुचित प्रयोग से उपन्यास ताश के पत्तों का महल या क्लब बनकर रह जाता है।

"वृन्दावनलाल वर्मा" जी ने ऐतिहासिक उपन्यास और कल्पना के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा है– " 'जिन स्थानों पर इतिहास का प्रकाश नही पड़ सकता है, उनका कल्पना द्वारा सृजन करके उपन्यास लेखक भूली हुई या खोई हुई सच्चाइयों का निर्माण करता है। उसमे वह चमक दमक आ जाती है, जो इतिहास के जाने माने तथ्यों में अवश्यमेव होती है। पर यह कि उन तथ्यों या परम्पराओं को 'ताश के पत्तों का महल' या 'क्लब घर' बना दिया जाय।

1 हिन्दी उपन्यास मे यथार्थवाद – डॉ0 त्रिभुवन सिंह
2 वृन्दावन लाल वर्मा – ऐतिहासिक उपन्यास और मेरा दृष्टिकोण शीर्षक निम्बन्ध से उद्घृत – पृष्ठ स0 – 26

करने पर चित्र की आकृति बडी हो जाने पर भी उसका अविष्कृत रूप रहना आवश्यक है। गायक तार स्वर में भी गायेगा और मन्द्र स्वर में भी। पर स्वर मे अचल रहेगा। स्वर का अचलत्व ही उसकी कला का सत्य है। गायक एक ही राग को जो उसके मानस पटल पर उभर रहा है। भिन्न वाद्ययंत्रो में एक दूसरे के अन्तर से उसे ध्वनित करता है पर राग वही रहता है। उसका वाह्य रूप भिन्न होने पर भी अभ्यन्तर एक है वह एक सत्य की प्रतिष्ठा भूमि पर स्थिर है। वही यथार्थ है। [1]

इस प्रकार शास्त्री जी का मत है " सत्य का मूल स्वरूप एक ही है उसी का आंशिक रूप सक्षिप्त या विस्तृत रूप को विभिन्न कथाकर चित्रित करते है। उनके विवरण विस्तार में यथार्थता का कम या अधिक रूप स्पष्ट हो जाता है। किन्तु आचार्य चतुरसेन जी, 'सुमित्रा नन्दन पत की भांति निम्न दृष्टिकोण में विश्वास रखते है। मेरी दृष्टि मे सब वादों की कसौटी लोकमंगल मे निहित है यदि हमारे यथार्थ वादी निरीक्षण, परीक्षण मानव मंगल के लिए उपयोगी सिद्ध होते है। तो वे अभिनन्दनीय हैं। अन्यथा उन्हे पारस्परिक विद्वेष, पूर्वाग्रह तथा कटुता का विज्ञापन समझना चाहिये।

इसी प्रकार "बृन्दावन लाल वर्मा" ने आदर्शोन्मुखी यथार्थवाद को " सत्य शिव सुन्दरम् " के रूप में माना है। उन्होने उपन्यास का लक्ष्य बताते हुए कहा है। कि " उपन्यास का लक्ष्य उपर –उपर से पूर्ण मनोरंजन और भीतर से 'सत्यं शिव सुन्दरम्' की साधना होनी चाहिये । अपनी सस्कृति के इसी सूत्र का मैं कायल हूँ और यही मेरा आदर्श है।

सत्यं शिवं सुन्दरमं के बारे में आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' कुछ इस तरह के विचार व्यक्त करते हैं– "उपन्यास मे मै नग्न यथार्थ को स्वीकार नहीं करता हूँ, मर्यादा और संयम ही सत्य को नग्नता से पृथक करते हैं, इसका मतलब यह हुआ कि संयम से साधना सम्पन्न होती है, साधना से निवृति एक प्रचंड प्रवृति बन जाती है। यह तो साहित्यकार का काम है कि वह प्रवृत्ति को क़ाबू में रखें, प्रवृत्ति साधक के शयनगार का एक दीपक है, जिसमें आलोक का सौदर्य है, यदि प्रवृति को यत्न पूर्वक संयम से सीमित न रखा जायेगा तो वह आलोक के सौंदर्य का जलाकर खाक कर देगा।

इसलिए शास्त्री जी ने सत्य के अनेक रूप मानते हुए लिखा है– " सत्य के अनेक रूप है, सुन्दर भी और असुंदर भी परन्तु सत्य का सुंदर रूप संयम और साधना के परिणाम का अतिरेक है तथा साधना का सम्पूर्ण वैभव है, वैभव मैं उसे इसलिए कहता हूँ कि वह साधक की आवश्यकताओं के अतिरिक्त है, उसकी तृप्ति से परे है, इसलिए आनन्द की पृष्ठभूमि उसी पर आधारित है। आनन्दहीन साधना चरम ध्येय है।" यदि प्रवृत्ति से संयम का सम्पर्क घट जाय तो

1 मेरी उपन्यास विषयक धारणाये – समालोचक – शास्त्री जी पृष्ठ – 431

★

साधक का विवेक भ्रष्ट हो जायेगा और उसका वैभव जो सयम और साधना का अतिरेक है, वासना का रूप धारण कर लेगा और हीनता से परिपूर्णता की ओर बढता हुआ साधक आवेश मे आकर स्वेच्छाचारी और असयत हो जायेगा। तब सौन्दर्य की नही बल्कि काम विकारो की सृष्टि कर डालेगा। [1]

इस प्रकार दोनो उपन्यासकारों के विचारो का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास और जीवन के आदर्शो का गहरा सबध होता है। 'वर्मा जी' की अपेक्षा 'शास्त्री जी' ने जीवन के आदर्शो के सबध मे काफी विस्तार से कल्पना के रूप मे व्याख्या करते हैं। 'वर्माजी' यथार्थ जीवन के दोषों को दूर करने के लिए कहते हैं । "जीवन जैसा होना चाहिये उपन्यास उसे उसी रूप मे जीने की प्रेरणा देता है। उपन्यास मानव जीवन का प्रतिबिम्ब है इसलिए उसे शुद्ध साफ और परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करना चाहिये क्योकि उपन्यास को पढते समय पाठक को पहले से ही आभाष हो जाता है कि आगे क्या होने वाला है। इस प्रकार औपन्यासिक घटनायें कौतूहल सृष्टि एव कौतूहल की शांति कर पाठकों को तृप्त करते है। इसके द्वारा पाठको का स्वस्थ मनोरजन होता है। इसी प्रकार के विचार 'शास्त्री जी' ने भी प्रस्तुत किया है– वे उपन्यास में संयम को बहुत ही महत्तवपूर्ण समझते हैं, किसी प्रकार के भद्देपन को स्वीकार नही करते हैं, वे उपन्यासकार को समझाना चाहते है कि संयम क्या है उसकी कसौटी क्या है ? फिर वह उत्तर के रूप में संकेत भी करते है। कि यह सामाजिक मंगल और युग– युग व्यापी कलाकारों की दृष्टि है इन दोनो पुलीनों से मर्यादित होकर साहित्य मे जीवन के यथार्थ चित्रण की धारा आगे बढ़ने की गति तथा समाज एव पाठक को सरस करने की विशेषता प्राप्त करती हुई अपने आनन्द रूपी सागर में मिल सकेगी। [2]

*****

1. डॉ0 शशि भूषण सिंहल – उपन्यासकार – वृन्दावन लाल वर्मा – प्रथम सस्करण – 1956 – पृष्ठ स0 – 279
2. डॉ0 शुभकार कपूर – आचार्य चतुरसेन शास्त्री के विचार एव दर्शन – पृष्ठ स0 – 530, 531, 532

*

(ख)

प्रेमचन्द्रोत्तर औपन्यासिक परिदृश्य तथा ऐतिहासिक सॉस्कृतिक उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

प्रेमचन्द्रोत्तर काल मुख्यतः दो भागों में बंट जाता है। एक 1916 से 1936 तक जिसे 'प्रेमचन्द्र युग' कहते है। दूसरा 1936 के बाद का समय प्रेमचन्द्रोत्तर युग के नाम से जाना जाता है। प्रेमचन्द्रयुग के उपन्यासकार मूलत सामाजिक उपन्यासकार ही थे और उन्होंने प्रेमचन्द्र का अनुसरण करके अधिक से अधिक सामाजिक उपन्यासों की रचना की है। जिसमें 'जयशकर प्रसाद, 'भगवती प्रसाद बाजपेयी,' 'जयनेन्द्र,' 'भगवती चरण वर्मा,' 'अज्ञेय,' 'इलाचन्द जोशी,' 'उपेन्द्रनाथ अश्क,' 'यशपाल,'अमृतलाल नागर,' 'कमलेश्वर,' 'निर्मल वर्मा,' 'धर्मवीर भारती' तथा 'फणीश्वरनाथ रेणु' जैसे सामाजिक और आचलिक उपन्यासकारों ने प्रभूत मात्रा मे सामाजिक और आंचलिक उपन्यारों की रचना की । अगले क्रम मे 'प्रेमचन्दोत्तर युग' के उपन्यासकार जैसे 'नागार्जुन,' 'भीष्म साहनी,' 'उदय शंकर भट्ट,' 'रांधेय राधव,' 'बलवन्त सिंह,' 'जगदम्बा प्रसाद दीक्षित,' 'मार्कण्डेय सिह,' 'शिव प्रसाद सिह,' 'रामदरश मिश्र,' 'काशीनाथ सिंह,' 'दूधनाथ सिंह,' 'मन्नू भंडारी,' 'नीलकान्त,' 'राजेन्द्र यादव,' 'शेखर जोशी,' 'भैरव प्रसाद गुप्त,' 'श्री लाल शुक्ल,' आदि कुछ ऐसे ख्याति प्राप्त उपन्यासकार है जिन्होंने अपने कथा साहित्य में भारतीय जन जीवन के दलित, उपेक्षित वर्ग की सामाजिक, आर्थिक स्थिति एव समाज के विंसगतियो का मार्मिक चित्रण अपने उपन्यासो मे किया है ।

'प्रेमचन्द जी' अपने युग के उपन्यासकारों के लिए एक नई दिशा प्रदान की । उन्होंने साहित्य को उसके व्यापकतम रूप में ग्रहण किया। और उसके समस्त विस्तार प्रसार को मान्यता दी। उनका युग देश के इतिहास में सामाजिक एवं राजनीतिक जागृत का युग है। तथा 'प्रेमचन्द' जी ने सम्पूर्ण इमानदारी से उस जागृतियो का अपने उपन्यासों मे स्थान दिया है। इस समय भारतीय सामाजिक व्यवस्था में राजा महाराजा, जमींदार, किसान, मजदूर, कारीगर आदि वर्गो के लोग रहते थे तथा देश का नेतृत्व मध्यम वर्ग के हाथ मे था। इनमें ऊँच और नीच की भावना थी तथा उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्गो पर अत्याचार कर उनका शोषण करते थे। 'प्रेम चन्द जी' ने अपने युग की जडता को तोड़कर उसमें गति लाने का प्रयत्न कर रहे थे। उनका विचार था–" हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिंतन हो स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाई का प्रकाश हो, जो हममें गति , संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नही। क्योंकि इस युग में सो जाना मृत्यु का लक्षण है तथा इस समय तो सबसे बड़ी आकाक्षा यह है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों ।

★

'प्रेमचन्द जी' अपने युग में उपन्यास को "मानव चरित्र का चित्र मानते थे" मानव चरित्र के रहस्योद्‌घाटन ही उनके अनुसार उपन्यास का लक्ष्य होना चाहिये मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। इस सक्षिप्त परिभाषा मे एक प्रकार से विस्तृत अर्थ निहित है। मानव चरित्र के चित्र स्वरूप उपन्यास भी सीमाहीन हो जाता है। इस तरह हम देखते हैं कि – :

हिन्दी साहित्य की उपन्यारा धारा में 'प्रेमचन्द' के समय से ही उपन्यास की मुख्यत दो धारायें साथ–साथ चलती हैं, जिसमें एक धारा 'प्रेमचन्द' की परम्परा का अनुसरण करती है। दूसरी इससे हटकर ऐतिहासिक घटनाओं का सकलन करते हुए ऐतिहासिक उपन्यासो का सृजन करती है। पहली धारा के लोग जहा समाजवादी रचनाये प्रस्तुत करते हैं, वही दूसरी धारा के लोग ऐतिहासिक घटनाओ का माध्यम बनाकर उस युग की सास्कृतिक विषमता का बोध कराते है। वैसे तो ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना 'भारतेन्दु युग' से ही शुरू हो गयी थी, लेकिन ऐतिहासिक उपन्यासो की परम्परा को 'वृन्दावन लाल वर्मा जी' ने शुद्ध रूप से आगे बढाया । अत. हम उपन्यासों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करके ऐतिहासिक उपन्यासो का सक्षिप्त परिचय देने की कोशिश करूंगा ।

भारत मे ब्रिटिश स्थापना के पश्चात् समाज का पूर्णरूप से पतन हो चुका था। भारतवासी मान मर्यादा रहित एवं परतंत्रता का जीवन व्यतीत कर रहे थे, वे सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक हर क्षेत्र में अंकुश का शिकार होकर अपनी शक्ति और चेतना को खो बैठे थे । समाज का नैतिक पतन हो रहा था। नारियो की दशा तो अत्यन्त सोचनीय थी। उन्हें शिक्षा का अधिकार न था। विवाह सम्बन्धी स्वतंत्रता न थी, और न ही उनका कोई व्यक्तिगत व्यक्तित्व समझा जाता था । 'बाल विवाह' 'सतीप्रथा', 'वेश्यावृत्ति' समर्थन एव विधवा विवाह निषेध था । अनेक कुप्रथाएं समाज में फैली हुइ थी परन्तु समय के साथ इनमे धीरे–धीरे परिवर्तन भी आ रहा था, ईसाई पादरियों ने अनेक भयंकर और क्रूर धार्मिक एव सामाजिक प्रथाओ के विरूद्ध आन्दोलन करके सरकार को इन प्रथाओं का अंत करने पर मजबूर कर दिया किन्तु इसके पीछे भी ईसाई का स्वार्थ था। वे हिन्दू धर्म की जगह ईसाई धर्म को स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे, इस स्थिति को भांप कर स्वयं हिन्दू समाज में अनेक समाज सुधारक सामने आये, जगह–जगह पर सार्वजनिक सभाएं होने लगीं, जिसमें 'सतीप्रथा', 'नरबलि', 'बालहत्या', 'बाल–विवाह' में अपव्यय, 'मद्यपान', 'वेश्यावृत्ति' आदि के विरोध मे अनेकों प्रस्ताव पास किये जाने लगे, धार्मिक रूढ़ियां और परम्परायें धीरे–धीरे समाप्त हो रही थी, इन सभी कारणों के बीच गद्य का प्रसार बहुत तेजी से हुआ । ऐसे समय भारतवासियों का पश्चिम की एक सजीव और उन्नतिशील जाति के साथ

डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – 19वीं शताब्दी (1963) – इलाहाबाद प्रकाशन पृष्ठ स0 – 182

★

सम्पर्क स्थापित हुआ, उनके द्वारा प्रचलित नवीन शिक्षा पद्धति, वैज्ञानिक, आविष्कारों और नवीन प्रवृत्तियो से हिन्दी साहित्य भी अछूता न रह सका ।

इस काल मे अनेक सुधारवादी आन्दोलनो ने भी जन्म लिया, सन् 1828 मे "राजाराम मोहन राय" द्वारा आन्दोलन से 'ब्रम्हसमाज' की स्थापना हुई। 'दयानन्द सरस्वती' ने 'आर्य समाज' की स्थापना की "देश की ओर लौट चलो" यह उनका नारा था । 6 जून 1877 को उन्होने "गोपालराव हरिदेशमुख" को लिखे गये एक पत्र मे उन्होने स्पष्ट किया था कि अज्ञानी भारत का अज्ञानान्धकार जिसके कारण वे इतने गिर गये है, और फिर भी इधर से इतने असावधान है, एक दिन दूर हो जायेगे जबकि वेदो का सच्चा ज्ञान देश भर में फैलकर अपना प्रकाश फैलायेगा, और सभ्यता का सूर्य अपनी चमक दिखलायेगा । इस आन्दोलन से केवल शिक्षित वर्ग ही नही बल्कि अर्द्धशिक्षित वर्ग भी अधिक प्रभावित हुआ । 'आर्य समाज' ने विधवा विवाह का समर्थन और बाल विवाह का विरोध किया, तथा धार्मिक रूढियो एव अधविश्वासों परम्पराओ को समाप्त कर धर्म का ऐसा स्वरूप निर्धारित करने का प्रयत्न किया जो पश्चिमी सभ्यता की चमक–दमक से प्रभावित उच्च शिक्षित एव बुद्धजीवी वर्ग का भी समर्थन प्राप्त हो सके, इस प्रकार आर्य समाज ने हिन्दी उपन्यासकारों को भी विशेष रूप से प्रभावित किया, आर्य समाज आन्दोलनों ने उपन्यासकारों के इस वर्ग के लिए अनेक प्रकार की नवीन विषयों का निर्माण कर पुरातनवादी सनातन धर्म के विरोध मे खडे रह सकने की प्रेरणा दी ।

इस प्रारम्भिक काल मे हिन्दी उपन्यासों मे जो भी प्रगतिशील तत्व प्राप्त होते है, तथा सामाजिक यथार्थवाद का जो थोडा बहुत चित्रण प्राप्त होता है, वह आर्य समाज की अभूतपूर्व देन है, और इसके लिये हिन्दी उपन्यास और समाज इन आन्दोलनो का चिर ऋणी रहेगा । भारत मे जब 1857 का स्वतत्रता संग्राम हुआ उससे पूर्व भारत मे दो वर्ग ही थे, 'उच्चवर्ग' और 'निम्नवर्ग,' 'मध्यम वर्ग' की कोई विशेष सत्ता न न थी, परन्त ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के बाद धीरे–धीरे शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय हुआ । इस वर्ग में नये युग की भावना और नई राष्ट्रीय चेतना का उल्लास समाहित था । इस नये मध्यम वर्ग के तीन उपवर्ग थे । एक वर्ग तो ऐसा था जो कि शिक्षित होते हुए भी यह समझता था कि ब्रिटिश साम्राज्य भारतवासियों के लिए कल्याणकारी है । इसके लिए क्रांतिकारी परिवर्तन की जरूरत नही है । दूसरे वर्ग की यह धारणा थी कि ब्रिटिश साम्राज्य केवल वर्तमान स्थितियो को देखते हुए थोड़े समय के लिए लाभदायक है । यह वर्ग धीरे–धीरे सामाजिक रूढ़ियों को समाप्त करके उन्नति की ओर बढना चाहता था, पर पश्चिमी सभ्यता का नही बल्कि अपनी ही सभ्यता का सशक्ति एवं परिवर्धित द्वारा । तीसरा वर्ग तो स्वतंत्रता प्राप्ति को तीव्र आकांक्षा के साथ अनुभव कर रहा था, वह किसी भी तरह से आजादी

डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – 19वीं शताब्दी (1963) – इलाहाबाद प्रकाशन पृष्ठ स0 – 185
★

वाह रहा था । इस प्रकार उक्त परिस्थितियो में "हिन्दी उपन्यास साहित्य" का जन्म हुआ । इन समस्याओ के समाधान एव प्रगतिशीलता लाने के लिए प्रारम्भिक उपन्यासकारो ने अनेक प्रयास किये । इन्होने सुधारवादी उपन्यासकार के साथ–साथ पाठको के हृदय मे समाज सुधार की भावनाओ को जागृत किया । उपन्यासकार इतिहास के चौरस्ते पर खडे होकर सब तरह की नई पुरानी और अच्छी बुरी चीजो से घिरे रहने पर भी उन्होने निडर होकर भारतीय जीवन को समृद्धि बनाने का ध्रुव निश्चय किया । यह ध्रुव निश्चय था "सत्य की खोज करना" ।

सन् 1857 की क्राति के बाद हिन्दी उपन्यास का महत्वपूर्ण विकास हुआ । वास्तव मे गद्य साहित्य का विकास जन्म तथा भारतीय जीवन मे उस परम लक्ष्य की ओर संकेत करता है, जिसके फलस्वरूप हिन्दी साहित्य मध्ययुगीन वातावरण से निकलकर नवीन वैज्ञानिक चेतना और जागरण की सीमाओ मे प्रवेश कर सका । गद्य के माध्यम से विदेशो के उन्नतशील साहित्य नवीन विचारो और क्राति के सम्पर्क मे आये । उपन्यास इसी गद्य का अन्यतम रूप है । उपन्यास शब्द तो बहुत प्राचीन है, किन्तु जिस उपन्यास साहित्य से हम आज परिचित हैं, वह आधुनिक काल की ही देन है । उसका आविर्भाव नवीन आर्थिक संगठन के फलस्वरूप उत्पन्न मध्यम वर्ग और आधुनिक रूप मे शिक्षित मध्यम वर्ग की सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण हुआ । इसके लिए हिन्दी साहित्य विदेशी उपन्यास साहित्य का ऋणी है । हिन्दी के प्रारम्भिक युग से ही विश्व के उच्चकोटि के उपन्यासों का अनुवाद होता रहा, जिससे उपन्यासकारों को हमेशा । एक नई दिशा और एक नई रूपरेखा का ज्ञान प्राप्त होता रहा । इस प्रारम्भिक काल में उपन्यासो का मानवजीवन के साथ कोई विशेष सम्बन्ध नहीं हो पाया। किन्तु जो भी प्रयत्न हुए उसमें केवल अकुलाहट और बेबशी का भाव हमें दिखाई पडता है । यह युग उपन्यासो की शैशवावस्था ही था। इस युग मे हिन्दी लेखकों के सामने सबसे बड़ी समस्या हिन्दी उपन्यासो के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना था । जो उपन्यासकार साहित्य के क्षेत्र मे आये, उनके सम्मुख कोई दिशा न थी, कोई परम्परा न थी, उन्हें अपना मार्ग स्वयं तय करना था । इसलिए उस समय जो भी साहित्यकार थे, उन्होंने विदेशी उपन्यासों तथा बाग्ला के उत्कृष्ट उपन्यासों का अनुवाद करके लोगों को एक दिशा प्रदान करने का प्रयास किया । इसके लिए उन्होने उपन्यासो में कल्पनात्मक और रोमांचकारी प्रसंगों को अधिक से अधिक स्थान दिया । कहा जाता है कि– "देवकी नदन खत्री" के "चन्द्रकाता सतति" को पढ़ने के लिए ऐसे पाठक जो हिन्दी नहीं जानते थे, वे हिन्दी सीखने की कोशिश करने लगे और असंख्य लोगो ने हिन्दी भी सीखी । इस तरह इस काल के उपन्यासकारों ने हिन्दी उपन्यास के उज्जवल भविष्य की रूपेरखा तैयार की ।"

डॉ0 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय – 19वी शताब्दी (1963) – इलाहाबाद प्रकाशन पृष्ठ स0 – 190

★

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि 19वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश मे सुधार की भावना अत्यत प्रबल थी, और इसी सुधार भावना से प्रेरित होकर 'ब्रम्ह समाज', 'आर्य समाज', 'थियोसोफिकल सोसायटी', 'रामकृष्ण मिशन', आदि सस्थाओं ने अपने प्रचार एवं आन्दोलन द्वारा परम्परागत सामाजिक, कूटिनीतिक तथा रूढियो के उन्मूलन और भारतीय सस्कृति के अनुरूप समाज के नवसंगठन का प्रयत्न किया । हिन्दी उपन्यास का जन्म इन विविध सुधारवादी आन्दोलन की गोद में हुआ । जिस समय शिक्षा से नवीन चेतना का जन्म हुआ, उस समय उपन्यास द्वारा उस चेतना को प्रभावित करने का सफल प्रयास हुआ । अतः 19वी सदी का उपन्यास साहित्य मुख्य रूप से सुधारवादी भावना से ओत–प्रोत था ।

प्रारम्भिक उपन्यास साहित्य में हमें दो दशकों के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का सम्पूर्ण विवरण दिखाई देता है ।

डॉ0 "लाल साहब सिंह" के कथनानुसार– "प्रारम्भिक युग के हिन्दी उपन्यासों में कल्पना, 'रोमांश', 'ऐयारी', 'तिलस्मी', एव ऐतिहासिक भूमिका उपलब्ध हो चुकी थी । किन्तु उसमे बचपनापन था, और प्रौढता का नितात अभाव था ।'प्रेमचन्द्र' के पूर्व उपन्यासों में हमे हाथ–पैर, आख–कान की करामात अधिक मिलती है ।'प्रेमचन्द' ने पहली बार उपन्यास के मौलिक क्षेत्र स्वरूप और उद्देश्य को पहचाना, तथा उसे भव्य समृद्धि प्रदान की । उनके व्यक्तित्व के कारण ही इस काल को 'प्रेमचन्द्र के युग' के नाम से जाना जाने लगा । इस युग की एक महत्वपूर्ण घटना और थी, कि यह समय देश के आत्मचिंतन, संगठन, आंदोलन और सघर्ष की प्रवृत्तियों का युग था । उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यतक देश मे कोई संगठित केन्द्रीय सत्ता स्थापित न हो सकी । मराठों के पतन के बाद देश की स्थिति मे काफी सुधार हुआ । देश में आवागमन की सुविधा के लिए नवीन साधन जुटाये गये । डाक, तार व्यवस्था, रेल व्यवस्था, देश के सगठन की एक ऐतिहासिक घटना थी । एक ओर देश की संगठन की एक ऐतिहासिक घटना से मिली जितनी सुविधाये मिलीं, दूसरी ओर पराधीनता के कारण भारत की आर्थिक दशा गिरती जा रही थी ।

जैसा कि "थाम्पसन और गैरेट" ने लिखा है– "इन तीन शब्दों से आर्थिक स्थिति का बड़ा अच्छा आभास मिलता है, इसका तात्पर्य है कि जो भारतवर्ष किसी समय धन–धान्य से परिपूर्ण था, अंग्रेजी शासन काल के स्थापित होने के साथ ही निर्धन होना प्रारम्भ हो गया था । जब से अंग्रेजी राज्य स्थापित हुआ तभी से पैगोडा वृक्ष का हिलाया जाना प्रारम्भ हुआ, अर्थात् धार्मिक परिस्थितियां दिनो–दिन शोचनीय होतीं गयीं ।" [1] शासन व्यवस्था के लिए सर्वप्रचलित भाषा हिन्दी की अपेक्षा थी । इसकी जगह अंग्रेजी भाषा को स्वीकार किया गया, जिसके फलस्वरूप यूरोपीय साहित्य और विचारधारा को भारतीयों ने ग्रहण किया । इस आधुनिक दृष्टि में

1 थाम्पसन एण्ड गैरेट – राइज एण्ड फुलफिलमेंट ऑफ ब्रिटिश रूल इन इण्डिया

★

वैज्ञानिक सूझ–बूझ और आलोचनात्मक व्यवस्था थी, इससे व्यक्तिगत स्वतंत्रता को प्रभुसत्ता मिली और रूढियो, परम्पराओ एवं अधविश्वासों की पूर्ण जानकारी हुई । इस काल मे भारतीय दशा बड़ी ही निराशाजनक थी । 'आर्य समाज' आन्दोलन इस काल में सामाजिक स्थिति मे सुधार लाने मे प्रयत्नशील था । भारतवासी प्रगति की ओर बढना चाहते थे । इस कार्य में पाश्चात्य शिक्षा ने सहयोग दिया साथ ही नारी की पारिवारिक स्थिति तथा सामाजिक परिस्थितियो मे अनेक परिवर्तन हुए । नारी को भी उच्चतम शिक्षा, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से पुरूषों के समानाधिकार दिया जाने लगा । पर्दे की प्रथा का भी धीरे–धीरे अन्त होने लगा । 'गाधी जी' असहयोग आदोलन करके पिछडी हुई जातियो, हरिजनो आदि का उद्धार करने हेतु 'छुआछूत' 'जातिप्रथा', 'बालविवाह' को रोकने का प्रयास किया तथा ग्रामीण जनता को ऊपर उठाने के लिए उन्होंने अनेक तरह की सुविधाये प्रदान की ।

इस काल मे सामाजिक जीवन में काफी परिवर्तन हुए । जिस शिक्षित मध्यम वर्ग का उदय 'प्रेमचन्दोत्तर युग' मे हुआ वह अपने पूर्ण विकास की सीमा पर पहुचने के पहले ही 'वाह्य आडम्बर', 'आर्थिक विषमता', 'पूंजीवादी शोषण' के कारण पतन की ओर अग्रसर होने लगा । पूंजीवादी समाज अपने विकास की चरम सीमा पर पहुंचकर शोषण वृत्ति का प्रचार कर रहा था । उसका प्रभाव समाज पर बहुत बुरा पडा, इससे संयुक्त परिवार की प्रथा पूर्ण रूप से समाप्त हो चली थी । उनमें व्यक्तिवादी दृष्टिकोण उभरने लगा । व्यक्ति की स्वतत्रता की भावना बलशाली होने लगी, जिसके कारण घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, सहानुभूतिहीनता और अलगाव की भावना जाग उठी । इन विशाक्त परिस्थितियों में मध्यवर्ग निर्बल हो गया और उन्नति की ओर अग्रसर न हो सका । इसका भी हिन्दी उपन्यास साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा । उपर्युक्त स्थिति को देखकर कुछ उपन्यासकारों ने पलायनवादी दृष्टिकोण को अपनाया । इन उपन्यासकारों ने जीवन की प्रगतिशील दृष्टिकोण की अवहेलना करके जीवन संघर्ष से दूर प्रेम–विरह, सेक्स तथा कुण्ठाओं का चित्रण करने की ओर साहित्य को मोड़ा, जिसमे जैनेन्द्र और आचार्य "चतुर सेन शास्त्री" प्रमुख हैं । जीवन के प्रति भ्रांति दृष्टिकोण लेकर इन दिग्भ्रात उपन्यासकारों ने अस्वस्थ पात्रों, अस्वस्थ प्रवृत्तियों एवं अस्वस्थ वातावरण में यह समझाने का प्रयास किया कि जीवन संघर्ष अर्थहीन है । रोटी, पैसे और जीवन निर्वाह की समस्यायें अस्तित्व शून्य हैं, अपने सेक्स का नियंत्रण मत करो । प्रेम करो वही जीवन है, वही रोटी और पैसा है, जीवन की सारी प्रगतिशीलता उसी मे सन्निहित है । इस प्रवृत्ति का जबरजस्त प्रयोग उपन्यासों में दिखाई पडता है ।

आज के समाज में आर्थिक कठिनाइयों, असमानताओं, विषमतओं का तनाव है । आज जीवन में सर्वत्र परिवर्तनशीलता ही दृष्टिगोचर हो रही है । नये उपन्यासकार इस नई पीढ़ी और

★

नई भावना के अनुकूल अपनी रचना सृष्टि करने मे संलग्न हुए । आज–काल के उपन्यासो में जो नारी की प्रमुखता देखने को मिलती है । उसके बारे मे डॉ0 "सुरेश सिन्हा" का विचार है– "नारी एक महज सजावट का सामान न होकर नये जीवन के समग्र योजना का अविश्लेष्य बन चुकी है, फिर भी वह पुरूषों द्वारा छली जाती है, और उसे घुमा फिराकर वासना की एक साम्रगी मात्र समझा जाता है । नई पीढी के उपन्यासकारों ने नारी के यथार्थ स्वरूप को पहचान कर उनका चित्रण किया है । नारी की तरह पुरूष भी पीछे नही हैं । वह भी अपने जीवन संघर्ष मे सलग्न हैं।" एक ही युग मे रहकर विभिन्न उपन्यासकार जैसे–'प्रेमचन्द्र' 'वृन्दावन लाल वर्मा,' आचार्य वतुरसेन शास्त्री' के उपन्यासों में दु:खात दृष्य देखने को मिलता है । विश्वास की समानता एक रूपता के आधार पर ही सम्प्रेषण की भावना सम्पन्न होती है । यह समष्टि सत्य ही लेखक के लिए सम्प्रेषण का आधार होता है । नये युग के उपन्यासकारों ने मानव जीवन के अच्छे एव बुरे दोनों पक्षों का वर्णन किया है । चरित्रहीन न बनाकर उसे ऊचा उठने का अवसर भी दिया है । इस व्यक्ति मूलक धारा को समाजिकता की यथार्थ एव प्रगतिशील धारा मे मिला देने का कार्य नई पीढी के उपन्यासकारों ने किया है ।

आज के उपन्यासों में मूल्यों की व्यापक विघटन सामाजिक जीवन की अस्थिरता, नैतिक मनोदृष्टि, व्यक्ति स्वतंत्रता की भावना के दर्शन होते है, तो दूसरी ओर उसमें लोकतत्रीय भावना, समष्टि निष्ठा तथा स्वस्थ जीवन दृष्टि आशय का भी आभास मिल जाता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय कथा साहित्य मे एक नई चेतना का जन्म हुआ और इस चेतना का प्रकाश इस रूप में उन्हें दिखाई दे रहा है कि भारतीय उपन्यास पात्र व्यक्ति का चित्रण न रहकर समष्टि का चित्रण बन जाता है । वस्तुतः यह एक पक्षीय मत है, तस्वीर का एकमात्र पहलू है । आज के संक्रांति युग मे प्रवृत्तियों का छद अत्यंत आवश्यक है । एक ओर अनास्था, संदेहवाद विघटन है, दूसरी ओर जीवन के प्रति एक प्रकार का संतुलित दृष्टिकोण है । जीने की आकाक्षा है । नये जीवन की प्रक्रियाओं को समझने और जानने का प्रयास है । इस प्रकार हम देखते हैं कि युग परिस्थितियो के अनुरूप ही साहित्य का सृजन होता रहेगा, और आगे भी होता रहेगा । [1]

"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" ने (1850 से 1885) उपन्यास के क्षेत्र में पर्दापण करते हुए बांग्ला और मराठी का कई उपन्यासों का अनुवाद कराया । बाग्ला से 'दुर्गेशनन्दनी' और मराठी से 'पूर्णप्रकाशचन्द्रप्रभा' हिन्दी में उपन्यास के प्रथम अनुवाद है । "पूर्णप्रकाशचन्द्रप्रभा" का अनुवाद श्रीमती 'मल्लिका देवी' ने किया और 'भारतेन्दु जी' ने स्वयं उसमें संशोधन किया । इसी प्रकार 'दुर्गेशनन्दनी' का अनुवाद बाबू 'गदाधर सिंह' ने भारतेन्दु के अनुरोध पर किया था । 'पूर्णप्रकाशचन्द्रप्रभा' एक सामाजिक उपन्यास है । जिसमें 'वृद्ध–विवाह' के विरूद्ध आवाज उठाई

★

गई है । वृद्ध–विवाह को हिन्दू धर्म मे कलक घोषित किया गया है । आगे चलकर ही भारतेन्दु के अनुरोध पर 'स्वर्णलता', 'राधारानी', 'सरोजनी', 'दीपनिर्वाण' आदि अनुदित उपन्यास सामने आये। [2]

यद्यपि 'भारतेन्दु जी' ने कोई मौलिक उपन्यास नही लिखा, किन्तु उनकी प्रेरणा एव अनुरोध पर अनुवादित उपन्यासो से प्रेरणा ग्रहण कर उनके सहयोगी ने उपन्यास रचना का शुभारम्भ किया। भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख सदस्य "लाला श्रीनिवासदास" ने (1882) मे 'परीक्षा गुरू' उपन्यास का सृजन किया, और उपन्यासो की परम्परा की शुरूआत की थी । यह हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास माना जाता है । इसके बाद भारतेन्दु मण्डल के 'बालकृष्ण भट्ट' ने "नूतन ब्रम्हचारी", "सौ अजान एक सुजान" (1886) 'लज्जा राम शर्मा' ने (1899) में 'धूर्त रसिक लाल', राधा कृष्ण दास ने "निसहाय 'हिन्दू', 'किशोरी लाल गोस्वामी' ने– 'त्रिवेणी' (1888) व 'कुसुम कुमारी' तथा 'गोपाल राम गहमरी' ने 'नये बाबू' एवं 'सास–पतोहू' जैसे उपन्यासो मे सामाजिक चित्रण उल्लेखनीय है और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए ही लिखे गये है, लेकिन इसी समय 'किशोरी लाल गोस्वामी' जैसे उपन्यासकारो ने ऐतिहासिक उपन्यास का सृजन भी करना शुरू कर दिया । जिसका मुख्य उद्देश्य मनोरजन और कौतूहलवृत्ति का शात करना था, केवल साधन के रूप में इन्होंने इतिहास की थोडा सामग्री ग्रहण की थी । इस समय 'देवकी नन्दन खत्री' और 'गोपाल राम गहमरी' को तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों मे विशेष ख्याति अर्जित हुई । 'खत्री जी' ने 'चन्द्रकांता' सतति को 1891 मे लिखा, जिसने हिन्दी जगत मे धूम मचा दी । दूसरी तरफ 'नरेन्द्र मोहिनी' का 'कुसुम कुमारी' और 'गोपाल राम गहमरी' ने 'अद्भुत लाश', 'गुप्तचर', 'बेकसूर को फांसी', आदि उपन्यासो का ढेर खड़ा कर दिया ।

1. ऐतिहासिक सॉस्कृतिक उपन्यासों की परम्परा

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में हमारा दृष्टिकोण मूलत· 'वृन्दावन लाल वर्मा' और 'आचार्य चतुरसेन शास्त्री' के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक उपन्यासो पर ही रखना है । इसलिए मै संक्षेप मे ऐतिहासिक उपन्यासो की परम्परा व विकास पर ध्यान देने की कोशिश करूंगा, और ऐतिहासिक उपन्यासो का परिचय कराकर ऐतिहासिक उपन्यासों के औपन्यासिक परिदृश्य पर विचार करूंगा ।

हिन्दी उपन्यास साहित्य का प्रथम वेग अनेक धाराओं में फूटकर प्रवाहित हुआ । ठीक उसी प्रकार जैसे कि "किसी विशाल पर्वत घाटियों से अनेक जल धाराये फूटकर एक विचारधारा को जन्म देती हैं, जो असंख्य, पथरीली चट्टानों को तोड़कर ऊंची–नीची घाटियों, द्वीपों पठारों और मैदानों से अलग–अलग पथ का निर्माण कर लेते हैं ।"

1- डॉ0 सुरेश सिन्हा – हिन्दी उपन्यास
2- ब्रजरत्न दास – हिन्दी उपन्यास साहित्य – पृष्ठ सं0 – 129

★

हिन्दी उपन्यास साहित्य का परम्परा का वास्तविक प्रारम्भ कब हुआ, इसके बारे मे मतभेद है । कुछ लोग इसे आधुनिक काल से तो कुछ लोग प्राचीन काल से मानते हैं । कुछ लोग पश्चिमी साहित्य से इसे प्रभावित मानते हैं । उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव इसी काल में हुआ । इस समय देश मे एक नई चेतना प्रस्फुटित हो रही थी । राजनीति की दृष्टि से यह काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । छल और कपट से किसी देश की शासन सत्ता को हडप लेने का जो चित्रण हमें इस काल मे प्राप्त होता है, ऐसा विश्व साहित्य के इतिहास में पाना दुर्लभ है । ऐसे समय में जब देश की स्थिति गंभीर एव सोचनीय थी, अग्रेजो के ऐसे अवसर पर लाभ उठाकर अपना शासन यहा स्थापित कर भारत को गुलाम बना दिया । यहा की सम्पत्ति को इग्लैण्ड भेजा जाने लगा । अंग्रेजो के आगमन के पूर्व मुगल शासन का अंतिम वरण विलासिता मे डूबा हुआ था । उन्हे देश की शासन या जनता के कल्याण से अधिक फिक्र शाही महलो के सौन्दर्यमयी शहजादियो का ध्यान रहता था, कि मुगल सत्ता का हास हो गया और अंग्रेजी सत्ता का प्रादुर्भाव हुआ । [1]

'वृन्दावन लाल वर्मा' और 'आचार्य चतुरसेन शास्त्री' ने अपने उपन्यासो में इन्ही काल विशेषो को स्थान दिया है । हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास की धारा को शिल्प और शैली के विकासक्रम को देखते हुए इसे तीन कालो में विभाजित कर सकते है–.

प्रथम उत्थान काल – सन् 1890 से 1915 तक – (गोस्वामी युग)

द्वितीय उत्थान काल – सन् 1916 से 1928 तक – (मिश्रबन्धु युग)

तृतीय उत्थान काल – सन् 1929 से 1960 तक – (वर्मा युग)

प्रथम उत्थान काल के अधिकांश उपन्यास नाम मात्र के ऐतिहासिक हैं, क्योकि उनमें लेखको ने इतिहास की ओर से तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी और निम्न स्तरीय प्रेम प्रसंगों को ही कथा का आधार बनाया है । इस काल के ऐतिहासिक उपन्यास मे सबसे पहला–"लाला श्रीनिवास दास"का "परीक्षा गुरू" उपन्यास प्रकाशित हुआ । उसके बाद पं0"किशोरी लाल गोस्वामी जी"ने 'हृदय हारिणी', 'लवंगलता', 'तारा', 'कनक कुसुम', 'हीरबाई', 'रजिया बेगम', 'मलिका देवी', आदि उपन्यासों की रचना कर एक नवीन परम्परा की शुरूआत की । यह उपन्यास ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखे गये है, लेकिन इसमें ऐतिहासिकता नाममात्र की है । अपने उपन्यास में इन्होंने इतिहास की अपेक्षा रोमांटिक कल्पना पर विशेष ध्यान दिया है । इसके बाद "बाबू गंगा प्रसाद गुप्त" ने 'नूरजहां,' 'कंवर सेनापति', 'पूना में हलचल', 'हम्मीर' आदि उपन्यासों का प्रकाशन किया । इनके उपन्यासों में महत्वपूर्ण बात यह है कि 'गोस्वामी जी' की अपेक्षा इसमें इतिहास सम्मत् तथ्य ज्यादा हैं । [2]

1 डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल – हिन्दी उपन्यास – शिल्प का विकास – पृष्ठ स0 – 153

2 डॉ0 गोविन्द जी – हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास प्रयोग– पृष्ठ स0 – 184

*

अगले क्रम मे बाबू "जयराम दास गुप्त" ने-'रग मे भग', 'काश्मीर पतन', 'कलावती', 'रोशन आरा', 'प्रभातकुमारी', 'फूलकुमारी', 'चम्पा' आदि उपन्यासों की रचना की । इनके भी उपन्यासों में प्रारम्भिक कालीन ऐतिहासिक उपन्यासों की सभी कमजोरियां स्पष्ट दिखाई पडती है । इस समय मे 'भगवान दास' कृत-'उर्दू बेगम', 'जयराम लाल' का-'ताजमहल', 'केदार नाथ शर्मा' का-'तारामती', 'बृजबिहारी सिह' का,-'कोटारानी', 'बिट्ठल दास नागर' का-'पद्मा कुमारी', 'गिरिजा नन्द तिवारी' का-'विद्याधरी', 'सालिक राम' का-'आदर्शरमणी', 'मुराली लाल पण्डित' का 'विचित्र वीर' आदि ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना हुई है ।

इस काल के ऐतिहासिक वातावरण का अभाव सा था और घटनाओं तथा तत्कालीन रीति-रिवाज, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि के वर्णन में स्थान-स्थान पर कालक्रम दोष तथा ऐतिहासिक अनौचित्य परिलक्षित होते है । कुछ उपन्यास तो बिल्कुल इतिहास वृत्तात्मक होने के कारण जीवनी सदृश्य जान पडते है । कुछ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर वर्णित रोमास मात्र है । अत इस काल के ऐतिहासिक उपन्यासों को हम उच्चकोटि का ऐतिहासिक उपन्यास हम नही कह सकते । 'गोस्वामी युग' के उपन्यासकारों ने अपने युग मे प्रचलित सभी औपन्यासिक प्रवृत्तियो को ग्रहण कर उन्हे अपने ढग से प्रयत्न किया है, किन्तु इतिहास को हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में लाकर उन्होंने अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है और वे इस दृष्टिकोण से 'गोस्वामी जी' हिन्दी के प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं ।

हिन्दी उपन्यास के ऐतिहासिक धारा में द्वितीय उत्थान काल को "मिश्र बन्धु युग" के नाम से जाना जाता है । इस युग के प्रमुख उपन्यासकार 'बृजनन्दन सहाय' ने "लालचीन" नामक उपन्यास की रचना की थी । जो बहमनी वंश के शासकों के ऊपर लिखा गया है । इसका कथा आधार इतिहास और कल्पना दोनों का मिश्रण है । इसमे ऐतिहासिक वातावरण के निर्माण मे कालक्रम दोष तथा असंगतिया भी बहुत स्पष्ट होती हैं, लेकिन यह उपन्यास हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास की परम्परा में एक निश्चित विकास का संकेत देता है । इस युग के महत्वपूर्ण उपन्यासकारों मे मिश्रबन्धु का नाम उल्लेखनीय है । इनका प्रथम उपन्यास "वीरमणि" 1917 में प्रकाशित हुआ । यह उपन्यास 'अलाउद्दीन खिलजी' के चित्तौड़ आक्रमण पर आधारित है । यह ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के विकास का द्योतक है । इसमें चरित्र चित्रण का भी किंचित प्रयत्न किया गया है । इस युग की धारा में मिश्र बन्धुओं द्वारा लिखित अन्य उपन्यास 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य'-1942, 'पुष्यमित्र शुंग'- 1943, 'विक्रमादित्य'- 1944, 'चन्द्रगुप्त मौर्य'-1947 तथा 'उदयन' उपन्यासों का प्रकाशन किये थे ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास . पृष्ठ स0 - 177
*

यद्यपि मिस्र बन्धुओं के अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास तृतीय उत्थान काल में लिखे गये फिर भी शिल्प तथा शैली और कला की दृष्टि से इन्हे द्वितीय उत्थान काल मे रखा जाता है । इन उपन्यासों में न तो पाठक के मन में उत्सुकता उत्पन्न कर देने की शक्ति है और न ही उसको अपने साथ बहा ले जाने की धरा है । हां सवाद शैली के कारण नाटकीयता उत्पन्न हो जाने से कुछ रोचकता अवश्य आ गयी है ।

द्वितीय उत्थान काल के अन्य उपन्यासकारों मे 'दुर्गा दास खत्री' का 'अनन्गपाल' 'श्यामसुन्दर' का 'रानी दुर्गावती' 'हरिदास मणिक' का 'चौहानी तलवार', 'विद्यावाचस्पति' का 'शाह आलम की आंखें', 'गोविन्द बल्लभ पंत' का 'सूर्यास्त' तथा 'भगवती चरण वर्मा' का 'पतन' आदि उल्लेखनीय कृतिया है । 'रानी दुर्गावती' में– 'रानी की वीरता', तथा पराक्रम का वर्णन, और मुगल सम्राट 'अकबर' के सेनापति 'आसफ शाह' के साथ युद्ध का वर्णन किया गया है । 'चौहानी तलवार' में– 'पृथ्वीराज', 'राजा अमर सिंह,' 'मुहम्मद गोरी' आदि के आक्रमणो का वर्णन है । पतन का कथानक– लखनऊ के विलासी 'वाजिद अली शाह' से सम्बन्धित है । इसकी सभी घटनाये वस्तुत ऐतिहासिक न होकर काल्पनिक है ।

इस युग के दो उपन्यास– 'लालचीन' और 'वीरमणि' अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासो से इस अर्थ में भिन्न है कि इनमें घटना वैचित्रय को प्रधानता न देकर चरित्र चित्रण को प्रधानता दी गयी है । चरित्र चित्रण की यही प्रवृत्ति द्वितीय उत्थान काल के उपन्यासों में पायी जाती है । इस समय के उपन्यासो मे उपन्यासकारों की दृष्टि ऐतिहारिक यथार्थ की ओर झुकती हुई दृष्टिगोचर प्रतीत होती है । एक बार अवश्य है कि वे अपने पूर्ववर्ती ऐतिहासिक उपन्यासकारों की भांति इस काल के उपन्यासकारो ने भी यथार्थ ऐतिहासिक वातावरण के चित्रण की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाये हैं । इसलिए "मिस्रबन्धु युग" के उपन्यासकारों को हम सफल ऐतिहासिक उपन्यासकार नहीं कह सकते ।

तृतीय उत्थान काल– जो "वर्मा युग" के नाम से जाना जाता है । इस काल मे हिंन्दी में सफल और उच्चकोटि के ऐतिहासिक लेखन का सूत्रपात्र सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार "वृन्दावन लाल वर्मा" द्वारा शुरू किया गया । इनका प्रथम उपन्यास 'गढ़कुण्डार' 1927 ई0 मे लिखकर 1929 ई0 में प्रकाशित हुआ । जिसका कथानक बुन्देलखण्ड के इतिहास से सम्बन्धित है। ऐतिहासिक घटनाओं पात्रों एवं देशकाल के चित्रण में यथार्थवादी पद्धति का उपयोग करके वर्माजी ने काल विशेष का निर्माण कर दिया । इनके ऐतिहासिक उपन्यासो में वस्तुतः इतिहास अपनी समस्त विशिष्टताओं सहित सजीव हो उठा है । 'वर्मा युग' के अन्य सफल उपन्यासकार 'राहुल सांकृत्यायन ने अपने चार ऐतिहासिक उपन्यासों का– 'सिंह सेनापति', 'जययौधेय' 1944,

डॉ0 गोविन्द जी · हिन्दी साहित्य का इतिहास : पृष्ठ सं0 – 199

*

'मधुर स्वप्न' 1950, तथा 'विस्मृत यात्री', 1955 मे लिखा गया । इस उपन्यासो में अतीत को उसके यथातथ्य रूप से चित्रित कर उसे अपने व्यैक्तिक विचारो तथा आधुनिक मार्क्सवादी ऐतिहासिक व्याख्या का वाहक बना दिया । अगले क्रम मे ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप मे 'चतुरसेन शास्त्री जी' हैं । जिन्होंने 'सोमनाथ', 'वैशाली की नगर वधू', 'आलमगीर', 'सहयाद्रि की वट्टानें' आदि उपन्यासों की रचना कर अपना नाम इतिहास में अमर कर दिया है , जिसका उल्लेख हम अपने शोध–ग्रथ मे कर चुके है ।

वर्मा युग के अन्य उपन्यासकारो में 'यशपाल' का 'दिव्या' उपन्यास ऐतिहासिक कल्पना मात्र है । इसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्रण है । अगले क्रम में 'रांगे राघव' का प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'मुर्दों का टीला' (1918) का प्रकाशन हुआ, जो प्राचीन भारत की संस्कृत–'मोहन जोदड़े' की सभ्यता, को आधार बनाकर लिखा गया है। इसका कथानक बहुत ही रोचक और बेगवान होकर आया है । इसमें शोषक व्यवस्था से जनजीवन के संघर्ष की कहानी है और देशकाल के अकन मे बडी सजीवता है । अन्य उपन्यासकार 'अमृत लाल नागर' का 'शतरंज के मोहरे' (1959) है । इस उपन्यास में लखनऊ शहर के शासन को केन्द्र में रखकर 19वीं शताब्दी के भारतीय जीवन मे लक्षित होने वाली उथल–पुथल को चित्रित किया है । 'आनन्द प्रकाश जैन' का उपन्यास– 'कुणाल की आंखें' (1967) मे इतिहास जनता का नही बल्कि राजाओ का दिखाया गया है । राजा अपना प्रशस्तिगान स्वय कराते रहते है और अपना कलक जनता या नारियों पर अकित करा देते हैं । प्रस्तुत उपन्यास के लेखक ने इतिहास पर आरोपित अशोक के इस विराट व्यक्तित्व को तोडा है और अशोक का बेटा 'कुणाल' उसका प्रतिपक्ष प्रतिनिधि है । 'नरेन्द्र कोहली' का उपन्यास– 'दीक्षा' (1975) उपन्यास मे ब्याह के समय तक की रामकथा को लेकर अनेक 'राष्ट्रीयता', 'अर्न्तराष्ट्रीयता' और मानवीय प्रश्नो को जोड़ा गया है । यह उपन्यास मूलतः राम कथा पर आधारित है । 'वीरेन्द्र कुमार जैन' का 'अनुत्तर योगी' उपन्यास 'महावीर स्वामी' के जीवन पर आधारित वृहद उपन्यास है, जिसमें अनेक राजाओं के तीर्थकर होने की कथा का भी चित्रण किया गया है । इस तरह 'वर्मा युग' में अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकारों मे 'प्रताप नारायण श्रीवास्तव', डा0 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' "बाण भट्ट की आत्मकथा" आदि लोगों ने ऐतिहासिक उपन्यासकार को बहुत तेजी से आगे बढ़ाया ।

उपर्युक्त विवेचन को देखने से यह स्पष्ट होता है कि तीसरे काल के ऐतिहासिक उपन्यास ही वस्तुतः ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें इतिहास और उपन्यास कला का 'मणिकाँचनयोग' पाया जाता है । ऐतिहासिक घटनाओं, पात्रों व देशकाल के चित्रण में इस काल के उपन्यासकारों ने यथार्थवादी पद्धति का अनुसरण कर काल विशेष का पुर्ननिर्माण सा कर दिया है । एक यहां

राम दरस मिश्र हिन्दी उपन्यास की अर्न्तयात्रा . पृष्ठ सं0 – 198 से 223
*

एक यहां उल्लेखनीय बात है, कि तृतीय उत्थान कालीन ऐतिहासिक उपन्यासो का लक्ष्य मात्र मनोरंजन न होकर अतीत के जीवन उसकी समग्रता के साथ वास्तविक रूप में उपस्थित कर मानवीय जीवन के आतरिक शाश्वत् सत्यो की खोज करना तथा साँस्कृतिक निर्माण एव राष्ट्रीय गौरव तथा चेतना को उत्फुल्लित करना है । शैली और शिल्प की दृष्टि से इस काल के ऐतिहासिक उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यासों से भिन्न है ।

*

(ग)

इतिहास और संस्कृति की अंतर्क्रिया एवं उपन्यास में उसके रूपांतरण की प्रक्रिया

1. इतिहास की परिभाषा :

इतिहास का अर्थ है ''इति–ह–आस'' यानी ऐसा ही हुआ । इतिहास है क्या ? इस प्रश्न को लेकर विद्वानों ने तीन मत प्रस्तुत किये हैं । कुछ लोग इतिहास की गतिविधि को स्वचालित और बिना किसी ध्येय विशेष का मानते है । उनके मत से इतिहास अपने को दोहराता है बस । इतिहास अपने आप को दोहराता क्यों है, क्या इतिहास अपनी प्रगति वास्तव में प्रगति नही है । क्या वह केवल पुनरावृत्ति मात्र है । बिना किसी ध्येय के, बिना किसी लक्ष्य के । इन सब प्रश्न के उत्तर मे वे मूक है । यहां मुनष्य जीवन के हाथ में कठपुतली मात्र है । वह किसी अज्ञात की इगित पर खोया हुआ नाचे जा रहा है । ये विद्वान रामराज्य और गुप्तकाल के स्वप्न देखते है । उन्हें विश्वास है कि समय की कीली पर घूमता–फिरता इतिहास एकदिन अवश्य फिर से बीता वैभव ला प्रस्तुत करेगा । साथ ही एक मनोरंजन शंका उठ खडी होती है । तो मुगल साम्राज्यशाही और अंग्रेजी राज्य भी किसी न किसी दिन फिर आ धमकेंगे । इतिहास सम्बन्धी यह अनोखी कल्पना मानव की इच्छा शक्ति की प्रसाद कही जा सकती है । मानव अतीत के वैभव के पुर्नजीवन की कल्पना करता है, और यह कल्पना उसे भाती है ।

अन्य विद्वान सागर की गोद में उठने और गिरने वाली तरंगों की भांति इतिहास को आंकते हैं, वे देखते हैं, सरिता पर्वत से स्रावित हो, मैदान पर बहती है और एकदिन सागर मे मिल ही जाती है । सागर मे भी उसे विश्राम कहां, बादल में परिवर्तित हो वह बनती है मेघ । मेघ उमडते हैं, गरजते हैं और बरसते हैं । सूर्य उदय होता है, चमकता है और अस्त होता है । कल फिर उठने के लिए दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन दौडता है । प्रकृति की यह विश्राम रहित दौड धूप जिसका मूल मत्र उत्थान–पतन का चक्र जान पड़ता है, उन्हें इतिहास का उत्थान पतन का चक्र जान पड़ता है । उन्हें इतिहास का उत्थान पतन की आवृत्ति मात्र मानने की प्रेरणा देती है। इस दृष्टि से संसार में महान पुरूषों का और स्फोटक घटनाओं का पदार्पण अभिप्राय शून्य जान पडता है ।

विद्वानों का तीसरा वर्ग मानव के अस्तित्व को पहचानने पर बल देता है । वे मनुष्य की प्रकृति या किसी अज्ञात रहस्यमयी शक्ति के हाथ में कठपुतली कैसे मान लें ? उनके मत से तो इतिहास मनुष्य निर्मित, लक्ष्य विशेष युक्त तथा नपी–तुली गतिविधि है । 'फ्रांस', 'रूस' तथा 'चीन' में

*

19वी शताब्दी मे करवटे लेने वाली औद्योगिक क्रांति ने उसकी आख खोल दी । इतिहास की दिशा को, उसके प्रवाह को बदलने वाले कुछ महापुरूष ही नहीं, मनुष्यो के वर्ग यूथ होते है । इतिहास की गति द्वन्द्वात्मक है । यह विचार हमे स्फूर्ति प्रदान करता है । मनुष्य पीछे देखता है, पिछली बाते प्रेरणा देती है । उसे आगे बढ़ने, चलने की और अपने साहस, शौर्य प्रगति और जीवन के प्रति निष्ठा रखने की । यह तीसरा मत ग्राह्य जान पड़ता है । इसमें मनुष्य के अस्तित्व की स्वीकृति तथा उसके प्रगति की व्यवस्था है । इतिहास हमारे लिए केवल खण्डित पाषाणो से भरा अजायबघर नहीं है । उससे स्फूर्ति ग्रहण करनी है । मनुष्य को इतिहास ने बनाया है, उसी प्रकार मनुष्य भी इतिहास बनाता है । हर क्षण यही क्रिया चल रही है ।

प्रकृति, मनुष्य और समाज के मध्य सृष्टि के श्रीगणेश से आजतक द्वन्द्व चलता आया है । इस अनादि अनवरत् द्वन्द्व का लेखा–जोखा मानव इतिहास है । मनुष्य ने सर्वप्रथम प्रकृति के विरूद्ध विज्ञान का शस्त्र ग्रहण किया । प्रकृति की मनमानी उसे अखर उठी । प्रकृति को बहुत कुछ वशीभूत कर लेने पर द्वन्द्व का चक्र रूका नहीं । मनुष्यों की संख्या बढ़ने लगी । उपयोग के साधन सीमित और आवश्यकतायें अनेक थी। जीवन की निर्बाध गति में यह बाधा उसे सहन होती? मनुष्य मनुष्य से सचेत हो गया, आदम के वंशज मे आदमखोर की प्रवृत्ति अगडाई ले उठी। मनुष्यो ने भिन्न यूथो में बंटकर मोर्चे बनाये और आपस में भिड़ गए । विजेताओ ने शासन की बागड़ोर सभाली । वे स्वामी के और अविजित उनके दास थे । यही कहानी आज तक न जाने कितनी बार दोहराई गई ।

आगे चलकर मनुष्य ने समाज का अस्तित्व अनुभव किया । व्यक्ति और समाज की सीमायें आपस में कहीं–कहीं टकराईं । समाज ने व्यक्ति की उपेक्षा की, और व्यक्ति ने समाज के प्रति विद्रोह किया । द्वन्द्व चैतन्य हो उठा, समाज ने विद्रोह को कुचल दिया, अथवा कभी–कभी किसी क्रांतिकारी ने समाज की धारा को मोड़ कर युग–प्रवर्तक की संज्ञा पाई । इस प्रकार अनंतकाल से मनुष्य और प्रकृति, मनुष्य और मनुष्य, मनुष्य और समाज मे अनवरत् द्वन्द्व होता चला आया है । गत संघर्षों की स्मृति उसे कल के टक्कर के लिए बल देती थी, स्फूर्ति देती थी, प्रेरणा देती थी । साहित्य मे इस घटनाओं को स्थान मिलता रहा है ।

श्री "वृन्दावन लाल वर्माजी"का इतिहास के सम्बन्ध में विचार है कि, "सृष्टि ईश्वर ने रची और चलाई है और उसी की प्रेरणा से यह अब भी चल रही है । इस सिद्धांत को मैं नहीं मानता। समाज का सृजन आर्थिक विषमताओं और विवशताओं से हुआ था । ......'काम्बटे' ने फ्रांस में इसको प्रारम्भ किया । 'वर्कले' ने इंग्लैण्ड में इसे बढ़ाया और 'मार्क्स' ने इसे परिपक्व किया है । इस सिद्धांत मे इतिहास की कोई गुंजाइस नहीं है । मैं इसके कुछ अंशों को मानता हूं , और

उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा : डॉ0 शशि भूषण सिंहल : पृष्ठ स0 – 46–47
*

कुछ को नही । मेरा अपना अलग सिद्धांत है, मानव का विकास धीरे–धीरे हुआ होगा । वह एक बात में बढता है तो दूसरी में घटता है । सर्वतोन्मुखी बाढ़ कभी नहीं आती, यही मानव का प्रगतिवाद है ।"

ऐतिहासिक उपन्यासकार और इतिहासकार दोनों के दृष्टिकोण में अंतर है । यद्यपि यह प्रचलित तथ्यों पर आधारित है, और भूत का ही वर्णन करते है । इतिहासकार तथ्यों तथा उनके कारणो को दृष्टि मे रखते हुए अनुमान अथवा तर्क द्वारा उन्हे श्रृखला बद्ध करता है । वह तथ्यों और कारणों के आधार पर सम्बन्धित विस्मृत घटनाओं आदि का अनुमान लगा सकता है । कल्पना तथा व्याख्या का कार्य उसके क्षेत्र से बाहर होता है । वह खोज मात्र करके परिस्थिति और घटना का वर्णन करता है, उनका निर्माण नही । उसके लिए वाह्य घटनायें मुख्य हैं । आन्तरिक भावनाओ के वर्णन से वह यथाशक्ति बचता है । वह उन्हे उसी सीमा तक स्पर्श करता है । जहां तक वाह्य घटनाओ से वे अनुमेय है । उसके लिए राष्ट्र मुख्य है और व्यक्ति गौण । अतः उसका क्षेत्र अधिक व्यापक नहीं हो पाता ।

दूसरी ओर ऐतिहासिक उपन्यासकार तथ्यो पर आधारित होते हुए भी कल्पना और व्याख्या का प्रयोग करने के लिए स्वतंत्र हैं । वह वैज्ञानिक की भांति परिस्थितियां उत्पन्न कर उन पर सामाजिक प्रयोग करता है । वह पात्रों के मानसिक विश्लेषण के साथ विश्वास पात्र की भांति उनके आतरिक रहस्य का दिग्दर्शन कराता है । उसकी दृष्टि में व्यक्ति का महत्व अधिक है । वह पात्रों को मनुष्य के दृष्टिकोण से ग्रहण करता है । मनुष्य के वास्तविक जीवन का बहुत सा धन अंश अव्यक्त रहता है । वह उसकी जीवन के अनावश्यक व्यक्त को छोड़कर उल्लेखनीय अव्यक्त को व्यक्त करता है । जबकि इतिहासकार व्यक्त का भी केवल उतना ही अश ग्रहण करता है, जो राष्ट्र और जाति के उत्थान–पतन से सम्बन्धित है । व्यक्त की प्रमुखता करने के कारण उपन्यासकार जीवन के अधिक समीप है । उपन्यासकार का कौशल इसी में है । वह दोनो मुख्य तत्वों, इतिहास और उपन्यास, को ऐसे घुले मिले रूप में ले आयें, जैसे– चीनी और दूध उन्हें अलग–अलग पहचान लेना जान पडे ।

कथावस्तु को श्रृंखला बद्ध तथा सजीव रूप प्रदान करने के लिए उपन्यासकार को परम्पराओं तथा किवदन्तियों का आश्रय लेना होता है । वह अपने आदर्श तथा पसंद की कसौटी पर खरी उतरने वाली परम्पराओं को चुनकर उन्हें उपन्यास में जहा तहां सजा देता है, साथ ही उसे कुछ काल्पनिक चरित्रों को भी स्थान देता है । उपन्यास की यह देन यदि तर्क–मुक्त, अर्थपूर्ण तथा अनुपातिक है और तथ्यों को ठेस नहीं पहुंचती तो ग्राह्य है, यह ऐतिहासिक उपन्यासों में खप सकती है ।

*

2. संस्कृति-:

ऐतिहासिक साँस्कृतिक उपन्यासों पर विचार करने से पूर्व यह समझ लेना आवश्यक है कि, संस्कृति शब्द क्या है । इस विषय पर विचार करे । संस्कृति और सभ्यता ये दो भिन्न–भिन्न शब्द है, किन्तु प्रायः इन दोनो का एक साथ ही प्रयोग होता है । संस्कृति तथा सभ्यता के तत्व भिन्न–भिन्न होते हैं । यद्यपि दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । संसार के सभी विकासशील देशों की संस्कृति भिन्न–भिन्न है। तात्पर्य यह है कि सभ्यता एक रूपता की ओर उन्मुख होती है, और संस्कृति भिन्नता की ओर । सभ्यता का सम्बन्ध युग की आर्थिक व्यवस्था से है, किन्तु सस्कृति धर्म, साहित्य, कला, विचार, प्रक्रिया आदि से जुडी होती है । अतः जिन देशो मे आर्थिक उपार्जन के साधन एक से हैं । वहा की सभ्यता मूलत समान हो सकती है । किन्तु प्रत्येक राष्ट्र, प्रदेश, समाज तथा प्रत्येक परिवार और मनुष्य की संस्कृति भिन्न हो सकती है । अभिप्राय यह है कि संस्कृति एक व्यक्ति तक सीमित होती है । प्राचीनकाल से ही भारत कृषि–प्रधान देश रहा है। यहां की आर्थिक व्यवस्था मुख्यतः कृषि प्रधान रही है । अत गाव ही सस्कृति का केन्द्र था । किन्तु औद्योगिक व्यवस्था में सभ्यता एवं संस्कृति का बिन्दु नगर हो जाता है । इसलिए कहा जा सकता है कि औद्योगिक व्यवस्था से दो सास्कृतिक केन्द्र, दो सांस्कृतिक वर्ग तथा संस्कृतिया सामने आयी । शहरी एवं ग्रामीण साँस्कृतिक मूल्यों को उच्च–वर्ग प्रतिष्ठित करता रहा है, किन्तु सांस्कृतिक मूल्यो की प्राण–प्रतिष्ठा शिक्षित मध्यम वर्ग ही साहित्यकला एवं दर्शन के माध्यम से करता है । उस मध्यम वर्ग के सहयोग के बिना उच्च वर्ग सांस्कृतिक निमंत्रण नहीं कर सकता है। [1]

इसी प्रकार सस्कृति शब्द की व्याख्या भी अनेकों प्रकार से की गई है, इसके साधारण से लेकर शहरी प्रयोग तक विवाद का विषय बने हुये हैं ।

इस विषय मे सबसे बडा द्वन्द्व संस्कृति और सभ्यता के अर्थ को लेकर है, "टायलर" ने "गुस्टाफ" द्वारा पहली बार प्रयुक्त संस्कृति शब्द के अभिप्रायों को गढित कर आज के सामाजिक विज्ञानो को एक नयी संकल्पना दी । अपनी पुस्तक में वे कही संस्कृति कहीं सभ्यता और कही संस्कृति और सभ्यता जैसे प्रयोग करते हैं । किन्तु आगे चलकर मानव विज्ञान दर्शन आदि मे इनके पार्थक्य की स्वीकृति पर बल दिया जाने लगा । यह बात अलग है कि साधारण प्रयोगों में तथा कभी–कभी उच्चतर ज्ञान के क्षेत्र में लेखकों द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण के कारण इनका एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप में प्रयोग बना हुआ है ।

साधारणतः संस्कृति द्वारा जिस विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति करने की चेष्टा की गई है, वह एक सीमा तक सभ्यता द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है । इसलिये 'डॉ0 देवराज' की तरह

1 साहित्य कोष · 1958 ई0 . प्रथम सस्करण

*

तथा कभी–कभी उच्च्तर ज्ञान के क्षेत्र में लेखको द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण के कारण इनका एक दूसरे के पर्यायवाची के रूप मे प्रयोग बना हुआ है ।

साधारणतः संस्कृति द्वारा जिस विशेष अर्थ की अभिव्यक्ति करने की चेष्टा की गई है, वह एक सीमा तक सभ्यता द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है । इसलिये 'डॉ0 देवराज' की तरह एक बारगी यह नहीं कह दिया जा सकता कि सस्कृति मानव व्यक्तित्व और जीवन को समृद्ध करने वाली चितन तथा कलात्मक सर्जन की क्रियायें या मूल्यो का अधिष्ठान मात्र है । डॉ0 'देवराज' जो कुछ संस्कृति के विषय में कहते है, वहीं सीयता शब्द के सम्बन्ध में थोडे बहुत अतर के साथ कही जा सकती है । [1]

इस विवाद से छुटकारा पाने का उपाय यही है कि, "टायलर" द्वारा स्वीकृति सस्कृति की व्यापकता को स्वीकार कर लिया जाय । "टायलर" इस (सस्कृति) वह जटिल इकाई मानते हैं, जिसके अन्तर्गत, ज्ञान, विश्वास, कला आचार विधि रीति और अन्य वे क्षमतायें और अभ्यास सम्मिलित हैं, जिन्हे मनुष्य समाज के सदस्य के रूप में अर्जित करता है ।" इस प्रकार वे प्रतिपादित करते है कि सामाजिक परम्परा से एकत्रित चितन, व्यवहार और अनुभव अर्थात् मानसिक और क्रियात्मक व्यवहार समस्त रीतियों और रिवाजों का एक रूप है ।

"मैलिनोवस्की" ने जो संस्कृति की परिभाषा दी है, वह उनके पूर्ववर्ती मानव वैज्ञानिकों की विचारधारा से भिन्न होते हुए भी "टायलर" की परिभाषा से बहुत भिन्न नही है । संस्कृति के अन्तर्गत वंशगत, शिल्प, तथ्यों वस्तुओ, तकनीकी प्रक्रियाओं, धारणाओं, अभ्यासों तथा मूल्यों का समावेश हो जाता है ।

वस्तुतः मानव के विचार प्रयोजन और मूल्य ही उसके क्रियात्मक व्यवहारों और उपलब्धियों का रूप ग्रहण करते हैं । अतः संस्कृति के दो भागो में विभक्त कर देखने की आवश्यकता है । व्यक्त और अव्यक्त, आन्तरिक और वाह्य, व्यक्त और वाह्य, सस्कृति रीतियों, प्रथाओं, आचारो, कलाओं और विभिन्न प्रकार के शिल्पों तथा तथ्यों की समष्टि है । तो अव्यक्त और आन्तरिक शक्ति इन रूपों में मूर्त होने वाले मूल्यों और प्रयोजनों का समाहार है । [2]

इस प्रकार संस्कृति मानव समाज की सबसे बडी वास्तविकता होती है । इसी के माध्यम से मनुष्य परिवेश के साथ अपना समायोजन करता है । इस संस्कृति का वास्तविक अनुभव मनुष्य को तभी होता है, जब वह अपने से पृथक संस्कृतियों के सम्पर्क में आता है । हर संस्कृति का अपना विशिष्ट चरित्र होता है और वह उसे दूसरी संस्कृति से पृथक कर देता है ।

1 लोक साहित्य एव सस्कृति : डॉ0 दिनेश्वर प्रसाद : पृष्ठ स0 – 83
2 वही.——— वही ——— पृष्ठ सं0 – 83

*

3-"इतिहास और संस्कृति की अंतर्क्रिया"

ऐतिहासिक उपन्यास मे इतिहास तथा सस्कृति–बोध की समस्या वस्तुत: वातावरण निर्माण तथा किसी विशेष ऐतिहासिक काल की सभ्यता, रीति–रिवाज, खान–पान, वेश–भूषा, जीवन पद्धति, रहन–सहन, सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक स्थिति तथा उस काल की जनजीवन का ऐतिहासिक स्वरूप ही ऐतिहासिक वातावरण है । वास्तव में ऐतिहासिक वातावरण ही वह तत्व है, जो किसी भी उपन्यास को अन्य उपन्यास प्रकारो से अलग करके ऐतिहासिक उपन्यास के पद पर प्रतिष्ठित करता है और इतिहास की गरिमा प्रदान करता है । मात्र तिथियो के उल्लेख और ऐतिहासिक पात्रो के नाम का समावेश कर देने से ही कोई उपन्यास ऐतिहासिक नही बन सकता। ऐतिहासिक उपन्यास के लिए पहली शर्त है कि उसका वातावरण उसका परिवेश, उसकी वह आधारभूमि ऐतिहासिक हो, जिसमे घटनाए घटती है, और पात्र विहार करते है । यदि किसी उपन्यास मे इस शर्त को पूरा करने का लक्ष्य नही है, तो ख्याति ऐतिहासिक घटनाओ और पात्रो के होने के बावजूद भी सही माने मे ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है और चाहे जो कुछ हो, अतएव ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए यह अति आवश्यक है कि वह अतीत का चित्रण अपने सम–सामयिक विश्व से भिन्न रूप मे करें, और उस अतीत के विश्व के किसी विशिष्ट मार्ग का आलेखन तथा प्रसिद्ध जन–घटनाओं की किसी विशिष्ट धारा का परिमार्गण करने की अपेक्षा उसके सम्पूर्ण वैशिष्ट्य और रगीनियों को प्रदर्शित करे । इसके लिए सूक्ष्मता, यथातथ्यता तथा कालानुक्रम से घटनाओं का वर्णन एवं महान राजनैतिक घटनाओ के प्रति दृढ़ रहने की अपेक्षा अतीत युग के आत्मा की अभिव्यक्ति करने तथा उसके विचार सारणियों एवं जीवन पद्धति को वास्तविक रूप में प्रस्तुत करने की बात अधिक महत्वपूर्ण है । ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है, वह है सश्लेषणात्मक ढंग से युग को पकड़ना, ससार के प्रति युग की दृष्टि तथा जीवन आस्था एवं अनुभव की विशिष्टताओं की प्रस्तुति अपेक्षाकृत घटित घटनाओ के पुर्नकथन के माध्यम से हो । अर्थात् किसी सुदूर अतीत काल की ओर दृष्टिपात करते समय उसे विभिन्न जीवन स्वरों और उनके सम्बन्धों को नही देखना चाहिए, वरन् जीवन की सम्पूर्ण स्वर संगति को ही पकड़ने का लक्ष्य रखना चाहिए तथा उसका मूल्यांकन तथ्यों एव घटनाओ की राशि के रूप में न कर एक विशिष्ट जीवन प्रवाह या जीवन दशा के रूप मे करना चाहिए । वह घटनाओ की परिगणना कर सकता है, उनका वर्णन तथा टीका टिप्पणी भी कर सकता है । किन्तु उनकी कला का वास्तविक इस बात में निहित है कि वह युग की आत्मा को प्रस्तुत करने का लक्ष्य रखत है । इस प्रकार जब वह वर्णन करने लगता है, तब ज्ञात होता है कि युग स्वयं उसकी योजना में सम्मिलित है और अपने वातावरण में ही अपने आपको प्रस्तुत कर रहा है ।

डॉ० गोविन्द जी . हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास प्रयोग

*

इतिहास के विभिन्न युगो का अपना निजी परिवेश होता है । जैसे– 'वैदिक युग,' 'बौद्ध युग,' 'मध्ययुग,' 'मुस्लिम काल' आदि । किन्तु वह इतिंहास के साथ पैर मिलाकर गतिशील नही होता और न मात्र युग अथवा काल से सम्बद्ध होता है । देशो और अचलो का भी अपना वातावरण होता है, और उनमें कुछ ऐसे विशिष्ट तत्व होते है, जो उन्हे अन्यो से अलग करते है । उदाहरण के लिए– ''बुन्देलखण्ड अथवा गुजरात, तथा स्काटलैण्ड या हाईलैण्ड'' का वातावरण वही नही था, जो बौद्ध कालीन पाटलीपुत्र का वातावरण था । वर्माजी का बुन्देलखण्डी जीवन अपने परिवेश के साथ ही सम्मुख आता है । ये ऐसे निर्धारित क्षेत्र है जो मनुष्य के जीवन को घेरते है और मात्र इनमें विशिष्टताए ही नही होतीं, वरन् इनके अपने निज के चरित्र भी होते है और वे महज एक दूसरे के 'रूपान्तरण' मात्र नही होते है । प्रत्येक क्षेत्र में अपने आप मे नवीन चित्र होता है और विश्व की ओर से देखने की उसकी अपनी विशिष्ट पद्धति होती है । परिवेश किसी एक भू–भाग से सम्बद्ध होता है जो अपने मे एक जीवन होता है, पहचान होता है और एक ऐसा विशिष्ट संश्लेषण होता है, जिसकी एक रूपता एक अलग विश्व का निर्माण करती है ।

इतिहास को ''रूपान्तरण'' करने के सदर्भ में यह समस्या भी आती है कि उसमें इतिहास और कल्पना का कैसा सामंजस्य रहे, जिससे कृति अपनी कलात्मक संरचना मे उत्कृष्ट हो सके । दूसरे शब्दो मे उसे यू कह सकते है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार वस्तु, पात्र और वातावरण के चुनाव में इस सीमा तक इतिहास का अनुगमन करे और कहां तक अपने स्वतत्र कल्पना का प्रयोग करे । यह प्रश्न ऐसा है, जिसके लिए कोई नियम अथवा कोई सिद्धांत नहीं बनाया जा सकता । वस्तुत: इतिहास और कल्पना के सामजस्य की बात बहुत कुछ उस इतिहास और पृष्ठभूमि पर निर्भर है, जिसका रूपान्तरण किया जाता है । यदि इतिहास की जानकारी अधिक है तो कल्पना के लिए स्थान कम रह जाता है, किन्तु इतिहास कम ज्ञात है तो कल्पना के प्रयोग की सम्भावनाएं अधिक रहती हैं । इतिहास और कल्पना के सामंजस्य के सम्बध में उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा का यह कथन है– ''जहा तक सच्चा इतिहास प्राप्त हो उसके बिना किसी हेर फेर के ज्यो का त्यों रखा जाय । जहा इतिहास अस्पष्ट या अप्राप्त है, श्रृंखला मिलानी है अथवा प्रधान पात्र के चरित्र आगे चलाने या उभारने के लिए गौण पात्रो की आवश्यकता है, वहां आधुनिक मानव जीवन के जीवित पात्रो का मेल अपनी कल्पना शक्ति के सहारे मिला लेना चाहिए समय बदल सकता है, मानव स्वभाव वहीं रहेगा ।''

इस सम्बंध में 'वर्माजी' का दृष्टिकोण पुनः यह व्याख्या करता है कि ''इतिहास के आधार पर उपन्यास लिखने वाले भी अपना दृष्टिकोण रखता है, परन्तु वह इतिहास लिखने वाले की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है । वह चाहे तो केवल युद्धों की मारकाट, राजनीतिक चालो की दौडधूप,

डॉ0 गोविन्द जी . हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास प्रयोग

किसी प्रेम कहानी से जोड़कर उपन्यास को घटना प्रधान कर सकता है । या चाहे तो मनोविज्ञान की विश्लेषण की सहायता से कल्पना रचित घटनाओ को पूर्ण विश्वसनीय बना सकता है । परन्तु यह प्रयत्न सत्य और सुदर की परिधि मे ही बद रहता है । जब तक वह शिव के क्षेत्र मे कल्पना को न दौडाए उसका परिश्रम उतना सराहनीय नहीं हो सकता ।....जिन स्थलो पर इतिहास का प्रकाश नहीं पड सकता है, उनका कल्पना द्वारा सृजन करके उपन्यास लेखक भूली हुई या खोई हुई सच्चाईयों का निर्माण करता है । उनमें वही चमक धमक आ जाती है, जो इतिहास के जाने माने तथ्यों में अवश्यमेव होती है । पर शर्त यह है कि उन तथ्यों या परम्पराओ को तास के पत्तो का महल, या क्लब घर न बना दिया जाय ।

प्राचीन हिन्दू काल पर उपन्यास लिखते समय सस्कृति प्रधान भाषा का प्रयोग ही समीचीन और संस्कृति बोध के लिए उपयुक्त होगा । यदि ऐतिहासिक परिवेश को उपस्थिति करने के लिए उपन्यासकार को सास्कृतिक इतिहास का गभीर ज्ञान होना चाहिए और किसी युग की रीति–नीति, रहन–सहन, आचार–विचार, आमोद–प्रमोद, धर्म–दर्शन, काव्यकला आदि का सम्यक ऐतिहासिक ज्ञान होना आवश्यक है । यदि कोई उपन्यासकार मुगल सम्राटों को वर्तमान वेषभूषा में चित्रित करे अथवा उनके अंतःपुरो में आज की सी सजावट दिखाये तो यह वातावरण का दोष कहा जायेगा, क्योंकि विभिन्न युग में जनरूचि भिन्न–भिन्न होती है । अतएव उपन्यास में संस्कृति के रूपान्तरण के लिए उस परिवेश का विस्तृत ज्ञान होना चाहिए ।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यासो में ऐतिहासिक, साँस्कृतिक रूपातरण की प्रक्रिया पर उपन्यासकार को विशेष सावधानी रखते हुए अपने उपन्यासों का सृजन करना चाहिए, ताकि वह किसी आलोचक के द्वारा अंर्तद्वन्द्व व हसी–मजाक का पात्र न बन सके और उसकी कलाकृति की सर्वांगीण सराहना का आधार प्राप्त हो सके ।

*

(घ)
न्यासमें इतिहास के यथार्थ एवं रोमांस के औपन्यासिक प्रयोग की सार्थकता

ऐतिहासिक तथ्यो के प्रयोग के आधार पर ऐतिहासिक उपन्यास को दो वर्गों मे रखा जा सकता है। पहला युद्ध ऐतिहासिक उपन्यास और दूसरा इतिहासाश्रित उपन्यास । शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास से प्राय. यह अर्थ लगाया जाता है कि उसमें इतिहास को उसकी सारी सच्चाइयो के साथ यथार्थ रूप मे प्रस्तुत करता है। किन्तु यदि उपन्यासकार भी इतिहासकार की भाति अनेक बीती हुई घटनाओ, मृत पात्रों तथा वस्तुओ को उनके स्थूल और यथातथ्य रूप मे उपन्यास मे चित्रित करता है तो वह मात्र नीरस इतिहास बन कर रह जाता है, किसी व्यापक और मानवीय सत्य को उद्घाटित नही कर पाता है। इतनी बात अवश्य है कि इस प्रकार के उपन्यास मे कल्पना की स्वच्छन्द उडान के लिए अवकाश बहुत ही कम होता है। जिसमे औपन्यासिक कुतूहलता का अभाव सा पाया जाता है। वृन्दावन लाल वर्मा का "झांसी की रानी " उपन्यास इसी प्रकार का ऐतिहासिक उपन्यास है। यद्यपि वह झासी की रानी लक्ष्मी बाई मे उनका ऐतिहासिक जीवन चरित्त ही है, फिर भी लेखक ने उसकी औपन्यासिकता की यथाशक्ति बचाने का प्रयारा किया है।

जबकि " इतिहासाश्रित " उपन्यासकार उपर्युक्त नियमो का उतनी कड़ाई से पालन नही करता है। उसे कल्पना करने की पूरी छूट मिलती है, डॉ0 "त्रिभुवन सिह" के कथनानुसार – : "ऐतिहासिक सगति की रक्षा करते हुए उपन्यासकार जब कल्पना की सहायता से अतीत के वर्तमान हित में चित्रित करते है अथवा उन धटनाओं, पात्रो, एवं परिस्थिति को सजीव रूप में उपस्थित करते हैं। जो किन्ही कारणो से इतिहासकारो को आकर्षित नही कर सकी थी पर इतिहास निर्माण अथवा युगीन चेतना के साथ उनकी महत्तवपूर्ण योग रहा है। तो इतिहासाश्रित उपन्यासों की सृष्टि होती है। इस वर्ग के कुछ उपन्यासकार इतिहास के कुछ प्रमुख पात्रो या घटनाओं को ही ग्रहण कर शेष तथ्यों को अपनी कल्पना के बल पर इतिहास के संदर्भ मे चित्रित करते हैं। और कुछ पात्रों या घटनाओ को अपनी कल्पना से निर्मित करके केवल ऐतिहासिक वातावरण को प्रस्तुत करते है। किन्तु उसके कल्पित पात्र या घटनाएं एतिहासिक संगति की उपेक्षा नही करती ।

एक सच्चा ऐतिहासिक उपन्यासकार जो अपने युग की नाड़ी की गति पहचानता है । वह इतिहास के नवीन सदर्भो को उपस्थित करता है, और वे नवीन संदर्भ इतिहास के मूल तथ्यो को वर्तमान जीवन के साथ सम्बद्ध कर देते हैं। वह चाहे इतिहास की तमाम घटनाओं और पात्रों को

हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद पृष्ठ सं0 – 267

*

ले या कुछ ही पात्रो या घटनाओ को या केवल वातावरण को यदि वह कलाकार है। तो उसके उद्देश्य में अन्तर नही पडता है। वह इन सब का निर्माण बडे ही ढ़ंग से करेगा कि वर्तमान जीवन के प्रश्न और मानव मूल्य मुखर हो जाएं इस तरह "इतिहासाश्रित" उपन्यास सा कल्पना प्रधान उपन्यास मे "आचार्य चतुरसेन" की महत्वपूर्ण भूमिका है। उनहोने अपने उपन्यास "वैशाली की नगर वधू", "वयम् रक्षामः", "सोमनाथ" आदि उपन्यास घटनाओं को लेकर स्वतन्त्र रूप से कल्पना का प्रयोग किया है। उन्होने अपने उपन्यासो मे कल्पना के माध्यम से पात्रो मे विचित्र रंग भर देते है। और प्रत्येक पात्र इतिहास की घटनाओं में इतिहास सम्मत हो जाता है।

वैसे तो कल्पना के बिना कोई भी साहित्यिक कृति नही रची जा सकती परन्तु यहा कल्पना से अभिप्राय उन्मुक्त कल्पना विलास या स्वच्छन्द कल्पना से है। जिसके पैर यथार्थ की भूमि पर टिके है। विषय की दृष्टि से 'सामाजिक', 'राजीनितिक', 'एतिहासिक', 'वैज्ञानिक' और 'मनोवैज्ञानिक' उपन्यास लिखे जाते रहे है। शैली या कथा की दृष्टि से वर्णनात्मक नाटकीय, पूर्ण दीप्ति पद्धति, पर लिखे गये है आत्म कथानक, कलात्मक और डायरी शैली में लिखे गये उपन्यास होते है। दूसरी तरफ उपन्यासो में 'रोमांस' की ठीक–ठीक अभी परिभषा नही दी गयी है। 'द इंग्लिश नॉवेल' के लेखक 'जार्ज सेनिट्स' का इस संबध मे मत है– "रोमांस का मूल स्वय एक अत्यन्त विवादास्पद विषय है। अथवा कम से कम यह एक ऐसा विषय है। जिस पर समझदार मस्तिष्क शायद ही अधिक सिर खपाने की चिन्ता करे। " [1]

अग्रेजी साहित्य के आरम्भिक दिनों में रोमांस शव्द रोमास भाषा से अनूदित साहस तथा प्रेम की आदर्शात्मक पद्य –कथाओं के लिए प्रयुक्त होता है। उसके बाद अग्रेजी की क्लासिकल कहानियो केलिए भी रोमास शब्द का प्रयोग होने लगा । तदुपरान्त् स्वतन्त्र काल्पनिक, अतिरंजनापूर्ण प्रेम कथाओं ओर साहसिक कथाओं मको रोमास नाम से अभिहित किया गया है।

रोमांस में कल्पना का अत्याधिक प्रयोग जीवन का असामान्य चित्त और उत्तेजना की प्रबृति ही मुख्य है। उसमे "चरित्त चित्रण" और "यथार्थ" के महत्व को नही दिया जाता है।

The romance givesgreater freedom to the imagination deals with more unusual aspect of life .

रोमांस लेखक आश्चर्यमयी उद्वेगपूर्ण घटनाओ को अपने कथानक के लिए चुनता है। उसमे कथा के लिए कथा कही जाती है। अतः उसका बल चरित्र–चित्रण पर कम रहता है। प्रचंड उद्वेग लाने के लिए वह एक ओर साहसिक कर्म, जीवन, अपूर्व शौर्य बलिदान के प्रसंगों को अवतरित करता है। तो दूसरी ओर उसमें अपने कल्पना विलास द्वारा प्रेम की सुषुप्ति वातावरण उत्पन्न करता है । भारत में ऐ दोनों प्रवृत्तियां मिलकर क्षत्रिय प्रवृति कही जा सकती हैं। क्योंकि

1- W. L Cross – The Development of the english novel introduction.

*

मध्यकाल में क्षत्रिय जाति के लोग एक ओर अपने साहस शौर्य तथा दूसरी ओर बलिदान के लिए विख्यात थे तो दूसरी तरफ अपनी अदम्य प्रणय पिपासा एवं प्रेम भाव के लिए । उनके पुरूषार्थ शौर्य की उदारता तथा परोपकार की भावना से अनुप्राणित रहता है। इन्ही दो प्रवृतियों की प्रधानता "जार्ज सेनिट्स्" ने प्रेम और सौंदर्य के बारे मे बहुत कुछ कहा है। उसने आगे चल कर एक बात और कही "एक अच्छे रोमास के लिए ....आपको गद्य तथा काव्य को मिलाना होगा।"

"सेनिट्स" के उपयुक्त वचनो से स्पष्ट है कि एक ओर जीवट तथा शौर्य होना चाहिए । कठिन से कठिन दूर्धष सकट की स्थितियों का चित्रण होना चाहिए । दूसरी तरफ उसमे प्रेम का स्पन्दन होना चाहिए । शौर्योदार्ता का एक रूप है अबलात्राण संकटग्रस्त असहाय और निरवलम्ब नारी का परित्राण उसे अनीति और अत्याचार के पास से मुक्त करना है । इसके लिए जीवट और प्राक्रम की आवश्यकता है । दूसरी ओर संकट मुक्त नारी का अपने त्रात्रा, मोक्षदाता, पौरूष, और प्राक्रम युक्त पुरूष के प्रति अनुरूक्त होना स्वाभाविक ही है । अतः रोमांस मे शौर्य के साथ–साथ प्रेम का प्रवेश हो जाता है । जीवट और शौर्य के वातावरण मे उदात्त प्रेम व्याप्त हो जाता है। [1]

उपर्युक्त रोमांस विवरण के बाद 'यथार्थ' और 'रोमांस' मे भिन्नता स्पष्ट हो जाती है । रोमास के अतिरिक्त 'यथार्थवादी', 'कलाकार', 'यथार्थवाद' मे वस्तुओं का सच्चा विवरण देने की कोशिश करता है । यथार्थवादी उपन्यासकार मूलतः जीवन के यथातथ्य चित्रण को महत्व देता है, जिसे हम फोटोग्राफी चित्रण भी कह सकते हैं । जिसमें जीवन के सत्–असत् दोनो पक्ष प्रस्तुत हो जाते है, किन्तु सामान्यतः यह देखा जाता है कि यथार्थ के नाम पर जीवन के जुगुप्सित घृणित पक्ष को अधिक उभार दिया जाता है । यहीं से कलाकार आदर्शवाद का विरोधी बन जाता है । यथार्थवाद आदर्शवादिता का विरोधी होने के कारण कल्पनातिश्य को स्वीकार नही करता किन्तु यथार्थ के नाम पर उससे यह आशा की जाती है कि वह जीवन के दुर्बलताओं, सबलताओ दोनों का चित्रण करते हुए स्वस्थ और सुंदर कथा के निर्माण में योगदान दे सकें ।

मार्क्सवाद वर्तमान युग में वैज्ञानिक यथार्थवाद नाम से अभिहित होता है । मार्क्सवादी साहित्य "कल्पना और आदर्श" को न अपनाकर ठोस यथार्थ को अपनाकर चलता है । मार्क्सवादी साहित्य का सम्बन्ध ऐतिहासिक विकास से मानते हैं, जो एक यथार्थ वस्तु है, 'मार्क्सवाद' और 'यथार्थवाद' के पूंजीवाद में भी अंतर है । 'पूंजीवादी यथार्थ' सीमित और रूढ़िवादी है । जबकि 'मार्क्सवादी यथार्थ' असीम और विकासशील है। मार्क्सवादी जिस यथार्थ का चित्रण करता है, वह दलगत राजनीतिक दृष्टि पर निर्भर न होकर उसके अपने दृष्टिकोण और निरीक्षण शक्ति पर निर्भर करता है । 'यथार्थवादी' साहित्यकार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह मार्क्सवाद में ही

1 डॉ0 शाति स्वरूप गुप्त : हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास और मृगनयनी . पृष्ठ स0 – 18

उसका विश्वास हो । मार्क्सवाद से प्रभावित हुए बिना भी वह यथार्थ का सफल चित्रण कर सकता है ।

कभी–कभी कुछ लोग "प्रकृतिवाद" को यथार्थवाद का ही रूप समझते है । जबकि 'प्रकृतिवाद यथार्थवादी' से भिन्न है । 'प्रकृतिवाद' का मतलब मनुष्य को प्रकृति के धरातल पर लाकर प्रस्तुत कर अन्य प्राणियो के समक्ष उसे लाकर खडा कर देता है । प्रकृतिवादी लेखक मुनष्य को काम, क्रोध आदि विकारो से भरा हुआ समझता है । उसके यही विकारो को प्रकट करने वाली प्रवृत्तियों का खुलकर वर्णन करता है, जबकि यथार्थवादी लेखक ठीक इसी रूप में मनुष्य को नहीं स्वीकारता किन्तु वह मनुष्य की भावनाओ और विचारो का अकन करते–करते कभी–कभी प्रकृतिवादी धरातल को अपना लेता है । जबकि प्रकृतिवादी 'मानवतावाद' का विरोधी है, और यथार्थवाद समग्र रूप से मानवतावाद का विरोध नहीं करता, कभी कभार ही उसके विरोध मे चला जाता है । [1]

इसलिए आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' को प्रकृतिवादी उपन्यासकार की सज्ञा दे दी जाती है । जो विशेषता उनके उपन्यासों मे देखने को मिलती है, उस पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि शास्त्री जी पूर्ण रूप से प्रकृतिवाद से प्रभावित नहीं लगते हैं । शास्त्री जी 'यथार्थवाद', 'प्रकृतिवाद', 'आदर्शवाद', 'अंतश्चेतनावाद', 'कल्पनावाद' एवं 'रोमासवाद' सभी कुछ मे मर्मज्ञ दिखाई पड़ते हैं । शास्त्री जी की अतश्चेतना प्रवृत्ति उनके उपन्यास "पत्थर युग के दो बूत" मे स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है । "अंतश्चेतना यथार्थवाद" से भिन्न और व्यक्ति के अर्तमुखी यथार्थ को साहित्य का प्रेरक तत्व स्वीकार करता है और उसी के आधार पर साहित्य का मूल्यांकन करता है । पर व्यक्ति के मानसिक यथार्थ का अंकन उसे परिवेश से पृथक करके नही कर सकता है।

एक बार फिर हम रोमांस की सार्थकता पर विचार करें तो यह स्पष्ट होता है कि रोमांस के जो तत्व हैं– कल्पना का रम्य विलास, जीवन का असमान चित्रण, उद्‌देग, जीवट और प्रणय, काव्यमय अनुभूति और प्रकृति अनगढ रूप का चित्राकन होता है । यद्यपि, 'सेनिट्स' ने उपन्यास और रोमांस को अलग नहीं माना है । रोमांस तथा उपन्यास में घटनाओं की कहानी तथा चरित्र और अभिप्राय की कहानी का पृथककरण एक भूल है । इतिहास और तात्विक विवेचन इस बात का स्पष्ट सकेत करते हैं, कि दोनों दो अलग विधाये हैं । यह दूसरी बात है कि उनमें घनिष्ट सम्बन्ध होता है ।

रोमांस का प्राणतत्व कल्पना विलास है । इसके विपरीत उपन्यास में साधारण जीवन की अभिव्यक्ति और विश्वसनीय परिस्थितियों के चित्रण पर बल दिया जाता है । यदि रोमांस में कल्पना का प्राधान्य होता है तो उपन्यास में वास्तविक जीवन का चित्र उरेहा जाता है, यदि

1 डॉ0 राम लखन शुक्ल . हिन्दी उपन्यास कला : पृष्ठ स0 – 84

*

रोमास मे असामान्य पर बल दिया जाता है, तो उपन्यास मे सामान्य पर बल दिया जाता है, यदि रोमास मे उद्वेग होता है, तो उपन्यास मे शाति और सौम्य स्वर होती है । यदि रोमास मे रहस्यपूर्ण कथानक और उत्तेजनापूर्ण प्रसगों द्वारा पाठक के मन मे "कौतूहल" (Suspense) पैदा किया जाता है, तो उपन्यासो मे पात्रो का विकास क्रमिक और कथानक की गति सरल और स्वाभाविक होती है । [1]

इस प्रकार "क्लारा" के उपयुक्त विचारों के सामान ही "क्रास" का विचार है कि– "उपन्यास को वास्तविक जीवन का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करने वाली तथा रोमास को अतिरंजना द्वारा जीवन का अद्भुत, काल्पनिक रूप प्रस्तुत करने वाली साहित्यक विधा बताया है ।"

"चेवली" भी यही कहते है कि रोमांस शब्द का व्यवहार उन रचनाओं के लिए होता है, जिनमे प्रेक्षण के ऊपर कल्पना का शासन पाया जाता है और उपन्यास मे सर्व सामान्य का प्रतिदिन का जीवन रहता है । रोमास में नाटिकीयता कम होती है और वर्णानात्मक पक्ष मे काव्यमयता बढी चढी होती है । जबकि उपन्यास में यथार्थ मे अधिक बल होने के कारण काव्यमयता का तत्व नगण्य हो जाता है । इस तरह कहा जा सकता है कि उपन्यास और रोमास वस्तुतः दो भिन्न विधायें हैं, परन्तु जिस रचना में यथार्थ और अद्भुत का समिश्रण हो अथवा यथार्थ की भूमि पर कल्पना और काव्यमयता का प्रसाद खडा किया गया हो तो उसे "रोमांटिक उपन्यास" (Romantic Novel) कह सकते है । यदि उपन्यास का आधार ऐतिहासिक हो अर्थात् उसके पात्र और प्रसग वातावरण और घटनाये इतिहास सम्मत हों तो ऐसी रचनाओं को "ऐतिहासिक रोमास" (Historical Novel) कहा जाता है । [2]

ऐतिहासिक उपन्यास को भी विभिन्न दृष्टिकोण से अनेक वर्गो मे विभाजित कर सकते है। "युग प्रतिनिधि उपन्यास" जिसमे इतिहास के विस्तृत युग का चित्र उभारने की कोशिश की जाती है, पर लेखक का दृष्टिकोण अपना ही रहता है । 'शास्त्री जी' का उपन्यास इसी तरह का है । दूसरा "व्यक्ति प्रतिनिधि उपन्यास" होता है, इस उपन्यास मे विस्मृत ऐतिहासिक व्यक्तियो का कल्पनात्मक वर्णन किया जाता है । जैसे– प्रसाद जी का "इरावती" उपन्यास जो अधूरा है । "अति रंजनकारी उपन्यास" मे ऐतिहासिक घटनायें व पात्रों का समावेश किया जाता है । जिसका उल्लेख इतिहास में मिलता है, पर उन्हें अतिरंजित और विषद रूप में प्रस्तुत किया जाता है ।

चौथे प्रकार "विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास" होता है । जिसका उद्देश्य मनोरंजन नहीं होता है । इतिहास का ज्ञान प्रदान करना भ्रांतियों का निवारण करना होता है । प्रायः समझा जाता है कि उपन्यास भ्रांति फैलाते हैं, पर ऐतिहासिक उपन्यास भ्रांतियों का निराकरण करता है । इसके लिए वह नई टेक्निक अंपनाता है । परिशिष्ट तथा पाद टिप्पणियों का तो वह आश्रय लेता

1 हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यास और मृगनयनी : डॉ0 शाति स्वरूप गुप्त पृष्ठ स0 – 19
2 वही ———— वही——— पृष्ठ स0 – 20

*

ही है, साथ ही अपनी कल्पना की वलगा को भी नियंत्रित करता है । उसके लिए साध्य इतिहास है, और उस साध्य तक पहुंचने का साधन उपन्यास है ।

जबकि "ऐतिहासिक रोमांस" लेखक का दावा यह होता है कि– "उसने वस्तु और पात्र इतिहास से लिये है । पर यह कभी दावा नही करता कि जो कुछ वह लिख रहा है, वह भले ही इतिहास न हो पर इतिहास की प्रामाणिकता रखता है । ऐतिहासिक उपन्यास मे एक स्वच्छद कल्पना, रजना को स्थान मिलता है, जबकि उपन्यास मे नही ।" इन शब्दो से स्पष्ट है कि रोमास मे ऐतिहासिक आधार नाम मात्र का होता है । उसमे कल्पना का विलास अधिक होता है ।

अतः उपर्युक्त विवेचन को देखकर निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि काव्यमय अनुभूति रोमास का एक गुण है, जो विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों मे प्रायः नही पाया जाता है । इस काव्यमय अनुभूति के कारण ही ऐतिहासिक रोमांस लेखक एक ओर मधुर प्रणय सम्बन्धो का चित्रण करता है, तो दूसरी ओर प्रकृति के मंजुल मनोरम रूप का जिसमे रोमानी आत्मा झलकती है, का चित्रण भी करता है । एक ओर वह त्याग और बलिदान के प्रसंगो द्वारा पाठक के हृदय को करूणाद्र एव द्रवित करता है, तो दूसरी ओर प्राचीन खण्डहरो एव भगनावेशों को देखकर जो पीडा का भाव उसके मन में अकुरित होता है, उसे भी अपनी रचनाओं में सग्गुम्फित करता है करता है । विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास मे काव्यमय अनुभूति के स्थान पर बौद्धिक अभिप्राय का प्राधान्य रहता है । उसका लेखक तर्क, प्रमाण, युक्तियों आदि का आश्रय लेकर रचना को बौद्धिक अधिक तथा काव्यमय कम बनाता है । यही कारण है कि विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास मे उपन्यास रस शुष्क ऐतिहासिक आच्छादन से भर उठता है । ऐसी रचना पाठक को अधिक रमा देती है । इस बौद्धिकता और वैज्ञानिक संन्निकटता के कारण कहीं–कहीं पाठक ऊबने लगता है। इसलिए हम कह सकते है कि यदि वृन्दावन लाल वर्मा का "झासी की रानी" विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है तो "मृगनयनी" एक ऐतिहासिक रोमांस है । साथ में शास्त्री जी का "सहयाद्रि की चट्टाने" और "आलमगीर" विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है तो उनका "वैशाली की नगरवधू" एक ऐतिहासिक रोमास है । [1]

वर्माजी और शास्त्री जी के अनेक उपन्यास रोमांस के कोटि में परिगणित किये जाते हैं । वर्मा और शास्त्री जी रोमांस लेखक भी है तो शुद्ध ऐतिहासिक लेखन से भी पीछे नहीं हैं । वर्माजी का 'मृगनयनी' को अच्छे रोमांस के रूप में ख्याति मिली है । इसमें ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर और मृगनयनी की रूमानी कथा है, तो शास्त्री जी के 'वैशाली के नगरवधू' में 'आम्रपाली' और 'हर्षदेव' के मार्मिक 'रूमानी कथा' का चित्रण है । वर्माजी का मत है कि ऐतिहासिक उपन्यास केवल मनोरंजक का साधन नही होना चाहिए । उसका लक्ष्य कुछ अधिक महान होना

डॉ0 सत्येन्द्र मृगनयनी मे कला और कृतित्व पृष्ठ स0 – 19–20

*

चाहिए । ऐतिहासिक उपन्यासकार अपने साहित्य द्वारा खासी समाज की सेवा कर सकता है । मनोरंजन के अतिरिक्त वह कुछ और भी दे सकता है, परन्तु मेरी अडिग धारणा है कि इतिहास के साथ खिलवाड करने का बिल्कुल अधिकार नही है ।

अध्याय - द्वितीय

अध्याय-2

वृन्दावन लाल वर्मा : व्यक्तित्व और कृतित्व

1. व्यक्तित्व -:

प्रत्येक साहित्यकार का व्यक्तित्व एव कृतित्व परस्पर सापेक्ष होता है। साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके कृतित्व मे प्रतिबिम्बित होता है । 'वृदावन लाल वर्मा' का व्यक्तित्व भी उनके साहित्य मे पूर्णत. अभिव्यक्त हुआ है । वर्माजी एक 'मानवतावादी' उपन्यासकार थे। उनके उपन्यासों मे जनसाधारण के प्रति सच्ची 'सहानुभूति' एवं 'सवेदना' थी । जन साधारण के प्रति उनका यह लगाव उनके उपन्यासों स्पष्ट रूप से झलकता है।

एक साहित्यकार के व्यक्तित्व का निर्माण स्वतः ही नहीं हो जाता है। उसके व्यक्तित्व निर्माण मे उसके सस्कारो, परिस्थितियो, परम्पराओ एवं लोक व्यक्तियों का हाथ होता है। वृन्दावनलाल वर्मा के व्यक्तित्व निर्माण में भी उनके संस्कारों, परिस्थितियो, परम्पराओं व्यक्तियो और पुस्तकों के प्रभाव एव प्रेरणा का विशेष योगदान था।

वर्माजी का वश जाति से कायस्थ एव कर्म से क्षत्रिय रहा है। उनके पूर्वज महाराज छत्रसाल के सैनिक थे। प्रपितामह 'आनन्दराय' मराठो के दीवान तथा फौजदार थे। वे सन् 1857 में 'झांसी की रानी' के साथ अंग्रेजों से लडते हुए मारे गये थे।

वर्माजी का जन्म 9 जनवरी सन् 1889 को 'मऊरानीपुर' (झांसी) मे हुआ था। उनके पिता का नाम 'श्री अयोध्या प्रसाद' तथा माता का नाम 'श्रीमती सवरानी' था।

वर्माजी की प्रारम्भिक शिक्षा उनके चाचा 'बिहारीलाल' के साथ रहकर 'ललितपुर' मे हुई थी। वहा से उन्होनें मिडिल पास किया था चाचा की मृत्यु पश्चात उन्होने झासी मे रहकर मैट्रिक पास किया था। उसके बाद उन्होनें मुहर्रिरी तथा उसे छोडकर जंगल–विभाग में नौकरी कर ली थी। इसी बीच आप 'मार्क्स', 'ड्यूमा' आदि पाश्चात्य विद्वानों की कृतियो का अध्ययन करते रहे। उन्होने 'टॉड' का राजस्थान पढ़ा था 'सैम्यूल स्माइल्स' की 'सेल्फ हेल्प' तथा 'केरेक्टर' नामक पुस्तके पढ़कर आप के अन्दर क्रांन्ति की भावना जागृत हुई। फलस्वरूप आपने जंगल–विभाग की नौकरी भी छोड दी। उसके पश्चात् माँ के आश्वासन और सहयोग से विकटोरिया कालेज, ग्वालियर से उच्च शिक्षा प्राप्त की तथा सन् 1913 मे आगरा कालेज, आगरा मे एल0 एल0 बी0 की पढाई के लिए प्रवेश किया और उसमें फेल होकर अन्त में उसे पास कर लिया।

वर्माजी पर अनेक व्यक्तियों, घटनाओं एवं पुस्तकों का प्रभाव पड़ा था। बचपन में मॉ के पैसों की चोरी करने के बाद मॉ की लाश से सम्बन्धित जो भयानक स्वप्न देखा था, उससे जीवन

*

मे कभी भी चोरी न करने का निश्चय किया। अपने चाचा के रिश्वत न लेने की बात सुनकर उससे रिश्वत न लेने की शिक्षा ली । जगल–विभाग मे नौकरी करते समय किताब पढते रहने के कारण वहा के बाबू की हिदायत मन–मस्तिष्क मे बस गयी । उससे कर्त्तव्य बुद्धि सजग हुई। करने का आशय यह है। कि वर्माजी के जीवन में अनेक ऐसे व्यक्ति आये, ऐसी घटनाएं घटी, जिन्होने वर्माजी पर अपना अमिट प्रभाव छोडा था। उन सबका मिला–जुला असर वर्माजी के व्यक्तित्व निर्माण मे सहायक हुआ था।

वर्माजी 'जिन्दादिल' इंसान थे। जमकर खाना, दण्ड –बैठक करना, कुश्ती लडना, लाठी चलाना, खूब घूमना, शिकार करना, तथा फुटबाल, हॉकी, एव क्रिकेट खेलनें में उनका मन खूब रमता था। उन्हे घूमने एवं शिकार खेलनें का विकट शौक था। इसके कारण कई बार उनके प्राण संकट मे पड गये थे। लेकिन शौक फिर भी नही छूटा था। इसके अतिरिक्त उन्हें बागवानी करने का भी शौक था । इसके बाद उन्हे घर की पूजी खर्च करने के बाद 60–70 हजार रूपये भी कर्ज लेना पडा था। तथा 8–10 वर्ष का समय भी गंवाना पडा था। उन्हे पढने लिखने का शौक बचपन से ही था। 'ललितपुर' मे रहने के समय उन्होने 'भारत की दुदर्शा' एवं 'नीलदेवी' आदि नाटक तथा 'चन्द्रकान्ता' उपन्यास पढ डाले थे। सन् 1905 मे उन्होने अपने चाचा का अधूरा नाटक 'रामवनवास' पूरा कर लिया था।

वर्माजी अन्धविस्वासो, प्रथाओ, रूढियो एव प्राचीन दकियानूसी विचारों में विश्वास नही रखते थे। उन्हे तर्क संगत रीति रिवाज, विश्वास एव विचार मान्य थे । वर्माजी दहेज प्रथा के घोर विरोधी थे। वे हिन्दू समाज में व्याप्त ऊँच–नीच एवं छुआछूत को समाज विरोधी समझते थे।

वर्मा का परिवार सनातन धर्म मे विश्वास रखता था। उनके घर में तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का पाठ होता है। सन् 1906 से पूर्व वे सनातन धर्म मे विश्वास करते थे, लकिन उसके पश्चात् एक बार आर्य समाज के उपदेशक क प्रवचन सुननें से तथा 'सत्यार्थ प्रकाश' का गहरा अध्ययन करनें से उनके धार्मिक विचारों मे आकस्मिक परिर्वतन आ गया था। वे घोर आर्य समाजी हो गये थे। कुछ समय पश्चात् 'मार्क्स', 'चार्ल्स', 'दान्ते', एव 'ह्यूगो' की पुस्तकें पढ़कर वे उनके सामूहिक प्रभाव से पक्के नास्तिक हो गये थे। वे सिर्फ इतना मानते थे कि इस विश्व की रचयिता कोई एक चेतनाशक्ति है। वे देवी देवताओं पर बिलकुल विश्वास नहीं करते थे।

वर्माजी सच्चे समाज सेवक थे। समाज–सेवा के लिए वे राजनीति से भी जुडे थे। सन् 1913 में वे कानपुर से निकलने वाले पत्र 'प्रताप' के सम्पादक 'गणेश शंकर विद्यार्थी' के सम्पर्क मे आये थे। उन्होंने पं0 'बद्रीनाथ भट्ट' तथा श्री 'मन्नन द्विवेदी' के साथ मिलकर 'गोलमालकारिणी सभा' का गठन किया था और तीनों व्यक्ति छद्म नाम से हास्य –व्यग्यं प्रधान निबन्ध लिखते थे।

*

सन् 1924 मे वे 'सहकारिता आन्दोलन' से सक्रिय रूप से जुड़ गये थे। अग्रेज भारतीय मजदूरों से बेगार कराते थे, वर्माजी ने सन् 1927 मे इस बेगार प्रथा का विरोध किया था, जिसके लिए उन्हें झांसी के कलक्टर की डांट–फटकार सुननी पडी थी । वे सन् 1936 से 1948 अप्रैल तक झासी जिलार्बोड के अध्यछ रहे थे। इस पद पर रहकर उन्होनें भ्रष्टाचार का दमन किया था।

वर्माजी ने अनेक उपन्यास, कहानी एव नाटक लिखे थे। वे एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार थे। उनकी इस साहित्य–सेवा एवं समाज–सेवा के लिए सरकार ने तथा विभिन्न सस्थाओ ने उन्हे अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया था। भारत सरकार ने सन् 1965 मे उन्हे 'पद्मभूषण' की उपाधि से सम्मानित किया था। इसके अतिरिक्त उन्हे 'सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार ' तथा उत्तर प्रदेश सरकार का 'हरजीमल डालमिया पुरस्कार' प्रदान किये गये थे। सन् 1958 में आगरा विश्वविद्यालय,'आगरा ने उन्हे 'डी0 लिट' की उपाधि से तथा सन् 1965 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन नें 'साहित्य व्राचस्पति' की उपाधि से सम्मानित किया था। इस प्रकार साहित्य और समाज की सेवा करने वाले तथा बहुमुखी प्रतिभा के धनी इस मूर्धन्य साहित्यकार का देहावसान 23 फरवरी, 1969 को हुआ था।

2. वर्माजी का कृतित्व–:

वर्माजी मे बहुमुखी प्रतिभा थी । उन्होनें अनेक 'उपन्यास', 'कहानी संग्रह', 'नाटक', 'एकाकी', एवं 'स्फुट' रचनाएं लिखी थी। हालांकि उन्होनें अपना साहित्यिक जीवन नाटकों से प्रारम्भ किया था। लेकिन वे एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुए। उनकी रचनाए निम्नलिखित है–:

* उपन्यास–:

वर्माजी ने निम्नलिखित 26 उपन्यासों की रचना की – 1. कीचड और कमल, 2. देवगढ की मुस्कान, 3. झासी की रानी लक्ष्मीबाई, 4.माधवजी सिंधिया, 5. मृगनयनी, 6. अमरबेल, 7. महारानी दुर्गावती, 8. कचनार, 9. गढकुण्डार, 10. टूटे कांटे, 11. बिराटा की पद्मिनी, 12. भुवन विक्रम, 13. अचल कोई मेरा, 14. सोना, 15. आहत, 16. अहिल्याबाई, 17. कुण्डली, 18. संगम, 19. उदय–किरण, 20. रामगढ की रानी, 21. प्रत्यागत, 22. मुहासिबजू, 23. प्रेम की भेंट, 23. प्रेम की भेंट, 24. लगन, 25.कभी न कभी, 26. सोती आग, ।

* कहानी संग्रह-:

वर्माजी के कुल आठ कहानी सग्रह प्रकाशित हुए है, वे निम्नलिखित है-:

1. दबे पांव, 2. ऐतिहासिक कहानियां, 3. शरणागत, 4. कलाकार का घमण्ड, 5. मेढकी का ब्याह, 6. अगूठी का दान, 7. रश्मि-बन्ध, 8. तोषी, ।

* नाटक-:

वर्माजी ने 15 महत्तवपूर्ण नाटको की रचना की थी। वे निम्नलिखित हैं-:

1. झांसी की रानी,(नाटक), 2. हस मयूर, 3. पूर्व की ओर, 4. पूर्व की ओर, 5. ललित विक्रम, 6. केवट, 7. खिलौने की खोज, 8. नीलकठ, 9. बीरबल, 10. फूलो की बोली, 11. बांस की फांस, 12. निस्तार, 13. मंगलसूत्र, 14. देखा-देखी, 15. चले-चलो ।

* एकांकी-:

वर्माजी नें 7 एकांकी लिखे थे- : .

1. कनेर, 2. काश्मीर का कांटा,3. लो भाई पंचो लो, 4. पीले हाथ, 5. जहॉदारशाह, 6. तीन एकांकी, 7. सगुन, ।

* स्फुट-:

वर्माजी ने 9 स्फुट रचनाएं की है-:

1. बुन्देलखण्ड के लोक गीत, 2. युद्ध के मोर्चे से (जीवनी) 3. 1857 के अमरवीर, 4. अपनी कहानी (आत्मकथा) 5. सरदार राने खॉ , 6. राष्ट्रीय ध्वज की आन, 7. गौरव गाथाएं, 8. एक दूसरे के लिए हैं हम, 9. भारत यह है (रिपोर्ताज)।

वर्माजी के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

हिन्दी जगत में वृन्दावनलाल वर्मा एक प्रसिद्ध एतिहासिक उपन्यासकार के रूप मे जानें जाते है। यद्यपि उन्होनें उपन्यासो के अतिरिक्त कहानी एवं नाटक भी लिखें हैं, लेकिन उन्हे प्रसिद्धि एक उपन्यासकार के रूप में ही मिली है। उन्होनें ऐतिहासिक उपन्यासों के अलावा सामाजिक उपन्यास भी लिखे हैं, लेकिन लोग उन्हें एतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ही जानते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं-:

(क) वर्माजी नें कुल 26 उपन्यासों की की रचना की थी, जिनमें से 15 एतिहासिक उपन्यास हैं। तथा 11 सामाजिक उपन्यास हैं। सामाजिक उपन्यासों से एतिहासिक उपन्यासों की सख्या अधिक है।

सत्यदेव वर्मा द्वारा प्रेषित पुस्तको की सूची के आधार पर *

(ख) वर्माजी का प्रथम उपन्यास 'गढ़कुण्डार' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। उपन्यासकार का यह प्रथम प्रयास उसके हार्दिक रूझान को स्पष्ट करता है, जिसमें उसके इतिहास प्रसिद्ध पूर्वजो की वीरोचित कर्म करने की विच्छिन्न परम्परा को अविच्छिन्न बनानें की लालसा है।

(ग) वर्माजी नें एतिहासिक उपन्यासकारों की पूर्व परम्परा से किंचित हटकर भ्रामक एव कपोल–कल्पित तथ्यों की अपेक्षा इतिहास सम्मत यथार्थ तथ्यों का चित्रण किया है, जिसमें उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

(घ) वर्माजी ने एतिहासिक उपन्यासो में स्वस्थ रोमांस का चित्रण किया है। उसमें नाम मात्र के लिए भी अश्लीलता नही है, जो एतिहासिक उपन्यासों की पूर्व परम्परा को देखते हुए सवर्था एक नया प्रयोग है।

विषय वस्तु के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण –:

वर्ण्य–विषय के आधार पर वर्माजी के उपन्यासों को दो भगो में विभक्त किया जा सकता है– (1) ऐतिहासिक उपन्यास (2) सामाजिक उपन्यास।

1. एतिहासिक उपन्यास –:

वर्माजी ऐतिहासिक उपन्यास लिखने से पूर्व 'अश्रुमती' नाटक तथा ई0 मार्सडनकृत ' भारत का इतिहास' आदि कृतियों में लिखी गलत–सलत बातो को देखकर अत्यन्त क्षुब्ध हुए थे । उन्होने भविष्य में इन पुस्तकों की कलई खोलने का निश्चय किया था। उन्होनें 'वाल्टर स्कॉट' 'आइवैनहो' तथा 'टेलिस्मैन' और टॉड का 'राजस्थान' पढकर इतिहास सम्बन्धी भूगोल का निरीक्षण करके ऐतिहासिक उपन्यास लिखनें का निश्चय किया था। उन्होने 'झांसी की रानी लक्ष्मीबाई' के 'परिचय' मे स्पष्ट लिखा है।.......मैने निश्चय किया कि उपन्यास लिखूंगा, ऐसा जो इतिहास के रग रेशे से सम्मत हो और उस संदर्भ में हो। "

वर्माजी के प्रकाशित ऐतिहासिक उपन्यास निम्नलिखित हैं:–

1.कीचड़ और कमल, 2. देवगढ़ की मुस्कान, 3. झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, 4.माधवजी सिंधिया, 5. मृगनयनी, 6. महारानी दुर्गावती, 7. कचनार, 8. गढ़कुण्डार, 9. टूटे कांटे, 10. भुवन विक्रम, 11. अहिल्याबाई, 12. रामगढ की रानी, 13. मुहासिबजू, 14. सोती आग, 15. बिराटा की पद्मिनी, ।

2. सामाजिक उपन्यास :

वर्माजी एक महान सामाजिक उपन्यासकार थे। उन्होनें ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं , और इन उपन्यासों मे राजा–रानियों एवं समाज के उच्च एवं वैभव सम्पन्न व्यक्तियो के रूप में जन–शोषकों का चित्रण भी किया है, लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं है। कि वे सामन्तवाद के पोषक उपन्यासकार थे। वास्तविकता यह है। कि उनके हृदय में समाज के निर्वल, अछूत व

वृन्दावन लाल वर्मा "अपनी कहानी" : चतुर्थ सस्करण . 1989 · पृष्ठ सं0 . 417–18

*

पिछडे समझे जाने वाले वर्गों के प्रति सच्ची सहानुभूति थी। वे उनके लिए कुछ ऐसा करना चाहते थे, जिससे इन व्यक्तियो में जागृति आये ओर ये सामन्तशाही के शिकंजे से स्वय को मुक्त करा सके। ऐतिहासिक उपन्यासों मे भी वर्माजी ने सामन्तवादी विचारधारा के व्यक्तियों का डटकर विरोध किया है, उनको फटकारा है, भले ही वे राजा, सामन्त या महाजनों के रूप में समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति ही क्यों न हो। वे शोषण के अतिरिक्त समाज के निर्बलवर्ग के आर्थिक एव सामाजिक पिछडेपन के अन्य कारणोंः जैसे अशिक्षा, कुप्रथाए, एव अंधविश्वासो आदि का भी उल्लेख करना चाहते थे। जिसके लिए उन्होनें सामाजिक उपन्यास लिखनें का निश्चय किया था। उनके सामाजिक उपन्यासों मे उनकी उपर्युक्त भावनाए अभिव्यक्त हुई है।

वर्मा जी के प्रकाशित सामाजिक उपन्यास निम्न लिखित हैं–:

1. अमरबेल, 2 अचल कोई मेरा, 3. सोना, 4. आहत, 5 कुण्डली, 6. संगम, 7 उदय–किरण, 8. प्रत्यागत, 9. प्रेम की भेंट, 10. लगन, 11.कभी न कभी,

३- ऐतिहासिक उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

(1)गढ़ कुण्डार –:

'गढ़ कुण्डार' वर्मा जी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। वर्माजी इसकी रचना सन् 1927 मे की थी। इसकी संक्षेप मे कथावस्तु निम्नलिखित है–:

गढकुण्डार के राजा "हुरमत सिह" के पुत्र राजकुमार "नागदेव" का असफल, एकाकी प्रेम तथा खंगारों का विनाश इसकी मुख्य कथा है। शिकार खेलनें के लिए नागदेव अपने सामन्त हरि चन्देल के पास भरतपुरा की गढ़ी जाता है। वहां 'सोहन पाल' बुन्देला एव उसके परिवार जनो से उसकी भेट होती है। सोहनपाल के भाई 'वीरपाल' ने राज्य वितरण के समय उसके साथ अन्याय किया था। वह 'नागदेव' से सहायता मांगता है। 'नागदेव' उसे आश्वासन देता है। उसी रात गढ़ी पर मुसलमानों का एक जत्था आक्रमण करता है। नागदेव बहादुरी से मुकाबला करता है, लेकिन वह घायल हो जाता है। उसकी सेवा सोहनपाल की पुत्री 'हेमवती' करती है। वह सुन्दरी हेमवती पर आसक्त हो जाता है। वह पहरेदार अर्जुन कुम्हार के हाथें उसे प्रेम पत्र भेजता है, जो उसे मिल नहीं पाता है। क्योंकि स्वामिभक्त अर्जुन उस पत्र को अपने स्वामी हरि चन्देल को दे देता है, और वह उसे राजा हुरमत सिंह के पास पहुंचानें के लिए अपने पास रख लेता है। नागदेव हेमवती का उत्तर न पाकर, उसके मौन को प्रेम स्वीकृति समझने के भ्रम में पड़ जाता है। नागदेव के आश्वासन पर सोहनपाल अपने साथियों सहित सरोल में रहनें लगता है, लेकिन उसकी पुत्री हेमवती तथा पुत्र सहजेन्द्र और धीरस प्रधान का पुत्र दिवाकर कुण्डार में ठहरते हैं। मुसलमानों के एक अन्य आक्रमण के समय नागदेव हेमवती से अपना प्रणय निवेदन करता है, लेकिन वह उसकी

*

प्रणय याचना को ठुकरा देती है। नागदेव की प्रणय याचना की सूचना पाकर बुन्देले भड़क उठते हैं। एक दिन नागदेव हेमघती के अपहरण का षडयंत्र रचता है, लेकिन वह सफल नही हो पाता है। हेमवती और उसके भाई आदि कुण्डार से भाग जाते है।

कायस्थ जाति के 'दिवाकर' तथा 'ब्राहमण अग्निदत्त' की बहन तारा का प्रणय सफल रहता है। कुण्डार में सहजेंन्द्र के साथ रहते हुए दिवाकर को तारा से प्रेम हो जाता है।तारा अपने पिता की आज्ञा से पति–प्राप्ति हेतु अग्नि–भैरव के नित्य पूजन का व्रत लेती है। दिवाकर देवरा की चौकी से उसकी पूजा के लिए नित्य कनेर के फूल लाता है। इससे दोनों एक दूसरे के प्रति समर्पित हो जाते हैं। लेकिन वर्णाधर्म के भय से दिवाकर घोर अर्न्तद्वन्द में पड जाता है। अनिश्चित स्थिति में वह कुण्डार छोड देता है। नाग और हेमवती के विवाह से पूर्व खगारों के विनाश के लिए बुन्देले जो षडयंत्र रचते हैं, दिवाकर उसका विरोध करता है। फलस्वरूप बुन्देले उसे पागल समझकर देवरा चौकी के तलघर मे बन्द कर देते हैं। अन्त में 'तारा' उसे वहां से मुक्त कराती है। उसके बाद दोनो योग साधना हेतु जंगल में चले जाते हैं।

अर्जुन कुम्हार सामन्त हरि चन्देल का स्वामिभक्त सेवक हैं। नागदेव के भरतपुरा आने के समय वह पहरे पर तैनात हैं। एक सजग प्रहरी के तुल्य उसकी कर्त्व्यपरायणता पर नागदेव प्रसन्न होता है। भरतपुराकी गढ़ी में नाग के प्रणय पत्र को वह अपने स्वामी हरि चन्देल को दे देता है, जिसे वह बाद में अर्जुन के माध्यम से ही राज हुरमत सिंह के पास पहुंचाता है। पत्र से राजा को नाग और हेमवती के प्रणय का भ्रम होता है। हरिचन्देल नाग व हेमवती के विवाह के समय बुन्देलों द्वारा मारा जाता है।

'अग्निदत्त' एवं 'मानवती' का प्रणय असफल रहता है। 'विष्णुदत्त पाण्डेय' का पुत्र अग्निदत्त जो राजकुमार 'नागदेव' का मित्र है, नागदेव की बहन 'मानवती' से प्रेम करता है। अग्निदत्त राजमहल में आता जाता रहता है। तभी वह मानवती की ओर आकर्षित होता है। वह मानवती को बाण चलाना भी सिखाता है। निरन्तर सम्पर्क में आते रहनें के कारण दोनों परस्पर प्रेम सूत्र में बध जाते हैं। एक दिन नागदेव हेमवती की सखी की वेश–भूषा पहने हुए प्रच्छन्न अग्निदत्त एवं मानवती की प्रेम सम्बन्धी गुप्त बातें सुन कर सजग हो जाता है। सह अग्निदत्त का अपमान कर उसे किले से बाहर निकाल देता है।अपमानित अग्निदत्त बुन्देलों से मिल जाता है और खंगारों के विनाश का कारण बनता है।

भरतपुरा की गढ़ी पर आक्रमण करते समय अल्लीवेग और इब्नकरीम नाम के दो मुसलमान आक्रामक पकड़े जाते हैं। दोनों को बन्दी बनाकर कुण्डार भेजा जाता है, लेकिन अल्लीवेग भाग जाता है। इब्नकरीम को नागदेव अपनी सेवा में रख लेता है। अल्लीवेग मुसलमानों

वृन्दावन लाल वर्मा "गढ़ कुण्डार" परिचय : पृष्ठ सं0 : 13

*

को लेकर पुनः आक्रमण करता है, लेकिन वह युद्ध में 'इब्नकरीम' के हाथों मारा जाता है। अन्त मे नाग–हेमवती के विवाह के समय इब्नकरीम अपने स्वामी नागदेव की रक्षा करते हुए मारा जाता है।

उपर्युक्त उपन्यास में मुख्य कथा 'नागदेव' एव 'हेमवती' के असफल, एकांगी प्रेम से सम्बन्धित है। प्रासगिक कथाओं में तारा और दिवाकरकी प्रणय कथा, मानवती और अग्निदत्त की प्रणय कथा, पहरेदार अर्जुन से सम्बन्धित कथा, मुसलमानों के आक्रमण सम्बन्धित कथा तथा खगार विनाश सम्बन्धी कथा प्रमुख है।

उपन्यास में तीन प्रणय कथाओं का उल्लेख किया गया है, जिनमे से दो असफल प्रणय कथाए है, तथा एक सफल प्रणय कथा है । 'नाग–हेमवती' तथा 'अग्निदत्त मानवती' की प्रणय कथाए असफल है, लेकिन दिवाकर–तारा की प्रणय कथा सफल कथा है।

उपन्यास के सम्पूर्ण कथानक को 78 परिच्छेदों मे विभक्त किया गया है, जिनका नाम पात्रों अथवा घटनाओं के आधार पर किया गया है। यथा–कुण्डार की चौकियां, अर्जुन पहरेदार, भरतपुरा की गढी आदि।

कथानक का प्रारम्भ जिज्ञासा और कौतूहल से पूर्ण है। उपन्यासकार कथानक का प्रारम्भ "दो घुडसवार जाते है.........." से करता है, लेकिन वह बहुत देर तक यह नहीं बताता है। कि वे दोनों कौन हैं। 'कुण्डार की चौकियों का परिच्छेद वर्णनात्मक शैली में परिचयात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। इससे परिच्छेद कुछ अधिक विस्तृत हो गया है। जिससे कथानक की गति मे शिथिलता आई है।

उपन्यास मे पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। पहरेदार अर्जुन कुम्हार ठेठ बुन्देलखण्डी भाषा बोलता है। उपन्यास के मुसलमान पात्रो की भाषा में अरबी एवं फारसी के शब्दों की बहुलता है।

इस उपन्यास में आये हुए पात्रों मे 'हुरमत सिह', 'नागदेव', 'सोहनपाल', 'सहजेन्द्र', 'पुण्यपाल', एवं 'हेमवती' आदि पात्र ऐतिहासिक हैं। 'तारा', 'दिवाकर', 'हरिचन्देल', 'इब्नकरीम', आदि पात्र काल्पनिक हैं। 'हेमवती' का वास्तविक नाम रूप कुमारी था।

उपन्यास की मुख्य घटना ऐतिहासिक है, लेकिन खंगारों के विनाश के कारणों मे थोड़ा मतभेद है। उपन्यासकार ने सम्भावित यथार्थ को ग्रहण कर उपन्यास की रचना की है।

इस उपन्यास में तेरहवी सदी के उत्तरार्ध के राजपूतों के जातीय भेदभाव, ऊच–नीच आपसी वैमनस्य एवं नैतिक पतन की चरम सीमा का यथार्थ चित्रण किया गया है।

वृन्दावन लाल वर्मा "गढ कुण्डार" परिचय . पृष्ठ स0 : 13

*

(2) बिराटा की पद्मिनी–:

'विराटा की पद्मिनी' की अधिकारिक कथा अद्भुद एव देवतुल्य सौन्दर्य से युक्त 'कुमुद' एवं राजकुमार 'कुंवर सिंह' के प्रणय से सम्बन्धित है। पालर गांव मे 'दुर्गा की अवतार' मानी जाने वाली सुन्दरी पुजारिणी 'कुमुद' के दर्शन करने के लिए दूर–दूर से लोग आते हैं। एक दिन दलीपनगर के राजा 'नायक सिंह' के दासी पुत्र 'कुवर सिह' तथा सेनापति 'लोचनसिह' और कालपी के नबाव के दो सिपाही उसके दर्शनार्थ पालर गाव मे पहुचते हैं। सिपाही 'कुमुद' के प्रति अभद्र व्यवहार करते है। जिससे क्षुब्ध होकर 'कुंवर सिंह' व 'लोचन सिह' उनसे मारपीट करते है। अतः पालर गांव के निवासी युद्ध की आशका से भयभीत हो जाते है। युद्ध के भय से 'कुमुद' और उसके पिता 'नरपति दांगी' बिराटा के सजातीय 'राजा सबदलसिंह' की शरण में चले जाते हैं। वह उन्हे बिराटा में नदी के समीप स्थित एक मन्दिर मे शरण देता है। वहां भी 'कुमुद' को देवी के रूप में मान्यता हो जाती है।

कामीराजा नायक सिंह, जो कि रोगी है, 'कुमुद' को अपनी हवश का शिकार बनाने के लिए अनेक हथकण्डे अपनाता है। वह 'लोचन सिंह' के माध्यम से 'कुमुद' की रक्षा के बहाने उसे अपने पास बुलाना चाहता है, लेकिन वह असफल रहता है। उसकी मृत्यु के बाद मत्री 'जनार्दन' के षडयत्र से राजा नायक सिंह के प्रिय व्यक्ति देवीसिह को दलीप नगर का राजा बनाया जाता है। इससे क्षुब्ध होकर कुवर सिंह राजा देवी सिंह से विद्रोह करता है, लेकिन उसे सफलता नही मिलती है। अतः निराश कुंवर सिंह भटकता हुआ बिराटा पहुंचता है। वह राजा सबदल सिंह के सहयोग से क्षीण आश्वासन पर 'कुमुद' के पास मन्दिर में रहने लगता है। वहां कुमुद एवं कुंवर सिंह का मौन प्रेम प्रकट होता है। दोनों परस्पर समर्पित हो जाते हैं। तभी 'अलीमर्दान' कुमुद को प्राप्त करनें हेतु बिराटा पर आक्रमण करता है। उसी समय उसकी मुठभेड देवी सिंह की सेना से हो जाती है, 'अलीमर्दान' अपने कुछ सैनिकों के साथ मन्दिर पर पहुंच जाता है, लेकिन 'अलीमर्दान' के पहुंचने से पूर्व ही 'कुमुद' नदी में कूदकर प्राणोत्सर्ग कर देती है। उसी समय देवी सिह एवं कुंवर सिंह का भी युद्ध होता है, जिसमे कुवंर सिंह मारा जाता है।

पालर गाव में ही कुमुद के पड़ोस में गोमती रहती है। उसका देवी सिंह से विवाह होने जा रहा है। दूल्हा देवी सिंह जब रास्ते में आता है। तभी राजा नायक सिह एवं 'अलीमर्दान' की सेना में युद्ध छिड़ जाता है। दूल्हा देवी सिंह राजा नायक सिंह की ओर से बहादुरी से लड़ता है, लेकिन वह घायल हो जाता है। अतः गोमती का उससे विवाह नहीं हो पाता है। पालर में युद्ध की आशंका होने से गोमती भी 'कुमुद' के साथ मन्दिर में रहने लगती है। तभी उसे छोटी रानी का अनुचर रामदयाल मिलता है, जो 'अलीमर्दान' की वासना पूर्ति हेतु 'कुमुद' की खोज में वहां आता

*

मिलती है। अतः निराश कुंवर सिंह भटकता हुआ बिराटा पहुंचता है। वह राजा सबदल सिंह के सहयोग से क्षीण आश्वासन पर 'कुमुद' के पास मन्दिर मे रहने लगता है। वहा कुमुद एवं कुवर सिह का मौन प्रेम प्रकट होता है। दोनों परस्पर समर्पित हो जाते हैं। तभी अलीमर्दान कुमुद को प्राप्त करने हेतु बिराटा पर आक्रमण करता है। उसी समय उसकी मुठभेड देवी सिह की सेना से हो जाती है, अलीमर्दान अपने कुछ सैनिको के साथ मन्दिर पर पहुच जाता है, लेकिन अलीमर्दान के पहुंचने से पूर्व ही कुमुद नदी में कूदकर प्राणोत्सर्ग कर देती है। उसी समय देवी सिंह एवं कुवर सिह का भी युद्ध होता है, जिसमे कुवंर सिह मारा जाता है।

पालर गांव मे ही कुमुद के पड़ोस में गोमती रहती है। उसका देवी सिंह से विवाह होने जा रहा है। दूल्हा देवी सिंह जब रास्ते में आता है। तभी राजा नायक सिंह एवं अलीमर्दान की सेना मे युद्ध छिड जाता है। दूल्हा देवी सिंह राजा नायक सिंह की ओर से बहादुरी से लडता है, लेकिन वह घायल हो जाता है। अतः गोमती का उससे विवाह नहीं हो पाता है। पालर में युद्ध की आशका होने से गोमती भी कुमुद के साथ मन्दिर में रहने लगती है। तभी उसे छोटी रानी का अनुचर रामदयाल मिलता है, जो 'अलीमर्दान' की वासना पूर्ति हेतु कुमुद की खोज में वहा आता है। वह स्वय को देवी सिह का अनुचर बतलाता है, जिससे गोमती को उस पर विश्वास हो जाता है। बिराटा में गोमती देवी सिंह के उपेक्षित व्यवहार से स्तब्ध रह जाती है। युद्ध की आशंका होने से रामदयाल उसे सुरक्षित स्थान पर पहुचाने ले जाता है। रास्ते में वह उसके समक्ष अपना प्रेम प्रकट करता है, लेकिन वह मौन रहती है। वह उसे अलीमर्दान की छावनी में छोटी रानी के डेरे में पहुंचा देता है। बाद में वह युद्ध मे मारी जाती है। [1]

जनार्दन के षडयंत्र से देवी सिह को राजा बनाया जाता है, जिससे राजा नायक सिंह की छोटी रानी जनार्दन एवं देवी सिह दोनो से प्रतिशोध लेना चाहती है। वह कुंवर सिंह को भड़काती है तथा सिहगढ में उससे जाकर मिलती है लेकिन लोचन सिंह जब सिहगढ़ पर कब्जा कर लेता है तब वह भागकर रामनगर आ जाती है। रामनगर पर जब देवी सिंह अपना अधिकार कर लेता है, तब वह राखीबन्द भाई अली मर्दान की छावनी में चली जाती है, जहा देवी सिंह के विरूद्ध लडते हुए वह लोचन सिह के हाथो मारी जाती है।

इस उपन्यास में मुख्य कथा 'कुमुद' एवं 'कुवंर सिंह' के असफल प्रणय से सम्बन्धित है। प्रासंगिक कथाओं मे 'राजा देवी सिंह' एवं गोमती से सम्बन्धित कथा, 'अलीमर्दान' से सम्बन्धित कथा आदि प्रमुख हैं।

1 वृन्दावन लाल वर्मा : विराट की पद्मिनी . भूमिका

*

वर्मा जी ने दो भिन्न कालो की ऐतिहासिक घटनाओ को जोडकर इस उपन्यास की रचना की है। राजा नायक सिह, देवी सिह, छोटी रानी, एव कुवर सिह से सम्बन्धित कथा दतिया राज्य की राज्य प्राप्ति हेतु सघर्ष की कहानी है, जो कुमुद के काल से 55 वर्ष बाद की है।

देवी सिह का वास्तविक नाम भवानी सिह था, जो दतिया के महाराज हुए थे और महाराज विजय बहादुर सिह ही है। ये बहुत विलासी थे। इनका कोई पुत्र नही था। एक दासी पुत्र था, जिसका असली नाम अर्जुन सिह था, जो उपन्यास का कुवर सिह है। मृत्यु के समय महाराज विजय बहादुर सिह ने कुछ अस्पष्ट कहा था, जिसका मनगढत अर्थ लगाकर मत्री ने भवानी सिह को राजा बनाने की चाल चली थी। छोटी रानी के प्रतिशोध से समबन्धित कथा झासी के निकट 'गोरा छमिया' गाव की है। [1]

दूल्हा देवीसिह वाली कथा 'विजय बहादुर सिह' के पिता 'बहादुर शाह' के काल की है। बहादुरशाह कालपी की रक्षा के लिए मुसलमानो से युद्ध कर रहे थे, तभी दुलहन के साथ लौटते हुए एक दूल्हा बहादुरशाह की ओर से युद्ध किया और मातृभूमि पर शहीद हो गया था। उस दूल्हा के रक्त रजित मोर वस्त्र एव तलवार आदि आज भी सेहुडे (सिहगढ) मे सुरक्षित रखे हुए है।

कुमुद की घटना भी ऐतिहासिक है। जिस चट्टान से कूदकर उसने कूद कर अपनी जान दी थी, उस पर उसके चरण चिन्ह अकित है। उस स्थान पर प्रत्येक वर्ष आज भी मेला लगता है।

कुमुद और कुवर सिह की प्रणय–कथा काल्पनिक है।

वर्माजी ने कुमुद को अर्ध मानव–देव के रूप मे चित्रित किया है। रामदयाल काल्पनिक पात्र है। उसे वर्माजी ने हीन–मानव के रूप मे चित्रित किया है।

3- मुहासिबजू

इस उपन्यास मे मुख्य कथा दतिया राज्य के अर्न्तगत वेरूआ के जागीरदार मुहासिब 'दलीप सिह' एव स्वामिभक्त सेवक 'रमू', 'पूरन' एव 'लल्ली' आदि से सम्बन्धित है।

एक दिन 'मुसाहिब दलीप सिह' अपने कुछ वफादार सैनिको को साथ लेकर शिकार खेलने जाते है। शिकार खेलते समय उनकी बन्दूक से घायल तेदुआ उन पर झपटता है, लेकिन उसके झपटने से पूर्व ही उनका स्वामिभक्त सैनिक 'पूरन' अपनी तलवार से भरपूर वार तेदुआ पर करता है। तेदुआ मरते हुए भी उसकी जाघ को चबा डालता है। तभी सभी शिकारी एकत्रित होकर घायल पूरन का प्राथमिक उपचार करते हैं। मुसाहिब 'दलीप सिह' पूरन के गले मे सोने की गुज डाल देते हैं।

1 वृन्दावन लाल वर्मा   विराट की पद्मिनी   भूमिका

घर आकर 'दलीप सिह' शिकारियो को शर्बत पिलाना चाहते है, लेकिन खाड (शक्कर) के अभाव मे शर्बत केवल उन्ही को मिल पाता है। अन्य शिकारियो को सिर्फ पानी मिलता है। इस भेदभाव का ज्ञान होने पर उन्हे दुख होता है। [1]

एक दिन दतिया के राजा ने मुसाहिब 'दलीप सिह' के पास समाचार भिजवाया कि ग्वालियर राज्य की ओर से दतिया पर आक्रमण होन की आशका है। अत अपने 1200 सैनिको को युद्ध के लिए तैयार रखे। 'दलीप सिह' ने अपने सिपाहियो को बुलवा लिया । उनके पुराने वेलन को चुकाने तथा भोजन की व्यवस्था करने के लिए चरखारी वाली को अपना एक मात्र स्वर्णाभूषण भी गिरवी रखना पडता है। उसके बाद उनके पास कोई बडा स्वर्णाभूषण नही बचता है। स्वर्णाभूषणो के अभाव मे वे दतिया की रानी के निमन्त्रण पर एक विशेष समारोह मे भाग लेने के लिए राजमहल नही जा पाती है। वे सिरदर्द का बहाना बनाकर घर पर ही रहती हैं। समारोह मे सम्मिलित न होने का उन्हे अत्यन्त दुख होता है।[2]

चरखारी वाली सरकार की परिचारिकाओ के माध्यम से रमूपूरन आदि सेवको को अपने स्वामी की कमजोर आर्थिक स्थिति मालूम हो जाती है। वे सब मिलकर राहजनी करते हैं और अनेक सोने के आभूषणो को चरखारी वाली के पास यह कहकर पहुचा देते है कि ये आभूषण विरूला के छिपे हुए खजाने के अकस्मात् हाथ लगे है चरखारी वाली सरकार स्वार्णाभूषणो को पाकर बहुत प्रसन्न होती है। [3]

जिन व्यापारियो एव स्त्रियो जिन व्यापारियो एव उनकी स्त्रियो को रमू, लल्ली एव पूरन आदि दलीप सिह के सैनिक रास्ते मे लूटते हैं, उनमे दतिया की एक स्त्री सुभद्रा भी है। वह राहजनी के समय आवाज से लल्ली को पहचान लेती है। इसके अतिरिक्त एक दिन लल्ली सेठ कुन्जी के पास लूटे हुए आभूषणो मे से कुछ सुभद्रा के थे गिरवी रखने आता है। सुभद्रा (कुजी की पुत्री) उन्हे पहचान लेती है। यह बात कुजी को भी मालूम हो जाती है। तभी समस्त व्यापारी समुदाय दतिया के राजा से यह शिकायत करने जाता है कि राहजनी मुसाहिब दलीप सिह के सैनिको ने की है, उन्हे दण्डित किया जाय। राजा मुसाहिबजू को बुलाकर 'रमू' एव 'पूरन' आदि को दरबार मे हाजिर करने का आदेश देता है। मुसाहिबजू अपने स्वामिभक्त सेवको को सकट से बचाने के लिए राजा के आदेश की अवहेलना कर देते है और राजा की सेना का मुकाबला करने को तैयार हो जाते है। तब राजा कोतवाल को बुलाकर उसे मुहासिबजू को बन्दी बनाने की आज्ञा देता है। कोतवाल मुहासिबजू के पास जाकर उन्हे वस्तुस्थिति का ज्ञान कराता है और उन्हे राज्य छोडकर चले जाने का परामर्श देता हैं। वह उनकी बन्दूक लेकर लौट जाता है। मुहासिबजू अपनी पत्नी एव कुछ सैनिको के साथ राज्य को छोडकर जाने लगता है, तभी राजा उन्हे लौटा लेता है।

1 वृन्दावन लाल वर्मा "मुसाहिबजू" आठवा सस्करण 1987 पृष्ठ स0–4 । 2 वही । 3 वही ।

*

वर्माजी ने मुहासिब 'दलीप सिह' एव उनके वफादार सैनिको से सम्बन्धित मूलकथा के आधार पर उपन्यास की रचना की है।

कथानक का कैनवास छोटा है। इसके प्रारम्भ मे जिज्ञासा और कौतूहल है। उपन्यासकार बन्दूकधारी मनुष्यो के झुण्ड को चुपचाप जगल मे जाते हुए दिखाता है, लेकिन मनुष्यो का परिचय उपन्यास के पृष्ठ 4 पर देता है।

वर्माजी ने जनश्रुति के आधार पर इस उपन्यास की रचना की है। दतिया के निवासी छोटू नाई से वे स्वय जाकर मिले थे। उस समय वह 80 वर्ष का था। वह दतिया मे बकाजू कोतवाल के सिपाहियो मे नौकर रहा था। उसने वर्माजी को जो कहानी सुनाई थी, वही उपन्यास की मूलाधार है।

उपन्यास मे जिन प्रमुख घटनाओ का उल्लेख किया गया है, वे सब सत्य हैं। कोतवाल द्वारा मुहासिबजू की बन्दूक लेकर लौट जाने की घटना भी सत्य है।

उपन्यास मे आये हुए पात्रो मे मुसाहिब 'दलीप सिह' एव 'रामसिह धधेरा' वास्तविक हैं, शेष पात्र काल्पनिक है।

इस उपन्यास मे वर्माजी ने उस काल का चित्रण किया है, जबकि सामन्त–युग की समाप्ति का सिलसिला प्रारम्भ हो गया था और जिसका कुछ अवशिष्ट भाग वर्माजी के समय तक मौजूद था।

4- झांसी की रानी लक्ष्मीबाई

अग्रेजो ने सन् 1818 मे पेशवा "बाजीराव द्वितीय" को पेशवाई समाप्त कर, उन्हे आठ लाख रूपये वार्षिक पेशन तथा विठूर की जागीर प्रदान की थी। [illegible] पेशवा बाजीराव विठूर चले गये तथा उनके भाई 'चिमाजी अप्पा' काशी चले गये। 'मोरोपन्त ताम्बे, जो झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के पिता थे चिमाजी के साथ काशी गये थे। मोरोपन्त की पत्नी का नाम भागीरथी था। 19 नवम्बर, सन् 1835 मे काशी मे 'भागीरथी' ने एक सुन्दर कन्या को जन्म दिया, उसका नाम 'मनूबाई' रखा गया था, जो बाद मे झासी की रानी लक्ष्मीबाई हुई थी।

'मनूबाई' बचपन से ही बहुत बहादुर थी। वे बहुत सुन्दर भी थी। बाजीराव उन्हे प्यार से 'छबीली' नाम से पुकारते थे। 'मनु' को यह नाम पसद नही था। मनु को छुटपन से ही छत्रपति शिवाजी, अर्जुन–भीम आदि के प्राचीन आख्यान सुनाये गये थे, जिससे उनके अन्दर वैसे ही बनने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई थी। बचपन मे ही वह घुडसवारी आदि करती थी। एक दिन घुडसवारी करते हुए बाजीराव का दत्तक पुत्र (गोद लिया गया) नाना धोधूपन्त घोडे से गिरकर लहूलुहान हो गया । मनु उसे अपने घोडे पर बिठाकर घर ले आयी। सभी लोग नाना को देखकर

वृन्दावन लाल वर्मा 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई" इक्कीसवा सस्करण 1982 पृष्ठ स0 – 4

*

घबडा रहे थे, लेकिन मनु के लिए यह साधारण घटना थी। नाना के कुछ स्वस्थ होने पर एक दिन उसे हाथी पर बैठाकर घुमाने के लिए ले जाने लगे। 'मनू' भी उसके साथ जाने के लिए मचलने लगी, लेकिन उसे हाथी पर नही बैठाया गया। मोरोपन्त ने उसको फटकारा कि तेरे भाग्य मे हाथी नही है, तभी मनू ने कहा,– 'मेरे भाग्य मे एक नहीं दस हाथी लिखे है।'' उसी समय किसी को क्या मालूम था कि मनू के शब्दो मे उसका भाग्य ही बोल रहा है।

एक दिन झासी के तात्या दिक्षित विठूर के घर पहुचे। मोरोपन्त ने उनको 'मनू' के लिए वर खोजने का निवेदन किया । 'तात्या' ने 'मनू' की जन्मकुण्डली मगवाई। कुण्डली को देखकर तात्या आश्चर्य चकित हो गया उसने पहले कभी ऐसी अच्छी जन्म कुण्डली नहीं देखी थी उसने भविष्य वाणी की कि इसे कही की रानी होना चाहिये ।'तात्या दीक्षित' के प्रयास से ही एक दिन मनु का विवाह झासी के 'राजा गगाधर राव' से हो गया । मनु झासी की रानी बनकर झासी आ गयी। उनका नाम 'लक्ष्मीबाई' रखा गया। झासी मे रानी लक्ष्मीबाई की सेवा के लिए सुन्दर मुन्दर एव काशी आदि 16 सेविकाओ को भेजा गया, जिनको रानी ने अपनी सहेली बनाकर रखा और जीवन भर साथ रहने का उनसे बचन लिया। उन्हे नित्य तीर तलवार चलाना घुडसवारी करना, तथा व्यायाम कर शरीर का पुष्ट एव बलिष्ठ बनाने की शिक्षा दी।

रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया लेकिन वह एक महीने बाद ही मर गया। इससे राजा एव रानी को बहुत दुख हुआ उन्होने 'आनन्दराय' नामक एक बालक को गोद लिया, जिसका नाम दामोदर राव रखा गया।'रानी लक्ष्मी बाई'ने उसे बडे प्यार से पाला ।

विवाह से पूर्व राजा 'गगाधर राव' को शासन करने का अधिकार नही था। उस समय झासी का नायब पोलिटिकल एजेन्ट कप्तान 'डनलव' था। राजा के प्रयास करने पर विवाह के बाद शासन का अधिकार अग्रेजो की एक शर्त पर मिला। वह यह कि झासी मे एक अग्रेजी फौज रखी जायेगी, जिसका खर्च झासी राज्य वहन करेगा । इसके लिए राजा को 2 लाख 27 हजार 458 रूपये वार्षिक आय का एक इलाका अग्रेजो को देना पडा। शासन का अधिकार मिलने पर राजा अपराधी व्यक्ति को विच्छू से कटवाना, गर्म लोहे की छडो से शरीर को दागना तथा अगारो से अगो को जलाना,एव हाथ–पैर काट लेना आदि के रूप मे कठोर दण्ड देते थे। वे जनसाधारण के मनोरजन हेतु झासी मे नाटक मण्डली रखते थे, जिसमे पुरूषो के अतिरिक्त 'मोतीबाई' एव 'जूही' आदि कुछ नर्तकिया भी थी। यह नाटक मण्डली समय –समय नाटक खेल कर जनसाधारण का मनोरजन करती थी।

कुछ समय उपरान्त 'गगाधर' का देहान्त हो गया। अग्रेजो ने दत्तक पुत्र दामोदर राव को झासी का राजा मानने से इकार कर दिया । और झासी राज्य को कम्पनी सरकार के अधीन मान

वृन्दावन लाल वर्मा "झासी की रानी लक्ष्मीबा. ' इक्कीसवा सस्करण 1982 पृष्ठ स0 – 2–3

*

लिया। उन्होने रानी को पाच हजार रूपये मासिक वृत्ति देने की घोषणा की। रानी ने वृत्ति लेने से स्पष्ट इकार कर दिया, उन्होने कहा, ' मै अपनी झासी नही दूगी।' कुछ समय बाद, समय की नाजुक स्थिति को पहचानते हुए तथा भविष्य मे कुछ करने की तैयारी के लिए उन्होने यह वृत्ति स्वीकार कर ली। उसके बाद झासी मे 'अग्रेजी बन्दोबस्त' किया गया अग्रेजो ने तहसीलो, थानो, एव दफ्तरो आदि पर कब्जा किया। पचायते भग कर दी गई, उनके स्थान पर कोर्ट कचहरी बनाये गये। इससे आम जनता को बहुत असुविधा हुई। जागीरे जब्त करके, जमींदारी कायम की गयी।

अग्रेज सरकार ने चोरो और डाकुओ पर नियत्रण किया । उन्होने डाकुओ के सरदार कुवर 'सागर सिह' को बन्दी बना लिया । एकदिन कमिश्नर स्कीन एव कप्तान मार्डन ने जेल का मुआइना किया। उन्होने 'सागर सिह' से अपने साथियो का भेद बताने के लिए कहा । 'सागर सिह' ने इसके लिए अच्छा भोजन एव हथकडी बेडी का वजन कम करने की सहूलियत मागी । स्कीन ने जेल अधिकारी 'बख्शिश अली' को ऐसा करने की अनुमति दे दी । उसने समझा 'सागर सिह' को अच्छा भोजन एव बन्धनमुक्त करने के लिए कहा गया है । फलस्वरूप उसने ऐसा ही किया । अत मौका मिलने पर 'सागर सिह' जेल से भाग निकला । जब 'सागर सिह' के भागने की सूचना स्कीन को मिली, वह आगबबूला हो गया । उसने 'बख्शिश अली' को जूतो की ठोकरे लगाई तथा उस व्यक्ति को नौकरी से निकाल दिया, जिसके पहरे से सागर सिह भागा था ।

सन् 1857 मे अग्रेजो के विरूद्ध करने की तैयारिया, प्रारम्भ हो गई थी । अग्रेजो की छावनियो मे हिन्दुस्तानी सिपाहियो के पास चिट्ठिया भेजी गई, जिनमे देश और धर्म के नाम पर अग्रेजो से युद्ध करने तथा उन्हे देश से बाहर खदेडने के लिए सगठित होने के लिए आह्वान था। झासी मे अग्रेजो की छावनी मे भी ऐसी चिट्ठिया आई । 'मोतीबाई' ने एक चिट्ठी रानी लक्ष्मीबाई को भी दिखाई । उन्होने 'तात्या' के माध्यम से 'जवाहर सिह' और 'रघुनाथ सिह' को बुलाया । गुप्त मन्त्रणा हुई और दोनो मातृभूमि पर शहीद होने का वचन देकर चले गये । कुछ समय बाद अग्रेजो की छावनियो मे हिन्दुस्तानी सिपाहियो के पास कमल के फूल एव रोटी–सब्जिया पहुचाई गई, जो अग्रेजो के विरूद्ध क्रान्ति करने की सूचक थी । मई मे मेरठ मे अग्रेजो के विरूद्ध विद्रोह भडक उठा । मेरठ और दिल्ली की सम्मिलित फौज ने दिल्ली के लाल किले पर अधिकार कर लिया और बादशाह "बहादुरशाह" को भारत का सम्राट घोषित किया गया । इस विद्रोह का प्रभाव सम्पूर्ण उत्तर भारत पर पडा । चौथी जून को हिन्दुस्तानी सिपाहियो ने कानपुर के 'स्टार फोर्ट' पर कब्जा कर लिया । उसी दिन झासी मे भी पल्टन के निरीक्षण के समय रिसालदार कालेखा के दस्ते के किसी सिपाही ने डनलप के साथी एक अग्रेज को गोली

वृन्दावन लाल वर्मा 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' इक्कीसवा सस्करण 1982 पृष्ठ स0 – 3–4

*

मार दी । अग्रेजो मे भगदड मच गयी । उसी समय मौका पाकर 'बख्शिश अली' ने अपनी एकापाल से अग्रेजो और उनके बाल–बच्चो को मौत के घाट उतार दिया । मृतको मे 'बख्शिश अली' मे जूतो को ठोकर मारने वाला स्कीन भी था । इस घटना के बाद हिन्दुस्तानी सिपाही रानी के पास गये । उन्होने उनकी देख–रेख मे अग्रेजो से विद्रोह करने का निवेदन किया । रानी ने इन्कार कर दिया । तब वे अपने खर्चे के लिए रानी के मोतियो का हार लेकर दिल्ली चले गये ।

इस घटना से अग्रेज भयभीत हो गये । उन्होने झासी की देख–रेख के लिए 'रानी लक्ष्मीबाई' को अधिकार दे दिया । रानी ने मौके का पूरा लाभ उठाया । उन्होने एक फौज तैयार की । पुरानी तोपो को तैयार करवाया गया । बारूद एकत्रित की गई। स्त्रियो को भी युद्ध के लिए तैयार किया गया । कुछ स्त्रियो ने तोप चलाना भी सीख लिया । इसी बीच रानी ने डाकू सागर सिह को पकडने के लिए 'खुदाबख्श' को भेजा, वह उसे पकडकर न ला सका तब रानी ने 'मोतीबाई' एव 'मनु' साथ स्वय जाकर उसे बन्दी बना लिया और उसके निवेदन पर उसे उसके साथियो सहित अपनी सेना मे भर्ती कर लिया । रानी ने 'लक्ष्मणराव' को प्रधान मत्री, तोपे ढालने को भाउ, दीवान 'जवाहर सिह' को प्रधान सेनापति, पैदल सेना मे 'रघुनाथ सिह', 'मुहम्मद जमीखॉ', एव खुदाबख्श को कर्नल, घुडसवारो की सेना मे स्वय को प्रधान, सुन्दर, मुन्दर और काशीबाई को कर्नल, गुलाम गौसखा को तोपखाने का प्रधान, दीवान दूल्हाजू को नायब, नाना भोपटकर को न्यायाधीश, अपने पिता मोरोपन्त को कमठाने का प्रधान तथा जासूसी विभाग का नायब मोतीबाई को नियुक्त किया । रानी ने झासी राज्य के दावेदार 'सदाशिवराव' को युद्ध मे पराजित किया ।

12 मई, सन् 1858 को सेनापति 'रोज' ने तालबेहट के जिले को अधिकार मे करके, झासी पर आक्रमण किया । 'रानी लक्ष्मीबाई' ने उपयुक्त स्थानो पर तोपे रखवाकर तथा अपने सैनिक जिनमे स्त्रिया भी थी, तैनात कर अग्रेजो के आक्रमण का मुहतोड जवाब दिया । इस युद्ध मे झांसी के बच्चे–बच्चे ने अपनी रानी का साथ दिया। दोनो ओर से घनघोर यद्ध होता रहा । स्त्री तोपचियो एव गोलन्दाजो को देखकर तथा रानी की कुशल रणनीति को देखकर रोज हतप्रभ हो गया । इसी बीच 'तात्या' कालपी से एक बडी फौज लेकर रानी का साथ देने के लिए झासी की ओर आया । लेकिन 'रोज' की सेना से हारकर वह वापस कालपी लौट गया । रानी को भी इसकी सूचना मिल गई । रानी ने युद्ध जारी रखा । रोज समझ नहीं पा रहा था कि किस प्रकार विजय प्राप्त की जाय । वह निराश हो गया था, लेकिन देशद्रोही 'पीरअली' एव 'दूल्हाजू' के सहयोग से उसने झासी पर अपना अधिकार कर लिया । तभी रानी अपने कुछ सैनिको के साथ भाण्डेर फाटक से निकलकर कालपी चली गई ।

वृन्दावन लाल वर्मा 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई" इक्कीसवा सस्करण 1982 पृष्ठ स0 – 3

*

कालपी मे रानी पेशवा की सेना मे सम्मिलित हो गई । कालपी मे पेशवा 'राव साहब' की सेना के साथ वे अग्रेजो से लडी, लेकिन सेना के अव्यवस्थित होने के कारण वहा भी उन्हे पराजित होना पडा । वहा से भागकर पेशवा राव साहब ने 'रानी लक्ष्मीबाई' के प्रस्ताव पर ग्वालियर पर आक्रमण किया और किले पर अपना अधिकार कर लिया । पेशवा राव साहब ने ठाठ–वाट से अपना राज्याभिषेक करवाया और उसके बाद नाच–गान एव भग की तरग मे खो गया । 'रानी लक्ष्मीबाई' उसकी लापरवाही से बहुत चितित थी । उन्हे अग्रेजो के आक्रमण की चिता थी ।

एकदिन 'रोज' ने ग्वालियर पर आक्रमण किया । इस युद्ध मे 'रानी लक्ष्मीबाई' अपने शेष चन्द सैनिको के साथ बहादुरी से लडी और अपने सैनिको के साथ वीरगति को प्राप्त हुई ।

इस उपन्यास की मुख्य कथा मोरोपन्त की पुत्री 'मनु' के झासी की रानी लक्ष्मीबाई बनने तथा अग्रेजो के साथ युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त होने से सम्बन्धित है ।

इसमे चार प्रणय–कथाओ 'मोतीबाई', 'खुदाबख्श', 'जूही', 'तात्याटोपे', 'मुन्दर' 'रघुनाथ सिह' तथा 'छोटी भगिन', 'नारायण शास्त्री' के अतिरिक्त सागर सिह आदि की अनेक प्रासगिक कथाए है ।

यह उपन्यास इतिहास- सम्मत तथ्यो पर आधारित है, लेकिन उपन्यासकार ने इसकी रचना मे जनश्रुति का भी सहारा लिया है । सभी प्रासगिक प्रणय–कथाए जनश्रुति पर आधारित है। वर्माजी ने मु0 'तुराबउली दरोगा', अंजीमुल्ला' तथा झासी के अन्य बुजुर्गों से रानी लक्ष्मीबाई के सम्बन्ध मे अनेक बाते सुनी थी । उपन्यास मे पात्रो की बहुलता है । इसके समस्त पात्र एव घटनाए वास्तविक हैं ।

छोटी भगिन का नाम भर बदला गया है । उसका वास्तविक नाम 'मछरिया' था । मोतीबाई एतिहासिक है । उपन्यास का कैनवास बहुत विस्तृत है, तथा पात्रो और घटनाओ की बहुलता के कारण उन्हे क्रमबद्ध रूप से स्मरण रखना मुश्किल है । ऐतिहासिक तथ्यो की अधिकता के कारण कथानक मे कही–कहीं शिथिलता आई है ।

वर्माजी ने इस उपन्यास मे इस बात का भी उल्लेख किया है कि रानी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु या मजबूरी में अग्रेजो से नही लडी थी, बल्कि वे 'स्वराज्य' प्राप्ति के लिए लडी थी । इसके लिए उन्होने युद्ध मे सहायता हेतु रानी द्वारा बानूपुर के राजा 'मर्दन सिह' को प्रेषित चिट्ठी को आधार माना है, जिसमे 'स्वराज्य' शब्द आया है।

5- कचनार

इस उपन्यास मे वर्माजी ने अठारहवी शताब्दी मे राजा 'दिलीप सिह' के शासन काल की अनेक घटनाओ का उल्लेख किया है । उपन्यास का कथानक इस प्रकार है–

*

धामोनी का राजा 'दलीप सिह' युवक है, लेकिन स्वभाव से सहजकोपी है । अपने विवाह के समय बीमार हो जाता है, अतः उनका छोटा भाई 'मानसिह' फेटा–कटार से दुल्हन 'कलावती' को ब्याह कर लाता है । 'कलावती' के साथ दो कुमारी दासिया 'कचनार' एव 'ललिता' भी आती है । इनमे 'कचनार' बहुत सुन्दर है । प्रारम्भ मे ही कलावती 'मानसिह' के प्रति आकर्षित होती है । दलीप सिह की अपेक्षा व 'मानसिह' पर अधिक स्नेह रखती है । इसी कारण 'दलीप सिह' एव कलावती मे स्नेह–सम्बध स्थापित नही हो पाता है । उधर दलीप सिह 'कचनार' के रूप–सौन्दर्य पर मोहित हो जाता है । वह उसे अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है, लेकिन सफल नहीं हो पाता है । 'कचनार' उससे शादी करना चाहती है । उसी समय धामोनी पर सागर की सेना आक्रमण करती है । राजा 'दलीप सिह' उन्हे हराकर, लौटते समय घोडे से गिर जाता है । उसके सिर मे चोट लग जाती है । उससे उसकी स्मरण–शक्ति समाप्त हो जाती है । उस समय कचनार उसकी बहुत सेवा करती है । वह समय पर उसे औषधि खिलाती है, लेकिन एकदिन मानसिह उसका प्राणान्त करने हेतु बहुत गर्म औषधि उसे खिला देता हे, जिससे उसे तीव्र ज्वर हो जाता है और उसकी नाडी की गति रूक जाती है । धामोनी के सभी लोग उसे मृत मानते है।

अन्त मे मृतक 'दलीप सिह' की अन्त्येष्टि हेतु धामोनी के व्यक्ति उसे श्मशान ले जाते है । वहा तेज वर्षा होने के कारण वे उसे वही छोडकर चले जाते है । उधर से महन्त 'अचलपुरी' और उसका शिष्य 'मन्टोलेपुरी' आते हैं । तब तक वर्षा की शीतलता के प्रभावस्वरूप 'दलीपसिह' को होश आ जाता है । महन्त अचलपुरी उसे अपनी अखाडे मे ले जाते है । लेकिन 'दलीपसिह' की स्मरणशक्ति अभी भी नही लौटती है । उसका व्यवहार बालक जैसा हो जाता है । महन्त उसका नाम सुमन्तपुरी रखता है । इधर 'मानसिह' 'कचनार' को अपनी वासनापूर्ति का साधन बनाना चाहता है । कचनार उसके चगुल से बच निकलती हे । वह भी महन्त 'अचलपुरी' के अखाडे मे आ जाती है । महन्त उसका नाम 'कचनपुरी' रखता है ।

महन्त अचलपुरी धामोन पर आक्रमण करता है । इस बीच सुमन्तपुरी बना हुआ 'दलीपसिह' एकबार फिर घोडे से गिरता हे और उसके सिर मे पुन. चोट लगती है, जिससे उसकी स्मरण–शक्ति वापस आ जाती है । वह पति–पत्नी बने हुए 'मानसिह' और 'कलावती' को क्षमा कर देता है और उन्हे जागीर देकर अन्यत्र भेज देता है । महत अचलपुरी मटोलेपुरी को महन्त बना देता है और स्वय सन्यास ले लेता है । दलीपसिह कचनार से विधिवत विवाह कर लेता है ।

'दलीप सिंह' की स्मरणशक्ति लुप्त हो जाने पर तथा उसे मृत मान लेने पर मानसिह धामोनी का राजा बन जाता है और कलावती से प्रेम–विवाह कर लेता है । वह 'ललिता' को अपनी वासनापूर्ति का साधन बना लेता है ।

*

'सोनेशाह' 'दलीप सिह' का काका है तथा 'डरू' एव 'बैजनाथ', जो सगे भाई है, उसके मित्र है, लेकिन 'सोनेशाह' से तथा 'बैजनाथ' की पटती नहीं है । लगान न देने पर सोनेशाह बैजनाथ को पीटता है । इसी बीच डरू आकर 'सोनशाह' का वध कर देता है । 'डरू' भाग जाता है । दलीप सिह बैजनाथ का वध कर देता है, तथा दोनो भाईयो की चल और अचल सम्पत्ति को जब्त कर राज्याधिकार मे ले लेता है । डरू छुपकर कभी–कभी अपनी पत्नी मन्ना से मिलने आता है । दलीप सिह के स्मरणशक्ति लुप्त होने पर 'मानसिह' मन्ना पर डोरे डालता है, लेकिन असफल रहता है । 'अचलपुरी' के अखाडे मे डरू लक्ष्य–वेध मे सुमन्तपुरी से हार जाता है । कुछ समय बाद वह सागर की लूटपाट करता है और धामोनी पर आक्रमण करता है, लेकिन उसे बन्दी बना लिया जाता है । 'अचलपुरी' उसे प्राणदण्ड देता है, लेकिन ऐन वक्त पर 'दलीप सिह' उसकी रक्षा कर बैजनाथ के वध का प्रायश्चित करता है ।

सागर राज्य एव पिडारियो मे परस्पर शत्रुता है । सागर की सेना गुसाईयो के साथ पिडारियो पर आक्रमण करती है, लेकिन वर्षा के प्रभाव के कारण वे 'पिडारियो' का कुछ अधिक नुकसान नही कर पाते हैं । उसके कुछ समय बाद पिडारियो का सरदार, अमीर खा डरू के सहयोग से सागर पर आक्रमण करता है और वह सागर को लूटकर उसमे आग लगा देता है । डरू सागर को लूटने मे पिडारियो की सहायता करता है तथा पिडारी डरू के धामोनी पर आक्रमण करने के समय उसकी सहायता करते है ।

उपर्युक्त उपन्यास मे मुख्य कथा राजा 'दलीप सिह' एव 'कचनार' से सम्बन्धित है। प्रासगिक कथाओ मे 'मानसिह–कलावती', 'सोनेशाह–डरू' एव 'बैजनाथ', 'गुलाई समाज' तथा 'सागर' की सेना एव पिडारियोत्र का आक्रमण आदि मुख्य है ।

उपन्यास मे दो प्रणय–कथाए 'दलीप सिह–कचनार' तथा 'मानसिह–कलावती' से सम्बन्धित है । 'मानसिह' एव 'कलावती' के प्रणय की कथा काल्पनिक है ।

उपन्यास की मुख्य कथा का आधार 'जनश्रुति' है ।

इसकी घटनाओ मे पिडारियो की नृशसता तथा लूटपाट इतिहास प्रसिद्ध है । डरू की घटना तथा उसके भाई के वध की घटना कुण्डार के समीप ओरछा राज्य मे स्थित डबोरा नामक गाव की है ।

महन्त 'अचलपुरी' वर्माजी की ननिहाल, सिधोरा (टीकमगढ) के एक महन्त का प्रतिबिम्ब है।

वर्माजी ने इस अपन्यास मे 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की अस्थिर राजनैतिक गतिविधियो का चित्रण किया है ।

*

उपन्यास चरित्र प्रधान है । इसमे उपन्यासकार ने एक साधारण दासी को रानी के महत्वपूर्ण पद तक पहुचाने के लिए साधना की जिस प्रक्रिया का उल्लेख किया है, उसकी कसौटी पर 'कचनार' खरी उतरती है । वह दासी से रानी बन जाती है । इसीलिए उपन्यास का नाम, कचनार' उसी के नाम पर रखा गया है ।

6- माधवजी सिंधिया

इस उपन्यास की मुख्य कथा 18वीं शताब्दी के भारत मे प्रबल मराठो को स्थिति विश्लेषण को लेकर आगे बढती है । मराठो की स्थिति के दो पक्ष है–

(1) पूना स्थित पेशवा एव अन्य सरदारो की केन्द्रीय राजनैतिक गतिविधिया ।

(2) उत्तर भारत मे मराठो की राजनैतिक एव सैनिक गतिविधिया ।

पूना मे मनमौजी 'राजा साहू' की मृत्यु के बाद महाराष्ट्र की राज्यसत्ता की बागडोर ब्राह्मण प्रधानमत्री 'पेशवा' के हाथो मे चली जाती है । राजधानी को सतारा से हटाकर पूना पहुचा दिया जाता है । पूना मे 'राघोवा' 'तुकोजी' आदि महत्वाकाक्षी सरदारो की फूट, पेशवा की कामुकता, सतारा मे छोटे भाई खाशू की पत्नी 'ताराबाई' के उपद्रव तथा निजाम रूहेलो तथा अवध मे निरन्तर होने वाले युद्धो से पेशवा एव मराठो की आर्थिक स्थिति कमजोर हो जाती है । फलस्वरूप मराठे सैनिक लूट–खसोट करने लग जाते है ।

पेशवा बालाजी राव के देहान्त के बाद, उसका पुत्र 'माधवराव' मराठो की बिगडी हुई स्थिति को सुधारने का प्रयास करता है, लेकिन उसकी मृत्यु कम उम्र मे हो जाती है । उसके पश्चात् उसका छोटा भाई नारायण राव 'पेशवा' बनता है । तभी सरदार 'राघोवा', 'नारायण राव' की हत्या करवा कर तथा उसके पुत्र के अधिकर को छीनकर राज्यसत्ता को अपने हाथ मे लेना चाहता है, लेकिन 'नाना फडनीस' तथा मराठो की उत्तर भारत की सेना के विजेता सेनापति माधवराव सिधिया का प्रबल विरोध उसके मन्सूबो पर पानी फेर देता है । उसके पश्चात 'नाना फडनीस' एव 'तुकोजी' के सरक्षण मे 'नारायणराव' का किशोर पुत्र 'माधवराव' राज्य सत्ता सभालता है। नाना, तुकीजी तथा 'माधवराव सिधिया' के बीच आये दिन राजनैतिक चाले चली जाती हैं, लेकिन माधवराव उनके कुचक्रो को सफल नही होने देता है । माधवराव पेशवा को मुगल बादशाह का मीर बख्शी नियुक्त कराकर, उसका प्रिय व्यक्ति बन जाता है । एकदिन तुकोजी का पुत्र उसे पान मे विष खिलाकर मान देता है और इस प्रकार 'माधवराव सिधिया' का स्वराज्य एव देश की बिखरी हुई शक्तियो को एकत्रित करने का स्वप्न अधूरा रह जाता है ।

उपन्यास को कथा के दूसरे पक्ष मे उत्तर भारत मे मराठो को राजनैतिक एव सैनिक गतिविधया आती हैं । मराठे धनसग्रह करने तथा उत्तर भारत मे अपना राज्य कायम करने हेतु

वृन्दावन लाल वर्मा 'माधव जी सिधिया" ग्यारहवा सस्करण , 1989 परिचय पृष्ठ स0 – 4

*

अनेक शासको से युद्ध करते रहते है । वे 'अहमदशाह अब्दाली' के भारत आने की सूचना पाकर, 'सदाशिव राव भाऊ' के सेनापतित्व मे 45 हजार सैनिको की एक बडी फौज लेकर इनसे युद्ध करने जाते है, लेकिन सेनापति भाऊ के मिथ्याभिमान, भावुकता, अदूरदर्शिता तथा सकट के कारण मित्र भी शत्रु बन जाते है । अब्दाली से लडने के पूर्व भरतपुर का राजा सूरजमल मराठा दरबार मे अपमानित होने के कारण उनसे विमुख हो जाता है । उसके पास 30 हजार सैनिको की एक बडी फौज है । इन्ही सब कारणे से पानीपत के युद्ध मे मराठे 'अहमदशाह अब्दाली' से बुरी तरह से पराजित होते है ।

मराठो की पराजय के पश्चात् देशप्रेमी एव दूरदर्शी माधवराव सिधिया एक प्रचड शक्ति के रूप मे उभरता है । वह देश मे 'स्वराज्य' स्थापित करना चाहता है । उसका यह विचार 'राघोवा', तुकोजी एव 'मल्हार राव होल्कर' आदि सरदारो को अच्छा नही लगता है । माधव अपनी दूरदर्शिता एव पुरुषार्थ से दिल्ली के बादशाह, 'शाह आलम' को इलाहाबाद के अग्रेजो के शिकजे से मुक्त कराता है और उसे सिहासनहीन कराता है । वह चाहता है कि सम्पूर्ण देश दिल्ली की एक केन्द्रीय शक्ति से बध जाय । इस शक्ति का प्रतीक हो 'दिल्ली' का बादशाह तथा शक्ति का सचालक पेशवा हो प्रधानमत्री या 'मीरबख्शी' । 'माधवराव' अपने प्रयत्नो से पेशवा को मीरवख्शी के पद पर नियुक्त कराने मे सफल होता है और वह स्वय उत्तरी भारत मे पेशवा का स्थायी प्रतिनिधि बनता है। माधव के ऐश्वर्य से षड्यन्तकारी एव महत्वाकाक्षी मराठे सरदार ईर्ष्या एव असहयोग करते है । ऐसी स्थिति मे उसे उत्तर भारत के शत्रुओ से युद्ध करना पडता है, फलस्वरूप माधवराव सिधिया की राजनैतिक, सैनिक एव आर्थिक शक्ति क्षीण हो जाती है । वह एकदम निराश हो जाता है । तभी वह अपने स्वामिभक्त, देशभक्त सेनापति रानेखा के 'निन्दन्ति नीति निपुणा ' उद्बोधन से जागृत होकर दिल्ली एव राजपूताने पर अपना अधिकार कर लेता है और उत्तर भारत मे मराठो का पुन: प्रभुत्व जमाता है।

द्वितीय पक्ष की दूसरी कथा दिल्ली की अस्त–व्यस्त केन्द्रीय सत्ता से सम्बन्धित है । दिल्ली मे बादशाह वजीरो के हाथ की कठपुतली बन जाते हैं । वजीर अपनी स्वार्थसिद्धि हेतु कैद मे पडे शाहजादो को बादशाह बनाते हैं, तथा उनके प्रतिकूल चलने पर वे उन्हे मरवा देते है, और फिर कैदी शहजादे को बादशाह बनाते हैं।

उथल–पुथल के इस युग मे बादशाह अहमदशाह दिल्ली की राज्यसत्ता को सभालता है । उसी समय निजाम का पौत्र धूर्त, कपटी एव षडयत्रकारी शिहाबुद्दीन छल–कपट से मीरवख्शी, फिर वजीर बनकर आलमगीर सानी को सिंहासनासीन करा देता है । तभी 'अहमदशाह अब्दाली' भारत पर आक्रमण करता हे और दिल्ली एव उसके निकटवर्ती क्षेत्र तथा 'दोआव' क्षेत्र मे लूटकर

वृन्दावन लाल वर्मा "माधव जी सिधिया" ग्यारहवा सस्करण 1989 परिचय पृष्ठ स0 – 3

*

तथा अपने अनेक अत्याचार करके वापस लौट जाता है । उस समय मराठे तथा भरतपुर राज्य के जाट का मुकाबला नहीं कर पाते है । उसके कुछ समय पश्चात् 'शिहाबुद्दीन' बादशाह की हत्या करवा कर दिल्ली को मनमाने ढग से लूटता है तथा 'शाहजहा' सानी को बादशाह बना देता है । दिल्ली के कुछ असन्तुष्ट सरदार 'अहमदशाह अब्दाली' को पुन भारत पर आक्रमण करने का निमत्रण देते है । अत अहमदशाह पुन भारत पर आक्रमण करता है । उसके भय से शिहाब दिल्ली से भाग जाता है । उस समय कट्टर मुसलमानो तथा 'जम्हूरी सस्था' का बोलबाला हो जाता है । फिर पानीपत के युद्ध मे अहमदशाह अब्दाली मराठो को परास्त करता है । वह ब्रज भूमि को रक्त–रजित कर देता है तथा समस्त उत्तरी भारत को लूटकर वापस चला जाता है ।

दिल्ली के तत्कालीन बादशाह आलम को अग्रेज इलाहाबाद मे सरक्षण देते है । 'माधवजी सिधिया' उसे अग्रेजो के चगुल से निकलकर दिल्ली मे सिहासन पर बैठा देता है, लेकिन माधवजी के कुछ उलझनो मे फसने पर गुलाम कादिर नामक रूहेला सरदार दिल्ली पर आक्रमण करता है, और बादशाह को बन्दी बनाकर तथा उसकी आखे फोडकर अपना बैर चुकाता है । उसके बाद माधवजी सिधिया गुलाम कादिर को दिल्ली से मार भगाकर बादशाह को प्रसन्न करता है ।

द्वितीय पक्ष की तीसरी कथा 'गन्ना' बेगम से सम्बन्धित है । प्रारम्भ मे 'गन्ना' अपनी विधवा मा के साथ आगरा मे रहती है । यही वह भरतपुर के जाट राजकुमार 'जवाहर सिह' के प्रति आकर्षित होती है । वह जवाहर के साथ पलायन करना चाहती है, लेकिन 'जवाहर सिह' के पिता 'सूरजमल' के विरोध के कारण वह असफल रहती है । विधवा गन्ना का विवाह धूर्त, कपटी एव कामी वजीर शिहाबुद्दीन से हो जाता है । 'जवाहर सिह' दिल्ली पर आक्रमण कर एक बार पुन गन्ना को पाने का प्रयास करता है, लेकिन विफल रहता है । अपने वैवाहिक जीवन से असन्तुष्ट गन्ना बेगम शिहाब के घर से भाग खडी होती है । वह शिहाब की वेश–भूषा पहनकर तथा अपना नाम 'गुनीसिह' रखकर अपनी एक सहेली के साथ गुप्तरूप से पुरूष वेश मे 'भरतपुर' मे जवाहर सिह से मिलती है । वहा बातचीत करने पर उसे जवाहर सिह भी कामी एव कपटी दिखाई पडता है । जवाहर अपने भाई नाहर सिह की पत्नी को अपने चगुल मे फसाना चाहता है, यह बात गन्ना को मालूम हो जाती है । इससे गन्ना एकदम निराश हो जाती है ।

अन्तत 'गन्ना' अपनी उसी सहेली के साथ 'गुनीसिह' बनकर पुरूष वेश मे कलमनवीश बनकर माधवराव सिधिया से मिलती है । माधव उसे आश्रय दे देता है । वह माधव के शील, स्नेह एव महान व्यक्तित्व पर स्वय को समर्पित कर देती है । एक बार माधव रूहेलो से युद्ध करते समय गगा मे डूबने से बेसुध हुई गन्ना के वस्त्र बदलता है और इस प्रकार इसके पुरूष वेश का रहस्य खुल जाता है । दोनो मे प्रगाढ प्रेम–सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । गन्ना माधवराव के

वृन्दावन लाल वर्मा माधव जी सिधिया' ग्यारहवा सस्करण 1989 परिचय पृष्ठ स० – 5

*

'स्वराज्य' स्थापना के स्वप्न को पूर्ण करने मे सहयोग देती है । एक दिन गन्ना धर्मान्ध कट्टरपन्थी मुसलमानो की सभा का भेद लेने जाती है । वहा पर शिहाब के आदमियो के हाथ पड जाती है । शिहाब उसे अपनी वासनापूर्ति के लिए जबरदस्ती पकडकर ले जाता है, लेकिन गन्ना माधवराव के प्रति समर्पित हो चुकी थी, अत वह जहर खाकर प्राणान्त कर देती है । वह मरते समय एक पक्ति लिखती है —— आह ! गमये गन्ना बेगम ।

द्वितीय पक्ष की चाथी कथा भरतपुर जाट–राज्य की फूट से सम्बन्धित है । 'गन्ना' बेगम वाले मामले मे राजा 'सूरजमल' तथा उसके ज्येष्ठ पुत्र जवाहर सिह मे फूट पड जाती है । अब्दाली के आक्रमण के समय सूरजमल मराठो से सम्बन्धित विच्छेद कर लेता है । वह रूहेलो के साथ हुए एक युद्ध मे मारा जाता है । इसके बाद राज्य प्राप्ति के लिए 'जवाहर सिह' तथा उसके सगे भाई 'नाहर सिह' से युद्ध होता है ।

'नाहर सिह' हारकर जयपुर मे शरण लेता है । 'नाहर सिह' की मृत्यु के पश्चात् कामी जवाहर सिह 'नाहर सिह' की सुन्दरी विधवा से बलात् शादी करना चाहता है, जो जयपुर मे आश्रित बनकर रहती है, लेकिन उसे मार दिया जाता है ।

इस उपन्यास का कैनवास (आधार पलक) बहुत लम्बा ओर विस्तृत है । उपन्यास मे 'प्रस्तावना' के उपरान्त सम्पूर्ण कथानक को छोटे–बडे 131 भागो मे विभक्त किया गया है । कई स्थलो पर कथानक अत्यन्त जटिल हो गया है, जिससे कथा–विकास की गति कहीं–कहीं शिथिल हो गई है । इसके अतिरिक्त पात्रो एव घटनाओ की बहुलता के कारण कथा को क्रमबद्ध रूप से स्मरण रखना मुश्किल होता है ।

उपन्यास की मुख्य कथा 'माधवजी सिधिया' के जीवन चरित्र से सम्बन्धित है । इसमे अनेक प्रासगिक कथाओ का उल्लेख किया गया है, जिनमे से पूना मे स्थित मराठो के आन्तरिक हलचल से सम्बन्धित कथा, भरतपुर के जाट राजाओ से सम्बन्धित कथा, दिल्ली के बादशाहो और वजीरो से सम्बन्धित कथा, रूहेलो से सम्बन्धित कथा तथा 'अहमदशाह अब्दाली' से सम्बन्धित कथा आदि प्रमुख हैं । प्रासगिक कथाओ मे दो प्रमुख कथाए प्रणय की भी हैं, जो गन्ना–जवाहर तथा गन्ना–माधव से सम्बन्धित है ।

उपन्यास के प्राय सभी पात्र एव घटनाए ऐतिहासिक हैं । उपन्यासकार ने अपनी काल्पनिक उपज को भी इतिहास–सम्मत बनाने का प्रयास किया है । नारियो में गन्ना बेगम, उम्दा बेगम ऐतिहासिक हैं । वर्माजी के द्वारा इस उपन्यास की रचना का प्रमुख उद्देश्य यह था कि वे इसके माध्यम से देशप्रेमी एव कर्त्तव्य परायण 'माधवराव सिधिया' के जीवन चरित्र एव उनके महान व्यक्तित्व को प्रकाश मे लाना चाहते थे ।

*

माधवराव सिधिया देश की दूसरी–बिखरी हुई शक्तियो को एकत्रित कर तथा अग्रेजो को देश से बहार खदेड कर 'स्वराज्य' स्थापित करना चाहते थे ।

इस उपन्यास मे वर्माजी ने 18वीं शताब्दी के भारत की अस्थिर एव राजनैतिक गतिविधियो का यथार्थ चित्रण किया है तथा उस उथल–पुथल के भ्रष्ट एव अनैतिक युग मे भी माधवराव सिधिया जैसे महान व्यक्तित्व से परिचय कराया है ।

7- टूटे-काँटे

फतेहपुर सीकरी के पास स्थित एक गाव का भोला भाला किसान मोहन लाल जाट गरीबी, शासन के अत्याचार तथा अपनी पत्नी रोनी के कर्कश व्यवहार से क्षुब्ध होकर बादशाह मुहम्मदशाह के मीर बख्शी तादत खा की सेना मे भर्ती हो जाता है । वह कुछ दिन मराठा सेना मे भी रहता है और शाही दस्ते के सिपाही के रूप मे दिल्ली रहता है । उसी समय वह नादिरशाह से भयभीत तथा पलायन के लिए इच्छुक सुन्दरी नर्तक नूरबाई को जिले से बाहर निकालता हे और उसी के साथ गाव–गाव भटकता हुआ मथुरा–वृन्दावन पहुच जाता है । एकदिन अपने गाव जाकर उसे यह भी मालुम हो जाता है कि उसकी पत्नी रोनी तोता के साथ भरतपुर चली गई है और फौज मे उसकी (मोहन लाल की) मृत्यु हो जाने का समाचार सुनकर सम्भवत उन दोनो ने शादी भी कर ली है ।

ऐसी स्थिति मे निराश 'मोहन' मथुरा–वृन्दावन मे 'नूरबाई' के साथ रहकर जीवन के शेष दिन व्यतीत करने का निश्चय करता है ।

'नादिरशाह' भारत पर आक्रमण करता है । वह दिल्ली आकर बादशाह 'मुहम्मदशाह' से वापस जाने के उपलक्ष मे बहुत धन की माग करता है । 'मुहम्मदशाह' सुन्दरी 'नूरबाई' को देकर उसे वापस करने का असफल प्रयास करता है । 'नूरबाई' नादिरशाह के साथ ईरान नहीं जाना चाहती है । वह रात्रि मे एक दासी के साथ भागकर सिपाही मोहनलाल की सहायता से किले से बाहर निकल जाती है और उसी के साथ मथुरा–वृन्दावन के लिए चल पडती है । रास्ते मे वे चिन्तामन जाट के घर रूकते हैं । चिन्तामन का गिरोह, जो राहजनी करता है । एकदिन वह अपने साथियो के साथ एक मराठी दस्ते पर आक्रमण करता है, जिससे शुवराती नाम का एक मराठी सैनिक घायल हो जाता है । चिन्तामन उसे पकडकर घर ले आता हे और एक कोठरी मे बन्द कर देता हे । 'शुवराती' मोहन का दोस्त है । मोहन उसे छुडाने के लिए 'नूरबाई' के जवाहरातो के रूपये लेने के लिए आगरा जाता है ।'चिन्तामन' को शक हो जाता है। वह अपने आदमी मोहन के पीछे लगा देता है, लेकिन उन्हे अत तक राहजनी करने का मौका नहीं मिलता है । मोहन रूपये देकर शुवराती को मुक्त करा लेता है ।'चिन्तामन' को यह निश्चय हो जाता है

*

कि मोहन के पास बहुत धन है । अत वह अपने साथियो के सहयोग से मथुरा–वृन्दावन के रास्ते मे 'मोहन' एव 'नूरबाई' को लूट लेता है । उसके पश्चात् मोहन और नूर वृन्दावन पहुचते है और एक पन्डे के यहा रहने लगते है, वहा वे कृष्ण भक्ति मे लीन हो जाते है । वही एकदिन उन्हे तीर्थ यात्रा के लिए 'रोनी' और 'तोता' मिल जाते है । रोनी अपने कर्कश व्यवहार के लिए मोहन से क्षमा मागती है । उसके पश्चात् वे सब साथ रहने लगते है ।

मोहन वृन्दावन मे स्थायी रूप से रहने लगता है । एकदिन वह अपने साथियो को एकत्रित कर चिन्तामन के घर पर धावा बोलता है, और 'नूरबाई' के लूटे हुए सभी जवाहरात को वापस ले आता है । एकदिन जमुना किनारे पर घूमने के समय वह जेवरातो मे से एक हीरा निकाल कर नूरबाई के बालो मे लगा देता है, जिससे उसे अपने विगत घृणित जीवन का स्मरण हो जाता है । उस समय की दु'ख स्मृतिया उसे टूटे काटे की तरह कसकने लगती हैं, जिस हीरे के कारण उसे अपने दु खदायी अतीत स्मरण होता है, उस हीरे को वह जमुना मे फेक कर मानो वह अपने अतीत से हमेशा–हमेश के लिए पीछा छुडा लेती है । इसके पश्चात् वह और मोहन दोनो बडी आशा और उमग के साथ नये जीवन की शुरूआत करते हैं ।

इस उपन्यास की दूसरी कथा मोहन की विवाहिता पत्नी रोनी से सम्बन्धित है । रोनी अपने पति मोहन तथा दूर के नाते के देवर तोता से बहुत कर्कश व्यवहार करती है, तोता तो सहन करता रहता है, लेकिन स्वाभिमानी मोहन क्षुब्ध होकर घर छोडकर चला जाता है । कुछ समय पश्चात् मोहन की मृत्यु का झूठा समाचार सुनकर वे दोनो (रोनी एव तोता) भरतपुर मे एक जाट के घर रहने लगते हैं । रोनी अधिक धन सग्रह करने की लालसा से 'तोता' को डाके एव राहजनी के कार्य मे प्रवृत्त करती है । वही पर उन्हे जीवित मोहन का समाचार मिलता है । एकदिन राहजनी करते समय उसे रास्ते मे मोहन दिखाई देता है । वह तथा उसके साथी उसे भूत समझ कर भाग खडे होते हैं । तोता इस घटना की सूचना रोनी को देता है । वे दोनो मृतक मोहन के प्रेत बन जाने की आशका करते है, और प्रेत शान्ति के लिए मथुरा–वृन्दावन की यात्रा करते है । इसके अतिरिक्त तीर्थ यात्रा के बाद वे शादी करने का निश्चय करते हैं । वृन्दावन मे मोहन से भेट हो जाने पर दोनो का निश्चय बदल जाता है और वे मोहन के पास रहने लगते है।

तीसरी कथा मराठा सैनिक 'शुवराती' एव 'मोहन' की दोस्ती से सम्बन्धित है । आगरा के पास शुवराती एव मोहन का परिचय हो जाता है, जो बाद मे अभिन्न दोस्ती मे बदल जाता है । सतारा मे शुवराती 'मोहन लाल' को अपने घर ले जाता है । वहा वह मोहन को कर्कशा पत्नी को सुधारने का एक हस्यास्पद उपाय बताता है । जिसके अनुसार पति पत्नी से अपनी शक्ल के बने हुए काठ के पुतले मे रोजाना पाच जूते मारने को कहता है । पत्नी द्वारा ऐसा कार्य करने पर

* वृन्दावन लाल वर्मा "टूटे–काटे" छठा सस्करण 1982 परिचय पृष्ठ स0 – 2

उसका कर्कश स्वभाव समाप्त हो जाता है ।'शुवराती' ने मोहन से कहा कि मैने अपनी पत्नी के कर्कश स्वभाव को इसी नुस्खे से समाप्त किया है ।

शुवराती मराठा राजपूत के साथ महाराष्ट्र जाते समय रास्ते मे चिन्तामन के गिरोह के हाथ पड जाता है । वह घायल हो जाता है । चिन्तामन उेस अपने घर मे बन्दी बनाकर रखता है। वहा उसकी भेट मोहन से हो जाती है । मोहन नूरबाई का धन देकर उसे मुक्त कराता है । वह नूर एव मोहन के साथ वृन्दावन चला जाता है । वहा वह मोहन, नूरबाई एव रोनी को प्रेम एव शाति से रहने की शिक्षा देकर अपने घर चला जाता है ।

उपन्यास की चौथी कथा 'सादत खा' एव 'नूरबाई' के असफल, एकागी प्रेम तथा सादत खा की मृत्यु से सम्बन्धित है । सादत नूरबाई के रूप–लावण्य पर मुग्ध होकर उससे प्रेम करने लगता है । वह उसे बहुत धन देता है, लेकिन नूर उससे फिर भी प्रसन्न नहीं होती है । वह बादशाह मुहम्मदशाह के समक्ष अपने रूप सौन्दर्य एव कला का प्रदर्शन कर अपार धन एव ख्याति अर्जित करना चाहती है । वह 'सादत खा' के न चाहने पर भी बादशाह के हरम मे पहुच जाती है । 'सादत खा' बादशाह से क्षुब्ध हो जाता है । वह तथा दिल्ली के कुछ बिगडे सरदार ईरान के बादशाह को भारत पर आक्रमण करने के लिए बुलाते हैं ।'नादिरशाह' दिल्ली मे 'मुहम्मदशाह' का घिराव कर लेता है, तब वह 'नादिरशाह' को प्रसन्न करने के लिए 'नूरबाई' एव अन्य सुन्दरी नर्तकियो के नृत्य का आयोजन करता है ।'नादिरशाह' नूर से प्रसन्न होकर उसे अपने साथ ईरान ले जाने की घोषणा करता है । इस घोषणा से नूरबाई को तो दुख होता ही है, लेकिन सादत नूर से चिर वियोग से अचेत हो जाता है । होश मे आने पर वह छुरी से आत्महत्या कर लेता है।

पाचवी कथा शासन के अयोग्य एव विलासी बादशाह 'मुहम्मदशाह' एव 'नादिरशाह' के अत्याचार से सम्बन्धित है । 'मुहम्मदशाह' हमेशा नाच–गाने में मस्त रहता है । वह प्रजा की रक्षा करने मे एकदम अयोग्य सिद्ध होता है । नादिरशाह के आक्रमण के समय वह वह उसकी बढती हुई सेना को रोकने के लिए थानेश्वर जाता है, लेकिन वहा वह अपनी विलासिता एव अदूरदर्शिता के कारण नादिरशाह की सेना द्वारा घेर लिया जाता है । मुहम्मदशाह नादिरशाह की मेहमान नवाजी करता है, और उसे नूरबाई सौप कर ईरान वापस चले जाने का आग्रह करता है । बादशाह की मुर्खतापूर्ण बातो का नादिर पर कोई प्रभाव नही पडता है । एकदिन दिल्ली के बाजार मे नादिर के सैनिको एव व्यापारियो मे झगडा हो जाता है । नादिर खुलेआम जनसाधारण का कत्ल करवाता है । यही नही, नादिर के सैनिक साधु–सन्तो को भी बेवजह मौत के घाट उतार देते हैं । नादिर दिल्ली की लूट करवाता है और वह 'मुहम्मदशाह' से एक अरब रूपया तथा बहुमूल्य 'तख्तताऊस' को लेकर ईरान चला जाता है ।

वृन्दावन लाल वर्मा "टूटे–काटे" छठा सस्करण 1982 परिचय पृष्ठ स० – 5

*

छठीं प्रेमकथा युगल 'बाजीराव' एव 'मस्तानी' से सम्बन्धित है । 'बाजीराव' लूटपाट करता हुआ महाराष्ट्र से दिल्ली की ओर बढता है, लेकिन विदेशियो के भारत पर आक्रमण करने की आशका से वह अपना विचार बदल देता है । दिल्ली के पास से वापस लौटते समय भूपाल मे हेदराबाद के निजाम की फौज से उसकी मुठभेड हो जाती है । निजाम को किले मे बन्द होकर लडना पडता है और घेरा सख्त होने पर उसे विवश होकर सन्धि करनी पडती है । बाजीराव की पहली पत्नी के कनिष्ठ पुत्र का यज्ञोपवीत होता है । उस समय 'बाजीराव' अपनी और मस्तानी उपस्थिति से रग मे भग नही डालना चाहता है । वह निजाम से लडने के लिए पूना चला जाता है, लेकिन 'मस्तानी' पूना मे ही रहती है । 'बाजीराव' का भाई एव ज्येष्ठ पुत्र मस्तानी को बन्दी बना लेता है । मस्तानी की सूचना पाकर बाजीराव को हार्दिक दु ख होता है । उसे ज्वर हो जाता है और उसी मे उसकी मृत्यु हो जाती है । बाजीराव की सूचना पाकर मस्तानी भी अपने प्राण त्याग देती है ।

सातवीं कथा 'चिन्तामन जाट' और उसकी पत्नी की करतूतो से सम्बन्धित है । दिल्ली से भागे मोहन एव नूर चिन्तामन के घर आश्रय पाते है । 'चिन्तामन' के साथी धन प्राप्ति के उद्देश्य से उन्हे लूटना चाहते हैं, लेकिन चिन्तामन अपने घर मे उन्हे लूटने नही देता है । वह स्वय उनके धन को हथियाना चाहता है । अत एक दिन 'वृन्दावन' जाते हुए नूर एव मोहन को वह अपने साथियो के सहयोग से लूट लेता है । यही नही, वह वृन्दावन मे मोहन की पत्नी बनी हुई सुन्दरी को पकडने के लिए 'कुटने' को भेजता है । मोहन उसकी हरकतो से क्षुब्ध होकर अपने साथियो के सहयोग से चिन्तामन के घर पर हमला बोलता है, उसे अपमानित करता है और नूर के लूटे हुए जवाहरातो को वापस ले आता है ।

प्रस्तुत उपन्यास मे 'नूरबाई' एव 'मोहन लाल' से सम्बन्धित कथा आधिकारिक कथा है । इसकी प्रासगिक कथाओ मे 'मोहन' एव 'रोनी', 'शुबराती' और 'मोहन', 'नूरबाई' और 'सादत खा', 'मस्तानी' और 'बाजीराव', 'बादशाह' 'मुहम्मदशाह' एव 'चिन्तामन जाट' की कथाये प्रमुख हैं ।

उपन्यास मे दो प्रणय–कथाए–सादत खा एव नूर तथा बाजीराव एव मस्तानी से सम्बन्धित है । इनमे से सादत खा एव नूर की प्रणय–कथा असफल एव एकागी है तथा बाजीराव एव मस्तानी की प्रणय–कथा सफल एव द्विपक्षी है । इसमे समर्पण भाव का चित्रण है ।

कथानक में अनावश्यक विस्तार नहीं है । कथानक बिना किसी भूमिका के प्रारम्भ हो जाता है, अत कथा–विकास मे प्रारम्भ से ही गति है । उपन्यास के अधिकाश पात्र एव घटनाए ऐतिहासिक हैं । पात्रो मे 'नूरबाई', 'सादत खा', 'बादशाह' 'मुहम्मदशाह', 'नादिरशाह' आदि ऐतिहासिक पात्र हैं, तथा 'मोहन लाल', 'शुबराती', 'चिन्तामन' एव 'रोनी' आदि काल्पनिक पात्र हैं ।

* वृन्दावन लाल वर्मा "टूटे–काटे" छठा सस्करण 1982 परिचय पृष्ठ स0 – 6

घटनाओ मे 'नूरबाई' का 'सादत खा' के यहा नृत्य–गान करना तथा बाद मे 'नूर' का 'मुहम्मदशाह' के हरम मे रहने की घटनाए ऐतिहासिक है । इसके अतिरिक्त 'सादत खा' एव दिल्ली के अन्य सरदारो द्वारा 'नादिरशाह' को भारत पर आक्रमण करने के बुलावा भेजना, सादत खा का आत्महत्या करना, 'नादिरशाह' का भारत पर आक्रमण, 'मुहम्मदशाह' का कर्नाल के पास 'नादिरशाह' से हारना, नादिर का मेहमान बनकर दिल्ली जाना और मुहम्मदशाह से 20 करोड रूपयो की माग करना, तथा 'नादिरशाह' द्वारा दिल्ली मे 57 दिन लूट–पाट एव कत्लेआम कराना, इतिहास प्रसिद्ध है । यह घटना भी इतिहास सहमत है कि 'मुहम्मदशाह' ने नादिर को प्रसन्न करने के लिए सुन्दरी नर्तकी नूरबाई के नृत्य–गान का आयोजन किया था और नादिर ने नूर से प्रसन्न होकर उसे ईरान ले जाने की घोषणा की थी, लेकिन नूर नादिर के चक्कर से निकल भागी । नादिर 5 मई सन् 1739 को ईरान वापस चला गया था और वह अपने साथ 70 करोड का सोना–जवाहरात 4 हजार दासिया, 130 मुशी, 300 राज–कारीगर, 200 लुहार, 200 बढई और सगतराश लेकर गया था, लेकिन वर्षा के कारण चिनाव नदी मे बाढ आ गयी और मौका दास–दासिया भाग गये थे ।[1] 'मोहन', 'रोनी,' 'शुबराती' तथा 'चिन्तामन' से सम्बपन्धित घटनाये काल्पनिक है । 'नूरबाई' के दिल्ली से भागने के बाद की घटना भी काल्पनिक है ।

प्रस्तुत उपन्यास मे वर्माजी ने 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे भारत की अस्थिर राजनीति तथा आपसी फूट के कारण विदेशियो द्वारा किये गये आक्रमण, लूटपाट, आगजनी एव नृशस हत्याओ का यथार्थ एव सजीव चित्रण किया है ।

८- मृगनयनी

उपन्यास की प्रथम कथा राई गाव की 'निन्नी' एव 'ग्वालियर' के 'राजा मानसिह' से सम्बन्धित है । निन्नी का एकमात्र भाई 'अटल' है । वह खेती करता है । 'निन्नी' अत्यन्त रूपवती है । वह बाण–विद्या मे बहुत निपुण है । विवाह से पूर्व ही उसके सौन्दर्य एव अचूक निशाने की ख्याति चारो ओर फैल जाती है । यह ख्याति राई गाव के बोधन पुजारी के द्वारा ग्वालियर के तत्कालीन राजा 'मानसिह', जिनका राज्यकाल सन् 1486 से सन् 1516 माना जाता है, के पास पहुचती है । राजा 'मानसिह' राई गाव आता है और निन्नी के विलक्षण सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाता है । वह उसके अचूक निशाने की परीक्षा लेने के लिए शिकार खेलने का आयोजन करता है । निन्नी एक ही तीर से शेर को मारकर इस परीक्षा मे सफल होती है । राजा 'मानसिह' की 'निन्नी' से शादी हो जाती है । 'निन्नी', रानी 'मृगनयनी' बनकर ग्वालियर पहुच जाती है, जहा उसे सौतन के रूप मे राजा की 8 पूर्व पत्निया मिलती हैं । 'मृगनयनी' को सौतिया डाह का शिकार होना पडता है । राजा 'मानसिंह' सगीत एवं वास्तुकला का प्रेमी है । उसके शासनकाल मे 'ध्रूपद' एवं 'धमार'

*

गायन–पद्धति विकसित होती है । वह वास्तुकला के बेजोड नमूने 'मान मदिर' एव 'गजरी महल' बनवाता है ।

दूसरी कथा अटल एव लाखी के प्रेम–विवाह से सम्बन्धित है, जो कि अन्तर्जातीय विवाह भी है । अटल एव लाखी दोनो राही गाव मे रहते है ।'अटल','गूजर' एव'लाखी' अहिर है । लाखी भी सुन्दर है और तीर चलाने मे निपुण है, लेकिन उतनी नही जितनी कि'मृगनयनी' है । लाखी की एक बूढी मा है, जो कि कुछ समय बाद मर जाती है । युवती लाखी एकदम बेसहारा एव अकेली रह जाती है । ऐसी आपित्त मे'अटल' उसका सहारा बनता है । निन्नी लाखी को अपने घर ले आती है । वह लाखी को अपनी भाभी बनाना चाहती है । इसी बीच लाखी और अटल मे प्रणय सम्बन्ध स्थापित हो जाता है । निन्नी की शादी की बाद अटल बोधन पुजारी से निवेदन करता है कि, वह उसका और लाखी का विवाह करा दे । वर्णाश्रम धर्म भीरू'बोधन' इस शादी के लिए स्पष्ट शब्दो मे इन्कार कर देता है । उसके पश्चात् एकदिन अटल गगाजल की शपथ लेकर लाखी को अपनी धर्मपत्नी बनाने का निश्चय करता है। इसके लिए लाखी भी अपनी स्वीकृति दे देती है । उन दोनो के गुप्त विवाह की खुल्लम–खुल्ला विवाह की घोषणा को सुनकर राई गाव के लोग इस अन्तर्जातीय विवाह को सामाजिक मान्यता नही देते है । वे दोनो को जाति से निष्कासित कर देते है । उसके पश्चात्'अटल' एव लाखी पोटा एव पिल्ली आदि नटो के साथ नखर गढ पहुच जाते हैं ।

तीसरी कथा षड्यन्तकारी'पोटा नट' के दल से सम्बन्धित है । मालवा का सुल्तान गयासुद्दीन निन्नी और लाखी के रूप–सौन्दर्य की ख्याति सुनकर उन्हे अपनी वासनापूर्ति का साधन बनाना चाहता है । वह ख्वाजा'मटरू' को उन दोनो लडकियो को पकडकर अपने पास लाने का काम सौपता है ।'मटरू' पोटा नट को धन–धन्य का लालच देकर'निन्नी' और'लाखी' को सुल्तान के पास लाने की जिम्मेदारी सौंपता है । पोटा का दल राई गाव के पास आकर डेरा डाल देता है और वह निन्नी और लाखी को बढिया वस्त्र, गुड, एव चावल सीताफल देकर अपने शिकजे मे लेना चाहता है । नट सुल्तान के चार घुडसवार सैनिको को बुला लेते हैं, जो निन्नी और लाखी को असफल प्रयास करते है । इसी बीच निन्नी की शादी हो जाती है । अत अब नट लाखी को ही बहला–फुसलाकर मालवा ले जाने का प्रयास करते हैं । जिसमे वे सफल हो जाते है । जाति से निष्कासित अटल एव लाखी पोटा दल के साथ नखर गढ पहुच जाते हैं । वहा पिल्ली अटल पर डोरे डालती है । लाखी को उसकी हरकत मालुम हो जाती है । एकदिन बातो ही बातो मे पिल्ली लाखी को सुल्तान के पास पहुचाने का पूरा रहस्य बता देती है । वह सजग हो जाती है ।'गयासुद्दीन' नखर गढ पर आक्रमण करता है । नटो का दल लाखी को सुल्तान

* वृन्दावन लाल वर्मा "मृगनयनी" सत्रहवा सस्करण 1983 परिचय पृष्ठ स0 – 1–4

तक पहुचाने के लिए उसे रस्से के सहारे किले के बाहर ले जाना चाहते है । कुछ नट रस्से के सहारे किले से बाहर निकल जाते है लेकिन जब पिल्ली रस्से से होकर किले के बाहर जाने लगती है तो लाखी रस्से को काट देती है । पिल्ली नीचे गिर जाती है और उसके प्राण पखेरू उड जाते है । नखरगढ को बचाने के लिए 'राजा मानसिह' आता है । उसकी फौज 'गयासुद्दीन' की फौज को खदेड देती है । वही राजा 'लाखी' की बहादुरी की चर्चा सुनता है । वह उससे मिलता है और फिर लाखी और अटल ग्वालियर पहुच जाते है।

चौथी कथा मालवा के अत्यन्त विलासी सुल्तान 'नसीरूद्दीन' से सम्बन्धित है । नसीरूद्दीन 'गयासुद्दीन' का पुत्र है । वह अपने पिता को विष देकर मरवा देता है और मालवा का सुल्तान बन जाता है । 'नसीरूद्दीन' अत्यन्त कामी सुल्तान है । वह गाव–गाव से सुन्दर स्त्रियो को पकड कर मगवाने के लिए अपने आदमी नियुक्त कर देता है । वह इतना ऐय्याश है कि अपनी हवस बुझाने के लिए पन्द्रह हजार स्त्रियो को पकडवाकर अपने हरम मे भर लेता है । एकदिन झील मे स्नान करते समय कुछ सुन्दरिया डूबने लगती है । वे अपनी रक्षा के लिए चिल्लाती है । उसी समय कुछं सेवक जल मे कूद कर उनकी रक्षा करते हैं । 'नसीरूद्दीन' उन सभी सेवको को मरवा देता है । उसके पश्चात् ऐसे ही एक अवसर पर वह स्वय झील मे डूबने लगता है । वह अपनी रक्षा के लिए चिल्लाता है, लेकिन भयवश कोई भी उसे नही बचाता है और वह डूब कर मर जाता है ।

पाचवी कथा गुजरात के सुल्तान 'महमूद बर्धरा' की है । वह अत्यन्त आहारी एव क्रूर प्रवृत्ति का है । वह डेढ सौ पके केले, एक सेर शहद तथा एक सेर मक्खन का कलेवा करता है। जब उसे कुपच होता है तब भी वह सौ पके केले, एक सेर शहद, एक सेर मक्खर खाता है । तलवार एव तीर से कटे हुए मुण्ड तथा बहता हुआ खून उसे बहुत अच्छा लगता है ।

छठीं कथा प्रसिद्ध गायक बैजू (बावरा) तथा कला से सम्बन्धित है । 'बैजू' का पूरा नाम 'बैजनाथ' है । वह जाति का ब्राम्हण है । उसका गाव चन्देरी है । कला भी उसी गाव की है । वह एक चित्रकार की लडकी है । उसकी गायन वादन के अतिरिक्त चित्रकारी मे विशेष रूचि है। बैजू का गला बहुत मधुर है । वह बहुत अच्छी वीणा बजाता है । 'राजसिह' भी चन्देरी मे रहता है। उसके पूर्वज नरवरगढ़ के शासक थे, जिसे बाद मे तोमरो (ग्वालियर के राजा) ने अपने कब्जे मे कर लिया था । राजसिह 'बैजू और' कला का गायन–वादन सुनता है । कला सुन्दरी है, लेकिन वर्ण शकर होने के कारण युवती होने पर भी उसका विवाह नही हो पाता है । वह 'राजसिह' से प्रेम करती है । 'ग्वालियर' मे सगीत समारोह मे 'बैजू' और कला भाग लेते हैं । 'राजसिह' कला को गुप्तचर बनाकर किले के कुछ चित्र बनाकर लाने के उद्देश्य से भेजता है । सगीत समारोह मे

*वृन्दावन लाल वर्मा 'मृगनयनी" सत्रहवा सस्करण 1983 परिचय पृष्ठ स0 – 3–5

बैजू और कला के गायन–वादन की बहुत प्रशसा होती है । उन्हे प्रयास करने पर ग्वालियर के दरबार मे गायन–वादन हेतु मासिक वेतन पर नौकरी मिल जाती है । बाद में 'बैजू' (प0 बैजनाथ) राज्यकवि बन जाता है, और 'बैजू बावरे' के रूप मे प्रसिद्ध होता है । वे 'मृगनयनी' के नाम पर 'गुजरी टोडी' तथा 'मगल गुजरी' आदि रागो की रचना करता है । कुछ समय पश्चात् कला का भेद खुल जाता है । उसे ग्वालियर से निकाल दिया जाता है लेकिन बैजी वही रहता है ।

सातवीं कथा 'सिकन्दर लोदी' के ग्वालियर पर आक्रमण करने से सम्बन्धित है । 'सिकन्दर' आगरा से धोलपुर होता हुआ चुपके से ग्वालियर पर आक्रमण करता है । उसकी सहायक सेना इटावा मे है । उसके मुख्य सेना से मिल जाने पर 'सिकन्दर' विशाल सेना को तीन भागो मे विभक्त करता है । सेना का एक भाग नरवरगढ की ओर जाता है । सेना के शेष दो भाग से वह ग्वालियर पर दो दिशाओ से आक्रमण करता है । राई की ओर से आक्रमण करने वाली सेना के साथ वह स्वय रहता है । राई की गढी की रक्षा हेतु अटल अपने कुछ सरदारो के साथ तैनात रहता है । लाखी उसके साथ रहती है । नरवर जाने वाली सेना का पता 'मानसिह' को नही चल पाता है। 'नरवर' और 'ग्वालियर' पर एक साथ आक्रमण होता है । अत 'मानसिह' नरवर की सहायता नहीं कर पाता है । नरवर मे 'रावराज सिह' बछवाहा अपने पूर्वजो के किले (नखरगढ) को लेने के साथ 'सिकन्दर' का साथ देता है । तीनो स्थानो (ग्वालियर, नखरगढ एव राई) मे घमासान युद्ध होता है । अत मे 11 महीने के बाद नखरगढ के व्यक्ति 'राजा मानसिह' की सहायता न मिलने पर तथा खाद्य सामग्री समाप्त हो जाने पर आत्मसमर्पण कर देते है । 'सिकन्दर' मौलियो के सुझाव पर किले के अन्दर मन्दिरो और मूर्तियो को तहस–नहस करवा देता है, और किले को राजसिह को सौप देता है। राई मे अटल एव लाखी घमासान युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त होते है । लेकिन 'सिकन्दर' ग्वालियर मे विजय प्राप्त करने मे असफल होते है ।

प्रस्तुत उपन्यास की अधिकारिक कथा ग्वालियर के राजा 'मानसिह' एव 'मृगनयनी' से सम्बन्धित है । इसकी प्रासगिक कथाओ मे अटल एव लाखी की कथा, जो पताका प्रासगिक है तथा पोटा के दल की कथा, 'नसीरूद्दीन' की कथा महमूद बघरा की कथा तथा सिकन्दर की कथा जो प्रकरी प्रासगिक कथाए हैं, मुख्य है ।

इसमे एक प्रणय–कथा है जो अटल एवं लाखी से सम्बन्धित है ।

उपन्यास के प्रारम्भ मे दो–तीन पृष्ठ भूमिका के रूप मे दिये गये है, जिससे कथा विकास मे कुछ शिथिलता आई है ।

उपन्यास मे शिकार का वर्णन तथ प्रकृति के सुन्दर एव मनोहर रूप का चित्रण बेजोड है। यह उपन्यासकार के चतुर अहेरी के रूप को तथा प्रकृति–प्रेम को स्पष्ट करता है ।

वृन्दावन लाल वर्मा "मृगनयनी" सत्रहवा सस्करण 1983 परिचय पृष्ठ स0 – 6

*

उपन्यास की अधिकाश घटनाये ऐतिहासिक हैं । राजा 'मानसिह,' 'सिकन्दर लोदी' एव उसका ग्वालियर पर तथा नखरगढ पर आक्रमण, सुल्तान गियासुद्दीन एव उसका बेटा नसीरूद्दीन तथा महमूद बर्धरा से सम्बन्धित घटनाए ऐतिहासिक हैं ।[1]

मृगनयनी की कथा जनश्रुति पर आधारित है । अटल एव लाखी की कथा भी जनश्रुति पर आधारित है । नटो की कथा किवदन्ती पर आधारित है, जो नखरगढ के किसी अन्य काल के नटो से सम्बन्धित है ।[2]

उपन्यास के अधिकाश पात्र ऐतिहासिक है । इतिहास प्रसिद्ध राजा मानसिह सन् 1486 से सन् 1516 तक ग्वालियर का राजा रहा था ।'सिकन्दर लोदी,' 'नसीरूद्दीन,' 'बोधन' पुजारी तथा विजय जगम ऐतिहासिक व्यक्ति है ।'अटल,' 'निन्नी,' 'लाखी,' 'राजा मानसिह' की दौ सौ रानिया तथा नट किवदन्तियो एव परम्पराओ पर आधारित है । उपन्यासकार ने ग्वालियर के किले के गाइड के कथनानुसार 'राजा मानसिह' की आठ रानिया मानी है ।

वर्माजी द्वारा इस उपन्यास के लिखने का उद्देश्य है–पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे भारत की अस्थिर राजनीति, धोखा–धडी, मारकाट, सिहासन की छीना–झपटी तथा राज्यो मे फेली हुई अराजकता के बीच राजा मानसिह जैसे बहादुर एव जनप्रिय शासक के महान् व्यक्तित्व को प्रकाश मे लाना है ।

9- अहिल्याबाई

इतिहास प्रसिद्ध सूबेदार 'मल्हाराव होलकर' की तिरसठ वर्षीय विधवा पुत्रवधू 'अहिल्याबाई' इन्दौर का शासन भार सभालतीं है । वह न्यायप्रिय, धर्मप्रिय तथा कर्त्तव्य परायण थे । उसमे एक दुर्बलता भी है कि वह दूर के सम्बन्धी 'तुकोजी राव' के पुत्र 'मल्हारराव' पर अध–स्नेह करती है ।

'अहिल्याबाई' राजकाज मे ढील नही देती है । रामपुरा–भानपुरा के चन्द्रावत राजपूतो के विद्रोह–दमन के लिए वह स्वय जाती है, लेकिन वे पहले ही पराजित हो जाते हैं ।'अहिल्याबाई' वशी धमनार की पहाडी गुफाओ मे स्थित बौद्ध विहार, मन्दिर, एव नवाली के मन्दिरो के दर्शन करने जाती है । महेश्वर लौटने पर वह अपनी अस्वस्थ गैनी सेविका सिन्दूरी की परिचर्या करती है और अपना धोती का जोडा उसे दान देती है । वह पुन मान्धाता और ओकार नाथ तीर्थो की यात्रा करती है । उसे अपने दामा की मृत्यु तथा पुत्री के सती हो जाने से बहुत आघात लगता है। वह दुष्ट एव उच्छृड्खल मल्हार को बन्दी बनाकर कुशलगढ मे रखती है । इस प्रकार 'अहिल्याबाई' अनेक विषम परिस्थितियो से जूझती हुई अन्त मे मृत्यु को प्राप्त होती है ।

उपन्यास की दूसरी कथा 'मल्हारराव' से सम्बन्धित है ।'मल्हार' अत्यन्त महत्वाकाक्षी, दुश्चरित्र एव धूर्त है । वह आत्महत्या का नाटक कर 'अहिल्याबाई' का विशेष कृपा–भाजन बनना

वृन्दावन लाल वर्मा "अहिल्याबाई" सस्करण 1987 परिचय

*

चाहता है, सिमे वह सफल हो जाता है । वह बट्ट सिह तथा आनन्दी की सहायता से लूटपाट की योजना बनाता है, किन्तु उस सफलता नहीं मिलती है । वह महेश्वर पहुचकर अपनी माता 'रूक्माबाई' से झगडता है, जिससे 'अहिल्याबाई' मल्हार से अप्रसन्न हो जाती है । वह एक युद्ध मे सिंधिया से पराजित हो जाता है । एक दिन वह सिन्दूरी को छेडता है, लेकिन 'अहिल्याबाई' के भय के कारण भाग जाता है । 'अहिल्याबाई' की आज्ञा से उसे बन्दी बनाया जाता है । 'आनन्दी' मल्हार की हरकतो के बावजूद उसे मन–ही–मन प्रेम करती है, लेकिन एक दिन मल्हार आनन्दी को मार देता है, जिसका बाद मे उसे पश्चाताप होता है ।

तीसरी कथा बट्टू सिह से सम्बन्धित है । बट्टू सिह डाकू गनपतराव के नाम से डाके डालता है । वह जामघाट पर 'हाथघुलाईकर' के रूप मे यात्रियो से धन लेता है । वह मल्हार का विश्वास–भाजन एव सहयोगी है । दोनो (मल्हार एव बट्टू) लूटपाट की योजना बनाते है, लेकिन असफल रहते है । इसी को लेकर दोनो मे मन मुटाव हो जाता है । अन्त मे गनपतराव अहिल्याबाई के महान व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसकी शरण मे चला जाता है और अपने पापो का प्रायश्चित करता है । अचानक ही उसमे असाधारण परिवर्तन आ जाता है । वह ओकारनाथ तीर्थ जाता और नर्मदा माता के दर्शन कर प्राण त्याग देता है ।

चौथी कथा आनन्दी की है । 'आनन्दी' 'गनपतराव' के साथ जगल मे रहती है । मल्हार से परिचित होने पर वह उसके प्रति आकृष्ट होती है । मल्हार उससे उपेक्षित व्यवहार करता है, जिससे वह दिखावटी रूप मे उसकी शत्रु बन जाती है, वास्तविक शत्रु नही । गनपतराव आनन्दी की शादी करता है लेकिन परपक्ष से रीति–रिवाज सम्बन्धी कुछ मतभेद होने के कारण शादी नही हो पाती है और विवाह स्थगित हो जाता है । 'आनन्दी' को विवाह स्थगन का कोई दु ख नही है । वह एकबार चोरी का माल बेचती हुई पकडी जाती है । मल्हार की निष्ठरता के कारण उसे दण्ड दिया जाता है । वह भी मल्हार को बन्दी बनाने मे सहयोग देती है । वह उस पर आक्रमण करने का नाटक करती है । वास्तविकता यह है कि वह मल्हार को अब भी प्रेम करती है । इस घटना मे मल्हार उसे कत्ल कर देता है, जिसका बाद मे उसे बहुत पश्चात् होता है ।

प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथा 'अहिल्याबाई' से सम्बन्धित है । इसकी प्रासगिक कथाओ मे 'मल्हारराव', बट्टू सिह (गनपतराव), 'आनन्दी' एव 'सिन्दूरी' की कथाए हैं । इनमे मल्हारराव की कथा पताका प्रासगिक है तथा गनपतराव, आनन्दी एव सिन्दूरी की कथाए प्रासगिक हैं ।

उपन्यास के अधिकाश पात्र ऐतिहासिक हैं । अहिल्याबाई इतिहास प्रसिद्ध सूबेदार मल्हारराव होलकर के पुत्र खण्डेराव की पत्नी थी । [1] इसके अतिरिक्त मल्हारराव (तुकोजी का पुत्र) 'इतिहासाधीसाधने' मे उल्लेखित 'तुकोजी को पत्र अहिल्याबाई को' तथ रूपमाबाई का पत्र

वृन्दावन लाल वर्मा अहिल्याबाई" संस्करण 1987 परिचय पृष्ठ सं0 – 5

*

अहिल्याबाई को' के आधार पर ऐतिहासिक है ।[1] सिन्दूरी, आनन्दी एव भोपत भी ऐतिहासिक है, उनके नाम भर बदल दिये गये है ।[2] 'होलकर शहीवा इतिहास' आदि पुस्तको के आधार पर भारमल दादा ऐतिहासिक व्यक्ति है ।[3] उपन्यास के अन्य पात्र भी ऐतिहासिक है और उनके नाम भी वे ही है ।

उपन्यास की अधिकाश घटनाए ऐतिहासिक है । अहिल्याबाई एव मल्हारराव से सम्बन्धित घटनाए 'इतिहासाची साधने' भाग–1 के आधार पर ऐतिहासिक हैं । [4] इसके अतिरिक्त रामपुरा एव भानपुरा के राजपूतो का विद्रोह और उसका दमन सरदेसाई की अग्रेजी पुस्तक 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठा' 'वाल'–3 के आधार पर ऐतिहासिक है । मोक्ष प्राप्त हेतु नर्मदा के किनारे पर स्थिति पहाडी से कूदकर आत्महत्या करना, जैसे अन्धविश्वास एव रूढियो ऐतिहासिक है । इसके अतिरिक्त खरगोन के चबूतरे, 'खम्भे और फरसे की पूजा, 'नवदुर्गामाता' की मदिर मे जीभ का बलिदान आदि अधविश्वास ऐतिहासिक हैं ।

इस उपन्यास मे वर्माजी ने 18वीं शताब्दी मे 'अहिल्याबाई' के शासनकाल मे ऐतिहासिक, धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्रो मे व्याप्त आराजकता, आतक, राहजनी, सतीप्रथा, बलिप्रथा, एव गरीबी का सजीव एव यथार्थ चित्रण किया है । उन्होने नैतिक एव चारित्रिक मान–मर्यादाओ से हीन ऐसे अधकारमय युग मे प्रकाश के किरण पुज के समान उज्जवल चरित्र वाली 'अहिल्याबाई' के उच्च आदर्शों के उद्घाटित किया है ।

१०-भुवन विक्रम

प्रस्तुत उपन्यास की अधिकारिक कथा राजा 'रोमक' के पुत्र उदण्ड राजकुमार 'भुवन विक्रम' के सुधार तथा उसके एव गोरी के सफल प्रणय से सम्बन्धित है । भुवन अपने पिता अयोध्या के राजा रोमक तथा माता रानी ममता के लाढ–प्यार से अत्यधिक उदण्ड एव उच्छ्ड,खल हो जाता है । आचार्य 'मेघ' उसका शिक्षक है, लेकिन उसके हृदय मे आचार्य के प्रति श्रद्धा का अभाव है । आचार्य मेघ मे भी शिक्षक जैसी योग्यता नही है । गुरू और शिष्य दोनो मे प्राय नोक–झोक होती रहती है । भुवन की जुए, शिकार तथा मार–पीट आदि से सम्बन्धित उदण्डताओ को देखकर राजा रोमक उसके भविष्य के प्रति चिंतित होता है । वह उनमे सुधार लाने की अपेक्षा से उसे 'धौम्य' ऋषि के आश्रम मे भेज देता है । वहा 'धौम्य ऋषि' के महान व्यक्तित्व एव अनुशासन से छ वर्षों मे उसमे अपेक्षित सुधार आता है । उसकी चचलता समाप्त हो जाती है और उसमे एकाग्रता एव अनुशासन मे रहने की भावना उत्पन्न होती है । शिक्षित होने पर वह स्वय स्वीकार करता है – 'गुरूदेव ने मुझे मनुष्य बनने का मार्ग दिखाया है ।' उसके पिता रोमक शूद्र कपिजल के वध

1, 2, 3, 4,

वृन्दावन लाल वर्मा अहिल्याबाई" सस्करण 1987 परिचय पृष्ठ स0 – 5, 7, 260, 262, 268

*

करने की योजना बनाते है । तब उन्हे विवेक पूर्वक रौंद कर शोम्य की दृष्टि मे 'स्वलक' हो जाता है ।

भुवन ननिहाल मे अयोध्या की एक युवती, सुन्दरी परन्तु गरीब युवत गौरी के प्रति आकृष्ठ होता है । उसके मौन धारण कर लेने से गौरी चितित होने लगती है । गौरी अपने माता–माता के साथ अयोध्या लौटती है, लेकिन मार्ग मे बाढ आ जाती है और उसके मा–बाप उसमे बह जाते है। गौरी एकदम अकेली रह जाती है । वह एक ग्रामीण की सहायता से अयोध्या पहुचती है । वहा पर वह विदेशी फणिश नील की निष्ठुर, इकलौती बेटी हिमानी की सेविका बन जाती है[1]। अयोध्या मे हिमानी और भुवन प्राय झगडते रहते है । भुवन उसमे कोडे भी लगाता है, जिसका वह भुवन से बदला लेना चाहती है । वह 'रोमक' के शत्रुओ की सलाह पर भुवन से शादी करने का षड्यत्र रचती है, जिसमे वह भुवन को मारने की योजना बनाती है । गौरी और पुन मील का दाल बने हुए कपिजल को इस षड्यत्र का पता लग जाता है । वे रहस्य खोल देते है। अत मे भुवन और उसके सहयोगी ठीक अवसर पर षड्यत्र को विफल कर देते है। उसके पश्चात् भुवन और गोरी पुन मिल जाते है । उनकी विधिवत शादी हो जाती है[2]।

दूसरी कथा अयोध्या के अकाल, राजा रोमक के अपदस्थ होने एव उसके द्वारा पुन राज्य प्राप्त करने से सम्बन्धित है । अयोध्या मे पाच साल तक वर्षा नहीं होती है। सम्पूर्ण जनता अनावृष्टि से पीडित है । अकाल से उत्पन्न समस्याओ के समाधान हेतु रोमक की अपूर्ण योजनाओ, कम मजदूरी, एव बेगार आदि की नीति से श्रमिक वर्ग असतुष्ट हो जाता है । रोमक धनी व्यक्तियो के अन्न–भण्डारो पर छापा मारकर अन्न को निर्धनो, श्रमिको एव भिखारियो मे बाट देता है, जिससे धनी व्यक्ति भी रोमक से स्पष्ट हो जाते है । रोमक 'दास–प्रथा' एव 'शूद्र व्यवस्था' का समर्थक नहीं है । अत. व्यापारी वर्ग एव 'ब्राह्मणवाद' के समर्थक आचार्य मेघ जैसे कुछ कट्टरपन्थी ब्राह्मण उससे क्षुब्ध है । आचार्य 'मेघ' रोमक के विरोधियो मे अग्रणी बनता है[3]। वह अपनी कूटिनीति से रोमक की स्थिति मे सुधार आने तक अपदस्थ कराने मे सफल हो जाता है । राज्य सत्ता मेघ और उसके समर्थको के हाथो मे आ जाती है । रोमक को अपने अपदस्थ होने का सही कारण मालुम नहीं हो पाता है । आकाशवाणी से एक छल समझता है । अत पदच्युत एव निराश रोमक जनमत से अवगत होने तथा अपने यथार्थ कर्त्तव्य की खोज के लिए राज्य भ्रमण को निकल पडता है । अत मे वह 'धौम्य ऋषि' के पास पहुचता है, वे उसे निस्वार्थ सेवा एव दूरदर्शिता एव आलस्य रहित होने का उपदेश देते हैं, जिससे उसे अपने वास्तविक कर्त्तव्य का बोध होता है । उसे यह ज्ञान हो जाता है कि दुर्भिक्ष शूद्रो की तपस्या के कारण नहीं पड़ते हैं, बल्कि ये अपने ही दुष्कर्मों के परिणाम होते हैं[4]। फलस्वरूप रोमक पुनः राज्य प्राप्त कर

1, 2, 3, 4, वृन्दावन लाल वर्मा : "अहिल्याबाई" — सस्करण 1987, परिशिष्ट, पृष्ठ स0 — 5, 7, 260, 262, 268

*

निःस्वार्थ भाव से प्रजा की सेवा करता है । वह अपनी समस्त सम्पत्ति एव भूमि को गरीबो एव जरूरत मदो को दान कर देता है । नील 'मेघ' आदि के कहने पर भुवन के साथ 'हिमानी' का विवाह करने तथा दहेज मे बहुत धन देने का षड्यत्र रचते है । लेकिन अत मे भेद खुल जाता है और मेघ वर्ग को 'देश निकाले' का दण्ड मिलता है ।

तीसरी कथा 'शूद्र' कपिजल की दासता' मुक्ति एव तपस्या से सम्बन्धित है । कपिजल अकाल मे नील से ऋण लेता है और उसे चुका न पाने के कारण उसकी नील का दास बनना पडता है । 'नील' और 'हिमानी' के अत्याचारो से पीडित वह अयोध्या से भाग जाता है और नैमिषारण्य मे 'धौम्य ऋषि' मे पहुच जाता है । 'धौम्य ऋषि' कपिजल मे एक तपस्वी के गुण देखते है और उसे अपना शिष्य बना लेते है । उस समय (उत्तर वैदिक काल मे) उच्च वर्ग शूद्रो को तपस्या करने की स्वीकृति नहीं देते थे । 'धौम्य ऋषि' से शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् कपिजल नील का पहला ऋण चुकाने के लिए पुन उसका सेवक बन जाता है । जटा एव दाढी रखी हुई होने के कारण नील उसे पहचान नहीं पाता है । वह हिमानी की सहायता से भुवन हिमानी के रहस्य को जान जाता है और उस षड्यत्र की सूचना भुवन को दे देता है । अत मे, कपिजल बन्दी नील के समक्ष स्वय को कपिजल बताकर तथा उसे सोने के सिक्के देकर, उसके ऋण से पूर्णत मुक्त हो जाता है । [1]

प्रस्तुत उपन्यास मे भुवन विक्रम की कथा अधिकारिक कथा है, तथा रोमक कपिजल, गौरी, हिमानी, धौम्य एव नील आदि की कथाए प्रासगिक हैं । इनमे रोमक और कपिजल की कथाये पताका प्रासगिक हैं, शेष सभी प्रकरी प्रासगिक है ।

उपन्यास के पात्रो मे राजा रोमक ऐतिहासिक है । उसका वास्तविक नाम रोमपाद था । जिसे वर्माजी ने बदल कर रोमक रख दिया है । राजा 'रोमपाद' का एक लडका था, लेकिन उसका नाम भुवन विक्रम नहीं था । वर्माजी ने कल्याणकारी एव पराक्रम के आधार पर अपनी कल्पना से भुवन विक्रम रखा है और उसी के नाम पर उपन्यास का नाम भुवन विक्रम रखा है । अन्य पात्र काल्पनिक हैं ।

उपन्यास की कुछ घटनाये ऐतिहासिक हैं । अयोध्या के अकाल की घटना ऐतिहासिक है। डॉ0 'वन्द्योपाध्याय' की उपर्युक्त पुस्तक ने अयोध्या नरेश रोमपाद के राज्यकाल मे भयानक अकाल पडने का उल्लेख है । उसी प्रकार कपिजल के दास बनाने एव उस पर अत्याचार करने की घटना इतिहास सम्मत है । उत्तर वैदिक कालीन समाज मे दास प्रथा विद्यमान थी । विदेशी व्यापारी एव अन्य धनवान व्यक्ति ऋण न चुकाने पर स्वतत्र व्यक्ति को दास बना लेते थे ।

1. वृन्दावन लाल वर्मा "भुवन विक्रम" सस्करण 1987 परिचय पृष्ठ स0 – 3

*

ब्राम्ह्ण तक दास बन जाते थे, इसके अतिरिक्त उत्तर वैदिक काल मे समिति को राजा चुनने, निकालने एव पुन चुनने का अधिकार था ।

उपन्यास मे समाज हित हेतु धर्म और कर्म के समन्वय पर बल दिया गया है ।'धौम्य' ऋषि के सयम, अनुशासन एव नि स्वार्थ जनसेवा आदि से सम्बन्धित उपदेश इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं ।

11- महारानी दुर्गावती

प्रस्तुत उपन्यास की प्रथम कथा 'दुर्गावती' एव 'दलपतिशाह' के प्रणय सम्बन्ध, विवाह तथा 'दलपतिशाह' की मृत्यु के बाद 'महारानी दुर्गावती' के शासन, युद्ध एव मृत्यु से सम्बन्धित है । दुर्गावती कालिजर के चन्देल राजा कीर्तिसिह की पुत्री है । वह अत्यत सुन्दर एव बाण–विद्या मे निपुण हैं । मनियागढ के मेले मे उसकी सखी रामचेरी 'दलपतिशाह' के द्वारा मारे हुए शेर को देखती है । दलपतिशाह सग्रामशाह का पुत्र है और गोडवाने का राजा है । दलपतिशाह रामचेरी से परिचय पूछता है । वह स्वय को रानी दुर्गावती की सखी बताती है । दलपतिशाह दुर्गावती के सौन्दर्य एव पराक्रम से परिचत है । वह रामचेरी से दुर्गावती के सम्बन्ध मे बडे चाव से बातचीत करता है । कालिजर आकर रामचेरी दुर्गावती को मनियागढ का समाचार सुनाती है और दलपतिशाह की प्रशसा करती है जिसे दुर्गावती बडे चाव से सुनती है । 'दुर्गावती' रामचेरी से दलपतिशाह का चित्र बनवाकर उसे अपने पास रख लेती है । इस प्रकार नाम एव गुणो के श्रवण मात्र से ही 'दुर्गावती' और 'दलपतिशाह' के अन्दर एक दूसरे के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है । दलपतिशाह के अनुरोध पर 'कीर्तिसिह' 'दुर्गावती', 'रामचेरी' एव कुछ सैनिक मनियागढ शिकार खेलने जाते है, जहा राम्चेरी के माध्यम से दुर्गावती और दलपतिशाह के प्रणय सबध स्थापित हो जाता है । फिर 'कीर्तिसिह' के निमत्रण पर दलपतिशाह कालिजर जाता है । उसके साथ उसकी छोटी सी फौज भी जाती है । वही वह 'दुर्गावती' से मिलते है । उसके पश्चात् पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार दुर्गावती रामचेरी के साथ सुरग के रास्ते से निकल कर 'दलपतिशाह' के पास पहुच जाती है । जहा से वे गोडवाने को चले जाते है और सिगौरगढ मे विधिवत् विवाह कर लेते हैं । [1]

शादी के चार वर्ष बाद दलपतिशाह की मृत्यु हो जाती है । उस समय उनका पुत्र वीर नारायण तीन वर्ष का है । रानी शासन की बागडोर अपने हाथो मे लेती हैं । वे प्रजा की भलाई के लिए अनेक कार्य करती हैं । वे प्रधानमत्री उधार सिह को आदेश देकर सिचाई के लिए ताल खुदवाती हैं । इसी बीच वे मालवा के सुल्तान बहादुर को युद्ध मे कई बार हराती हैं । अत मे वे

1 वृन्दावन लाल वर्मा "महारानी दुर्गावती" तेरहवां सस्करण 1986 परिचय पृष्ठ स0 – 3

*

'आसफखा' के नेतृत्व मे लडने वाली सम्राट 'अकबर' की फौज से युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त होती है । उन्ही के साथ समरन हाथी और महावत गनू मारे जाते हैं ।

दूसरी कथा रामचेरी और मोहन से सम्बन्धित है । रामचेरी मनियागढ मे 'दलपतिशाह' के साथ–साथ मोहन से भी मिलती है । दलपतिशाह की आज्ञा से मोहन गौंड स्त्रियो से झगडती हुई सुन्दरी रामचेरी को बुलाने जाता है । मोहन की आकृति सुन्दर है । वह दलपतिशाह का विश्वास पात्र एव अभिन्न साथी है । मनियागढ मे मोहन एव रामचेरी परस्पर आकृष्ट होते हैं । दलपतिशाह जब कालिंजर जाते हैं उस समय वहा रेतीगढ का युवा राजा 'सुधरसिह' भी रूका हुआ है । वह दुर्गावती से शादी करना चाहता है । अत अपना काम आसान करने के लिए वह रामचेरी को बहला–फुसलाकर अपने पक्ष मे लेना चाहता है । वह रामचेरी को मोतियो की कण्ठा देता है । जिसे रामचेरी कालिजर से गौडवाने जाते समय अपने साथ ले जाती है । सिगौरगढ मे दलपतिशाह और दुर्गावती के विवाह के साथ रामचेरी और 'मोहनदास' का भी विवाह होता है । रामचेरी हर समय महारानी 'दुर्गावती' के साथ रहती है । वह दुर्गाताल के बगल मे सुधरसिह वाली मोतियो की माला के सहयोग से एक ताल बनवाती है, जिसका नाम वह अपने नाम पर चेरी ताल रखती है ।

तीसरी कथा 'कीर्तिसिह' से सम्बन्धित है । 'कीर्तिसिह' कालिजर का राजा है और महारानी दुर्गावती के पिता है । वह चदेल क्षत्रिय है । ऊच–नीच एव छुआ–छूत की भावना से ग्रसित होने पर भी वह 'दुर्गावती' और 'दलपतिशाह' के विवाह की मौन स्वीकृति देता है । क्योकि दलपतिशाह राजगौड है, और उसकी पुत्री चन्देल है । अत चन्देलो से निम्न समझे जाने वाले राजगौडो मे शादी सम्बन्ध नही हो सकता है । वह विवाह के समय महोबा चला जाता है । वह गौड राज्य से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है, क्योकि चन्देल राज्य की सीमा से लगा हुआ गौडराज्य अन्य निकटवर्ती राज्यो मे सबसे अधिक सबल और विशाल है । उसे 'हुमायू' और 'शेरशाह' सूरी जैसे शत्रुओ के आक्रमण की निरन्तर आशका बनी रहती है । इसी कारण वह सुधरसिह को भी अपने पास रखता है । 'दुर्गावती' और 'दलपतिशाह' की शादी के बाद शेरशाह सूरी कालिजर पर आक्रमण करता है । 'कीर्तिसिह' 'दलपतिशाह' को मदद के लिए बुलाता है, लेकिन मदद नही मिल पाती है । अत मे सन् 1545 को 'कीर्तिसिह' शेरशाह के द्वारा मारा जाता है और स्वय शेरशाह भी उसी समय बारूद से झुलस कर मारा जाता है । [2]

चौथी कथा देशद्रोही एव विश्वासघाती 'सुधरसिह' की है । 'सुधरसिह' छोटे–से राज्य रेतीगढ का राजा है । वह दुर्गावती से शादी करने की इच्छा से कालिजर आता है । वह दुर्गावती और रामचेरी को बन्दूक से निशाना लगाता सिखाना चाहता है । इस बहाने से वह दुर्गावती से निरन्तर

2 बेवरिज कृत "अकबर नामा" भाग – 2 पृष्ठ स0 – 224

*

मिलते रहने की चेष्टा करता है । वह रामचेरी को अपना समर्थक बनाने के लिए उसे मोतियो का कण्ठा देता है । जब दुर्गावती दलपतिशाह के साथ सिगौरगढ चली जाती है, तब सूचना मिलने पर वह उनका पीछा करता है, लेकिन कुछ नही कर पाता है । वह दुर्गावती से बदला लेने के लिए गोपानन्द बन जाता है और गोडवाने मे भ्रमण करता है । अनेक उपद्रव करता है और बादशाह अकबर गोडवाने पर आक्रमण करने के लिए उकसाता है । अकबर उसे जागरी देने का प्रलोभन देता है, फलस्वरूप वह गोडवाने मे रहकर अकबर के लिए जासूसी करता है । दुर्गावती की सामरिक महत्व की अनेक बाते अकबर और उसके सेनापति आसफखा को देता है । अत मे सिगौरगढ मे अकबर के सैनिको द्वारा घायल एव मुर्छित 'गोपानन्द' (सुधरसिह) का भेद खुल जाता है । महारानी दुर्गावती उसे मारती नहीं है, और उसे उसके हाल पर छोडकर चौरागढ चली जाती है । [3]

उपन्यास की मुख्य कथा महारानी दुर्गावती से सम्बन्धित है । इसमे दुर्गावती और दलपतिशाह का प्रणय–विवाह, विधवा होना, शासन भार सभालना और अत मे अपनी मान–मर्यादा एव जनहित के लिए आसफखा से लडते हुए प्राणोत्सर्ग करना आदि का उल्लेख किया गया है ।

प्रासगिक कथाओ मे 'रामचेरी' और 'मोहन', 'सुधर सिह,' 'महावत' 'गनू', 'अकबर' और 'आसफखा,' 'कीर्तिसिह', 'शेरशाह', 'बाजबहादुर' एव 'वीरनारायण' आदि की कथाये प्रमुख है ।

उपन्यास मे प्राय सभी पात्र ऐतिहासिक हैं । 'दुर्गावती', 'दलपतिशाह', 'प्रधानमत्री' 'अधार सिह,' 'रामचेरी,' 'मिया भिखारी रूमी' और 'भोज कायथ' अकबर के प्रसिद्ध मत्री अबुलफजल कृत "अकबरनामा" की अग्रेजी अनुवाद–बेवरिज का "अकबरनामा" के आधार पर ऐतिहासिक है ।

उपन्यास की सभी प्रमुख घटनाये ऐतिहासिक हैं । दुर्गावती और दलपतिशाह का बिवाह सिगौरगढ मे पाणिग्रहण, राजगौड राजा द्वारा मनियागढ मे दुर्गावत्ती के पिता को शेर के शिकार पर बुलाना, 'शेरशाह' द्वारा 'कीर्तिसिह' का वध, सुधर सिह द्वारा 'अकबर' की जासूसी करना, 'दुर्गावती' द्वारा मालवा के सुल्तान बाजबहादुर को युद्ध मे कई बार हराना, तथा 'अकबर' की सेना के सेनापति आसफखा से 'दुर्गावती' का अतिम युद्ध होना आदि घटनाए ऐतिहासिक हैं ।

इस उपन्यास मे वर्माजी ने महारानी दुर्गावती के उज्जवल चरित्र, पराक्रम एव लोकहित से युक्त महान व्यक्तित्व का उद्घाटन किया है ।

12- रामगढ़ की रानी

उपन्यास की अधिकारिण कथा 'रामगढ़ की रानी' के अद्भुत पराक्रम, अग्रेजो के साथ उसके युद्ध एव बलिदान से सम्बन्धित है । 'रामगढ की रानी' का नाम 'अवन्तीबाई' है । रामगढ गोड राज्य के अधीन एक छोटा–सा राज्य है, जिसका अन्तिम राजा 'विक्रमादित्य सिह' हैं जो

3, डा0 बसु – "हिस्ट्री आफ दी चन्देल" पृष्ठ स0 – 5

*

'अवन्तीबाई' के पति है। 'विक्रमादित्य सिह' को पागल कहा जाता है, इसलिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी रामगढ को कोर्ट कर लेती है, कम्पनी का प्रतिनिधित्व एव कुछ सैनिक रामगढ मे रहते हैं। अग्रेजो के अत्याचारो से क्षुब्ध होकर रानी 'उमराव सिह' के सहयोग से अग्रेजो के खिलाफ क्राति करने के लिए पुडिया बटवाती है, जिसमे एक सादी चूडी रहती है और यह लिखा होता है कि देश के शत्रु अग्रेजो से लडने के लिए सग्राम मे उतर पडो, अन्यथा चूडी पहन कर घर बैठो। 'शकर शाह' एव 'रघुनाथ शाह' की मृत्यु का समाचार सुनकर रानी को अत्यन्त दुख होता है। वह अग्रेजो के खिलाफ युद्ध छेड देती है और रामगढ मे स्थित अग्रजो के प्रतिनिधि से गुप्त कागज छीन कर उन्हे मार भगाती है। वह लोधी ठाकुर 'उमराव सिह' को अपना सेनापति बनाती है और एक सेना बनाती है, जिसमे किसान ओर मजदूर भी सैनिक बनकर अग्रजो से युद्ध करते है। रानी देवगढ के जगल मे कैप्टन वाशिगटन की सेना से बहादुरी से लडती है। उसके सभी सैनिक बहादुरी से लडते हुए मारे जाते है। अन्त मे वह उमराव सिह से तलवार लेकर उसे पेट मे भोककर प्राणान्त करने का प्रयास करती है। कप्तान वाशिगटन के फौजी पण्डित उसे अग्रेजी अस्पताल मे पहुँचाते है। वहा उसे थोडा सा होश आता है। वाशिगटन उससे अग्रेजो के खिलाफ लड़ने वाले व्यक्तियो का भेद लेना चाहता है। वह सम्पूर्ण दोष को अपने ऊपर लेकर अतिम सास लेती है।

दूसरी कथा 'शकर शाह' एव 'रघुनाथ शाह' की क्राति एव बलिदान से सबधित हैं। शकर शाह 'महारानी दुर्गावती' का वशज राजगोड राजा है। 'रघुनाथ शाह' उसका पुत्र है। दोनो क्रातिकारी विचारो के व्यक्ति हैं और अग्रेजो के अत्याचारो से क्षुब्ध हैं। वे कुछ क्रातिकारी लोगो को एकत्रित करके एक समिति बनाते है, जिसके माध्यम से वे अग्रजो के अत्याचारो की शिकायत डिप्टी कमिश्नर से करने जाते हैं। अग्रेज शकर शाह द्वारा वसूल किये गये पुर्नविवाह के कर को, जो कि सिर्फ दस रूपया है, उनसे लेकर अग्रेजी खजाने मे जमा करवा देते हैं। पचायती मामलो मे अग्रजो के इस हस्तक्षेप से आम जनता भी उनसे क्षुब्ध हो जाती हैं। शकर शाह एव रघुनाथ शाह जन–जागरण हेतु अग्रेजो से असतुष्ट लोगो को सगठित करने का प्रयास करते हैं। वे कवि सम्मेलन के आयोजनो के बहाने जगह–जगह लोगों मे रानी 'अवन्तिबाई' की पुडिया बटवाने का कार्य करते है। फलस्वरूप अग्रेजो को उनपर शक हो जाता है। उनकी हवेली का तलाशी ली जाती है, जिसमे अग्रेजो के खिलाफ लिखी हुई दो कविताये मिलती हैं। उसके बाद अग्रेजी अदालत की औपचारिकताये पूर्ण की जाती हैं। और उसमे 'शकर शाह' एवं 'रघुनाथ शाह' को अपराधी ठहराकर उन्हे तोप से उडवा दिया जाता है।

तीसरी कथा देशभक्त एव क्रातिकारी 'उमराव सिह', 'जगत सिह', 'वर्गदेव' एव 'वदेव तिवारी' आदि से सबधित है। उपन्यास के प्रारम्भ मे स्वाभिमानी, लोधी ठाकुर 'उमराव सिह' को कचहरी मे

*

डिप्टी कमिश्नर के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। अपने बयान मे वह लगान –बढोत्तरी एव आये दिन नये– नये कर लगाने के लिए कपनी सरकार की आलोचना करता है। कमिश्नर उसके कथन की उपेक्षा करता है और स्वाभिमान की प्रतीक उसकी मूछो को नीचे झुकाने का आदेश देता है। बाद मे वह अग्रेजो के अत्याचारो से क्षुब्ध होकर रामगढ की रानी की सेना का सेनापति बन कर अग्रेजो से युद्ध करता है। 'जगत सिह' ओर बर्गदेव भी क्रातिकारी विचारो के देशप्रेमी युवक है। वे कपडे बेचने का व्यवसाय करते है। एक दिन अग्रेज वस्त्र व्यापारी एव पादरी उसकी दुकान पर आते है। अग्रेज व्यापारी अपने देश मे (इग्लैंड) बने वस्त्रो को बेचने का सुझाव देता है। वे अपने देश मे बने वस्त्रो को अच्छा बताते है और इग्लैण्ड मे बने वस्त्रो को लेने से इकार कर देते हैं। पादरी अग्रेज वस्त्र व्यापारी से कहता है कि एक वर्ष मे सभी हिन्दुस्तानी व्यक्ति इसाई हो जायेगे। उसके इस कथन का जगत सिह विरोध करता है। पादरी एव वस्त्र व्यापारी रूष्ठ होकर वहा से चले जाते है। बाद मे 'जगत सिह' एव 'बर्गदेव' रामगढ की रानी की क्राति मे सम्मिलित हो जाते है। बल्देव तिवारी अग्रेजो की बावन नम्बर की हिन्दुस्तानी फौज मे एक सूबेदार है। शकर शाह एव रघुनाथ शाह की मृत्यु से वह तथा अन्य हिन्दुस्तानी सिपाही अग्रेजो के खिलाफ कुछ करने का निश्चय करते है, लेकिन चुप रहते हैं। रात्रि मे बलदेव और लगभग पाच सौ अन्य हिन्दुस्तानी सिपाही एक–एक करके बैरको से चुपचाप निकलकर जबलपुर से बाहर हो जाते हैं। वे पाटन की छावनी को अपने अधिकार मे कर लेते हैं। उस समय उन सिपाहियो का नेतृत्व बलदेव तिवारी करता है। बलदेव पाटन की छावनी के अग्रेज नायक 'मैकमिगर' को बन्दी बना लेता है और जबलपुर छावनी के कर्नल से जबलपुर छावनी मे शेष बचे हिन्दुस्तानी सैनिको को भेजने हेतु विनम्रता भरा पत्र भेजता है। कर्नल हिन्दुस्तानी सिपाहियो को नही भेजता है। बलदेव मैकमिगर पर कडा पहरा बैठा देता है। उसके पश्चात वे रामगढ की रानी के नाम पर अग्रेजो के खिलाफ आन्दोलन चलाते रहे।

चौथी कथा देशद्रोही एव विश्वासघाती गिरधारी दास से सबधित हैं गिरधारी लाल शकर शाह का विश्वसनीय सेवक है। वह कविता करता है। रामगढ मे काव्य– सम्मेलन का पूर्व–निर्धारित कार्यक्रम उसके अनुरोध करने पर भी नही होता है, गिरधारी लाल क्षुब्ध होकर शकर शाह आदि के खिलाफ होकर अग्रेजो से मिल जाता है। वह रानी अवन्तीबाई तथा शकर शाह की गुप्त बाते अग्रेजो को बताता है। अंग्रेज शायरी सुनने के बहाने से उसे छावनी मे बुला लेते हैं। वहां से वे उससे भेद लेते हैं और उसको बख्शीश देते हैं। 'गिरधारी दास' बावन नम्बर की पल्टन को शायरी सुनाने के लिए दूसरे तीसरे दिन जाता है। वह उन्हे अग्रेजो की प्रशसा से भरी हुई कविताये सुनाता है, जिससे हिन्दुस्तानी सिपाही अन्दर ही अन्दर उसको देशद्रोही समझने लगते

*

है। अन्त मे 'बलदेव तिवारी' के द्वारा उसका भेद खुल जाता है। राजा 'शकर शाह' उसको फटकारता है और उसे नौकरी से निकाल देता है। उसके पश्चात वह खुलेआम अग्रेजो से मिल जाता है। अग्रेज अफसर वाशिगटन उसे पूर्ण सुरक्षा का आश्वासन देता है। वह अग्रेजो के विरूद्ध आदोलन चलाने वालो मे शकर शाह एव रघुनाथ शाह के नाम की पुष्टि करता है, जिसके आधार पर उन्हे तोप से उडाया जाता है ।

प्रस्तुत उपन्यास की मुख्य कथा रामगढ की रानी 'अवन्तीबाई' के अग्रेजो के विरूद्ध सैन्य सगठन, खुला विद्रोह, सैन्य सचालन और अग्रेजो से लडते हुए बलिदान हो जाने से सबधित है।

प्रसगिक कथाओ मे पुर· ा के राजा 'शकर शाह' एव उसके पुत्र 'रघुनाथ शाह' की कथा, शकर शाह के करिन्दा गिरधारी दास की कथा, 'उमराव सिह', 'जगत सिह' एव प0 'वर्णदेव' आदि की कथाए प्रमुख है, जिनमें 'उमराव सिह' की कथा सबसे अधिक प्रमुख है क्योकि उपन्यास के प्रारम्भ से लेकर समाप्ति तक उसकी कथा चलती है।

उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र एव घटनाए ऐतिहासिक है। 'रामगढ की रानी' 'अवन्तीबाई,' 'शकर शाह,' 'रघुनााथ शाह,' 'सुबेदार बलदेव तिवारी,' ठा0 'जगत सिह' एव ठा0 'उमराव सिह' आदि सभी पात्र ऐतिहासिक है। उपन्यास की प्रधान घटनाये ऐतिहासिक है, लेकिन कुछ घटनाये जनश्रुति और परम्पाराओ पर आधारित है।[1] रामगढ की रानी सन 1857 मे अग्रेजो से लडी थी और अन्त मे अपने एक सैनिक से तलवार लेकर अपने पेट मे भोक ली थी।[2] 'शकर शाह' और 'रघुनाथ शाह' ने अग्रेजो के विरूद्ध जन जागरण किया था। उनको 18–09–1957 ई0 के दिन तोप से उड़ा दिया था । [3] करिन्दा 'गिरधारीदास' से सम्बन्धित घटना भी ऐतिहासिक है। वह अग्रेजो का जासूस था। [4]

वर्माजी ने इस उपन्यास मे 'रामगढ की रानी' के अद्‌भुद पराक्रम और देशहित एव जनहित मे उनके द्वारा किसे गये बलिदान को उद्‌घाटित किया है। इसके साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा भारतीयो पर किये गये अत्याचारो एव उसकी अनीति को भी प्रकट किया है।

1 वृन्दावन लाल वर्मा, 'रामगढ़ की रानी' पॉचवॉ सस्करण, 1984, परिचय, पृ0 – 7

2 वृन्दावन लाल वर्मा, 'रामगढ़ की रानी' पाँचवॉ सस्करण, 1984, 'परिचय' पृ0 4–5 मे उद्धत मण्डला गजेटियर पृ0 37–40 तथा रानी के 1857 ई0 मे अग्रेजो के विरूद्ध लडने की बात हमीरपुर जिले के राठ गाव के एक व्यक्ति के कथन पर आधारित है।

3 वृन्दावन लाल वर्मा, 'रामगढ़ की रानी ' पाँचवाँ सस्करण, 1984, 'परिचय' मे उद्धत सी0 यू0 विल्स की पुस्तक ' हिस्ट्री आफ दि राज गोड महाराजाज आफ दि सतपुरा ।·गा, के आधार पर।

4 वृन्दावन लाल वर्मा , रामगढ़ की रानी , पाँचवॉ सस्करण,1984, परिघय, मे उद्धत स्व0 रा0 ब0 हीरालाल की पत्रिका ,पेमा जो जबलपुर से प्रकाशित होती थी, के अक्टूबर–नवम्बर सन् 1932 वाले 'करूणारसाक' के आधार पर।

*

13- सोती आग

प्रस्तुत उपन्यास की प्रमुख कथा 'गुलाब खॉ' और 'शबनम' के असफल एव एकागी प्रणय से सम्बन्धित है। 'गुलाब खॉ' का विवाह अमीर आजम खॉ की पुत्री 'शबनम' से हो निश्चित हो जाता है। तभी बादशाह 'मुहम्मद शाह' की चहेती 'रहीमुन्निसा' कोकीजू आजम खॉ के घर आकर शबनम की शादी पठान सरदार 'रोशनुद्दौला' से निश्चित करने की सूचना देती है। उसके प्रस्ताव को आजम खॉ, उसकी बेगम तथा शबनम भी स्वीकार कर लेती हैं। 'कोकीजू' 'आजम खॉ' की हवेली मे ही रूके हुए गुलाबखॉ को शबनम से शादी न करने के लिए सहमत कर लेती हैं। 'गुलाबखॉ' शबनम से मिलता है और अपना प्रणय निवेदन करता है, लेकिन शबनम उससे भाई का सबध की बनाये रखने के लिए कहती है। शबनम और रोशनुद्दौला की शादी हो जाती है। कोकीजू गुलाब खॉ को बेगम के प्यार के साथ –साथ अपार धन मिलता है, लेकिन वहा का बॅधा हुआ जीवन उसको रास नही आता है । उसका स्वास्थ्य गिर जाता है, इसलिए वह वहा से भागना चाहता है। इसी बीच होली के अवसर पर वह सेविका के वेश मे शबनम से भी मिलता है। 'शबनम' उसे देखकर घबडा जाती है। 'गुलाबखॉ' कोकीजू और बेगम से छुट्टी लेकर महलो से बाहर चला जाता है और फिर कभी लौटकर नही आता है। वह वजीर 'कमरूद्दीन' का वफादार बन जाता है। तोपखाने मे नौकरी पा जाता है। वह उसके लिए जासूसी करता है। जुमा मसजिद मे जूता फरोशो और पठानो मे लडाई हो जाती है। 'रोशनुद्दौला' आदि सरदार उस लडाई मे घायल हो जाते हैं। 'शबनम' और 'राजा शुभवर्ण' वर्ण की पत्नी शुभवर्ण की हवेली मे रहती हैं। बलवाई हवेली पर हमला करने का निश्चय करते हैं। 'गुलाब खॉ' 'शबनम' की रक्षा करने के लिए बलवाइयो से पहले ही हवेली मे पहुॅच जाता है। वह बलवाईयो से लडते हुए मारा जाता है। अन्त मे शबनम उसकी मजार पर चादर चढाने जाती है और आखो में ऑसू भरकर उसकी रूह से उसके प्रति किये गये अपने गुनाहो के लिए माफी मागती है।

दूसरी कथा राजा 'शुभवर्ण' और 'जूताफरोशो' की लडाई, 'हाजी हाफिज खॉ' की मृत्यु तथा शेर अफगन एव 'रोशनुद्दौला' आदि सरदारो द्वारा राजा शुभवर्ण की रक्षा करने से सबधित है। औरगजेब के परपोता तथा बहादुरशाह के पोता मुहम्मदशाह के शासन काल मे सन् 1729 ई0 मे घटी एक एतिहासिक घटना से उपर्युक्त समस्त घटनाए सम्बन्धित है। राजा का खिताब पाया हुआ जौहरी शुभवर्ण बादशाह का बख्शा हुआ लिवास पहनकर जुमा मस्जिद के पेश इमाम के पास जाता है। और उसकी दुआ के साथ पालकी मे बैठकर अपने घर को जाता है। रास्ते मे होली के अवसर पर हिन्दू और मुसलमानो के बच्चे पटाखे चलाते हैं। एक पटाखा उचटकर राजा शुभवर्ण के शाही लिबास को थोड़ा सा जला देता है। शुभवर्ण बौखला जाता है । वह बच्चों को डाटता

*

फटकारता है। बच्चो की सुरक्षा के लिए जूताफरोश (दुकानदार) आ जाते है। राजा के सैनिको एव जूताफरोशो मे झगडा हो जाता है। जूताफरोशो का पक्ष भारी पडता है। घर पहुँच कर शुभवर्ण सिपाहियो को जूताफरोशो की अक्ल ठिकाने लगाने के लिए भेजता है। सिपाही पुन आकर एक बच्चे को पकड लेते है। उसकी रक्षा के लिए हाजी हाफिज खॉ आता है जो एक सिपाही के हाथो मारा जाता है। राजा शुभवर्ण अपने मित्र सरदार शेर अफगन को इस घटना की सूचना देने जाता है। वह उसे सुरक्षा का आश्वासन देता है और राजा की पत्नी एव बच्चो को अपनी हवेली मे बुला लेता है। हाजी की मृत्यु से क्षुब्ध विदेशी मुसलमान हाजी की लाश को राजा की हवेली के पास ले जाकर रख देते है। वे राजा की हवेली को तहस नहस कर देते हैं। वहा से वे शेर अफगन की हवेली मे जाते है। और 'शेर अफगन' से राजा को उनके हवाले करने के लिए कहते है। शेर अफगन राजा को उन्हे नही सौफ्ता है। क्रुद्ध बलवाई बादशाह से दीन की रक्षा के लिए फरियाद करते है और इसाफ की मॉग करते है। 'राजा शुभवर्ण' को बन्दी बनाने का आदेश देता है। ख्वाजा बादशाह के आदेश से शेर अफगन को अवगत कराता है। वह आदेश का पालन नही करता है। क्रुद्ध होकर ख्वाजा लौट जाता है। अन्त मे 11 मार्च, सन् 1729 को जुमे के दिन जुमा मस्जिद मे ऐतिहासिक घटना घटती है। वहा जूताफरोशो और पठानो मे भयकर लडाई छिड जाती है, जिसमे अनेक जाने जाती है। 'रोशनुद्दौला' मुश्किल से बच पाता है भारी भरकम 'आजम खॉ' एक कुम्हार के घर मे कूदकर घायल हो जाता है। शेर अफगन राजा शुभवर्ण और उसके बच्चो को चुपचाप सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देता है। बादशाह, वजीर एव मुसलमान जुमा मस्जिद की लडाई मे अपनी जीत और 'राजा शुभवर्ण' की तबाही से सन्तुष्ट होकर चुप हो जाते हैं लेकिन आम जनता को इस घटना से बहुत नुकसान होता है, जिसका उसे अफसोस है।

प्रस्तुत उपन्यास मे अधिकाधिक कथा 'गुलाब खॉ' और 'शबनम' के असफल एव एकागी प्रणय से सबधित है, जिसमे 'गुलाब खॉ' की प्रेम–भक्ति का सजीव चित्रण किया गया है।

प्रासगिक कथाओ मे 'कौकीजू', 'शुभवर्ण', 'शेर अफगन', 'जूता फरोशो,' 'हाजी हाफिज खॉ' तथा 'जुमा मस्जिद' से सबधित कथाए प्रमुख हैं। इनमे शेर अफगन की कथा सबसे अधिक प्रधान है।

उपन्यास मे उल्लिखित अधिकाश पात्र एतिहासिक हैं। 'गुलाब खॉ,' 'बेगम शबनम' और रानी के नाम कल्पित हैं वैसे ये पात्र भी ऐतिहासिक हैं। अन्य पात्रो के नाम इतिहास–सम्मत है। [1]

उपन्यास की समस्त घटनाये ऐतिहासिक हैं। सन् 1729 मे दिल्ली मे हुआ विकट दगा इतिहास प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त अमीर आजम खॉ का कुम्हार के मिट्टी के बर्तनो वाली झोपड़ी पर कूदना, घायल होना तथा कुम्हार द्वारा पीटा जाना सत्य घटना है। हाजी हाफिज खॉ का कत्ल, राजा शुभवर्ण की हवेली को तोड़कर हाजी हाफिज खॉ की लाश को दफनाना, और

*

वहाँ मस्जिद बनाना, शेर अफगन द्वारा राजा शुभवर्ण और उसके परिवार को शरण देना तथा कोकीजू की हरकते आदि की कथाए भी इतिहास सम्मत है। [2]

वर्माजी ने इस उपन्यास मे मनुष्य की अर्न्तनिहित हिसा के उग्ररूप का उद्घाटन किया है। उपन्यास के 'परिचय' मे उन्होने लिखा है– मानव की अर्न्तनिहित हिसा जरा सी रगड खाने पर कितनी अनियत्रित हो जाती है और राजनैतिक दलबन्दी के भवर मे पडकर कितनी प्रचण्ड और नृशस। वह सब दिल्ली के 1729 वाले भीषण दगे से प्रकट है। [3]

1 वृन्दावन लाल वर्मा ' सोती आग सातवॉ सस्करण 1987 परिचय मे उद्धत विलियम इरविन की पुस्तक हिस्ट्री आफ दि लेटर मुगलस् के आधार पर।

2 वही ' " " " "

3 वही " " " परिचय पृष्ठ 2"

14- देवगढ़ की मुस्कान

इस उपन्यास की प्रथम कथा सेठ धनपाल 'कुबेरदत्त' तथा 'मिट्ठू' एव 'तिनकी' सहरियो से सबधित है। बुढा एव मिट्ठू दोनो सगे भाई है और तिनकी उनकी बहन है। ये दोनो भाई मूली खोदते है जिन्हे सेठ धनपाल सस्ते भाव मे खरीद लेता है। ये सभी व्यक्ति चन्देरी मे रहते है।एक दिन रावल 'खडगसिह' सेठ 'धनपाल' के पास आता है। सेठ उसका अतिथि सत्कार करता है। वह सेठ से एक लाख रूपये मागता है सेठ असर्मथता बताता है। 'खडगसिह' मन ही मन मे सेठ से रूष्ट हो जाता है। सेठ 'खडगसिह' के आतक से चन्देरी छोडकर देवगढ मे बसने जाता है। उसके साथ बुढा, मिट्ठू एव तिनकी भी जाते हैं। रास्ते मे 'खडगसिह' अपने साथियो के सहयोग से सेठ को मार पीटकर लूट लेता है। सेठ देवगढ मे पहुँच जाता है। और अपनी राहजनी की सूचना राजा विजयपाल देव के पास पहुँचा देता है। देवगढ मे सेठ और सेठ की पत्नी 'प्रियवदा' के साथ बुढा, मिट्ठू और तिनकी भी रहते है सेठ महाजनी भी करता है। देवगढ के व्यापारी 'सोमचन्द्र' और रामदास पर उसका ऋृण है। सेठ की आज्ञा से बुढा उनसे रूपये लेने जाता है। वे दोनो उसकी अभद्रता से खीज कर उसे पीटते हैं। इसके उपरान्त दोनो व्यापारी बुढ़ा की अभद्रता की शिकायत करने 'धनपाल' के पास जाते हैं। उनकी बातो को सुनकर सेठानी 'प्रियवदा' आग बबूला हो जाती है। वह उन दोनो को मारने झपटती है, लेकिन मारने से पहले उसका पैर सीढियो से फिसल

*

जाता है और वह नीचे गिर कर मर जाती है। सेठ 'धनपाल' दण्डनायक के पास उनदोनो व्यापारियो के खिलाफ अपनी पत्नी की हत्या का मुकदमा दायर करता है, लेकिन बुढा के द्वारा बयान मे सत्य बोलने से उन्हे निरपराध मानकर छोड दिया जाता है। सेठ का पुनर्विवाह बासन्ती की पुत्री 'कुबेरदत्ता' से हो जाता है। एक दिन बुढा आदि शहरिये मदिर देखने जाते है। जैन मदिर मे सिर्फ जैन व्यक्ति ही प्रवेश पाते है अजैन नहीं । वहा से लौटकर शहरिये विष्णु मदिर मे प्रवेश करने का प्रयास करते है। उच्च जाति के व्यक्ति को छेडने वाला अमोलक भी है। दोनो ओर से हाथपाई होती है। सेठ 'धनपाल' को भी शहरियो की मार खानी पडती है। घर आकर वह बूढा, मिट्ठू एव तिनकी को अपने घर से निकाल देता है। वे अपने एक रिस्तेदार के घर मे रहने लगते है। एक दिन तिनकी एक उच्चके से 'कुबेरदत्ता' की रक्षा करती है। सेठ को भी यह बात मालूम हो जाती है। वह तीनो भाई बहन को पुन अपने घर बुला लेता है। 'भुजबल' और 'नागदत्ता' (बासन्ती की छोटी पुत्री) की शादी से पूर्व तीनो शवर भाई बहन उच्च जाति के व्यक्तियो के षडयन्त्र से राजा के द्वारा नागदत्ता की रक्षा करवाते हैं। राजा भी तीनो शवर भाई–बहन से प्रसन्न होता है। शिकार के आयोजन के समय वह बुढा शवर के घर जाकर बेर खाता है, अत मे भुजवल और 'नागदत्ता' की शादी हो जाती है ।

15 कीचड़ और कमल

वर्माजी जीवन को आत्मीयता और उत्साह की दृष्टि से देखने के आदी है । जीवन एक गति है, इसका उभार सुख–दुख तथा सत्–असत् के द्वन्द्व मे है । वे जीवन मे छाये असत् को दिखाकर उसे परिणत करने का प्रयत्न करते हैं । उनकी दृष्टि मे यही जीवन शक्ति है । असत् जन्म लेता है, व्यक्ति के स्वार्थ और सस्कार से । यही शोषण और हिसा को बढावा देता है, और सत् है– परहित मे स्वहित का समन्वय । इसमे त्याग अहिसा और सद्भाव पर बल रहता है । उपन्यास का शीर्षक है– "कीचड और कमल" कीचड और कमल प्रतीक हैं क्रमश 'असत्' और 'सत्' के । 'कीचड' मे ही 'कमल' उत्पन्न होता है । अत निराशा की बात नहीं, जो बुरा दिख रहा है, उससे अच्छा फल भी निकल सकता है । असत मे से सत के तत्व फूट सकते है । उपन्यास मे दिखाया गया है कि– कला ऐसा तत्व है जो मानव मन का परिष्कार कर उसे स्वच्छ बनाता है। इस बात को व्यक्तिगत सम्बन्धो तथा राज्यो के सम्बन्धो के स्तर पर कथा रूप मे कहा गया है ।

12वीं शताब्दी मे "खजुराहो" ग्राम के समीप दो कृषक बातो–बातो मे उलझ कर मारपीट कर बैठते हैं और एक अन्य के हाथो मारा जाता है । मारने वाला प्रतिकार के भय से पुत्र सहित

*

गाव से भाग खडा होता है । पीछे माता विहीन अपनी छोटी पुत्री प्रमिला निकट के एक नातेदार को सौंप जाता है । मृत्यु व्यक्ति का पुत्र लाहड हत्यारे से लेने का प्रण करता है । और बदला न ले पाने तक पिता की राख से प्राप्त हड्डी का एक टुकडा गले मे बाधे रहने का निश्चय करता है (इस रीति को हडैती कहते है),। हत्यारे की पुत्री से बदला नही लिया जा सकता । अत अबोध प्रमिला बची रहती है । वह बडी होती जाती है, सुन्दर है, कलाकार लाहड के सम्पर्क मे वह नृत्य, सगीत तथा मूर्तिकला मे रूचि लेती है ।'लाहड' के मन मे'प्रमिला' के पिता से बदला लेने की भावना बैठी है । फिर भी, कला–प्रेम मन का परिष्कार कर उसे निश्चल भाव से'प्रमिला' के निकट आने की प्रेरणा भी देता है । बीच मे बाहर का व्यक्ति, अगद क्षुद्रतावश दोनो मे अतर पैदा करने का यत्न करता है । किन्तु अत मे भेद खुल जाने पर वह कहीं का नही रहता ।'प्रमिला' और 'लाहड' अत मे परिणय बधन मे'बध जाते है ।

'लाहड' आदि कलिजर के'राजा मदन वर्मा' के अधीन है । राजा कला प्रेमी, रसिक एव वीर पुरूष है । वह राज्य रक्षा और राज्य विस्तार के लिए कई राजाओ से टक्कर लेता है । उसका भयकर सग्राम गुर्जर देश के राजा,'सिद्धराज जयसिह' से होता है । दोनो राजा सेनाओ के निरर्थक रक्तपात को बचाने तथा जय पराजय का शीघ्र निर्णय करने के लिए परस्पर द्वन्द्व युद्ध करते है । द्वन्द्व मे 'जयसिह' हार जाता है, किन्तु'मदन वर्मा' जीतकर भी आयु मे छोटा होने के कारण विनयावनत् होता है । जयी की विनय परिस्थति को नया रग देती है । दोनो निकट आकर अभिन्न मित्र बन जाते है ।'मदन वर्मा' सम्बन्धी कथा उपन्यास के परवर्ती भाग मे विस्तार पाती है ।

4-सामाजिक उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

1- *लगन*

दहेज के प्रश्न पर सम्बन्धियो के मन मुटाव तथा वर, वधू की परस्पर एक दूसरे को प्राप्त करने की लगन, 'लगन' उपन्यास की कथा है । बजटा के'शीबू माते' के पुत्र'देवसिह' का बरौल के बादल चौधरी की कन्या'रामा' से विवाह होने पर भी वधू की विदा नहीं होती । दहेज मे निश्चित सौ भैंसे न मिलने के कारण ही बात बढ जाती है । बादल की, 'रामा' को अन्यत्र 'बिठलाने' की, योजना की सूचना पा द्वेषी शीबू को प्रसनता, और भावुक देवसिह को पीडा होती है।'देवसिह' विवाहिता पत्नी को इस प्रकार त्यागने के लिए तत्पर नहीं है । रामा के 'कराव' की चर्चा पहाडी के छैला युवक पन्ना लाल से चलने पर देवसिह की पीडा तीव्र हो उठती है । पन्ना

डॉ0 शशि भूषण सिहल . उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा पृष्ठ स0 169

*

लम्पट और कामुक है ।'देवसिह' रात्रि मे बजटा बरौल के मध्य स्थित विशाल बेतवा नदी को तैर बरौल मे रामा से छिपकर कइ बार भेट कर आता है ।

एकबार अमावस्या की रात्रि मे देवसिह रामा की अटारी के पास जाकर पुकारता है । पन्ना लाल बादल के यहा अतिथि के रूप मे ठहरा हुआ है । वह रामा की सूनी अटारी मे वासना पूर्ति की इच्छा से उसे खोज रहा है ।'पन्ना' देवसिह को ऊपर आने देता है, और उसे धर दबाता है ।'रामा' अटारी पर 'देवसिह' से मिलने आती है, किन्तु वस्तुस्थिति को समझकर बरौल से भागकर बजटा, शीबू माते के पास जा पहुचती है । देवसिह मारपीट मे पन्ना को अधमरा कर देता है । बादल आदि के आ जाने पर देवसिह का सत्कार होता है, और तिरस्कृत पन्ना घर लौट जाता है ।

पुत्र के एकाएक लोप हो जाने से व्याकुल 'शीबू' सत्कारपूर्वक घर छोडकर साथियो सहित बरौल पहुचता है । वहा दोनो सम्बन्धी निष्कपट हृदय से प्रेम पूर्वक मिलते है । तीसरे दिन बादल भैसे शीबू के घर पहुचता देता है ।

2- संगम

"सगम" उपन्यास की कथा लोभी पिता के बिगडे हुए पुत्र के विवाह सम्बन्ध मे उत्पन्न हुए मन–मुटाव को लेकर प्रारम्भ होती है । उलझी हुई परिस्थिति अत मे शनै–शनै सुलझती है और विरोधी दलो का परस्पर मिलन होता है,'सगम' होता है । झासी का ब्राम्हण भिखारी लाल निर्धन और लोभी है । वह अपने पुत्र 'सम्पत लाल' का विवाह बरूआ सागर के 'धनीराम नाई' के यहा पली ब्राम्हण कन्या जानकी से करता है ।'भिखारी लाल' की लोभवृत्ति के कारण वर वधू मे मन–मुटाव बना रहता है । झासी मे प्लेग फैलने पर जानकी मायके चली जाती है, और आवारा 'सपत लाल' चोरी, नशे से बढकर धोखा–धडी पर उतर आता है । धन प्राप्ति के वह स्वय स्त्री वेश धारण कर एक स्त्री व्यापारी के हाथ बिकता है । रेल यात्रा मे भेद खुलने पर वह छद्मवेशी सम्पत क फजीहत होती है । वही सयोगवश उसकी जानकी से भेट हो जाती है । इस दुर्दशा के फलस्वरूप सपत लाल सुधरने का सकल्प करता है । लोभी भिखारी लाल को भी अपने निकट सम्बन्धी 'सुखलाल' की सम्पत्ति हडपने के झूठे दावे मे असफलता मिलती है ।

दूसरी कथा है 'सुखलाल' की ।'सुखलाल' 'सम्पत लाल' के विवाह मे उपस्थिति था । वहा बारात के नाई 'नन्दराम' ओर कन्या पक्षी व्यक्ति का हास परिहास दोनो पक्षो मे मारपीट करा देता है । झासी लौटकर नदराम कन्यापक्ष वालो पर मुकदमा चलाता है। किन्तु सुखलाल के विरोध के कारण असफल रहता है । उग्र 'नन्दराम' को शात करने के लिए 'सुखलाल' उस पर अधिक दबाव डालता है ।'नन्दराम' 'निर्जन' मार्ग मे 'सुखलाल' को बन्दूक की गोली मारकर भाग जाता है ।

डॉ0 शशि भूषण सिहल उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा पृष्ठ स0 170

*

'सुखलाल' सयोगवश बच जाता है, और काफी समय बाद समाज मे प्रकट होता है । इस बीच ग्लानिवश 'नन्दराम' पुलिस को आत्म–समर्पण है और दण्ड स्वरूप 10 वर्ष की कैद पाता है ।

पुर्नजीवन पाकर 'सुखलाल' उदार हो जाता है । वह अपने परित्यक्त पुत्र 'रामचरण' और पुत्री राजाबेटी को अपनी सम्पत्ति बाटकर तीर्थ–यात्रा को चला जाता है। 'भिखारी लाल' को भी वह क्षमा कर देता है ।

3- प्रत्यागत

बलपूर्वक मुसलमान बनाये जाने के पश्चात् हिन्दू धर्म मे प्रत्यागत, मगल की कथा, "प्रत्यागत" की कथा है । ~~मम्मला~~ 'मगला' के धर्म भीरू सम्पन्न ज्योतिषी टीका राम का लाडला पुत्र है । वह युवा होने पर भी कमाता नही है । पिता से अनबन हो जाने पर मगल विदेश मे धनोपार्जन के लिए चुपचाप रेलगाडी से चल पडता है । पूना मे मगल की मालाबारी 'रहमतउल्ला' से भेट होती है । मगल जीवकोपार्जन तथा खिलाफत आन्दोलन के आकर्षण मे उसके साथ मालाबार पहुच जाता है । वहा एक मस्जिद मे उसे बलपूर्वक मुसलमान बना लिया जाता है ।

मालाबार का उपद्रव शान्त हो जाने पर पुलिस की सहायता से मगल न चाहते हुए भी बादा पहुचा दिया जाता है । हृदय की दुर्बलता के कारण अपने मुसलमान हो जाने की बात वह प्रकट कर देता है । 'मगल' को पुन हिन्दू धर्म मे लाने की विधि और उसके प्रायश्चित का महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खडा होला है । प0 'नवल बिहारी' और उसके दल के लोग मगल के प्रयाश्चित की योजना मे असहयोग करते हैं । बाद मे 'मगल' का बहिष्कार किसी तरह से बचा लिया जाता है ।

'मगल' नवल बिहारी के निजी मदिर मे देव–दर्शन का आग्रह करता है । 'नवल बिहारी' के घोर विरोध करने तथा पुलिस बुलाने पर भी 'मगल' और उसके परिवार का देव दर्शन तथा चरणामृत पान सफलता पूर्वक सम्पन्न होता है । एक बालक द्वारा पचायत मे पर्ची उठवाने पर 'नवल बिहारी' के लिए निकालता है कि वह दोषी है । अत मे घटना चक्र को घूमते हुए कथा समाप्त हो जाती है और 'नवल बिहारी' के दण्ड को माफ कर उसके प्रायश्चित की भी व्यवस्था होती है ।

4- कुण्डली–चक्र

सनकी दार्शनिक 'ललित सेन' और उसकी गभीर बहिन 'रत्नकुमारी' के चरित्र तथा विवाह निश्चित करने के लिए कुण्डलिया मिलाने की जटिल चक्र को लेकर "कुण्डली–चक्र" उपन्यास की आधारभूमि तैयार की गयी है । 'अजीत कुमार' 'ललित रतन' के प्रति आकृष्ठ है, किन्तु 'ललित'

डॉ0 शशि भूषण सिहल उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा पृष्ठ स0 171–72

*

भुजबल नामक एक धूर्त विधुर से 'रतन' का टीपना मिलाकर उससे विवाह कर देता है । भुजबल अपनी पहली पत्नी की बहिन 'पूनम' से दूसरा विवाह गुप्त रूप से करने का प्रयत्न करता है । भुजबल की धूर्तता तथा दूसरे विवाह करने के दुष्प्रयत्न से अवगत होने पर 'ललित' को घोर पश्चाताप होता है । वह रतन का विवाह अजीत के स्थान पर धूर्त भुजबल से कर देनी की भूल अनुभव करता है ।

'ललित' अजीत की सहायता से सिगरावन गाव मे भुजबल द्वारा पूनम से बलात्–विवाह के प्रयत्न मे विघ्न डालता है । दूसरे दिन प्रातकाल ललित, पूनम और अजीत का विवाह कर देता है, और अपना एक मकान भेट करता है । 'रत्नकुमारी' के बेमेल विवाह कुण्डली की वेदी पर बली हो जाने वाले युवक–युवती की करूण कथा इस उपन्यास मे दी गयी है ।

5- प्रेम की भेंट

इस उपन्यास मे 'धीरज' का 'सरस्वती' से पुनीत प्रेम, धीरज का सरस्वती को साडी प्रेम की भेट के रूप मे देना और ईष्यालु प्रेमिका 'उजियारी' के कारण धीरज की अकाल मृत्यु की कथा, "प्रेम की भेट" मे प्रस्तुत की गयी है । धीरज अपने गाव मे अकाल पड जाने के कारण दूर के सम्बन्धी कम्मोद के यहा ताल बेहट मे शरण लेता है । 'कम्मोद' के साथ उसकी पुत्री है– 'सरस्वती' और दूर के सम्बन्ध की विधवा बहू 'उजियारी' । कम्मोद धीरज को अपने खेतो मे साझीदार बना लेता है । शनै शनै धीरज को ज्ञात हो जाता है कि उसकी पुस्तके सवारने और रात्रि मे जल का लोटा भरकर रखने वाली और कोई नही 'सरस्वती' है । 'धीरज' 'सरस्वती' को अपना हृदय दे बैठता है और 'उजियारी' को यह सहन नहीं होता । ईष्यालु उजियारी सरस्वती के लिए खीर बनाती है और उसमे विष डाल देती है । 'धीरज' के खेत से लौटने पर सयोग 'सरस्वती' से सरस्वती खीर उसको खाने के लिए दे देती है और कहीं जाने का आदेश मागता है । लेकिन विष से उसकी तवियत बिगडने लगती है । 'सरस्वती' का शका होती है । धीरज के अचेतावस्था मे 'सरस्वती' उससे पूछती है– "आह ! गये वह ? और इधर धीरज अतिम सास लेता है । इस प्रकार इस उपन्यास मे वर्माजी ने धीरज, 'सरस्वती' और 'उजियारी' का त्रिकोणीय प्रेम के सघर्ष को उभारता है ।

6- अचल मेरा कोई

इस उपन्यास मे कुती नई रोशनी की युवती है और नारी स्वतंत्रता की दावेदार भी है । पति सुधाकर उसे अचल से घनिष्ठ सम्बन्ध रखने के लिए रोकता है । कुन्ती आत्महत्या कर लेती है और लिखा छोड़ जाती है "अचल मेरा कोई......" आगे कुछ नही लिख पाती । यही कथानक

डॉ0 शशि भूषण सिहल उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा पृष्ठ स0 173–74

*

का आधार है । नवयुवक मित्र अचल और 'सुधाकर' जो राजनीतिक आदोलन के सम्बन्ध मे बन्दी थे, जेल से मुक्त किये जाते है । 'कुती' 'अचल' से सगीत सीखने उसके घर आती है । 'कुन्ती' और अचल मे सामीप्य बढता है । किन्तु दोनो मे स्पष्ट रूप से कोई बात नहीं बढती । 'कुन्ती' का विवाह सुधाकर से हो जाता है । दोनो का विवाह होने पर आपस मे प्रेम की वर्षा करते है, किन्तु उसी समय सगीत सीखने के लिए 'कुती' 'अचल' के पास जाने लगती है और 'सुधाकर' दिन–प्रतिदिन उससे ईर्ष्या करने लगता है । 'कुती' विधवा 'नीशा' से अचल का विवाह भी करवाती है । इधर 'कुन्ती' के अनुपस्थिति रहने के कारण उसे शक मे नियत्रित करता है । अनबन उनके बीच मे चरम सीमा पर पहुच जाता है । अत मे 'कुती' नारी स्वतत्रता से ऊबकर आत्महत्या कर लेती है । उसके पहले उसने जो पत्र लिखा था– "अचल मेरा कोई " आगे हाथ काप गया था, केवल एक बिगडी हुई लकीर थी ।

7-कभी न कभी

बलवत नगर मे ईमारतो पर काम करने वाले दो मजदूर हैं– 'देवजू' और 'लक्ष्मन'। स्वाभाविक स्नेह और घटनाओ के सयोग से दोनो मे प्रगाढ मित्रता हो जाती है । दोनो 'पगड़ी बदल' भाई बन जाते हैं । 'देवजू' बडा और 'लक्ष्मन' छोटा । काम की खोज मे आये हुए व्यक्ति हीरा लाल और उसकी युवती पुत्री 'लीला' से उनका परिचय होता है। लक्ष्मन हीरा लाल से देवजू और लीला का विवाह कर देने का निवेदन करता है । लेकिन हीरा लाल विवाह लक्ष्मन से करना चाहता है और लक्ष्मन का मन भी बदल जाता है । इस घटना से देवजू को कष्ट होता है । मजूदूरो के मेट की ओर से सकट की आशंका से हीरा लाल और लीला देवजू लक्ष्मन के डेरे पर आते हैं । देवजू और 'लक्ष्मन' मे 'लीला' का विवाह करा देने का निश्चय करा देता है और यह सोचता है कि, "कभी न कभी सुख मिलेगा इस तरह से लीला लक्ष्मन और देवजू तथा मेट जैसे पात्रो से त्रिकोणीय प्रेम की कथा को उभारा गया है । इसमे देवजू लक्ष्मन और लीला के प्रेम के बीच से अपने को अलग कर लेता है, और सबकुछ सहते हुए लक्ष्मण और लीला का विवाह करा देता है ।

8- सोना

"सोना" की मुख्य कथा, 'सोना और चम्पत' के असफल प्रेम को उभारा गया है। सोना के राजा 'धुरधर सिह' के विवाह दोनो की कृतिम जीवन का चित्रण है । सोना और चम्पत परस्पर आकर्षित होते हैं । सोना की बहन रूपा उससे ईर्ष्या करने लगती है । दोनों बहने आपस मे लड़ती हैं । रूपा का विवाह अनूप सिह जैसे निर्धन युवक से होता है और सोना का विवाह लगडे

डॉ0 शशि भूषण सिहल उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा पृष्ठ स0 176

*

विधुर राजा 'धुरधर सिह' से होता है । 'सोना' का चित पति से घूमकर हीरे–जवाहरात की तरफ केन्द्रित हो जाता है, पर राजा मे आलसीपन के कारण उसकी स्थिति अच्छी नहीं है । लालो का हार बनवाने के लिए सोना उसे दिन–प्रतिदिन उत्प्रेरित करती रहती है, और धन की प्राप्ति के लिए सोना चीलो को नित्य मगोडे खिलाने का अनुष्ठान करती है । हार तो बन जाता है लेकिन सोना पति से हीरे के आभूषण की माग करती रहती है ।

एक दिन टगे हुए सोने का हार चील उडा ले जाती है । चील से हार प्राप्त करने और सोना को हार भेट करने की ब्याज चम्पत हार की खोज मे चल पडता है । इस तरह से घटना चक्र घूमता है और चम्पत सोना के प्रेम को पाने मे असफल होता है । इस कथानक के माध्यम से वर्माजी ने व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक सम्मत और स्वाभाविक रूप प्रदान किया है ।

9-अमरबेल

"अमरबेल" की मुख्य कथा अफीम के अवैध व्यापार से सम्बन्ध रखती है, और दुर्जनो की पारस्परिक प्रीति केवल स्वार्थ के आधार पर होती है । इस उपन्यास मे अनीति से धनोपार्जन करने वाले व्यक्ति समाज मे घुन की भाति लगे हुए हैं । ठीक उसी प्रकार जिस तरह से हरे–भरे पेड पर 'अमरबेल' चिपका हुआ होता है । जमीदार देशराज, उसकी प्रेयसी 'अजना', नाहरगढ के राजा तथा डाकू 'काली सिह' के अफीम के अवैध व्यापार तथा उनके पराभव की कहानी 'अमरबेल' की मुख्यकथा है । सुहाना और बागुर्दन गाव का जमींदार देशराज जमींदारी उन्मूलन के बाद अपनी प्रेयसी 'अजना' सहित अफीम के अवैध व्यापार मे लग जाता है । वह अफीम एकत्र कर नाहरगढ के बाघराज के हाथो बेचता है । अफीम विदेश भेजने के लिए बन्दरगाह तक पहुचने मे डाकू 'काली सिह' की सहायता करता है । देशराज के पुराने जमीदारी ढगो के विरूद्ध गाव के कार्यकर्तागण सक्रिय आन्दोलन छेड देते हैं ।

इधर देशराज तथा 'अजना' अफीम एकत्र करने के लिए 'लखनऊ', 'बनारस' तक पुलिस की आख मे धूल झोक कर यात्रा करते रहते हैं । उनका पराभव नजदीक आता है, और उनकी अफीम की पेटिया पकड ली जाती हैं । 'अजना' किसी तरह से बचकर भाग निकलती है । बाघराज सगीत सम्मेलन का आयोजन करते हैं, जिसमे 'अजना' और देशराज आते हैं, और लौटते समय 'बाघराज' के सकेत पर 'कालीसिह' उन सबको लूट लेता है । अत मे देशराज को कुछ मालुम होता है और वे मायावी अजना का साथ छोड़ देते हैं । लेकिन बाद में 'बाघराज' को उसके दण्ड के लिए सजा होती है । 'देशराज' सुधर जाता है, तथा 'काली सिह' डाकू मार दिया जाता है।

डॉ0 शशि भूषण सिंहल उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा पृष्ठ स0 180–181

*

10- आहत

इस उपन्यास मे जीवन के विविध क्षेत्रो से अर्जित अनुभवो को एकसूत्र मे पिरोकर वर्मा जी ने इस उपन्यास को प्रस्तुत किया है । उपन्यास का बालक 'दीपक सिह' को कथा का आधार बनाया गया है । वह शिक्षा प्राप्त कर तथा साथियो मे शरारत, मारपीट कर बिगड जाता है । माँ 'मजरी' से 'दीपू' को प्यार मिलता है, परन्तु अपनी शरारत के कारण पिता द्वारा पीटा जाता है । वह घर छोडकर भाग जाता है और कानपुर मे ढेले पर फल बेचकर लगन पूर्वक शिक्षा प्राप्त करता है । इधर 'मजरी' और 'अंगद' पुत्र की विरह मे पीडित है । अगद छोडकर अयोध्या चला जाता है और मजरी घर पर पूजा–पाठ मे लीन हो जाती है । कानपुर मे दीपू का विवाह छाया से होता है । विवाह के अवसर पर लालची और दुष्ट वर उसके पिता तथा बरातियो की छाया और उसकी सहेलियो चप्पलो से मरम्मत करती हैं । छाया उसी अवसर पर स्वस्थ, शिक्षित, निर्लोभ अपनी जाति के दीपक सिह को वर के रूप मे स्वीकार करती है । तभी रहस्योद्घाटन होता है कि विवाह मे गायन–वादन मे आयी साधुओ की जमात के गुरू 'रगनाथ' (अगद) थे और कोई नही । जो 'दीपक' के पिता थे । अतत उपन्यास मे घटना चक्र को घूमते हुए दोनो का सुखद मिलन हो जाता है ।

11- उदय-किरण

देश की स्वतत्रता के बाद डाबर ग्राम जागीरदारी के पजे से छूटकर विपन्नता से जूझ रहा है । 'मगनमाते' अपेक्षाकृत सम्पन्न कहा जा सकता है । क्षेत्र मे मडराते डाकू दल से सुरक्षित रहने के लिए चोरी–छिपे जब तब रसद पहुचाता रहता है । उसके घर मे उसकी बेटी 'किरण' है। जो साधारण पढी–लिखी, साहसी और नई रोशनी से प्रभावित है ।

पडोस के गाव 'कुँवरपुरा' से डाबर की लाग–डॉट रहती है । फसल की चोरी के मसले को लेकर दोनो के बीच मारपीट, मुकदमे मे परिणत हो जाती है । 'कुवरपुरा' के नव–शिक्षित उत्साही युवक 'उदय' आदि के प्रयत्नो से गाव के बीच मेल होता है । 'मगन' 'किरण' तथा पुलिस वालो के प्रयत्न से आततायी डाकू दल के अधिकाश लोग मुठभेड मे मारे जाते हैं । गाव मे सहकारिता आन्दोलन की क्रमश जडे जमाकर समृद्धि लाता है । दोनो गाव की एकता के प्रतीक स्वरूप उत्साही उदय तथा किरण का परस्पर विवाह हो जाता है ।

डॉ0 शशि भूषण सिहल उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा पृष्ठ स0 182–183

*
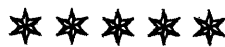
(ख)

वृन्दावन लाल वर्मा जी के उपन्यासों में ऐतिहासिक सॉंस्कृतिक संदर्भ

हिन्दी जगत मे वर्माजी एक ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप मे जाने जाते है, यद्यपि उन्होने उपन्यासो के अतिरिक्त 'कहानी' एव 'नाटक' भी लिखे है, लेकिन प्रसिद्धी एक उपन्यासकार के रूप मे मिली थी, उन्होने ऐतिहासिक उपन्यासो के अतिरिक्त सामाजिक उपन्यास भी लिखे है, लेकिन उन्हे लोग ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप मे ही अधिक जानते है । वर्माजी ने कुल 26 उपन्यासो की रचना की है, जिसमे 15 उपन्यास उनके ऐतिहासिक है, और 11 सामाजिक उपन्यास हैं । किसी भी देश या राष्ट्र के प्राण मे अवस्थित सस्कृति द्वारा युगीन परिस्थितियो के अनुरूप उसके राजनैतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक, जीवन का अनुप्राणित होना अनिवार्य है । किसी देश की 'सस्कृति' ओर 'सभ्यता' का परिचय प्राप्त करने और उसकी आत्मा तक पहुचाने के लिये उस देश की ऐतिहासिक परिस्थितियो की जानकारी आवश्यक है, प्राय इतिहास का अर्थ राजवशो के इतिहास अथवा तिथिक्रमानुसार युद्ध एव विषयो के विवरण से लिया जाता है, किन्तु भारतीय मनीषा ने इतिहास की नीति, साहित्य धर्म और समाज के व्यापक सन्दर्भो मे ही ग्रहण किया है, निश्चय ही राजवशो के इतिहास से ही किसी देश की सस्कृति का इतिहास समाप्त नहीं हो जाता । राजवश तो किसी नगर के बाह्य प्रकार के स्थानीय अग होते है । प्रकार के अन्दर प्रवेश करने पर ही जनता के वास्तविक जीवन का पता लग सकता है । भारतीय सस्कृति के प्रवाह और स्वरूप को समझने के लिये हमे जनता के विकास की दृष्टि से उसका अध्ययन करना होगा । [1]

इस दृष्टिकोण के कारण भारतीय इतिहास लेखन मे वस्तु निष्ठता या यथा तथ्यता का निर्वाह कम हुआ है । यद्यपि "प्राचीन भारतीय साहित्य मे बहुमूल्य सामग्री अतर नहीं था, विशाल भारतीय वॉग्मय मे बिखरे कण इतिहास के स्रोत भी हैं । प्राचीनतम् साहित्य वेदो का विश्व के प्राचीन इतिहास मे विशेष महत्व है" 1 प्राचीन साहित्य के आधार पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि वेदो के वर्तमान स्वरूप मे सपादित होने के समय तक भारत मे आर्य और आर्योत्तर एकाधिक सस्कृतियो के तत्वो का सामन्जन हो चुका था । वर्माजी ने अपने उपन्यासो मे भारतीय सस्कृति की इस उषापूर्व बेला का चित्रण नहीं किया है । उनके उपन्यास उत्तर वैदिक कालीन कलावधि से आरम्भ होता है, जैसा कि पहले ही निवेदन किया जा चुका है कि वैदिक युग के तिथि क्रम मे अभी निश्चय नही हो सका है, हा तद्युगीन परिस्थितियो का अनुमान धर्मग्रन्थों और परवर्ती साहित्य के सांकेतिक उल्लेखो द्वारा लगाया जा सकता है । वर्माजी ने इन्हीं स्रोतो को अपने "भुवन विक्रम" उपन्यास का आधार बनाया है । जिसमें अयोध्या के राजा रोमक का

1-भुवन विक्रम भूमिका पृष्ठ – 56–63

*

उल्लेख रामायाण मे, ऋषि धौम्य और उनके शिष्यो की कथा उनके महाभारत मे आती है । तत्कालीन अकाल शासन पद्धति और सामाजिक जीवन के सकेत भी प्राचीन साहित्य से ग्रहण किये गए है ।

'रोमक' के समय तक उत्तर भारत मे जनपदो का उदय हो चुका था । राजनेता का अपने पूरे रूप मे विकास हो चुका था । यद्यपि राजसत्ता अनियत्रित नहीं थी । सत्ता पर समिति विद्वानो, और ब्राह्मणो का अकुश रहता था । नगर सभा मे सभी श्रेणियो के लोगो को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था । समिति मे नियमानुसार राजा को उपस्थित होना पडता था । समिति उनके नीतियो की आलोचना कर सकती थी ।

अयोध्या उत्तर भारत मे व्यापार का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था । सरयू मे नाव द्वारा काबुल, मिस्र आदि देशो को सामान आयात–निर्यात होता था । कपडा, लोहे के हथियार, सुगन्ध और मसाले निर्यात के प्रमुख उपादान थे । व्यापारी वर्ग की स्थिति मजबूत थी, और उनका राजनीति पर बहुत अधिकार बना रहता था । वे विदेशी ऋण पर कस कर ब्याज लेते थे । ऋण ग्रस्त व्यक्ति को ऋण न चुका सकने की स्थिति मे अपने पशु और पशुधन के आभाव मे स्वय को साहूकार के हवाले करना पडता था । इस प्रकार आपकी वर्णाश्रम प्रणाली से दासो का एक भिन्न वर्ग उभर कर आया ।

ग्रामो मे श्रम और पारिश्रमिक के नियम अत्यन्त सरल थे । साल भर तक सौ गाय चराने पर दो गाय मजदूरी मे मिलती थी । दोनो समय दूध पीने को मिलता था। समाज मे धर्मानुसार वर्ण व्यवस्था को मान्यता मिल चुकी थी । सभ्यता अभी जटिल नहीं हुई थी, फिर भी ग्रामो और नगरो के जीवन मे भेद था । प्रकृति की गोद मे बसे आश्रम एव तपोवन भारत की वास्तविक सस्कृति के केन्द्र थे । उनमे विचार, विवेक, तप, अध्ययन और वर्चस्व बढ रहा था । इनके प्रति जनता मे श्रद्धा और सम्मान का भाव था । आश्रम उन युग की शिक्षा केन्द्र थे । वैसे नगरो मे भी मेघ जैसे वेतन जीवी उपाध्याय हुआ करते थे । आश्रमो और गुरूकुलो की शिक्षा प्रणाली सरल और सतुलित थी । शिष्य गरू के वात्सल्य पूर्ण कठोर अनुशासन मे जीवन के साथ–साथ लौकिक जीवन को स्वस्थ, सुन्दर और सफल बनाने के लिए गम्भीर अध्ययन और ग्रहन चितन के साथ–साथ श्रम और अध्यवसाय का अभ्यास बताया जाता था ।

इस युग मे भारतीय सस्कृति ओजस्विता से पूर्ण थी । उसमे सहिष्णुता और जागृत, विवेक के तत्वो की प्रधानता थी, तथापि दुराग्रहों व अन्धविश्वासो का नितात आभाव नहीं कहा जा सकता। समाज के एक ही वर्ग शूद्रो की तपस्या और राजा के कुकर्मों का अकालो का मूल कारण निरूपित करने के प्रयास चल रहे थे । त्याग, तपस्या और आश्रमो का ज्ञान–विज्ञान

भुवन विक्रम पृष्ठ – 5, 6, 7, 41, 20, 21

*

श्रद्धा–भक्ति की वस्तु थी, परन्तु प्रकृति की उन दृश्य शक्तियो को प्रसन्न करने तथा दृष्ट–अदृष्ट व्याधियो को दूर करने के लिए पूजा, बलिदान करने और जादू–टोने भी चलते थे ।

आज जिसे हम लोग भारतीय सस्कृति कहते, वह एक सस्कृति नही बल्कि अनेक सस्कृतियो का समुच्चय है । इसमे 'द्रविण', 'आर्य,' 'अप्टिक,' 'यवन', (ग्रीक) 'शक', 'कुषाण,' आदि अनेक सस्कृतियो के विभिन्न तथ्यो का ऐसा मिश्रण सम्मिलित है , जिन्हे पृथक–पृथक करके पहचानना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है । इसकी उपमा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने डेल्टा पर बने बालू के कडो से और कविन्द्र, रविन्द्र ने महासागर से दी है । सत्य ही मुसलमानो के आगमन से पूर्व न जाने कितनी ही जातिया इस महासागर मे अपनी सस्कृति सहित विलीन होकर उसी का अश बन चुकी थी । भारतीय मनीषी भी ऐतिहासिक परिस्थितियो की प्रेरणा से इस तथ्य को हृदयागम कर चुके थे कि उत्तर सस्कृतियो के नवीन उपयोगी तत्वो की उदारता पूर्वक आत्मसात करना और परिवर्तन के क्रम मे अपनी मूल चेतना को ढाल देना ही सास्कृति को जीवित और प्राणवान रखने का मूल मत्र है । इसलिए यवनो से भौतिक विज्ञान, ज्योतिष, कला तथा व्यापार सम्बन्धी अनेक उपलब्धियो से स्वय को सम्पन्न करके भी भारतीय सस्कृति अपने विशिष्टता की धनी रह सकती है ।

भारतीय सस्कृति के 'स्वर्णयुग' तक (गुप्तकाल मे) वर्णाश्रम की मान्यता स्वीकार करते हुए भी भारतीय चिन्तको एव व्यवस्थाकारो को विदेशी जातियो को अपने कर्म क्षमता योग्यता के आधार पर चतुर्वणी मे खपा लेने मे कोई कठिनाई नहीं हुई है । इसका मुख्य कारण भारतीय सस्कृति का तत्कालीन उदार और व्यापक दृष्टिकोण तो था ही, उक्त विदेशियो को भारत और भारतीय सस्कृति के प्रति मुक्त मनोभाव ने भी बहुत से गतिरोधो को खोजने मे सहायता दी । यह जातिया भारत मे आयी, भले ही आक्रमणकारी के रूप मे, पर यहा बस जाने के उपरान्त स्वय को विदेशी प्रमाणित नहीं होने दिया । यहा के निवासियो से उन्होने समानता के स्तर पर विवाह सम्बन्ध स्थापित किया । इतिहास साक्षी है कि शक राजाओ ने समकालीन सात वाहनो जो कि, हिन्दू सस्कृति के पोषक कहे जाते थे, से कहीं अधिक भारतीय सस्कृति, कला और विज्ञान को सरक्षण दिया ।

'हर्ष वर्धन' की मृत्यु के पश्चात् भारत मे कोई ऐसी प्रबल शक्ति नही थी, जिसका प्रभाव भारत को एक सूत्रता मे बाधे रखता था । छोटी–छोटी इकाईयो मे बिखर कर 'प्रतिहार', 'चौहान', 'चन्देल', 'राठौर', 'पवार', 'कलचुरी', 'चालुक्य', 'पल्लव', 'पाण्ड्य', 'चोल' आदि राजवश पृथक–पृथक प्रदेशो मे अपने रजवाडे स्थापित करने के प्रयास मे व्यस्त हो गये थे । वैसे तो सातवीं शताब्दी मे ही अरबों का सिन्ध पर आक्रमण हो चुका था, जिसके पश्चात् ढाई सौ वर्ष की लम्बी अवधि भारतीयो

भारतीय सस्कृति का विकास पृष्ठ स0 – 17

*

को सावधान होने के लिए मिली थी, किन्तु भारत के दुर्भाग्य से यहा के शासको ने इस अवसर का कोई लाभ नही उठाया।

'अशोक' और 'समुद्रगुप्त' का डर विदेशो मे अपनी सभ्यता सस्कृति की विजय की पताका लहराने का ओज उत्साह मे वे मूछो पर ताव देना, पडोसी को नीचा दिखाने की कोशिश मे लगा था । जब मुल्तान मे तुर्कों का जमाव हो रहा था । तो धार का 'यशोवर्मन चदेल' की शक्ति के विरूद्ध विदेशियो से सॉठ कर रहा था । गुजरात का 'जामसिह' अपने प्रभाव और शक्ति का भय तुर्कों से स्वदेश की रक्षा करने मे न करके चन्देलो से पुराने बैर प्रतिशोध को अधिक आवश्यक समझ रहा था, यही दशा और छोटे-मोटे राजाओ की भी थी । इसी परिस्थिति का लाभ उठाके 'महमूद गजनवी' ने भारत पर सत्रह बार आक्रमण करके भारत को रौद डाला, और अपार धन लूटा। एक से एक भव्य मन्दिर'और मूर्तियो को ध्वस्त कर दिया और भारत के राजा एक दूसरे के पराभव के दृश्यो से आननदित होते हुए अपने नाश की प्रतिक्षा करते रहे, फिर यही क्रम 'मुहम्मद गोरी' ने अपनाया ।'पृथ्वीराज चौहान' अपनी अदूरदर्शिता से शक्तिशाली 'चन्देलो' को कुचला और राठौरो को अपना शत्रु बना ही चुका था । 1192 ई0 मे उसकी पराजय और मृत्यु ने देश के केन्द्रीय भाग को विदेशियो के हाथ सौप कर सदियो के लिए भारत की दासता को लौह श्रृखलाओ मे जकड दिया ।

वर्माजी के अधिकाश ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी इसलिए तेरहवी शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक कलावधि की घटनाओ का समावेश है । उस समय की ऐतिहासिक परिस्थितियो का इतिहास सम्मत चित्रण करते हुए वर्माजी भारतीय सस्कृति की छटपटाती आत्मा की खोज मे व्यस्त रहते थे, जो पराधीन होकर भी अपनी मुक्ति के लिए निरन्तर सघर्षरत रहती थी । 1287 के लगभग दिल्ली के 'गुलाम वश' के अन्तिम शासक बलबन का सत्तापूर्ण सूर्य अस्त होता जा रहा था। वह विभिन्न विद्रोहो को दबाने और लौह रक्त नीति का अनुशरण कर रहा था । देश मे अशान्ति और अव्यवस्था को उसने शान्त नही कर पाया था । बुन्देल खण्ड मे कुण्डार (जुमौति) का किला सबसे शक्तिशाली माना जाता था, जहा लगभग 80 वर्ष से अपेक्षाकृत शान्ति स्थापित थी । "कुण्डार" के खगार शासक दिल्ली से सन्धिबद्ध थे, पर जुमौति मे परतत्रता मे इस जुए को उतार फेकने की ललक बलवती होती जा रही थी, कुण्डार के अधिनस्त 'व्यौना', 'माहोनी', 'मसनेह', 'बामौर', 'करेश' आदि के जागीदार नाममात्र को ही उसकी अधीनता मानते थे, दिल्ली का अधीन कालपी का मुसलमान सूबेदार कुण्डार पर छोटे मोटे आक्रमण कर लूटमार करने की ताक मे लगा रहता था, जुमौति के मनचले योद्धा जो युद्ध और अशान्ति के समय स्वागत किया करते थे । वे कालपी के लुटेरो को सहज ही धूल चटा सकते थे। किन्तु खंगारो की जाति मे अपने मे ही एक

डॉ0 भगवत शरण उपाध्याय हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास प्रथमखण्ड पृष्ठ स0 – 712

*

हीन समझने की भावना और दूरदृष्टि के अभाव ने 'परिहार', 'चालुक्य', 'चौहान', 'बुन्देलो' को सम्मिलित मौर्यों के बीच मे सगठित मही होने दिया । 'बुन्देलखण्ड' को तुर्की दासता से मुक्त करने के पूर्व खगारो का नाश तत्कालीन भारतीय शौर्य को अपना प्राथमिक कर्त्तव्य जान पडा था। [1]

पठान और तुर्क भारत मे 'स्वर्ण सचय' की कामना, मारकाट की आकाक्षा, स्त्रियो के अपरहण की वासना, राज्य स्थापित करने की लालसा और किसी भी प्रकार अपने मजहब के विस्तार को लेकर भारत मे घुसे थे । इन सब स्वार्थों का सामूहिक रूप से लेकर नाम था "बहिश्त" । इस बहिश्त के लिए भारत मे 'दिल्ली', 'मालवा', 'गुजरात' आदि सल्तनते स्थापित हुईं । सल्तनते कायम होने पर बाप ने बेटे को और बेटे ने बाप को अपने मार्ग का काटा समझकर विष देकर या फिर किसी अन्य उपाय स विष देकर दूर किया । इस बहिश्त की पानी ने सुल्तानो, उनके सरदारो और सिपाहियो को विलास प्रिय और निकम्मा बना दिया । मुल्ला और मौलवी राजनीति मे बढ–चढकर भाग लेते थे । वे प्राय मुसलमान सुल्तानो, सरदारो और सिपाहियो को धर्म युद्ध, जेहाद के लिए भडकाया करते थे । विधर्मियो का देश उनके लिए दारूलहर्ब था । इस्लाम की सेवा के लिए अन्य धर्मावलम्बियो को समझाकर व बल पूर्वक इस्लाम मे दीक्षित करना आवश्यक माना जाता था । इसलिए इस्लामेत्तर धर्मावलम्बियो के लिए इस्लाम स्वीकार करना अथवा मृत्यु का वरण करना रास्ता बचा था ।'सिकन्दर लोदी' जैसे धर्मान्ध शासको ने मुल्ले मौलवियो की कट्टर वादिता के प्रभाव से भारतीय प्रजा को जैसा न्याय, शान्ति और सरक्षण दिया वह 'बोधन शास्त्री' और 'निहाल सिह' की निर्मम हत्याओ से सहज ही पता चलता है । गैर मुसलिम जनता के प्रति ऐ विदेशी न केवल अनुदार थे, बल्कि उनका व्यवहार नृशसता की कोटि का था । वे यहा की सभ्यता, सस्कृति, धर्म, दर्शन, नीति और रीति–रिवाजो का हर सभव तरीके से अपमान करते थे तथा अनुयायियो का वध कर डालते थे । [2]

'शेरशाह सूरी' के शासन और सुव्यवस्था की इतिहासकारो ने भूरि–भूरि प्रशसा की है और 'अकबर' को तो एक स्वर से उदार, समन्वयवादी, सहिष्णु महान आदि विशेषणो सहित स्मरण किया जाता है । निश्चित ही उक्त दोनो शासक के रूप मे पहले और परवर्ती मुसलमान शासको से कहीं अधिक योग्य और श्रेष्ठ सिद्ध हुए । 'अकबर' द्वारा 'तीर्थ यात्री' और 'जजिया' करो से हिन्दुओ को मुक्त कर देना भी अपने युग की सकीर्ण, सम्प्रदायिकता की तुलना मे बहुत ऊची बात थी, किन्तु इन कार्यों के पीछे हिन्दुओ के प्रति आदर या स्नेह की प्रेरणा समझना एक सुखद भ्रम मात्र है ।[3]

'शेरशाह' द्वारा रायसेन के शासक 'पूरनमल' के प्रति विश्वासघात और उसकी उच्च वशीय विजेता परिवारों के प्रति घोर अपमान जनक अत्याचार परवर्ती 'गुलाम कादिर' आदि रूहेलो की

*

निर्ममता से किसी प्रकार से कम नही कहे जा सकते है । 'रायसेन' के बाद 'कालिजर' विजित दुर्गपति 'कीर्तिसिह चन्देल' का सिर कटवा लेना भारतीय नैतिकता के बिल्कुल विपरीत किन्तु तुर्क आक्रमणो के परम्परा के अनुकूल ही था । ये घटनाए इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है । इसी प्रकार साम्राज्य का भी 'अकबर' के गोडवाना पर आक्रमण का किसी बहाने से ढका जा सकता है । 'दुर्गावती' जैसी महान शासिका ने उसके राज्य या स्वार्थ के किसी अग पर कभी चोट नहीं की थी, फिर भी वह गोडवाने को हडपने पर तुल गया । वस्तुत हिन्दुओ या राजपूतो के प्रति प्रदर्शित उसकी उदारता उसके राजनैतिक कौशल की एक भगिमा कही जा सकती है। जिसे वह तभी तक व्यवहार मे ला सकता है, जब तक उसके दृष्टिकोण या स्वार्थ पर आच न आती हो । हिन्दू राजाओ की स्वतत्रता उसकी भी आखो मे काटे की तरह खटकती थी, और उसे कुचल डालने मे उसने कोई हिचक नही दिखाई । इस सन्दर्भ मे 'राणा प्रताप', 'दुर्गावती' के सघर्ष को भारतीय स्वाधीनता की चेतना का परतत्रता के अकुश के प्रति विरोध समझना चाहिए । [4]

अकबर द्वारा दृढता से स्थापित और व्यवस्थिति मुगल साम्राज्य 'जहागीर' एव 'शाहजहा' के शासनकाल मे अपनी समृद्धि की सीमा छू चुका था । 'औरगजेब' की कट्टरवादिता तथा दीर्घ दक्षिण अभियानो ने इस विशालकाय साम्राज्य की नीव तक हिला दिया । फलत उसके सशक्त उत्तरदायी व्यक्तित्व के निशेष होते ही राजाओ और प्रातीय शासको को सिर उठाते देर नही लगी । 'बहादुर शाह' की मृत्यु के पश्चात् मुगल शहजादो मे उत्तराधिकार का युद्ध हुआ उसमे साम्राज्य के सेवक अनुभवी कर्मचारियो का प्राय अत हो गया । इन परिस्थितियो मे सैय्यद भाइयो की सहायता से 'फर्रूखसियर' दिल्ली के सिहासन पर बैठा । इस दुर्बल बादशाह की अपेक्षा इसे सैय्यद भाईयो का शासन काल कहना अधिक उपयुक्त होगा । [5]

दक्षिण मे मराठो का विकास उस युग की प्रबल शक्तियों के रूप मे हो चुका था। शिवाजी और प्रथम पेशवा ने स्वभाव से साहसी, कष्टसहिष्णु, सघर्षशील मराठो मे स्वराज के लिए लगन और राष्ट्रीय चेतना फूक दी थी । इस युग तक आते-आते उनका प्रभाव दक्षिण से उत्तर तक फैल गया था । 'शिवाजी' के स्वराज्य और 'हिन्दू पद पादशाही' की स्थापना के प्रति मराठो का अपार उत्साह था, परन्तु इसका कोई निश्चित अर्थ इनकी कल्पना मे स्पष्ट नही था । महाराष्ट्र के बाहर जाकर 'चौथ', 'सरदेशमुखी', 'आहना', 'लूटमार' करना, बधे हुए हिस्से के अनुसार उसको बाटना, सरदारो की जागीरे और साधारण सिपाही को सोना चादी मिल सके । साधारणत. स्वराज्य का यही अर्थ लगाया जाता था । दक्षिण मे निजाम 'मराठा शक्ति' का प्रबल शत्रु था । उससे निरन्तर युद्ध चलते ही रहते थे । मराठा सरदारो में जातीयता, पद प्रतिष्ठा एव जागीर प्रथा के कारण मन मुटाव की धुन लग चुकी थी ।

*

राजस्थान के जयपुर, जोधपुर और बूदी राज्य कभी भी एक न हो सके । अपनी गृह–कलहो को हल करने के लिए वे प्राय मराठो को निमत्रित करते थे । मराठो ने राजपूतो के आदर्शों से अपने आदर्शों के समन्वय का प्रयास किया परन्तु राजपूतो की गृह–कलहो और व्यक्तित्व मग्नता ने उन्हे दूरदर्शी न बनने दिया ।[6]

उक्त परिस्थितियो की पृष्ठभूमि ने 'नजीब खा' रूहेलो एव अन्य लुटेरो की साठ–गाठ से लूटपाट की आशा लिये 'अहमदशाह अब्दाली' ने मुगल बादशाह 'अहमदशाह' के शासनकाल मे भारत पर आक्रमण किया । मुगल बादशाह के निमत्रण पर मराठो से पानीपत के मैदान मे इस विदेशी लुटेरो और देशी विश्वास घातियो की सेनाओ का घमासान युद्ध हुआ । यदि इस युद्ध मे मराठो को जाटो, सिक्खो और राजपूतो का सहयोग मिल जाता तो न केवल 'अब्दाली' के अत्याचारो और लूटपाट से भारत की जनता को छुटकारा मिल पाता । प्रत्युत अग्रेजो की विस्तारवादी कूटनीति पर भी प्रतिबन्ध लग सकता था । किन्तु जाटो को मराठो के सेनानायक "सदाशिव राव भाऊ" अपने ब्राह्मणत्व के अदम्य और राजनैतिक मतभेदो से पहले ही अप्रसन्न और विमुख कर चुका था । राजपूतो की अदूरदर्शिता की चर्चा यथा प्रसग की जा चुकी है, और 'सिक्ख,' 'मराठो' को अपने स्वार्थ मे बाधक समझते थे । परिणाम स्वरूप भारत की सबसे प्रबल मराठा शक्ति का दारूण पराभव हो गया ।

'माधवजी सिधिया' ने अपने अत्यल्प सहयोगियो के साथ टूटते हुए भारत मे विखरती हुई मराठा शक्ति को पुन समेटने का प्रयास किया गया । इसमे वह बहुत सीमा तक सफल भी हुआ, किन्तु मराठो की आपसी गलत फहमी ने उत्तर और दक्षिण भारत मे असख्य समस्याये खडी कर दी । 'नाना फडनवीस' की प्रेरणा से उत्तर मे तुकोजी होल्कर 'माधव जी सिधिया' के करे धरे पर पानी फेरता रहा । दक्षिण मे 'राघोवा' अग्रेजो से सधिया करके मराठो के अधिकृत प्रदेशो को दाव पर लगा रहा था । पूना दरबार तथा नाना 'तुकोजी' के प्रपचो से अनियमित होने के कारण न्याय पराणय 'अहिल्याबाई' भी 'माधवजी सिधिया' के विरूद्ध होती गईं । बुन्देलखण्ड मे 'सिधिया होल्कर' व भोसले के आपसी दाव–घात तथा कतर व्योत की नीति ने 'सागर' 'धामोनी' आदि छोटे–छोटे राज्य का निरन्तर युद्ध और लूटमार मे लिप्त रखा । देश व्यापी अराजकता से लाभ उठाकर उक्त दोनो ही राज्य अपनी सत्ता के लिए सघर्षों मे गुथ गए । 'होल्कर' ने 'सिंधिया' के प्रति अपनी हिसा को तृप्त करने के लिए सिधिया के आश्रित सागर के विरूद्ध पिण्डारी लुटेरो को शह दी । धन और रक्त के प्यासे पिण्डारी ने सागर को महीनो अग्नि कुण्ड बनाया रखा । [7]

सोलहवीं शताब्दी से ही भारत मे यूरोपीय जातियो का आगमन हो चुका था । मुगल साम्राज्य 'जहागीर' उन्हे बसने की छूट और व्यापार करने का सुनहरा फरमान भी दे चुका था ।

*

उस समय किसी को भी स्वप्न मे भी यह अरमान न था कि ये विदेशी व्यापारी एक दिन समस्त भारत को अपनी कूटनीति के पाश मे बाध कर शासक बन बैठेगे ।

मुहम्मद शाह रगीला के शासनकाल मे केन्द्रीय शासन की जड मे उठा गुटबन्दी का विष विटप और विकसित हो चुका था । शक्तिशाली सरदार स्पष्टत हिन्दुस्तानी और तुरानी दलो मे बट चुके थे । King maker सैय्यद बन्धु स्वय को भारतीय मानते थे, और कुदेशी वशी होते हुए भी होली, दीपावली आदि त्यौहारो को बडी उत्साह से मनाते थे, किन्तु प्रभुता के अभियान और 'मुहम्मदशाह' के षड्यन्त्र से 'सैय्यद भाई' मारे जा चुके थे, फिर भी हिन्दुस्तानी दल का काफी दबदबा रहता था ।

सवाई 'राजा जयसिह' उनके सम्मानित सहयोगी थे, और राजा 'शुभकर्ण' जैसे मित्रो के लिए सम्पत्ति पर और प्राणो को भी सकट मे डालकर मैत्री की मर्यादा रखने का हौसला रखते थे । हिन्दुओ के प्रति यह उदार मैत्री एव समानता का भाव तुरानी दल की आखो मे खटकता था । इस दल मे अधिकतर 'ईरानी', 'तुरानी', 'ईराक', 'कुर्दिस्तान', 'अरब', 'तुर्की' तथा समरकद आदि के भगोडे शामिल थे । ये लोग भारत मे पैसे और प्रभाव की आकाक्षा से आये थे । इस देश की सस्कृति और निवासियो से तनिक भी लगाव नही था । साम्प्रदायिक कट्टरता इनकी विशेषता थी । हिन्दुस्तानी गुट को शक्तिहीन करने के बहाने भारतीयता को मिटाना इनकी दृष्टि मे तत्कालिक नीति की सबसे बडी सफलता थी ।

'आसफ जाह निजामुल्मुल्क', 'सादत खा' एव 'नासिरूद्दीन खा' आदि जाने माने अमीरो और वजीरो का इस गुट के सिर पर वरद हस्त था । ये सरदार पुराने दल की साम्प्रदायिक हिसा को भडका कर अपना उल्लू सीधा करने की ताक मे रहते थे । मदिरा के प्याले मे डूबी मुगल बादशाहत अपनी सत्ता की इन ज्वालाओ को बहुत धीरे–धीरे जलते देख रही थी, पर उसमे बुझा सकने का साहस नहीं था ।[8]

मुगल साम्राज्य बिखरने की कगार पर खडा अपने ही महत्वाकाक्षी सरदारो के क्षूद्र स्वार्थों के कारण छला जा रहा था । 'निजाम' अपना अलग राज्य बनाने के होड मे लगा था । असन्तुष्ट स्वार्थी सरदारो ने 'नादिरशाह' को भारत पर आक्रमण करने का निमत्रण दिया । प्रशासन की दुर्व्यवस्था का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि 'पेशवा बाजीराव' के 'दिल्ली' की ही सीमाओ मे बेरोक–टोक छापे मारते रहते थे, और 'अलिफ–लैला', 'हातिमताई' के किस्सो मे मस्त बादशाह इन समाचारो को गप समझ कर निश्चिन्त बना रहता था ।[9] इसी अस्त–व्यवस्त स्थिति मे 1739 मे 'नादिरशाह' का इतिहास विरूद्ध आक्रमण होता है । जिसने लडखड़ाती मुगल सत्ता को एक बार के भीषण आधी से झकझोर दिया था । दिल्ली मे खूब कत्ले आम, लूटपाट और

*

रक्तपात करके 'नादिरशाह' कराहती जनता को छोडकर करोडो रूपयो के साथ 'कोहिनूर' से बना मुगल बादशाहो का 'तख्ते ताउस' भी लेकर चला गया । दिल्ली और उसके आस–पास के गाव वीरान हो गये । खेती, किसानी, वाणिज्य व्यापार उजड गया । दिल्ली से आगरे तक लूट, घसोट, मारा, मारी, चोरी, डकैती की बाढ सी आ गई थी ।[10]

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे उत्तर भारत की राजनीतिक अवस्था और भी हीन हो चुकी थी । 'मुहम्मदशाह' के अल्पकालिक कठपुतली बादशाह कैद की काल कोठरी मे मौत की घडिया गिनते हुए शिहाब जैसे हृदयहीन बज्र लोभी वजीरो द्वारा निकाले जाते और सिहासन पर कुछ समय के लिए सजा दिए जाते थे । फिर वजीरो का स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर कल्पनातीत अपमान, पीडा और दुर्दशाओ मे पटक दिया जाता था ।[11]

19वीं शताब्दी के आरम्भ मे आपसी फूट की धुन से क्षीण मराठा सघर्ष के होल्कर, सिधिया, भोसले आदि प्रमुख स्तम्भो को भी अपनी कूटनीति से अग्रेज हिला चुके थे । इस नई जाति की नई प्रणाली से बुन्देलखण्ड अन्य प्रान्तो की तरह सम्मोहित और सप्रभावित हो चुका था, परन्तु तब तक उसी जकड मे उतनी कठोरता नही आई थी कि परम्पराए और स्थानीय नीतिया बिल्कुल निर्जीव हो जाये ।[12]

1817 मे पेशवा 'बाजीराव द्वितीय' से अग्रेजो की अतिम सधि हुई, जिसे परवर्ती ऐतिहासिक परिस्थतियो के क्रम मे अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जा सकता है । इस सन्धि के अनुसार पेशवा को बुन्देलखण्ड मे अपने सम्पूर्ण अधिकार अग्रेजो को सौंप देने पडे । और 18वीं सदी मे उत्तर और दक्षिण भारत की सबसे बडी शक्ति का प्रतीक पेशवा अपने घर पूना से निष्कासित बिठूर मे अग्रेजो का 8 लाख रूपये पेशन लेकर रहने पर बाध्य किया गया । पेशवा के अधीन झासी बुन्देलखण्ड के राज्य अनायास ही अग्रेजो के अधीन हो गये । अब कम्पनी सरकार अपने मनमानी कानूनो को देशी राज्य पर लादने के लिये स्वतत्र थी । कभी वह दत्तक थे, उत्तराधिकारी पर अकुश लगाती और कभी आराजकता पर कुप्रबन्ध के नाम पर राज्य को कोर्ट कर लेती थी ।[13] इन्ही परिस्थितियो मे झासी के राजा 'गगाधर राव' की मृत्यु हो गयी । अग्रेजो ने अपनी हडप नीति के अनुसार स्वर्गीय राजा के दत्तक पुत्र 'दामोदर राव' को राज्य का उत्तराधिकारी मानने से इन्कार करके 1854 मे झासी को अग्रेजी राज्य मे मिला लिया । 1857 के सग्राम मे उक्त घटना का विशेष महत्व है । इस विवरण को वर्मा जी ने अपने उपन्यास "झांसी की रानी लक्ष्मी बाई" मे उपन्यस्त किया है ।

उपर्युक्त पूर्व पृष्ठो की घटनाओ से यह स्पष्ट हो जाता है कि 12वीं शताब्दी के अत से ही भारत एक के बाद एक विदेशी आक्रमणो के चंगुल मे फसता रहा । डॉ0 "वेनी प्रसाद" का यह

*

कथन विदेशी दृष्टिकोण से प्रभावित इतिहासकारो के मत के ठीक विपरीत उक्त तथ्य को इन शब्दो मे पुष्टि करता है– "विशेषत बुन्देलखण्ड एव बघेलखण्ड तो दिल्ली या आगरे के किसी भी मुस्लिम शासक द्वारा पूरी तरह न जीते जा सके । इनके अतिरिक्त उडीसा तथा बगाल के उत्तर पूर्व भाग के कुछ छोटी–मोटी रियासते दीर्घकाल तक स्वाधीन रहीं" ।[14] अत 1857 के स्वतत्रता सग्राम का छुट–पुट सैनिक विद्रोह मानना नितात भ्रामक है । इसके पीछे सास्कृतिक एकता के विश्वास पर आधारित "स्वराज्य" की निश्चित योजना थी, भले ही परिस्थिति वश वह कार्यान्वित न हो पाई हो ।

इस पूरे समय मे 'सामत,' 'सरदारो,' 'राज बादशाहो,' 'अमीर' 'उमराव,' एव 'जागीरदार' मनसबदारो की स्वार्थपूर्ण महत्वाकाक्षाओ की चक्की मे सामान्य जनता को निरन्तर पिसना पडा था । खेती नष्ट हुई, धर्म स्थानो एव•स्त्री बच्चो को अपमानित करने की परम्परा नहीं थी । फिर भी उनको प्रताडित किया जाता था । वर्माजी के उपन्यास "देवगढ की मुस्कान" मे स्पष्ट वर्णन किया गया है । [15]

तुर्क आक्रान्ताओ की रणनीति भारतीय सस्कृति के आदर्शों से नितान्त भिन्न थी। आक्रमण के क्रम मे गाव के गाव तलवार से मौत के घाट उतार दिये जाते या आग मे झोक दिये जाते थे । खेती उजाड दी जाती थी, स्त्रियो का घोर अपमान किया जाता था, इसलिए आक्रमण के समय प्रजा को घर द्वार छोडकर राम भरोसे किलो, जगलो, पहाडो मे सिर छुपाना पडता था । ऐसी स्थिति मे वर्माजी के उपन्यास "विराट की पद्मिनी" मे बडी रोचक ढग से प्रस्तुत है ।

प्रसिद्ध विद्वान "मूरलैण्ड" ने-13वीं सदी से 18वीं सदी तक के भारतीय समाज मे यथार्थ ही किसान वर्ग को सबसे अधिक शोषित निरूपित किया है ।

तत्कालीन नीतियो के कारण समाज धनी व निर्धन वर्ग के जीवन स्तर मे आकाश–पाताल का अतर आ गया था । मुगल दरबार 'तैमूर' शान शौकत की परम्परा का उत्तराधिकारी था । भारत की समृद्धि ने इसमे चार चाद लगा दिया । मुगलिया दरबारो का वैभव, सम्पन्नता, और ऐश्वर्य दिखने दिखाने योग्य था । उन दरबारो की चका–चौध पर मुग्ध अमीर उमराव स्वभावत इस ठाट–बाट का अनुशरण कर उठे । मृत्यु के बाद सम्पत्ति को राज्य द्वारा अपहृत कर लिये जाने के कानून ने भी अपव्ययता और अय्यासी को बढावा दिया । हिन्दू राजा–रावो के दरबारो मे भी यह रोग फैला । यहा तक कि सादगी के प्रतीक मराठो में भी वैभव और शान शौकत के प्रदर्शन का दुर्गुण व्यसन की सीमा तक फैला था ।[16]

जिस समय राजा नवाब आदि स्वार्थ सिद्ध एव दुराचार मे आकण्ठ निमग्न थे, उस समय प्रजा अपनी थोडी सी भूमि और छोटी सी सम्पत्ति के बचाव की फिक्र न करती हुए भी देवालयो

*

मे जाती थी, कथा–वार्ता सुनती और दान–पुण्य करती थी । सध्या समय लोग भजन गाते थे । परस्पर सहायता के लिए यथावकाश प्रस्तुत करते थे। बडो के सार्वजनिक पतन की इस विषमयी छाया मे भी इन छोटो मे छल, कपट और बेइमानी का विशेष प्रसार नही हो पाया था ।'सिक्खों' के सन्त धर्म का सैनिक धर्म मे रूपान्तर तथा गुसाइयो का शस्त्र निपुणता भी इसी तथ्य का ज्वलन्त उदाहरण है । मजदूर और शिल्पी मजूदरी और बेगार के दोहरे शोषण से कराह–कराह उठता था । अत्यधिक विलास प्रियता ने उच्च वर्ग की नैतिकता को प्रभावित किया ।'छल,' 'प्रपच,' क्रूरता 'आराम' 'तलबी,' 'विश्वासघात,' 'लोलुपता,' 'स्वार्थपरता' आदि 'दुर्गुण' इस युग के उच्च वर्ग के सामान्य दुर्गुण थे, फिर भी यह देखने मे आता है कि हिन्दुओ की शरणागत वत्सलता, वीरता और वचन के वैभव की विरोधी मुसलमानो तक मे साख थी । [17]

भक्ति आन्दोलन तथा 'सूरदास,' 'नन्ददास,' 'तुलसीदास' जैसे कवियो के सरस पवित्र वाणी ने युगो तक की विपत्तियो के कसते टूटे काटो की पीडा सहने की शक्ति प्रदान की । सतो और भक्तो के नैतिक आदर्शों ने भारतीय सस्कृति के बहुत कुछ युगीन कदर्भ से बचाये रखा । यद्यपि धार्मिक विसगतियो और मूर्खतापूर्ण और अधविश्वासो की कोई कमी नहीं रही, तथापि अध्यात्म प्रधान सस्कारो ने भारत की आत्मा को घोर ग्लानि के क्षणो मे उभरने का साहस दिया । इस तथ्य से इकार नही किया जा सकता ।

इस्लामी सस्कृति से भारत का परिचय मैत्री पूर्ण वातावरण मे न होकर अत्याचारी ध्वसक आक्रमको के माध्यम से हुआ था । इस्लाम उस समय धार्मिक नवोन्मेष के उन्माद मे था । आरम्भ मे उसने भारत को जिस असहिष्णुता एव कट्टर बर्बरता का परिचय दिया, उससे समन्वयवादी, सहिष्णु और धार्मिक दृष्टि से अनेकान्तवादी भारतीय मानस को गहरा धक्का पहुचा । परवर्ती युग मे कटुता और विदेश को मिटाया भी जा सकता है, जैसा कि इस्लाम से पूर्वागन्तुक विदेशियो के सन्दर्भ मे हुआ था, परन्तु अपने धर्म की उच्चता और विजेता होने के गर्व मे इस्लामी सस्कृति द्वारा समानता की व्यवहारिक भाव भूमि पर ऐसे प्रयास हुए ही नही । सूफी सन्तो की समन्वयवादी प्रयास धार्मिक स्रोत तक ही सीमित रहे । राजनैतिक प्रभाव की दृष्टि से 'अकबर' जैसे थोडे से अपवाद इतिहास की राजनैतिक परिस्थितियो को मोडने मे चाहे समर्थ हो सकते थे, हुए भी, परन्तु सास्कृतिक परम्परा को प्रभावित नहीं कर सके । संस्कृति तो एक समष्टि–समन्वित दीर्ध परम्परा है । इसे व्यक्तिगत प्रयास या किचित ही प्रभावित कर सकते हैं । आमूल परिवर्तित नहीं, यही कारण है कि पूर्ववर्ती सास्कृतियो के समान 'इस्लामी सस्कृति' का कभी 'भारतीय सस्कृति' से आत्मीकरण नहीं हो सका । मतभेदों की खाई पूरी तरह पट नहीं सकी । विजित भारतीय जनता ने विजेताओं के धार्मिक अत्याचारो और अपमानो का प्रतिशोध सास्कृतिक धरातल पर लिया ।

*

उसने विजेता मुसलमानो को अछूत का दर्जा दिया । उनके हाथ का खाना–पीना या पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित करना शायद ही कभी सम्भव हुआ हो ।

भारतीय सस्कृति कहने मात्र से परवर्ती प्रवृत्तियो की चर्चा अनिवार्यत "हिन्दू और मुसलिम" इन दो पृथक–पृथक शीर्षको के अन्तर्गत करनी पडती है । अपने पृथकतावादी, बल्कि बहुत कुछ विरोधी धार्मिक एव सास्कृतिक आदर्शो के कारण पूर्वागन्तुक विदेशियो के समान मुसलमान कभी भी इस देश, समाज और सस्कृति के अग नही बन सके । फिर भी सस्कृति की मूल प्रवृत्ति के अनुसार साथ–साथ रहती हुई इन दो सस्कृतियो मे समीकरण और सामजस्य की प्रक्रिया जाने–अनजाने आरम्भ हुई । जिसका सार्वाधिक उल्लेखनीय प्रभाव परवर्ती कलाओ पर पडा । विशेषत 'मुगल सम्राट' कलाओ के अच्छे सरक्षक और मर्मज्ञ सिद्ध हुए । इस्लाम मूर्तिकला का कट्टर विरोधी था, अत इस कला के विकास का तो प्रश्न ही नही उठता । मूर्ति भजको के इस युग मे भक्ति आन्दोलन की सबल सगुण धारा की प्रेरणा वश देवविग्रहो के निर्माण एव 'मानसिह तोमर' आदि हिन्दू राज़ाओ के सरक्षण के कारण यह कला जीवित बनी रही, यही बडी बात है । हा 'चित्रकला', 'वस्तुकला', 'सगीतकला', आदि मे कुछ ईरानी प्रभाव समाविष्ट हुए ।[18]

'बाबर' और 'हुमायू' दोनो ही चित्रकला के प्रेमी थे । पारिवारिक और राजनैतिक उलझनो मे भी 'हुमायू' ने ईरानी चित्रकार 'अब्दुल सम्मद' और 'मीर सईद अली तबरेजी' को भारत बुलाया । इन कलाकारो के माध्यम से ईरानी शैली का भारत से सीधा सम्पर्क हुआ । स्थापत्य कला मे भारतीय और ईरानियो शैलियो के समन्वय का महत्वपूर्ण कार्य हुआ, जो "मुगल कलम" के नाम से प्रसिद्ध हुई । स्थापत्य की दृष्टि से यह युग विशेष रूप से उल्लेखनीय है । विद्वानो के अनुसार ससार के किसी भी देश मे इतने अधिक और इतने सुन्दर भवनो का निर्माण नहीं हुआ, जितना कि भारत मे । [19]

सगीत के क्षेत्र मे सबसे पहले "अमीर खुसरो" द्वारा भारतीय ईरानी पद्धतियो के मिश्रण से 'खयाल', 'कौव्वाली' और 'तराना' का प्रचलन हुआ । जौनपुर के "हुसैन शाह शर्की" तथा 'मानसिह तोमर' द्वारा इस कला का भरपूर सरक्षण हुआ । 'मानसिह' के सरक्षण मे 'बैजू' नायक ने ध्रुपद को नवीन सिरे से 'माजा' तथा 'गुजरी' 'टोडी', 'मगल' टोडी, 'गुजरी', 'ललित' 'गुजरी' आदि नई राग रागनियो का आविष्कार किया । 'अकबर' के नवरत्नो मे महान सगीतकार 'तानसेन' की ख्याति सुविदित है ही । 'अलबत्ता', 'सारगी', 'दिलरूवा', 'ख्वाब', 'सुर' 'सिगार' और 'तरब' 'अलगोजा', 'शहनाई' आदि विदेशी वाद्य यत्रो ने भारतीय आर्केस्ट्रा से अभिन्नता स्थापित कर ली ।

इसके अतिरिक्त दीर्घकालीन साहचर्य से रहन–सहन और रीति–रिवाज मे भी कुछ समान तत्व विकसित हुए । जैसे . चादर चढाना, मन्नत मानना, आदि रीतिया और होली रक्षाबन्धन आदि

*

त्यौहारो को उदार हृदय मुसलमानो ने अपना लिया । 'रहीम,' 'रसखान,' 'शेख आलम,' 'ताज' 'कुतुबन,' 'मझन' 'जायसी' आदि कवियो ने भारतीय काव्य पद्धति काव्य रूढिया आदि अपना कर हिन्दी साहित्य को समृद्धि किया । हिन्दी भाषा ने फारसी को नाजुक बनाया, और अलकरण को काव्य मे उतारा । मुगलो की 'नजाकत,' 'नफासत,' और सुरूचि पूर्ण परिधान भी उच्च वर्गीय हिन्दुओ मे काफी प्रचलित हुआ, किन्तु इन अल्प तत्वो के सामजस्य से सास्कृतिक एकता का महत् कार्य पूरा नही हो जाता । इस्लामी सस्कृति का रूख कुछ आक्रामक सा ही रहा । इसे 'भारतीय सस्कृति' की प्रतिरक्षा की प्रक्रिया मे स्पष्ट देखा जा सकता है ।[20]

अग्रेजो के सम्पर्क मे आने पर एक बार पुन सास्कृतिक क्षेत्र मे आत्म–परीक्षण और पुर्नमूल्यन की प्रवृत्ति जागी । आधुनिक युग के आरम्भ मे हुए विविध धार्मिक सामाजिक एव राजनैतिक आन्दोलनो के मूल मै सास्कृतिक जागरण का यही सुगबुगाहट सर्वत्र देखी जा सकती हे । इस उपर्युक्त विवरण मे ऐतिहासिक सास्कृतिक परिस्थितियो पर विचार करते हुए यह स्पष्ट हो गया कि आज जिसे भारतीय सस्कृति की सज्ञा देते हैं, वह किसी एक जाति की देन नहीं है, उसे वर्तमान रूप देने मे 'द्रविण,' 'नेग्रीटो,' और 'आस्ट्रिक' सस्कृतियो से भी बहुत से महत्वपूर्ण तत्व प्राप्त किए है । इस सगम के यही आर्य और आर्योत्तर तत्व ही भारतीय सस्कृति के मेरूदण्ड है ।[21] पश्चात् भी 'यूनानी' 'पहलव,' 'शक,' 'हूण,' 'मूची,' 'मुसलमान' और 'ईसाई' लोग भारत मे अपनी पृथक– पृथक सस्कृति लेकर आये । भारतीय सस्कृति ने इससे आवश्यक और अपने मौलिक स्वरूप के अनुकूल प्रतीत होने वाली सामग्री ग्रहण कर आत्मसात कर अपना अग बना लिया । स्पष्टत यह क्रिया एकदिन या सीमित काल मे सम्पन्न नहीं हुई बल्कि सस्कृति का पूरा पैटर्न होते, बनाते सवारते, सदियो का समय लगा होगा । इस प्रकार एक समन्वयवादिता, सस्कृति की सर्वप्रमुख विशेषता है ।

विविध सस्कृतियो की महत्वपूर्ण विशेषताओ को आत्मसात करते–करते 'सहिष्णुता,' 'उदारता' और 'अनुकूलन' के गुण सहज ही इस सस्कृति मे विकसित हुए हैं । इस प्रकार ऐतिहासिक विकास के क्रम सास्कृतिक सन्दर्भ अपने आप स्पष्ट दृष्टि गोचर होने लगता है, और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक सगठन, रीति, नीति और दर्शन सबमे कट्टर सिद्धात वादिता की अपेक्षा भारतीय सस्कृति मे सदैव उर्वर समन्वय का परिचय दिया है । इसी सहिष्णुता के कारण अन्य सस्कृतियो की विशिष्टताओ को अपनी जीवन शक्ति विकसित करने मे हमारी सस्कृति को कोई कठिनाई नहीं हुई । इतिहास साक्षी है कि जिस युग मे इन तत्वो का जितना विकास हुआ है, उस युग की संस्कृति उतनी ही उन्नति शीलता की ओर अग्रसर हुई है ।[22]

*

अगले अध्याय मे मै यह स्पष्ट करने का प्रयास करूगा कि वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासो मे ऐतिहासिक, सास्कृतिक सदर्भों का साहित्य मे कैसे रूपान्तरण हुआ है।

सन्दर्भ-सूची

1 ईश्वरी प्रसाद –	भारतीय मध्य का इतिहास	पृष्ठ स0 – 495
2 परमात्मा शरण –	मध्यकालीन भारत	पृष्ठ स0 – 495
3 डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार	दिल्ली सल्तनत	पृष्ठ स0 – 176–177
4 डॉ0 एस0 आर0 शर्मा	भारत मे मुगल साम्राज्य	पृष्ठ स0 – 290
5 डॉ0 राम प्रसाद त्रिपाठी	मुगल साम्राज्य का उत्थान और पतन	पृष्ठ स0 – 100
6 माधव जी सिधिया	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 25–29
7 माधव जी सिधिया	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 31
8 सोती आग	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 15,16,55,85,127,128
9 टूटे काटे	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 108, 44
10 टूटे काटे	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 87
11 माधव जी सिधिया	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 38
12 हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता	डॉ0 वेनी प्रसाद	पृष्ठ स0 – 433, 434
13 झासी की रानी लक्ष्मीबाई	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 82
14 हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता	डॉ0 वेनी प्रसाद	पृष्ठ स0 – 440
15 मृगनयनी	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 123
16 माधव जी सिधिया	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 172–173
17 विराट की पद्मिनी	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 60
18 हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास (पाचवा खण्ड)	डॉ0 भगवत् शरण उपाध्याय	पृष्ठ स0 – 732
19 व्रज का इतिहास (द्वितीय खण्ड)	प्रो0 कृष्णदत्त बाजपेयी	पृष्ठ स0 – 72
20. मृगनयनी	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	महमूद बेगड़ा की प्रशसा
21. भारतीय सस्कृति का इतिहास वैदिक धारा	डॉ0 मगलदेव शास्त्री	पृष्ठ स0 – 22
22 " वही	" वही	वही

*

ग. वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में ऐतिहासिक साँस्कृतिक संदर्भों का रूपान्तरण

जैसा कि मैं पिछले खण्डो मे वर्माजी के उपन्यासो का उसके साराश रूप मे सक्षिप्त विश्लेषण कर चुका हूँ, साथ ही ऐतिहासिक सॉस्कृतिक सदर्भ का गहन विश्लेषण भी मैं अपने शोध प्रबन्ध मे प्रस्तुत कर चुका हू । इस खण्ड मे हमारी दृष्टि वर्माजी के उपन्यासो मे उस समय के सॉस्कृतिक परिवेश मे ऐतिहासिक घटनाओ को किस प्रकार लेकर वर्माजी ने साहित्य मे उसका रूपान्तरण किया है । इसी विषय का सक्षिप्त परिचय घटनाओ के माध्यम से इस खण्ड मे प्रस्तुत करने की कोशिश करूगा।

वृन्दावन लाल वर्मा जी के 15 उपन्यास ऐतिहासिक हैं । इसमे 1192 से लेकर 1858 तक की राजकीय व्यवस्था एव ऐतिहासिक घटनाओ का वर्णन मिलता है । उपन्यास गढ कुण्डार कथानक 1192 से 'खैरसिह' खगार से आरम्भ होता है, और झासी की रानी लक्ष्मीबाई का कथानक 1858 के आदोलन तक विवरण प्रस्तुत करता है, वर्माजी के उपन्यासो मे इन घटनाओ के रूपान्तरण के लिये हमे उस समय की राजनीतिक, सॉस्कृतिक गतिविधियो को ध्यान मे रखते हुये यह दृष्टिगत करना होगा कि वर्माजी ने उस समय की घटनाओ को कैसे उपन्यासो मे सजो दिए हैं । उनका समस्त उपन्यास उस काल खण्ड की राजनैतिक परिवेश का भी स्पष्टीकरण करता है, और विभिन्न भीषण युद्धो का ब्यौरा देता है, युद्धो के विवरण न तो विस्तृत रूप से सुलभ हो पाता हे, न ही उनके उपन्यास से राजनीतिक गतिविधियो का शुद्ध ज्ञान ही हो सकता है, क्योकि कोई भी उपन्यासकार ऐतिहासिक घटनाओ मे कुछ काल्पनिक पात्रो का नामकरण करता है, तो कुछ उसे यथार्थ रूप मे प्रकट करने की कोशिश करता है । इसलिये उनके उपन्यासो का विवरण विषय पूरी स्पष्टता के लिए अपेक्षित सा हो उठा है, परन्तु इतना अवश्य है कि उपन्यासो के सम्यक परिशीलन से तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का सज्ञान होता है, और परिचय प्राप्त होता है । विभिन्न देशी–विदेशी नरेशो की शासन व्यवस्था तथा पारस्परिक कटुता का आभास सामने कर जाता है ।

"वृंदावन लाल वर्मा"के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासो मे जैसे कि 'झासी की रानी,' 'गढ़–कुण्डार,' 'विराट की पद्मिनी,' 'मृगनयनी,' 'माधव जी सिधिया,' 'टूटे–काटे,' 'रामगढ़ की रानी,' 'रानी दुर्गावती,' 'कचनार,' 'देवगढ़ की मुस्कान,' 'कीचड और कमल,' 'सोती आग,' 'भूवन–विक्रम,' 'मुसाहिबजू,' मे ऐतिहासिक सॉस्कृति परिस्थितियो एवं घटनाओं को बडे ही रोचक ढग से उभारा गया है । इन उपन्यासों के दो तथ्य बहुत ही स्पष्ट हो जाते है। प्रथम तो उस समय के केन्द्रीय शासन का आभाव तथा दूसरा उस समय के राजाओ की आपसी कलह और भोग–विलास मे लिप्त अपने देश

*

के प्रति बेखबरी का चित्रण दिखाई पडता है । वर्माजी के उपन्यास लेखन के समय सारा भारत वर्ष तथा उनके अधीनस्थ सघर्षरत राजाओ मे आपसी कटुता थी । आये दिन युद्ध की घटनाये घिरी रहती थी, और जन–जीवन इन्ही अव्यवस्थाओ मे गुजरता जा रहा था । मध्यकालीन लम्बे समयान्तर मे केवल 'अकबर' का समय ठीक था, और कुछ माने मे शासन व्यवस्था केन्द्र से शासित होती थी, लेकिन उसके पूर्व एव पश्चात् घोर अनिश्चितता एव भीषण अव्यवस्था का काल रहा था । एक ओर मालवा का 'गयासुद्दीन' था तो दूसरी ओर ग्वालियर का यशस्वी 'राजा मानसिह' । 'महमूद बेगडा' यदि एक तरफ अपनी शक्ति से पेड, पहाड, नदी, झरनो को कपाता था तो दूसरी तरफ मेवाड के 'राणा सॉगा' का प्रताप पृथ्वी को हिलाने का प्रवृत्ति रखता था ।[1] इन सबसे अलग दिल्ली का सुल्तान 'सिकन्दर लोदी' था, जो समूचे इन इलाको की फतह के लिए योजना बनाता रहता था।

प्रस्तुत खण्ड मे मैं वर्माजी के उपन्यासो, लिये गये विषय और समय का सक्षिप्त विवेचन स्पष्ट करने के साथ उनके विभिन्न उपन्यासो मे वर्णित इतिहास की घटनाओ को भी स्पष्ट करूगा ।

इस तरह पुन इतिहास तीव्रता से गतिशील रहा । लोदी सल्तनत का विनाश हुआ । 'बाबर' के आगमन के बाद भारत पर मुगलो का आधिपत्य हुआ । इस समय पुन भारत मे कोई एक प्रबल शासक न था । पश्चिमोत्तर से हमले होते रहते थे और देशी नरेशो के आपसी हमले होते रहते थे । इस समय 'शेरशाह सूरी' उत्तर भारत मे शेर की तरह उभर कर सामने आता है, और अपनी व्यवस्थिति प्रशिक्षित सेना द्वारा देशी नरेशो को दबाता है । यहा तक 'हुमायू' को भी भारत के बाहर खदेड देता है । ये सब बहुत कुछ घटनाये वर्माजी के "महारानी दुर्गावती" उपन्यास मे इसी काल का चित्रण किया गया है ।[2] यदि उत्तर मे 'शेरशाह' की शक्ति का उन्नयन हुआ, तो दक्षिण मे कालिजर के 'राजा कीर्ति सिह' अपनी ऊचाई पर पहुचते हैं, यही नही गोडवाना के 'दलपतिशाह' के शासन भी अति विस्तृत हो चला था । यही पर इतिहास प्रसिद्ध 'रानी दुर्गावती' का सग्राम भी उल्लेखित होता है, और उसकी प्रतिरोधात्मक शक्ति तथा अनोखे युद्ध कौशल का परिचय प्राप्त होता है ।[3] 'अकबर,' 'जहागीर,' 'शाहजहा,' 'औरगजेब,' का शासन काल अपनी पूरी शान–शौकत मे रहा, लेकिन 'औरगजेब' के बाद केन्द्रीय शासन पुन डगमगा गया और नाना प्रकार के देशी राजाओ की शक्ति उभर कर सामने आ गयी ।

मुगलो का साम्राज्य समय के साथ विचित्र होने लगा था । उत्तराधिकार की समस्या सिर उठाकर सामने आने लगी । 'सिक्ख,' 'सैय्यद,' 'मराठे,' 'जाट,' 'रोहिलो,' की शक्ति अंकुरित होने लगी। 'सिक्खो' ने पश्चिमोत्तर भारत को अपना समझा तो जाट अपने को दिल्ली के समीपवर्ती राज्यो का

उत्तराधिकारी घोषित कर देते है । देश इस समय सक्रान्ति काल से गुजर रहा था, और आपदा और सकट से इस समय भारतीय जीवन अस्त–व्यस्त हो चला था । इसी समय जब विदेशी हमलो के बवन्डर भी आ धमके, सर्वप्रथम 'नादिरशाह' ने दिल्ली को बर्बाद किया उसके बाद 'अहमदशाह अब्दाली' का आक्रमण भारत की जनता और धन–जन की अपार क्षति करके नष्ट कर दिया । इस हमले ने मराठो का पूरा विकास ही रोक दिया । भाऊ के नेतृत्व मे चली मराठा सेना की महान पराजय पानीपत के इस तीसरे युद्ध मे असामयिक हुआ । मराठो की पराजय इस बार बिकट था । उनकी कमर ही टूट चुकी थी और इस बार का युद्ध उन्हे बडा ही महगा पडा, इस पवन बवडर मे मराठो के अच्छे से अच्छे सेनानायक खो गये, और भारी क्षति उन्हे पहुचाई गई ।[4]

इस प्रकार मराठो की पराजय ने देश मे भावी जीवन को बदलने का अवसर प्रदान किया । मराठो की विजय 'माधव जी सिधिया' के साकार सपने अग्रेजो के विनाश के कारण बने । हिन्दू पद–पादशाही की समौन्नत योजना देश को किसी अलग दिशा की ओर जा पहुचाता है, लेकिन दुर्भाग्य प्रबल था, मराठे एक के बाद गिरते चले गये, अग्रेजी बीडा प्रबलतर होता गया और देश पुन मुसलमानो की दासता की कलम को बिना भुलाये दूसरी विदेशी कौम अग्रेज शासन का गुलाम बन गया । जो सदियो तक बना रहा ।[5] अग्रेजी शासन के दुष्कर्मों का बहुत कुछ लेखा–जोखा हमे वर्माजी के उपन्यास "महारानी लक्ष्मीबाई" मे मिल जाता है, इस समय अग्रेज राजाओ को बनाने, बिगाडने वाले बन गये । 'राजा गगाधर राव' ऐसे ही राजा थे, जिन्हे अग्रेजो की कृपा से बनाया गया था । पुन राज्य को भी अग्रेज हडपना चाहते थे, लेकिन स्वाभिमानी रानी ने अगेजो को खुले युद्ध के लिये ललकारा और जीवन के आखिरी क्षण तक अग्रेजो के लिये उल्कापात बनी रही ।[6] इस प्रकार वर्मा जी के पूरे उपन्यास को अनुशीलन करने से यही निष्कर्ष निकलता है, कि भारत मे अधिकाशत शक्ति का केन्द्रीकरण न था, छोटे–छोटे अनेक राज्य थे, छोटे–छोटे 'सामन्त', 'जागीदार', 'तालुकेदार', शासक होते थे और आपसी द्वन्द्व मे उलझे रहते थे ।[7]

आपसी कलह एव द्वन्द्व का भारतीय इतिहास मानचित्र पर बडा ही विषम प्रभाव पडा था । इसकी बहुलता तथा इसका अचारण विशेषतया राजपूतो के यहा होता था । उनमे 'बल,' 'विक्रम', 'शौर्य,' 'पराक्रम' की पराकाष्ठा थी । विश्व की शायद ही कोइ कौम उनका मुकाबला इस क्षेत्र मे कर पाता, लेकिन उनकी आपसी द्वन्द्व और कलह ने सब कुछ मिटा दिया, महान शौर्य वाले राजपूत शूरमा शासक एक के बाद एक करते गये और जन मानस की भावनाओ को भी दबाते गये । "मृगनयनी" उपन्यास का 'राजसिह' इसका एक ज्वलत उदाहरण है ।[8] वर्माजी के

*

मृगनयनी उपन्यास मे उसके चरित्र को उभारा गया है । वह आपसी द्रोह की अग्नि मे इतना दम्भी था, कि हिन्दू राजा 'मानसिह तोमर' उसका महान वैरी, लेकिन मुसलमान बादशाह 'सिकन्दर लोदी' उसका सब कुछ था । नरवर का महानाश, 'लाखी' तथा 'अटल' की महायात्रा का स्पष्ट कारण वही राजा वही राजा मानसिह था । उसने इतिहास को बता दिया कि हिन्दू विद्वेष कितना जल रहा है । इसी प्रकार 'महारानी दुर्गावती' मे कालिजर विनाश तथा अजये 'राजा कीर्तिसिह' की हत्या का कारण उसका एक राज्य लोलुप प्रबधक 'सुघर सिह' था। उसने खुलकर बाद मे शेरशाह सूरी के हित मे तोप चलाना बन्द करा दिया और जागीर मे सर्वनाश का आह्वाहन कर बैठा ।[9]

जातियो की अनेक उपजातिया थी, 'कडवाहे', 'पडिहारे', 'चौहान,' 'चन्देल' आदि अनेक प्रकार से वे पुकारे जाते थे । उनमे आपसी मेल मिलाप न था । आपसी द्वन्द्व युद्ध मे पला उनका मनोवेग, देश के भविष्य की उपेक्षा करता रहा, गढकुण्डार का स्वाभिमानी 'पवार,' 'पुण्यपाल' तथा 'पडिहार' सरदार इसी कोटि मे आये हैं, वे दोनो आपसी द्वन्द्व मे अधिक आकाक्षा रखते हैं, और मुसलमानो से युद्ध की अपेक्षा करते है ।[10] 'दुरमति सिह' के विनाश के पीछे बहुत कुछ तत्कालीन इसी आपसी द्वेष की भावना ही कार्यरत थी, "अग्निदत्त" तथा "सोहनपाल" के मिले षड्यत्र ने इतने बडे खगार अधिपत को सदैव के लिए सुला दिया । स्थिति बडी विचित्र थी, कि आपसी कलह, वैमनस्थ का यही महारोग बडा ही व्यापक था, स्वय 'सोहनपाल' को उसके अनेक अनेक भाइयो ने मार भगाया था । दर–दर भटकता यह राज्य अत मे जीवन का दाव लगाकर "हुरमतिसिह" के विनाश का श्रोत बन जाता है । बुन्देलो, खगारो मे उपन्यास "गढकुण्डार" के अनुसार जरा भी स्नेह नही था, दोनो एक दूसरे के जान के ग्राहक बने थे, और खुले युद्ध को लडने के लिये व्याकुल रहते थे ।[11] इस प्रकार द्वेष कलह की अनहोनी भावना ने इतिहास प्रसिद्ध खगारो का सर्वनाश करा दिया ।

मध्यकालीन जीवन मे खून के सम्बन्धी भाई–भाई एक दूसरे की हत्या मे किचित भी डरते नही थे । वर्माजी का "कचनार" उसी का स्मरण दिलाता है । राजा 'दिलिप सिह' बीमार पडे, भाई 'दिलिप सिह' का उसने बीमारी का लाभ उठाया और पीडित मौत की ओर जाते हुए सगे भाई को विष दे दिया । इसके पीछे उसकी केवल राज्य लिप्सा थी, जो प्रबलार बनी और सगे भाई की हत्या का जाल रचा गया । वैमनस्य का इससे बड़ा उदाहरण और क्या हो सकता है ।[12] वर्माजी के उपन्यास "माधव जी सिधिया" में सिधिया एशिया भर का उस समय का उद्भर राजनायक था, लेकिन समाज और देश का प्रबल दुर्भाग्य उसे जीविन न रहने दिया और अन्तत उसे भी जहर पान कर मार डाला था । राजनीति के चौखट, नाना का विरोध, मराठो का पतन, सारे आधार अन्ततः ऐसी महान आत्मा को समाप्त करके ही सतुष्ट हुए और उनके महान सजो के

*

भारत का साकार होना दुर्लभ हो गया ।[13] यह थी दुर्दशा भारतीय राजनीतिक देश के शासक वर्ग की, नाना यदि थोडा भी सहयोग दिये होते तो माधव जी को, तो भारत के मानचित्र का इतिहास का स्वरूप कुछ अलग ही होता, लेकिन दुर्भाग्य यह हे कि ऐसी महान आत्मा जब कभी धरती पर आती है, उन्हे इस प्रकार समाप्त कर दिया जाता है।

भारतीय मध्यकालीन राजनीति का एक आवश्यक तथ्य था, भूमिका लोभ भारतीय प्राय सभी शासक इसके लोभ मे लिप्त दिखाई पडते है ।'सिकन्दर लोदी' का ग्वालियर पर चढ आना, बहुत कुछ इसी भावना से प्रेरित था । भूमि की भूख की भावना थी,'राजसिह' को जिसे पागल बना दिया था, इस लिप्सा ने, भूमि लेने, पुरखो की सम्पत्ति को लौटाने का नशा इतना प्रबल था कि 'राजसिह' अपने को मर जाना अधिक श्रेयस्कर समझता है, परन्तु जीवन नहीं ।[14] वास्तविकता यही है कि मध्यकालीन राजाओ के युद्धो का यह प्रबल, कारण था मालवा का 'गियासुद्दीन'आजीवन कालपी को हथियाने की सोच रहा था । हिन्दू राजा की आपसी जमीन को हडपने मे लगे रहते थे,'सिकन्दर लोदी'को ऐसे अवसर पर मेवाड पर चढाई करना उसके लोभ की प्रमुख प्रवृत्ति थी । उसने अपनी शक्ति को केन्द्रित तथा सशक्त बनाया और एक साथ ही उत्तर भारत के राजाओ को धूल चटाया । वर्माजी के उपन्यास "महारानी दुर्गावती" मे 'शेरशाह' की इस भूखवृत्ति का बडा ही सुन्दर चित्रण दिखाया गया है । उसमे कालिजर के राजा 'कीर्तिसिह' को धर दबोचा तथा साथ ही अपने को भी परलोक गामी बन गया । 'सुधरसिह' छोटे राज्य का मालिक था, कालिजर नरेश बनने की महाइच्छा उसके मन के किसी कोने मे उठ खडी हुई थी, यही भावना उसके वध का कारण बनी थी ।'अकबर'पूरे बादशाहो मे आदर्श राजा था, उसने सत्यता से हिन्दू–मुस्लिम शक्ति को एक करने का बीडा उठाया और सफल भी हुआ, लेकिन उसमे राज्य की विस्तार की भावना उसी प्रकार घर कर् गयी थी, जैसे कि अन्य देशी शासको और सामन्तो मे थी । इतने विशाल राज्य का शासक होते हुए भी वह गोडवाना पर हमला करने दौड पडा, जो कि एक स्त्री रक्षित राज्य था, जो किसी मायने मे उसके व्यक्ति को क्षम्य नहीं करता है । एक इतने बडे सम्राट के लिए एक इतने छोटे स्त्री राज्य पर हमला बोलने का कार्य नितान्त विगर्हणीय था । यही नहीं वर्माजी ने इस "रानी दुर्गावती" उपन्यास मे 'गोपनन्द' महाराज जो सयास ले चुके थे, वे भी राज्यलिप्सा मे उडे जा रहे थे और दुधर्ष तथा घृणास्पद कार्य करने के फलस्वरूप भी किसी राज्य को प्राप्त करने की लिप्सा मे लिप्त थे ।[15]

वृन्दावन लाल वर्मा जी का उपन्यास "विराट की पद्मिनी" मे समूचा उपन्यास भूमि के लिए लड़ता–झगड़ता चित्रण करता है । राजा'कुन्जर सिह'तथा'देवी सिह'दोनो का अत विद्रोह

*

और युद्ध मे परिणित होता है । अतत एक का अत उसी मे हो जाता है ।[16] इसी तरह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन मध्यकालीन सस्कृति मे जीवन की कोई कीमत न थी ।

वर्मा जी के 'गढ कुण्डार' उपन्यास मे क्षत्रिय राजा 'सोहन पाल' राज्य पाने के लिए जीवन भर कठिन तप करता रहा । भाईयो के वैमनस्य ने उन्हे देश निकाला का दण्ड दिलवाया । जीवन के आखिरी क्षणो मे भाग्य ने सहारा दिया । 'अग्निदत्त' के आगमन तथा कथित षड्यत्र से उन्हे राज्य का सुख मिल सका । इस प्रकार अनेक उदाहरण हैं, जहा पर राज्य पाने के लिए नाना प्रकार के उचित अनुचित साधनो का सहारा लिया है । इतिहास का यह काल खण्ड निश्चय ही विदित था, जहा राजनीति की सज्ञा मे जघन्य कर्मों का सहारा लेकर उद्देश्य पूर्ति का जाल रचा जाता था । इस तरह झाकिया वर्माजी के उपन्यासो मे प्रस्तुत होती है और उससे तत्कालीन राजनैतिक विविधताओ का सज्ञान होता है । [17]

'माधव जी सिधिया' उपन्यास मे भी राज्य लिप्सा का सुन्दर विवरण आया है । दक्षिण मे मराठो का अचल राज्य था, पास मे हैदराबाद निजाम के हाथ मे था । दोनो ही एक दूसरे के राज्य को हडपने की योजना बनाते रहे । मराठे भला चूकते कब थे । उन्होने 'दत्ता जी सिधिया' और 'रानो जी सिधिया' के साथ मिलकर निजाम का सहार कर देते है । मराठो ने अपने समय मे राज्य विस्तार मे कोई कमी नहीं रखी । एक समय था जब वे दक्षिण के अधीश्वर तो थे ही साथ ही उत्तर भारत मे भी राजाओ को बनाने–बिगाडने वाले बने थे ।[18]

मध्ययुग की राज्य लिप्सा कभी–कभी नारी रत्न की उपलब्धि के लिये युद्धो का कारण बने । किसी कुवारी कन्या का रूप सौन्दर्य चर्चा का विषय बनता था कि तुरन्त विलासी, लम्पट, भोग विलास मे निमग्न बादशाह उनके आचलो तक पहुचना शुरू कर देते थे । बादशाह तुरन्त उन्हे अपने सरदारो के माध्यम से अपहरण करने के लिए जुट जाते थे, और दोनो के बीच घनघोर युद्ध छिड जाता था । "गढ कुण्डार" की रचना महाबली प्रचण्ड खगारो का सर्वनाश चन्देलो की चाल का एक बहुत बडा कारण था, वह यह था कि 'सोहन पाल' की कन्या का कुमार 'नागदेव' का पाणिग्रहण । कुमार 'नागदेव' तथा उसके पिता 'हुरमति सिंह' 'सोहन लाल' की कन्या 'हेमवती' का विवाह चाहते थे । चन्देल 'सोहन पाल' के ऐसा न करने पर राजा ने बलात रूप से इस कार्य को करना चाहा, लेकिन 'अग्निदत्त' तथा बुन्देलो की मिली वाहिनी ने उन सबका एक साथ मे ही सफाया कर दिया, कारण था हेमवती का स्पष्ट नकार देना और कुमार 'नागदेव' राजमत तथा प्रणयोमाद मे भ्रष्ट होना । इस प्रकार प्रबल खंगारो का सर्वनाश हुआ, मात्र एक राजकुमारी के विवाह के लिए ।[19]

*

वर्माजी के "मृगनयनी" उपन्यास का भी लगभग आधा भाग इसी नारी बोझिल वार्ताओ से निमग्न है ।'निन्नी' तथा 'लाखी' का रूप सौन्दर्य अपार था । ग्रामवासी इन दो दरिद्र कन्याओ मे विधाता ने अपार एव अलौकिक सौन्दर्य का आगम करा दिया था। उनके रूप की चर्चा मॉडू के सुल्तान 'गयासुद्दीन', गुजरात के सुल्तान 'महमूद बेगडा' (बर्घरा) तक पहुच गया था और यही कारण था कि मालवा का सुल्तान उसे प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो उठा और उसे हथियाने की अनेक कोशिशो को कुचक्रो के माध्यम से रचता रहा । दूतो ने गुजरात के 'महमूद बर्घरा' को भी हसीन लडकियो की जानकारी दी थी ।[20]

मॉडू के विशाल महल मे रहते हुए 'गयासुद्दीन' ने नट बडियो के सहारे इन दोनो लडकियो को पकडवाना चाहा, लेकिन बहादुरी लडकियो ने अपनी शौर्यता तथा दिलेरी का परिचय दिया, उन्हे समाप्त कर दिया ।.लाखी को पाने की उत्कृष्ठ कामना से 'गयासुद्दीन' ने नरवर पर हमला बोल देने का आयोजन करवाया ।'लाखी' घर से भाग गयी, उसने नरवर के किले के किले पर शरण पायी, लेकिन राजा 'गयासुद्दीन' ने पूरे नरवर को नष्ट कर लाखी को पकड लेना चाहा था, लेकिन सफलता प्राप्त नहीं सका, और 'राजा मानसिह' के जबरदस्त हमले ने उसे साधनहीन बना दिया था, लेकिन घनघोर लडाई का कार्यक्रम बहुत कुछ लाखी रानी के कारण हुआ । [21]

इसी तरह वर्माजी के उपन्यास "विराट की पद्मिनी" कथानक भी इस तरह की घटनाओ का लेखा–जोखा लेता है । 'कुमुद' दागी कन्या है, उसके पिता का नाम 'नरपति' है । उसमे रूप की गरिमा है, अलौकिकता है और अपनी अद्भुत सौन्दर्य प्रसाधन के ही कारण वह लोक विख्यात हो चुकी थी । उसे जनता का बडा वर्ग देवी दुर्गा के रूप मे जानता था, लेकिन 'अली मर्दान' उस पवित्र कन्या को अपने हरम मे डालना चाहता है । वह रानियो की मदद का स्वाग रचता है और उसे पाने के लिए स्वार्थ साधना की बात हर क्षण सोचने लगता है ।'अलीमर्दान' इस लडकी को पाने के लिए जग का सहारा लेता है, उसी युद्ध के बीच लहू–लुहान सैनिको को लेकर वह उसी की खोज करता है । दागी कन्या 'कुमुद' की हत्या का पूरा दायित्व उस राक्षस राजा 'अलीमर्दान' पर होता है, जिसका विवरण 'दिलीप सिह' ने साफ–साफ उसके सामने किया था ।[22] इस तरह उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि मध्ययुग मे कामनीयो के लिए युद्ध हुआ करते थे । राजा सामत प्रायः हर कोई इस रानी रत्न की खोज मे अपना सबकुछ स्वाहा किया करता था । सृष्टि के आदि से लेकर आज तक नारी आकर्षण का केन्द्र रही है और आने वाले काल मे भी सम्भवतया यह क्रम बने रहे थे । इतना बड़ा अनर्थ इतनी बडी हत्या का ब्यौरा, इतनी असख्य सेना का, उपन्यासो मे इसीलिए नारी पात्रो की सृष्टि करना पडा है । वर्माजी के उपन्यासो मे उन्हे इसलिए इस तरह की नारियो का चित्रण करना पड़ा है । गुजरात का बर्घरा को युद्ध करने

*

का शौक था । प्रतिदिन जब तक दो चार सौ धड को अलग नही करता था, तब तक उसे चैन नही मिलता था । इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रकृति सभी हेतु अलग–अलग कार्यो का अनुकार्य किया था । माडू के 'गयासुद्दीन' कामुक्ता प्रधान है, तो गुजरात के बर्घरा मे युद्ध प्रियता प्रिय है, अजब का खौफनाक विकट योद्धा था । उसे देखने मात्र से अच्छे–अच्छे सामत डर जाते थे, और जासूस कापने लगता था । मरते हुए व्यक्ति, तडपता हुआ धड, बहता हुआ लहू, जिस बादशाह की खुशी हो उसकी क्रूरता का स्तर क्या होगा, यह इसी से अन्दाज लगाया जा सकता है ।

गढकुण्डार का पवार सरदार 'पूण्यपाल' यद्यपि बेगडा रणो माद नहीं थी, लेकिन फिर भी सिर पर कफन लिये फिरता था । इस पात्र के जीवन का परिचय पाने पर ऐसा लगता है, मानो मौत भी उससे डरती हो, और छोडकर हट जाती है । पवार 'पूण्यपाल' तथा एक पडिहार सरदार से अनबन हो गई । दरबार मे पडिहार ने कुछ कह दिया जो पूण्यपाल की शान के विरूद्ध था, बस इतनी बात थी । क्षत्रिय राजकुमार खुले युद्ध के लिए आसन्न हो गया । इस तरह वर्माजी के उपन्यासो मे जितने भी पात्र है, उनमे "विराट की पद्मिनी" का रणबाकुरा 'लोचन सिह' ऐसा प्रचण्ड, निडर, पराक्रमी योद्धा, वर्माजी के पूरे उपन्यास मे कही भी नही दिखता । वह ऐसा पात्र था कि मौत भी डरती थी । उपन्यास के कई स्थल जहा उसकी मौत निश्चित थी, वही वह और भी सफल हुआ है, और पराक्रम परायण दिखाई पडा । उसके जीवन मे युद्ध ही सब कुछ था , और दिन रात उसी मे लिप्त रहता था ।'लोचन सिह' प्रबलतम् विकट पराक्रमी था। दागी कन्या 'कुमुद' के दर्शन हेतु 'लोचन सिह' कुजर गये थे । मन्दिर के पास कुछ मनचले मुसलमान सैनिक से कहा सुनी हो गई, उसी पर स्वाभिमानी लोचन सिह ने निश्चय ही पराक्रम भरा जवाब दिया था, और चुप रहने का आदेश दिया, और जब वह चुप नहीं हुआ तो अतत उसने अपनी तलवार का वार कर सदैव के लिए परलोक गामी बना दिया । 'अलीमर्दान' और 'दिलीप सिह' का घमासान युद्ध 'कुमुद' के अवसान के बाद रूक गया । [23]

जागीरदारी प्रथा जो मध्यकाल की विशेषता रही है, वर्माजी ने अपने उपन्यासो मे उसकी स्थिति का वर्णन करते हैं । वास्तविकता यह थी कि राज्य का मालिक राजा था, बडा राज्य अपने अचल मे अनेको अलग–अलग राज्यो का प्रशासन करता था । छोटे बडे राज्य के मालिक जागीरदार की सज्ञा से पुकारे जाते थे । उसके ऊपर राज्य का सारा कार्यभार था । लेकिन यही जागीरदार धीरे–धीरे स्वतत्रता की भावना से अपने को अलग स्वतत्र नरेश के रूप मे घोषित कर देते थे । जागीरदार अपने स्वामी को वर्षों मे कुछ निश्चित धन दे दिया करता था । जागीरदारी प्रथा का विवरण वर्माजी ने उपन्यास "महारानी दुर्गावती" मे इस प्रकार वर्णन करते हैं कि– महात्मा 'गोपनन्द' घोर निकृष्ट कर्म कर 'अकबर' से पुरस्कार मे जागीर की याचना करते हैं । इसी

*

प्रकार का एक सरदार ख्वाजा 'अब्दुल मजीद' था, उसने 'अकबर' को बडा प्रसन्न किया क्योकि बडे पराक्रम और बहादुरी से सम्पूर्ण पन्ना क्षेत्र का दमन किया है और महासाम्राज्य की सीमाओ को विस्तार दिया था । 'अकबर' ने पारितोषिक स्वरूप उसे आसफ खा की उपाधि तथा पाच हजारी का मनसबदार बनाया था ।[24]

वर्माजी के उपन्यास "मृगनयनी" मे 'अटल सिह' और 'लाखी' रानी की शौर्यपूर्ण कहानी है । लाखी ने अपनी सूझबूझ तथा अद्भुत वीरता से नरवर की शान रखी । उस अकेली महिला ने जीवन की कडी को महत्व न देकर जीवन की सच्चाई तथा उसमे छिपे आदर्श को सवारा और अकेले जीवन के सबसे बडे पुरूषार्थ की ओर तल्लीन हो उठी थी । 'राजा मानसिह' ने उसकी गौरव गाथा सुनी, शौर्य से भरा उसका आचरण देखा । इसी कारण वश उन्होने नरवर युद्ध के ठीक बाद ऐतिहासिक घोषणा की । नरवर की पूरी जागीर 'लाखी रानी' तथा 'अटल सिह' के नाम लगाई जाती है, जिसका नरवर एक आदर्श उदाहरण है ।[25]

गढकुण्डार के खगार राजा 'हुरमत सिह' का भी अचल राज्य एक प्रकार की जागीर था । उसके पूर्वज 'खैरसिह खगार' बडे ही प्रचण्ड योद्धा थे । 'पृथ्वीराज चौहान' ने उसकी विराट शक्ति को देखकर उसे कुण्डार का शासक बनाया, शीघ्र ही इसके पश्चात् पृथ्वीराज का ऐतिहासिक युद्ध 1192 मे तराईन के मैदान मे गोरी से हुआ और वह मार डाला गया । खगार सामत अब स्वतत्र हो गये और तब से उनका राज्य एक अलग स्वतत्र जागीर के रूप मे चलता रहा । अब उसका राजा 'हुरमत सिह' एक स्वतत्र राजा था । [26]

इसके अलावा वर्माजी ने अपने इतिहासो मे ऐतिहासिक पुरूष की विचित्र लीला का भी वर्णन करते है । वे राजा थे पर कभी–कभी इतने सनकी, जिद्दी तथा पूर्णतया स्वछन्द होते थे । इन्ही मे से एक थे 'महाराजा साहू जी' अन्य राजा, बादशाह तो बडे–बडे नायको सामन्तो को जागीर देते थे, लेकिन 'साहू जी' जो कि "महा बुद्धिमान माने जाते थे, उन्होने एक 'कुत्ते' के नाम जागीर लगाई थी, क्योकि एक बार 'साहू जी' जब शिकार खेलने गये थे तो उन्हे शेर के मुह मे जाने से उनके कुत्ते ने बचा लिया था, इसलिए उनके लिए कुत्ते के लिए सम्मान आवश्यक था ही, पर सनकी बादशाह ने उनके नाम जागीर लगा दी थी । कुत्ते को बहुमूल्य, वेश कीमती, रेशम, जरतार से लाद दिया गया था ।"[27]

इसी तरह पेशवाओ ने भी अनेक लोगों को जागीरे बाटी थी । 'ताराबाई' और 'माधव जी सिधिया' की कुछ वार्तालाप उसी जागीर के बारे स्मरण दिलाते है । 'सफदर जग' बडे ही घमण्डी राजा थे । वह भी अपनी रक्षा के लिए अपने सामतो को बडी–बडी जागीरे बाटी थी ।[28] इसी प्रकार का एक विवरण 'विराट की पद्मिनी' मे आया है, जहा देवी दुर्गा की अवतार 'कुमुद' का

*

अवसान हो चुका था । देवी की रक्षा मे सारी दागी सेना समाप्त हो गई थी, और अतत राजा 'देवी सिह' और 'अली मर्दान' उसी वीभत्स दृश्य को देखते है, जिसमे वे सारे दागी वीर सदैव के लिए बिछड चुके थे । राजा 'देवी सिह' दागियो की इस अभूतपूर्व त्याग तथा बलिदान को देखकर पूरे विराट गाव को जागीर के रूप मे लगा दिया । इसी तरह वर्माजी ने अपने विभिन्न उपन्यासो मे तत्कालीन राजनैतिक जीवन के इतिहास को विभिन्न रूप से जागीरो की व्यवस्था का उल्लेख करते है । [29]

वर्माजी का उपन्यास "कचनार" का अत भी इसी तरह के विवरण से हुआ है । जिसमे राजा 'दिलीप सिह' को गद्दी की प्राप्ति पुन हुई और भाई 'मानसिह' सब कुछ छोडकर जगल का निवास लेना चाहा, लेकिन राजा 'दिलीपसिह' बडा कृपालु हुआ । उसने बहुत स्पष्ट तथा दयालु दृष्टि से 'मानसिह' को एक अच्छी जागीर लगा दी थी और पर्याप्त धन–दौलत और पशु प्रदान किये थे । अब वह राजा का कृपा पात्र बन गया और एक आजीविका का साधन भी उसे उपलब्ध हो गया । इस प्रकार राज्य के अन्तर्गत कई जागीरदारो को प्रतिष्ठा प्राप्ति हुई, और वे अलग प्रशासन करते हुए भी राज्य के अन्तर्गत रहा करते थे । मध्यकालीन पूरे भारत वर्ष के अन्तर्गत इस प्रकार की जागीरो का उल्लेख हुआ है ।

स्वर्ण सचय की कामना उस समय के राजाओ मे बहुत थी और विदेशी हमला तो बहुत कुछ इसी का आश्रय ले चुका था । भारत मे जितने हमले हुए उसमे अधिकाश हमले भारतीय धन–सम्पदा को ले जाने के हुए, केवल थोडे से आक्रमणकारी ऐसे थे, जिन्होने धन सम्पदा के साथ स्थायी निवास को भी वरीयता प्रदान की । जैसे 'मुहम्मदगोरी' और 'बाबर' का नाम उल्लेखनीय है । शेष हमले के पीछे भारत मे धन सचय और स्वर्ण सचय का प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होना था । 1398 का 'तैमूर' का आक्रमण इसी धन सम्पदा का आधार था । वर्माजी के उपन्यास "मृगनयनी" इस तरह के आक्रमणो और धन–जन की हानि का विवरण मिलता है । देश की बिगडती हुई हालत पर मध्य एशिया के 'अहमदशाह अब्दाली' ने 1739 मे आक्रमण किया, वह बहुत सा धन लूटकर ले गया । इस हमले से देश तबाह हो गया । इस हमले से देश तबाह हो गया और खस्ता हालत पर इस आक्रमण का गहरा प्रभाव पड़ा । 'तख्ते ताउस' की शान खत्म हो गई और तत्कालीन शासक 'मुहम्मद शाह' मात्र एक तख्ते का मालिक बन कर बैठा रहा ।[30] अफगान बादशाह 'अब्दाली' ने ऐसी स्थिति मे भारत पर आक्रमण किया जब मराठे, सिक्ख और जाट आपसी कलह मे व्यस्त थे और कमजोर हो चुके थे । इस परिस्थिति का लाभ उठाकर अब्दाली ने तीन बार आक्रमण किया और दिल्ली को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया ।[31]

*

पानीपत का महा सग्राम मे मराठो का महा पतन हो गया, लेकिन अभी भी माधव जी सिधिया जीवित थे और सभी देशी शक्तियो के एकीकरण का प्रयास कर रहे थे । पानीपत के परिणाम आ जाने पर एक बहुत बडा उपद्रव खडा हो गया । वह यह था कि– मराठे निर्जीव हो गये ।[32] वर्माजी के उपन्यासो मे इस तरह के अनेक रोचक ऐतिहासिक घटनाओ का विवरण मिलता है । उनके उपन्यासो मे उस समय की राजनीति मे एक और झलक देखने को मिलती है, वह है– गद्दी को हस्तगत करने की आकाक्षा, राज्य विस्तार, स्वर्ण सचय जितनी सभावना उस समय थी, उससे ज्यादा महत्व गद्दी को प्राप्त करने की थी । गद्दी प्राप्त करने के लिए राजाओ द्वारा नाना प्रकार के खेल, चाल–ढाल, आचरण, पैतरे की भूमिका बनाई जाती थी और उनको सक्रिय रूप से कार्यान्वित की जाती थी । षड्यत्रो का एक रूप देखने को मिलता है । राजा गद्दी प्राप्त करने के लिए अन्य सामन्तो के सहयोग से दूसरे राजा के साथ विश्वास घात करते थे और जब उनकी महत्वाकाक्षी नहीं होती थी तो अत मे वे विदेशी आक्रमणकारियो का सहारा लेते थे ।

'वृन्दावन लाल वर्मा'जी के उपन्यास "महारानी दुर्गावती" मे 'सुधर सिह' था । वह वीर साहसी और विकट पराक्रमी योद्धा था तथा बहुत ही स्वाभिमानी और राज्य हडप करने की धुन मे लिप्त हो चुका था । वह कालिजर का शासक बनने मे कोई कसर नहीं छोडा । पहले तो सीधा साधा मार्ग अपनाया और जब वह सफल नही हुआ, तो अर्नगल तथा अनिष्ठ कार्य के माध्यम से राजा 'कीर्तिसिह' के विरूद्ध कुचक्र रचा और गद्दारी दिखाई ।[33] 'शेरशाह' से स्वय जा मिला और 'कीर्तिसिह' की हत्या करवा दी । राजा 'सुधर सिह' को कालिजर तो मिल गया लेकिन उसे अपनी कृतघ्नता का महाफल भी मिल गया, क्योकि 'शेरशाह' उसके राज्य पर अधिकार कर लिया ।[34]

इसी प्रकार वर्माजी के उपन्यास "मृगनयनी" मे राज्य प्राप्ति के लिए सगे पिता को विष देकर मार डालना, खून करवा देना प्रचलित था । मालवा का सुल्तान 'गियासुद्दीन' खलजी था । उसका लडका 'नासीर' था, उसने राज्य पाने के लिए वजीर 'मटरू' को उकसाया और उसी अभीष्ट मन्तव्य को पूरा करने के लिए अनेको बार पिता 'गियासुद्दीन' के विरूद्ध षड्यत्र रचा, पर मराठो ने उसे बचा लिया । और अतिम बार उसने जब खवासिन को मिला लिया तो गद्दी तो मिल गई और 'गियासुद्दीन' को समाप्त भी कर डाला । इस तरह के आचरण केवल मुसलमान बादशाहो मे ही नही था, बल्कि हिन्दू राजाओं के निखरते राजकुमार भी इसमे पारंगत होने लगे थे और अपने महान सपने को पूरा करने के लिए कोई कसर नहीं छोडते थे ।[35] 'राणा कुम्भा' मेवाड़ के यशस्वी राजा थे । पचास वर्षों तक लगातार उन्होने शासन किया था । उनका लडा 'ऊदा' भी

*

नसीर की तरह बेताब था । उसने भी राजा बनने का ऐसा ब्राम्हास्त्र छोडा कि 'राणा कुम्भा' का अवसान हो गया और 'ऊदा' ने राज्य को प्राप्त कर राज–पाट करने लगा ।

"गढ कुण्डार" उपन्यास का अत भी इसी राज्य लिप्सा को लेकर हुआ जिसमे 'हुरमत सिह' न्याय के पद से विचलित थे और बलात् रूप से सोहन पाल की कन्या के साथ 'नागदेव' का पाणिग्रहण कराना चाहते थे, लेकिन इसके पीछे उनको राज्य प्राप्त करने की लिप्सा थी । उपन्यास "माधव जी सिधिया" मे कुछ इसी प्रकार के उद्देश्य की पूर्ति के लिए माधव जी जैसे विराट पुरूष की हत्या हो गई, क्योकि 'नाना फडनवीस' और 'माधव जी' के बीच राज्य के नेतृत्व को लेकर कुछ तनाव चल रहा था, 'माधव' तथा नाना दोनो ही चतुर, सजग और राज्य के गतिविधियो के प्रति परिचित थे। लेकिन नाना मे आदर्श गुण न थे, इसी आशय को लेकर दोनो महाशक्तियो को लेकर खिचाव हुआ ।'माधव' मे नीचता तथा तुच्छता नहीं थी, जबकि नाना मे सारे गुण भरे हुए थे । अतत दानवी शक्ति की विजय हुई और मल्हार के द्वारा विष पान कराने से गम्भीर मुद्रा वाले 'माधव जी' ने सहर्ष स्वीकार कर लिया । यह थी राजनीति और राजनीति मे घटनाओ मे घटनाओ मे बदलती हुई परिस्थिति । अग्रेजो का विकास सम्भवतया इतनी जल्दी न हुआ होता यदि 'माधव जी सिधिया' जी जैसे व्यक्तित्व देश की बागडोर को कुछ और दिन सहारा दिये होते ।[36]

इस प्रकार कई उपन्यासो मे वर्मा जी ने विष देकर राज्य प्राप्त करने की घटनाओ का उल्लेख करते है । वर्माजी के उपन्यास 'कचनार' का नायक 'राजा दिलीप सिह' है और उसका छोटा भाई 'मानसिह', 'दिलीप सिह' बीमार पडा, उपचार हुआ लेकिन ठीक नहीं हुआ । ऐसे समय मे 'मानसिह' का दानवी रूप जाग, गया और निक्रिष्ट कर्मो की ओर प्रेरित हो गया । 'मानसिह' ने अपने भाई तथा राज्य के मालिक 'दिलीप सिह' को समाप्त करना चाहा, और राज्य का मालिक बनना चाहा । उसकी योजना ने साकार रूप तब पाया, जब उसने दवा की पुडिया के माध्यम से जहर खिला दिया, साथ ही उसने एक और पतित कार्य किया कि अचेत राजा को श्मसान ले गया और जिदा ही जला देना चाहता था । दैवी योग से भीषण वर्षा होती है और 'दिलीप सिह' बच जाता है पर राजगद्दी पर 'मानसिह' की अधिकार हो जाता है । इतिहास के इसी विचित्र काल खण्डों मे इस नारकीय जीवन का लेखा–जोखा वर्मा जी ने अपने उपन्यासो मे बखूबी उकेरते है । कितनी बडी विचित्रता है कि एक भाई दूसरे भाई की मुसीबत का लाभ उठाकर कैसा पाप कर बैठता है । मदद की जगह जहर देता है, जो भाई को जीवनहीन बना देती है ।[37]

इसी तरह आगे वर्मा जी ने अपने उपन्यासो मे इतिहास की उस स्थिति का भी विवेचन करते हैं, जिसमे राजा 'लम्पट' और 'भोग विलासी' है । वे प्रजा के दु.ख–सुख से कोई मतलब नहीं

*

रखते है । भोग–विलास ही उनका साध्य होता है, केवल गिने चुने राजा ही है जिनका आदर्श गुण उपन्यासो मे दिखाई पडता है । वृन्दावन लाल वर्माजी का उपन्यास 'मृगनयनी' का पात्र 'गियासुद्दीन' इसी कोटि का राजा है । सुरा, सुराही, वेश्या के लोक मे ही उसका जीवन व्यवतीत होता जाता है । [38] यह दृश्य मालवा के राजा 'गियासुद्दीन' का है । जो जनता का राजा था कहने को, जनता के हितो का पक्षपाती था और यही नहीं वह सुरा, सुराही के अतिरिक्त प्रत्येक अचल की हसीनो का ध्यान ज्यादा रखा करता था । उसके इस महाकार्य मे 'मटरू' जैसी मशाल बडा ही सहयोग देते थे, और सदैव ही उसे बेचैन बनाये रहते थे ।'मटरू' का सिद्धात था कि वह वजीर जो अपने स्वामी के लिए राज्य की सुन्दरियो की पहचान न करवा दे ।'गियासुद्दीन' और 'मटरू' ने हसीनो को पकडवाने के लिए एक अच्छा खासा धन खर्चा कर देते है । उसने नटो के एक दल को बुलाया और सारे कार्य विस्तार को समझाया और सोने के टकण तथा कुछ नकद धन भी प्रदान किया था, केवल इसलिए कि वे 'लाखी' और 'निन्नी' को ग्वालियर की सीमा से निकालकर 'माडू' की सीमा मे पहुचा देगे । [39]

राजा का विलासिता पूर्ण जीवन उन्हे नितात आशक्त बना देता है । बेगमो की देखभाल मे अनुरक्त नसीर घूमने–फिरने लायक भी नही बचता है । अत समय मे उसे दासिया कधो पर लेकर चला करती थी । यह विवरण वर्माजी ने भारत के उस काल खण्ड के एक बडे राज्य के राजा का समाचार है, जो अपने पैर पर खडा भी नही हो पाता है और उसे चलने के लिए दासियो का प्रबन्ध करना होता है । यही नही नसीर जब कभी जल विहार करता था और इन्द्रपुरी मे नाना प्रकार की विलासी क्रीडाए करता था । कई बेगमो तो इसी क्रीडा मे डूब जाती थी ।

वर्माजी का उपन्यास 'विराट की पद्मिनी' का 'अलीमर्दान' तो घोर विलासी है ।'कुमुद' की तलाश मे 'कुमुद' को हरम मे लाने हेतु भयकर सग्राम करता है । न जाने कितनी सेना, सेनापति, धन–जन का साफ सफाया हुआ, केवल 'अलीमर्दान' की विलासिता के कारण । स्थिति इतनी चिन्तनीय थी कि थोडी सी बात के लिए इतना घनघोर श्रम और परिश्रम करना पडता था और जीवन को दाव पर लगाना पडता था । युग युद्ध का था और इसलिए असख्य जाने युद्ध मे चली जाती थीं । समझ मे नहीं आता था कि राजाओ मे प्रजा पालन, कला सस्कृति के उत्थान के कार्य तथा अन्य उत्तम कार्यों को करने की प्रवृत्ति का ध्यान नहीं, लेकिन इतनी भयानक सग्राम मे उनकी आत्मा को विराम मिलता था । लडते–लडते 'अलीमर्दान' 'कुमुद' के बहुत निकट आ जाता था । लेकिन 'कुमुद' की स्फूर्ति उसको पकड मे नही आने देती थी । इस पर भी कामुक 'अलीमर्दान' उस दैवी स्वरूप कन्या का वस्त्र जब पकडना चाहा, असफल हुआ । [40]

*

इस तरह वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासो से स्पष्ट हो जाता है कि शासको की विलासिता का अत नहीं हुआ था । देश मे विदेशी शक्तिया उठने लगी, लेकिन देश का शासन समूह अभी भी नरमस्ती मे निमग्न था और भोग–विलास की ओर खिचा जा रहा था । मराठो के विनाश ने देश को गुलामी की जजीर मे जकड लिया था, लेकिन तत्कालीन राजाओ को थोडा भी इस चीज से मतलब नही था ।'राजा गगाधर राव'अग्रेजो की कृपा पर राज्य पा गये थे, अब उनका क्या कहना था ? वे जमकर कला, सगीत, नाटक की धुन मे रमे रहते थे । उस समय 'रानी लक्ष्मीबाई' के समझाने मे 'उनकी समझ मे नही आ रहा था कि देश पर विदेशी शक्ति का प्रभाव बढता जा रहा है ऐसे समय मे राजा युद्ध न कर नाचने गाने की ओर तल्लीन रहते हैं । नाटको मे उनकी विशेष रूझान थी और अभिनय मे उनके प्राण जमे रहते थे । यही कारण था कि 'गगाधर राव' के राज्य मे सैनिक एव प्रचण्ड योद्धा न रहकर अति नाचने वाली वेश्याओ का जमघट लगा रहता था । देश का कितना दुर्भाग्य था कि सक्रान्ति कालीन राजनैतिक अवस्था मे भी यहा के राजा लोग अभिनय एव वेश्यावृत्ति मे लिप्त रहते थे। 'राजा गगाधर राव' का प्रधान कार्य था कि नर्तकियो का चयन नाटको का अभिषेक तथा चार–छ दोस्तो को बुलाकर नाटक मडली के कार्यों का प्रदर्शन, जहा एक ओर अग्रेजी कराल दण्ड का व्यापक प्रकोप बढ रहा था, वही दूसरी ओर सत्ता सम्पन्न लोग नाना विलासी जीवन मे अनुरक्त थे । इस तरह के अनेको विसगतियो का चित्रण वर्मा जी ने अपने उपन्यास 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' मे बडे अच्छे ढग से प्रस्तुत करते है । 'गगाधर राव' ही नहीं उस समय के प्राय सभी राजे अति विलासमय जीवन व्यतीत करते थे । [41] 'गगाधर राव' के शादी के अवसर पर पधारे विजय बहादुर भी उसी मझधार मे बहते हुए दिखायी देते थे । उन्हे नर्तकी दुर्गा बहुत भाई थी और उसका नृत्य तो उन पर जादू ही डाल दिया था ।[42]

पेशवाई का अत हो चुका था । झासी का पतन हो चुका था और ग्वालियर मे आतक छाया हुआ था लेकिन अभी–अभी भी पेशवा रग तथा नाच मे आत्म–विभोर था। ऐसी ही अनेक घटनाये उपन्यास 'रानी लक्ष्मीबाई' मे दिखाई पडते हैं । देश का दुर्भाग्य पेशवा की मौत रानी का बलिदान यह सब कुछ एक ही साथ विपदा के रूप मे आ खडा हुआ ।[43] अपने अत मे पेशवा कितना पथ भ्रष्ट हो गया था यह बताना बडा ही मुश्किल है । रानी हर पल अपनी सावधानियो को चेताती रहती थीं, पर कोई फर्क इन लम्पटो पर नहीं पडता था । रानी के समझाने पर भी न मानने से रानी पेशवा पर व्यग करती थीं कि पेशवा को अपने आपमे परिवर्तन आ गया है । तो भी पेशवा की समझ मे न आता था और वह झूठी पेशवाई तथा झूठे स्वाग का नाटक करता रहता था । कहता है कि– "ऐसा न करते तो पेशवा कैसे कहे जाते"। फिर भी रानी स्पष्ट मना करती

*

है, नाच गाना तुरन्त बद करने का आदेश देती है और कहती है कि तुम लोग अपनी सेना का ठीक प्रबन्ध करो । अपनी निद्रा को त्याग दो । देश को बचाओ पर इन्हे कोई फर्क पडता था और उसी पुरूष की बागडोर जब रानी सभालती है, तो दुर्भाग्य के प्रबलतम थपेडो ने उसे सुला दिया । सामूहिक युद्ध मे रानी का बलिदान हो जाता है, पेशवा को पकडकर फासी पर लटका दिया जाता है ।[44] इस प्रकार वर्मा जी के उपन्यासो मे 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' की देशभक्ति और बहादुरी का विस्तार से चित्रण किया है तथा साथ मे राजाओ के भोग–विलास, आपसी कलह, राज्य हडपने की नीति, अदूरदर्शिता और बहुत तत्कालीन समाज मे फैली विसगतियो का विस्तार से चित्रण किया गया है ।[45]

****

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 द हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जे0 सी0 पावल, सस्करण प्रथम खण्ड–12 पृष्ठ–190

2 ऐन एडवास हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, आर0 सी0 मजूमदार खण्ड–1 पृष्ठ–439

3 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा सस्करण–7,1970 खण्ड–20 पृष्ठ–234 (मयूर प्रकाशन झासी)

4 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–5,1971 खण्ड–53 पृष्ठ–250 (मयूर प्रकाशन झासी)

5 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–5,1971 खण्ड–130 पृष्ठ–119 (मयूर प्रकाशन झासी)

6 झासी की रानी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–14, 1970 खण्ड–01 पृष्ठ–08 (मयूर प्रकाशन झासी)

7 6 झासी की रानी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–14, 1970 खण्ड–32 पृष्ठ–160 (मयूर प्रकाशन झासी)

8 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा खण्ड–37, पृष्ठ–291 (मयूर प्रकाशन झासी)

9 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा सस्करण–07, 1970, खण्ड–18, पृष्ठ–217 (मयूर प्रकाशन झासी)

10 गढ–कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा सस्करण, 09,सवत् 20, 23 खण्ड–02 पृष्ठ–18 (प्रकाशन गगा पुस्तक माला, लखनऊ)

11. गढ–कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा सस्करण, 09,सवत् 20, 23 खण्ड–02 पृष्ठ–386 (प्रकाशन गगा पुस्तक माला, लखनऊ)

12 कचनार, वृन्दावन लाल वर्मा सस्करण–09, 1971 खण्ड–20 पृष्ठ–114 (मयूर प्रकाशन झासी)

13. माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–132 पृष्ठ–525–530 (मयूर प्रकाशन झासी)

14. मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–37 पृष्ठ–292 (मयूर प्रकाशन झासी)

15. महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–18 पृष्ठ–220 (मयूर प्रकाशन झांसी)

*

16 विराट की पद्मिनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–107
पृष्ठ–388 (मयूर प्रकाशन झासी)

17 गढ–कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–09, सवत् 2023 खण्ड–37
पृष्ठ–410 (मयूर प्रकाशन झासी)

18 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–01
पृष्ठ–04–11 (मयूर प्रकाशन झासी)

19 गढ–कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–467 (मयूर प्रकाशन झासी)

20 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–09
पृष्ठ–67 (मयूर प्रकाशन झासी)

21 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–37
पृष्ठ–263 (मयूर प्रकाशन झासी)

22 विराट की पद्मिनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–107
पृष्ठ–379 (मयूर प्रकाशन झासी)

23 विराट की पद्मिनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–03
पृष्ठ–12 (मयूर प्रकाशन झासी)

24 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–22
पृष्ठ–275 (मयूर प्रकाशन झासी)

25 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–38
पृष्ठ–302 (मयूर प्रकाशन झासी)

26 गढ–कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970
पृष्ठ–01 (मयूर प्रकाशन झासी)

27 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–01
पृष्ठ–01 (मयूर प्रकाशन झासी)

28 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–07
पृष्ठ–48 (मयूर प्रकाशन झासी)

29 विराट की पद्मिनी, वृन्दावन. लाल वर्मा, सकरण–07, 1970 खण्ड–107
पृष्ठ–391 (मयूर प्रकाशन झासी)

30 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, संस्करण–05, 1971 खण्ड–09
पृष्ठ–65 (मयूर प्रकाशन झासी)

*

31 माधव जी सिंधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–59

पृष्ठ–268 (मयूर प्रकाशन झासी)

32 माधव जी सिंधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–59

पृष्ठ–269 (मयूर प्रकाशन झासी)

33 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–18

पृष्ठ–215 (मयूर प्रकाशन झासी)

34 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–18

पृष्ठ–330 (मयूर प्रकाशन झासी)

35 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–43

पृष्ठ–334 (मयूर प्रकाशन झासी)

36 माधव जी सिंधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–05, 1971 खण्ड–132

पृष्ठ–525 (मयूर प्रकाशन झासी)

37 कचनार, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–09, 1971 खण्ड–20

पृष्ठ–113 (मयूर प्रकाशन झासी)

38 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–09

पृष्ठ–60 (मयूर प्रकाशन झासी)

39. मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सकरण–07, 1970 खण्ड–63

पृष्ठ–439 (मयूर प्रकाशन झासी)

40 विराट की पद्मिनी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–104

पृष्ठ–379 (मयूर प्रकाशन झासी)

41 झासी की रानी लक्ष्मीबाई, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–14, 1971 खण्ड–15

पृष्ठ–72 (मयूर प्रकाशन झासी)

42 झासी की रानी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–32

पृष्ठ–160 (मयूर प्रकाशन झासी)

43 झासी की रानी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–85

पृष्ठ–462 (मयूर प्रकाशन झासी)

44. झासी की रानी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–104

पृष्ठ–81 (मयूर प्रकाशन झासी)

45 झांसी की रानी, वृन्दावन लाल वर्मा, सस्करण–07, 1970 खण्ड–104पृष्ठ–365

(घ)

वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में सॉस्कृतिक एवं लोक जीवन का परिप्रेक्ष्य

डा0 वर्मा ने मध्यकालीन परिवेश को अपने उपन्यासो मे निरूपति किया है। वे इसके सफल शिल्पी है और अपनी शिल्प विद्या से समाज के यथार्थ का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया है।

समाज का मूलाधार वर्ण व्यवस्था था । ब्राहमण समाज को विद्या प्रदान कर रहे थे । लेकिन समय बदला और बाते मानदण्ड भी बदल गये। यही कारण था कि मध्यकालीन ब्राहमण वर्ग रूढियो से अभिसिक्त हो गया और धर्म के असगत रूप मे भटकता फिरा । अब वह कहर था, अज्ञानी ही और अनुदार दृष्टिकोण का अधकार मात्र उपासक था । दिव्य दृष्टि प्राप्त प्राणियो के वशज आज भटक गए। मानव धर्म को विस्तृत कर गए और मानव जनजानी राह पर चलने लगे , यही कारण था कि जब उन मे दृष्टि न रही जो कभी पुरातन काल मे थी ।'मृगनयनी' का ब्राहमण 'बोधन' इसका जीवन्त प्रतीक है । वह लौकिक धर्म को प्रतिष्ठा प्रदान करता है जब कि मानव–धर्म को तिरस्कृत करता है। उसने स्पष्ट रूप से बताया कि मै राज्य के लिये वर्णाश्रम धर्म को लात नही मार सकता ।[1] इससे यह ज्ञात होता है कि कितना कट्टर था और रूढि पर चलने वाला था । राजा सब कुछ कर सकता है। पर पूजा नही, ऐसा विधान बौधन मे था। ऐसा कुछ मध्यकालीन समाज के ब्राहमणो मे था जो वर्मा जी की अनूठी दृष्टि ने रूपायित किया। मध्यकालीन समाज ब्राहमणो का सच्चा रूप मे हमे बौधन पुजारी मे मिलता है।'विजयर्गम' दूसरा ब्राहमण पात्र है। जो उदार है दूर दर्शी है तथा मानवतावादी दृष्टि का समर्थक और कर्मवाद का अनुपालक जीवन मे काम करना श्रम सोसाइटी का उपार्जन करनो यही गौरव है धारा 'विजयगर्म' ने अपने मत की पुष्टि करण प्रस्तुत की ।[2]

समाज मे ब्राहमण वेदपाठी नही रहे। शिक्षा उनका मात्र पात्र नही रहा ।'वेद' 'पुराण' 'शास्त्रे , 'तन्त्र मत्र' , 'तपस्या' 'साधना' से विलभ ब्राहमण और कर्मो मे निरत हुआ। लेकिन समाज मे सच्चे ब्राहमण का अभी भी अभाव न रहा ।'नारायण शास्त्री' उपन्यास 'लक्ष्मी बाई' मे इसी प्रकार का तन्त्र मत्र ज्ञाता तथा प्रकाड विद्वान था ।[3] बाबा 'गगा दास' भी थे, जो वैदिक त्रषियो की परम्परा को अक्षुण बनाए थे औ धीर तप मे लिप्त रहते थे। इनमे 'त्याग' , 'बलिदान' , 'मानवता' सभी का एक अनमोल समित्रण था ।[4] 'माधव जी सिधिया' का 'नाम 'शास्त्री' भी इसी प्रकार का महान ज्ञानी विद्वान तथा त्यागी व्यक्ति था । पेशवा राज्य का न्याय पर घर मे पिता का एक दान भी होना , उसको महती गरिमा का प्रमाण है।[5] शास्त्रो ने कहा है कि वो घर मे दूसरे दिन

*

के लिए एक दाना भी नही रखा जाता । मध्य युगीन समाज मे ब्राहमण इतर पात्रो मे अगुवाई की। अब ब्राहमण राज्य का प्रधान मत्री बना ।[6]'विराटा की पद्मिनी' का 'जनार्दन शर्मा' प्रधान मत्री था। 'गढ कुण्डार' का 'विष्णु दत्त पाण्डेय' समाज का कौषाब्यदा बना । [7]'कचनार' का 'अचलपुरी' समय का उदभट् योद्धा , प्रचड राजनायक बना । [8] इसी प्रकार 'सदा शिव राव' पेशवा महाराष्ट्र का राजा भी बना जो जाति से ब्राहमण पर कर्म से राज्य का सचालक रहा । [9]

क्षत्रीय शासक थे । राज्य सचालन, गौ ब्राहमण का रक्षा उनका परम कर्त्वय रहा । समाज मे विभिन्न राजाओ का उल्लेख है। सभी एक दूसरे से युद्व रत थे । और बहुद्वा एक दूसरे पर आक्रमण किया करते थे। दात्रिय महान पराक्रमी , उद्भट योद्धा , अवमनीय शैार्य वाले तथा बडे प्रतापी होते थे ।विराट की पद्मिनी का 'लोचन सिह,' गढ कुण्डार का 'पुण्य पाल', मृगनयनी का 'निहाल सिह,' 'मान सिह' आदि कुछ इसी प्रकार के क्षत्रिय है। [10]

मध्यकालीन समाज मे *अन्त्यज* थे । उनकी सख्या तथा उनका वैविध्य हमे वर्मा जी के उपन्यासो मे प्राप्त है। 'मृगनयनी' मे नट–बेडियो का उल्लेख है। [11] इनका बडा पतित कर्म था । झूठे , तलवार, अशिष्ट तथा धीर अनैतिक कार्यो के कारण रहे है ।'लाखी', 'मृगनयनी' जो विधर्मी राजाओ की ओर ले जाने का महान 'कुमुद' उनका था। नाना जादू, मत्र का स्वाग उनका था और अनेक बादशाहो के यहा पहुच उनकी आजीवका थी । इसके अतिरिक्त आर्दशामुख चरित्र भी थे जो नीचे वर्ण सबधित थे ।'रानी लक्ष्मी बाई' की घुड सवारी बुलैया अदभुत महिला थी । जिसने रानी हेतू स्वय को समाप्त करने की कहानी रच डाली थी और मात्र उदेश्य था राष्ट्रीयता के प्रति बलिदान होना । [12] समाज मे कजड थे । [13]'कोरी', 'कुम्हार' 'चमार' भगी साथ ही वैश्या तथा शकर सभी कुछ समाज मे रहते थे अहिर गूजर जाट भी अपनी महत्ता रखते थे। [14]

समाज का जीवन रोगग्रस्त था । छूआ–छूत अन्धविश्वास आदि भयानक हमला होता था। कल्पना नही किया जा सकता है। कि उस समय पानी पीने तक के लिए जाति , गोत्र , शासा , गाव , निवास आदि की लम्बी नामावली प्रस्तुत करनी पडती थी। ब्राहमण का इसी प्रकार का एक साक्षात्कार ग्वालियर मे सम्पन्न हुआ था । [15] विवादी ने पडताल की गोत्र , शाखा, सूत्र , पिता का नाम , धर्म कर्म सभी कुछ पूछ डाला उदारचैता, दूरदर्शी 'राजा मान सिह' निवास भी इसी बीमारी से जूझता न रहा । सुमन मोहिनी घनघोर रूप से इससे आक्रान्त है। 'मृगनयनी' के क्रमश कहने पर उसने उसके स्पर्श का भोजन नही लिया मुझको तो इस से कोई प्रसन्नता न होगी । [16] आदि ब्योरा सुमन 'मोहिनी' 'मृगनयनी' के स्पर्श भोजन का बहिष्कार करती है । वर्मा जी के उपन्यास महारानी दुर्गावती मे 'दुर्गावती' का यह वाक्य "कुछ जातिया ऐसी है जो एक दूसरे के हाथ का बनाया भोजन क्यां हुआ पानी तक नही पी सकती"। [17] इस सक्रामक बीमारी का

*

सहज ज्ञान प्राप्त होता है। इस भावना का समाज मे बडा ही प्रमुख प्रभाव तथा पुन उपन्यास के तीखे खण्ड मे महाराजा 'कीर्ति सिह' ने जाज गौडो के प्रति छुआ–छूत की भावना का निश्चय किया है उनका यह कथन कि बहुत से तो उनके हाथ का छुआ तक नही खाते द्वारा समाज–जन्य इस बीमारी को स्पष्ट किया है। [18] स्वय 'कीर्ति सिह' महाराजा थे। लेकिन इस बीमारी से प्रकट थे । उनका साहस न था कि उसके प्रतिकूल आचरण करे इसलिए एकात मे बुला कर 'कीर्ति सिह' से बात चीत की । सलाह विना एक पग भी नही रखा जा सकता। [19] इससे स्पष्ट है कि इस महाबली बाधा ने सभी को शात कर दिया था। महारानी लक्ष्मी बाई उपन्यास मे इसी भावना का सज्ञान होता है जब कि ब्राह्मण ने मेहतर को लोटा लेने से नकार दिया– बोला जो हो जाति– पाति का यह घमण्ड , द्वारा मेहतर ने उस समय की स्थिति का परिचय कराया है। [20] 'टूटे काटे' का बहादुर रणबाकुरा पात्र 'मोहन लाल' इस भावना का शिकार बना था और अपनी प्रतिक्रिया और छुआ– छूत का आधार विचार यहा इतना ज्यादा है कि चले चल उठता है। [21] इरा शब्दो से सिक्के बना कर के खगारो पर व्यग किया और कहा यदि खगार देवियो के यहाँ की सेकी हुई हो तो उसे कौन खायेगा । [22] आशय कि छुआ कि ज्वाला साध्य पर बहुतो को भोजन कदापि अवग्राह्य नही । दृष्टि जो शूद्र द्वारा ही बनाए भोजन को लेते थे , आज उन्ही की पुन गढ –कुण्डार के 'हुरमत सिह' सर्गक 'गोपी चन्द' का वाक्य सहजेन्द्र इत्यादि को हम लोगो के यहा भोजन करने मे आक्षेप है से मध्य युगीन समाज का सही चित्र उभरता है। [23] 'कचनार' का 'ललिता' भी इसी मे उलझी है। और फिर जिन ब्राह्मणो के हाथ का छुआ ये लोग खाते है। वे ब्राह्मण हमारी रसोई जीमते है। [24] वाकय द्वारा अपनी उलझन को व्यक्त करती है। इससे स्पष्ट है कि समाज मे छूआ छूत की भावना पार कर गई थी। समाज का बहुलाश इससे परपीडित था। अपमानित था तथा मुक्त होने को व्याकुल था। निश्चय वर्णाक्रम धर्म और व्यवस्था ने जहा महान लाभ पहुचाया वही भयानक बीमारी को उत्साहित भी किया । समाज आज भी उस भावना को किसी अश मे अवधारे समय के साथ चला जा रहा है । आज भी वह भावन है उसके अनुपालक है। आचरण कर्ता है, यद्यपि समाज शिक्षित है, शिक्षित होता जा रहा है, लेकिन भावना का निवारण होने नही पाता ।

मध्य युगीन समाज मे अन्ध विश्वास था । समाज का प्राय. अधिक भाग इससे प्रभावित था। नाना यौनियो, भूत–प्रेत तथा नाना लोका चारो मे लोगो की लज्जा तथा भक्ति थी। समाज के अध्ययन मे इस औचित्य का परिज्ञान भी सफल तथा शास्त्रावित अध्ययन के लिए सदुपयोगी होगा, भैरव एक देवता है। क्या करते है। क्या कर सकते हो। इसकी कोई सीमा नही । वर्मा जी के उपन्यास 'दुर्गावती' मे इनकी श्रद्धा पूजा गौडब्रता प्रान्त लगा था। उनसे नाना उपलब्धियो की

*

भी प्राप्ति का ज्ञान हुआ है। [25] कालिंजर का यशस्वी राजा भैरव देवता का पूजन कर । और भक्ति भावना से भर जाय द्वारा देवता के प्रति अन्धविश्वास की धारणा प्रस्तुत की है। दुर्गावती की अवतार थी । साक्षात् परोपकार , दया, माया, ममता , शौर्य और पराक्रम की प्रतिमा थी। लेकिन पूजा के अन्धविश्वास ने इस रानी के आते ही यह विपत्ति हमारे सिर पर आई और ओले पडे उसने अपने घोर अन्धविश्वास को प्रकट किया। इससे कार्य क्रम कारण सबध कुछ भी न था।[26] लेकिन अब जनतक के अन्धविश्वास को दूर कौन कर सकता है। इसी प्रकार के एक भैरव देवता के दर्शनार्थ स्वय सग्राम शाह बली के बकरा बन जाने वाले थे। यद्यपि समय तथा सेवक की स्वामी भक्ति ने उन्हे मर जाने से बचा लिया भैरव देवता के दर्शन आधी रात के समय होगे । [27] द्वारा तान्त्रिक के घोर माया जाल तथा राजा के घोर अन्धविश्वास का समाज होता। भूत – प्रेत बाबा का भय भी विचित्र होता है। उपन्यास सगम के चौवालिसवे खण्ड मे गडिया भूतो के डर से ढोर चराने का उपक्रम नही करता प्रेत बाबा ने पहाडी को घेर लिया , तब से उन्होने पहाडी पर जाना ही छोड दिया द्वारा प्रजावर्ग के समाज के घन–घोर अन्धविश्वास का परिचय प्राप्त होता है। [28]

इसी प्रकार 'लक्ष्मी बाई' उपन्यास मे उदाहरण है। 'राजा गगा धर राव' बीमार है। उन्होने अग्रेजी दवा जानी थी लेकिन व्रह खा ना सकते थे कारण था उन दवाओ का अशुद्ध होना और विदेशी होना । वे दवाओ को तब ग्रहण कर सकते थे जब उसमे गगा जल का छिडकाव हो जाता । समाज कितना अदिग्रस्त था कितना पिछडे पन की भावना का अनुपालक था। इससे सहज स्पष्ट हाक जाता है।। अहिन्दू की छुई हुई दवा को नही खायेगें– गगा जल मिला दिया जायेगा आदि द्वारा समाज के उसी भावना का परिपोषण होता। [29] यही नही सगम का डकैत लालमन अलौकिक पुरूष मान लिया गया था राजा बेटी का यह कथा कि भैया उसे भवानी सिद्ध है। जहा याद करो वही पहुच जाता है। [30] घोर अन्धविश्वासी धारणा का परिचायक है। अन्धविश्वास की **इसी** धारणा की ओर विदेशी 'डनलप' ने 'लक्ष्मी बाई' उपन्यास मे इगित किया है। दुनिया भर की डायिनी , फेली इस भावना का ज्ञान प्राप्त होता है। [31] यही नही उपन्यास के इस साठवे खण्ड मे पुन इसी का उदाहरण आया है। झूठा प्रचार आया कि फलकारी ने ब्राहमण की बछिया मार डाली अब उसके प्रायश्चित का विधान आया । रूप था कि गधे पर बिठला कर मुह काला करों । [32] बुद्धि विफल हो जाती , चेतना सहम जाती है कि यदि सचमुच बछिया मर गई होती तो क्या गधें पर बैठाने तथा मुह काला कराने के महान् सस्कार से उसकी आत्मा को

*

शान्ति मिलती । लेकिन समाज ऐसा था कि समाज मे विचारो का दौर वैसा था और सामाजिक जीवन इससे ग्रस्त हुआ चला जा रहा था।

उपन्यास "टूटे काटे" मे 'मोहन लाल' को छीक आ गई बस अनर्थ हो गयी, सत्यानाश हो गया भगवान यह छीक क्यो आ गई द्वारा उसने आत्म प्रतारणा की और दूसरी छींक लाने के सारे उपक्रमो मे लग गया। [33] समाज की रचना तथा उसके विश्वास के प्रकार विचित्र है। आज भी छीक आने की मान्यता थोडे बहुत रूपो मे इसी प्रकार मोहन का उपन्यास के सौलहवे खण्ड मे बडी विचित्र स्थिति है। मोहन मरा नही है। वह युद्ध से घर वापस आया । उसे लोग मरा समझे थे और आने वाले लोग उसके भूत को बाबा समझ बैठे। जाओ महाराज पधारो –– तुम्हारा चबूतरा बनवा देगे। पूजा हुआ करेगी। के द्वारा लोगो का विकट अन्धविश्वास – मत प्रकट होता है। [34] मोहन यथाशक्ति अपने को पहचान करवाया लेकिन भूत समझ कर सभी आग फेकना शुरू करते और आपातत मोहन को वहा से पलायन करना पडा । तोता व्याकूल है कारण उसने मोहन आत्मा को फतेहपुर , आगरा, मथुरा आदि मे दिन मे देखा है। क्या भूत–प्रेत दिन मे भी दिखलाई देते है, की इसी भावना का, घोर अन्धविश्वास मत का परिचय प्राप्त होता है। [35]

समाज तथा उसके विश्वास पर कितना आश्चर्य होता है कि 'मोहन' सशरीर तलवार भाजता है, 'तोता' उसे देख कर –– भागो भूत है अ रे रे रे रे ।। [36] आदि कथन द्वारा अन्धविश्वास की इसी धारणा का पोषण करता है। और चेतना का अचल लगता है। कि लोग वैसे और किस प्रकार के थे । अब भूत बाबा के दूर करने पुन अनुचित सबल को लेती है और वैसा आचरण करती है।

'मृगनयनी' मे भी इस अन्धविश्वास का प्रभूत–प्रसार प्राप्त है । नट– बेडियो का यह कथन ओ घाट के घटोरिया देवताओ 'गौड बाबा आदि सभी उसी भावना के अश है। [37] पुन वही नट बेडिये नाना मन्त्रो जन्त्रो की कथा बताते है और हम लोगो के पास दवाइयो तथा जन्त्र–मन्त्र है द्वारा समाज के अन्धविश्वास को प्रकट करते है। 'गढ कुण्डार' के उदघाटन खण्ड मे एक समय लपट दिखाई पडी । [38] बस चन्देले को शका हो उठी है कि वहा भूत है उसी गढी मे लो का घूटना दे कर अब कधाया–––– भूत प्रेत की शका की द्वारा इस भावना का पोषण होता है। [39] स्वामी जी को देख कर उसे लगा लडका देव अवतरित हुए है। 'अर्जुन' ने झुक कर प्रणाम किया आखे बन्द कर ली। [40] इस प्रकार लड़का देव की विचित्र छाया उसे स्वामी जी के के रूप मे प्रकट हुई । पुन. उपन्यास के अन्त मे 'दिवाकर' के पागल पन का प्रश्न आता है। दिवाकर ठीक है। प्रेम की आधी मे प्रवाहमान है। और इधर उधर की बाते प्रस्तुत करता है। बस इतने लक्षण से वह भूत बाबा मे जा लगा । 'चमूसी' बोला –– इन्हे कुछ नही किसी देवता की सवारी हैं द्वारा

*

भूत वाली वार्ता की पुष्टि होती है। प्रेत बाबा का सब से बडा विषय बना 'कचनार' का 'राजा दिलीप सिह – उसने 'बैजनाथ' की हत्या की थी । अब 'बैजनाथ' का भूत उस पर सवार हो गया –– जनता मे एक बात फैली –– 'बैज नाथ' का प्रेत 'दिलीप' के सिर पर आ गया है। तथा उसके निदान मे बकरे तथा अन्य पशु काटे जाने लगे। [41]

इतना ही नही राजा 'दिलीप सिह' पर भूत किसी प्रेत की सवारी है। द्वारा गोसाई भक्ति की भी ज्ञापन होता । वेली उसे भूत द्वारा भूत ग्रसित ही बताते है। समाज का भूत का राक्षस कितना छाया था वह इसी उपन्यास के उन्नीसवे खण्ड से ज्ञात होता है। 'ललिता' के स्पष्ट बताने पर भी सैनिक तक चलो यहाँ से हजारो वर्ष का भूता खाना है ऐसा मत प्रकट करते है। [42] भूतो का इतना प्रबल प्रकोप हुआ कि 'कलावती' को 'मान सिह' तक न समझ पाया और कल से पूजा पाठ बैठाया , हवेली भर मे गगा जल छिडक दो जिससे प्रेत यहा न आने पाये वाक्य द्वारा एक लम्बी बृहद योजना का सूत्रपात्र हो गया । [43] भूतो की पराकाष्ठा तो तब पहुची जब 'मान सिह' ने कलावती को रामझाया कि भूत प्रेत दिन मे बात चीत नही करा करते इससे स्पष्ट होता है कि समाज भूत प्रेत के भावनाओ मे बुरी तरह आक्रान्त था। पुन 'माधव जी सिधिया' उपन्यास मे गोसाई साधुओ के विषय मे बताया गया प्रसिद्ध था कि गोसाई लोग जादू के बल पर लडाई जीतते है। इस प्रकार जादू–टोना के प्रति भी जन समूह का घोर अन्धविश्वास था समाज अन्धविश्वासी था। समाज अन्धविश्वास तथा रूढि से कितना ग्रसित था इसका परिचय 'अमर बेल' के उपन्यास के छठे खण्ड से मिलता है। मैसो पर इस साल किसी देवता का कोप है। जब कि बीमारी का निदान न कर घोर अन्धविश्वास की ओर समाज जा लगता है। राजा 'लक्ष्मी बाई' प्राप्त करना चाहता है वह उनको प्रसन्न करना चाहता है इसी लिए कहता है। उल्लूओ को लडाने से लक्ष्मी जी अप्रसन्न हो जायेगी और आफतो को न्यौता दे देगी। पुन उपन्यास के अट्ठाइसवे खण्ड मे 'लक्ष्मी' हेतु उल्लू पूजन का वर्णन है। राजा ने कहा 'उल्लू' लक्ष्मी जी का खरा वाहन है सात उल्लूओ को पकड कर पिजडे मे पाल लूगा और पूरी भक्ति के साथ उपासना करुँगा वर्णन कितना हास्यास्पद तथा तत्कालीन रूढि ग्रस्त समाज का स्मरण दिलाता है। [44]

इस प्रकार मध्य युगीन समाज भयानक रूप से रूढिग्रस्त था। अनेक जन्त्र–तन्त्र अनेक रूढियो, अनेक प्रकार के विश्वास , समाज मे प्रचलित थे विचित्र स्थिति है कि अन्धविश्वास का वह क्रम आज भी है । आज भी बिल्ली रास्ता काट गई , चलते समय छीक आ गई, बीमारी न हो कर देवता का प्रकोप , दवा न हो कर ओझा का दरस परस आदि तथ्य उसी गहरी भावना का स्मरण नही किया । आज भी भूत–प्रेत इतने सच्चे है।, उतने विकट है जितना मध्यकालीन

समय मे। आज भी भूत–प्रेत विशेषज्ञ, ओझाओ का स्नेह सम्मान होता है। इस प्रकार पुरानी बनी धाराणाए प्रतिष्ठित होती है। भविष्य मे क्या स्वरूप रहेगा , केवल समय बता सकेगा ।

विवाह सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण सस्कार है। मध्यकालीन समाज मे विवाहो के कई विषय रहे है। लेकिन वैदिक प्रणाली के वरैण्य रही है। अर्न्तजातीय विवाह पूर्णतया वहिष्कृत था। समाज का कोई वर्ग इस प्रणाली की अवहेलना नही कर सकता । नियमो का उल्लघन कर्ता घोर सामाजिक बहिष्कारो से तोड दिया जाता था। इतने कडे प्रतिरोध के विपरीत कुछ विवाह होते रहे है जिनका अवलोकन वर्मा जी के उपन्यासो मे दृश्य होगा।

मध्यकालीन समाज मे विवाह वैविध्य था। विवाहो का कुछ रूप तो हास्यास्पद था। गौड राजा 'नागदेव' अपनी मात्र एक सतान 'रत्नावली' के लिए नीलकठ पक्षी को उडाया। पक्षी जिस पर बेठेगा , उसी से उसका विवाह होगा। इस प्रकार उस लडकी का विवाह ऊचे जाति वाले युवराज से हो गया। [45] समाज मे विवाह का प्रचार था। इसका उदाहरण हमे 'दुर्गावती' के उन्नीसवे खण्ड से प्राप्त होता है। सेठ कौडी दास ने इसी प्रकार का पुर्नविवाह राजा को कर दे कर किया था। अपनी प्रेमिका को किसी भी मूल्य पर नही छोडना चाहता था। [46] पुर्नविवाह का एक जीवन्त उदाहरण हमे मिलता है 'कचनार' उपन्यास मे । महाराज 'दिलीप सिह' मृत मान लिए गए । उसकी रानी 'कलावती' थी। 'मान सिह' ने रानी से पुर्नविवाह की ठान ली । महन्त ने कहा रानी यदि मान गई, तो पुर्नविवाह भी मान सिह कर सकता है। [47] टूटे काटे के बारहवे खण्ड मे बुड्ढे को 'तोता रानी' के पुर्न विवाह की शका हो उठी थी। कही तोता साथ पुर्नविवाह न हो जाय । [48] लगन के बावजदू अपनी लडकी के पुर्नविवाह में इच्छुक दृष्टि गत होते है। लडकी का पुर्नविवाह शीघ्र करने वाले है शायद प्रभा छेला सौभाग्यशाली वर होगा पुर्नविवाह की कुछ झलक मे रामगढ की रानी उपन्यास मे दृष्टि गत होता है। 'शकर शाह' ने इसी विवाह हेतु कर दिया था। मामले का सम्बन्ध धरीचा–पुर्नविवाह से था। इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज मे पुर्नविवाह की प्रथा प्रचालित थी। [49]

बहुत अनुलोम विवाह प्रचलित था। प्रतिलोम विवाह घृणाष्पद तथा हेय समझा जाता था। अपने से नीचे वाले वर्ग से क्या सबध वही होता था। यही कारण था कि 'महारानी दुर्गावती' के पिता 'कीर्ति सिह' लडकी सबध मे इतना अधिक चिन्तित हुये। 'दलपति शाह' राज गौड थे। इनकी सामाजिक मान्यता 'कीर्ति सिंह' से बहुत नीचे थी। अत विवाह सबध होना सभव न था। पिता 'कीर्ति सिह' लोभी स्वभाव के थे। स्वरक्षा तथा लोभ उनकी दृष्टि में था, और इसी कारणवश उन्होने 'दलपति सिह' शाह राजगौड से विवाह कर दिया । 'कीर्ति सिह' ने कहा आप राजकुमारी के

साथ राजधानी गढ जायेगे– विवाह सस्कार वही होकर रहेगा । इसी प्रकार राजा ने सबध जातीय –मान्यता को तिलांजलि दे कर'राजा कीर्ति सिह' जीवन की छवि हार गया।

रक्षा के जिस उददेश्य का परिमापन था वह भी समय पर पूरा नही हो पाया था। इसी के ठीक विपरीत स्थिति है।'गढ कुण्डार' के चन्देल राजा'सोहन पाल' था'सोहन पाल' क्षत्रिय था। शौर्य, स्वाभिमान, जाति, गौरव उनकी निधि थी। दुश्मन को परास्त करने की क्षमता थी। और सब से बडी बात थी नैतिक पराकाष्ठा की । यह सब कुछ 'सोहन पाल' के पास पूर्वजो की विरासत थी । खगार राजा 'दुरमाढ सिह' था। चन्देल उनके यहा विवाह नही करते थे। राजा ने 'नाग देव' के साथ राजकुमारी'हेमवती' का बलात् सबध न कराना चाहा था। तुम बडे पैने हो'गोपी चन्द', परन्तु इस सब हरण–वरणस का प्रबध तुम लोग जैसा जानो कर लो। लेकिन जैसा उपन्यास का अन्त है, कुछ उसी प्रकार हुआ ।'पुण्य पाल','सोहन पाल,' 'अग्नि दत्त' दादि के सम्मिलित दाहिनी ने खगार वश का ही सर्वनाश कर दिया । सदियो से राज्य करते खगारो का सदैव के लिये निपटारा कर दियारा। आज खंगार नही रहे, उनकी कामुकता ने उसके वश को स्वाहा कर डाला और कहानी बन करके आज भी 'बुन्देलखण्ड' उनका स्मरण करता है। उपन्यास का अति कारूणिक अन्त तुम पान्डे नही हो – पान्डे ऐसा नही कर सकते थे। और पान्डे अपनी भूल पर अब मरना चाहता है वे'कचनार'लड रहे थे'अग्नि दत्त' मरने के लिए आदि ।

ठीक इसी ढग का एक वैवाहिक प्रकरण वर्मा जी के उपन्यास 'भुवन–विक्रम' से प्राप्त होता है। 'भुवन' 'गौरी' से विवाह करना चाहता है परन्तु राज्य के लोलुप 'मेघ' ब्राह्मण ने एक बीमारी षडयत्र रच डाला । षडयत्र का रूप था। हिमानी राजकुमार को माला पहनाने। विवाह सबध की घोषणा हो और बारात मे जब दूल्हा तथा उसके सन्वेदी हो, मार डाला जाय । इस प्रकार का भी विवाह भारतीय सस्कृति के कठोर करलो मे जाना पहचाना गया । यद्यपि माला पहनाया गया, बारात का अगमन हुआ , लेकिन देव भोग से हत्यारे हत्या के पात्र बने और निर्दोष भुवन, रोमक आदि इस महान कान्ड से बच निकले।'हिमानी' का वाक्य हमारे यहा एक परम्परा है ब्याह की रीति के पहले दुल्हा दुल्हन बालदेव की पूजा करते है। [50]'हिमानी' का यह कृत्य एक सन्दूक मे से दो तेज छुरिया निकाली एक गोरी को दे दी । [51] हिमानी की यह दशा हितानो के हाथ पीछे बाध लो छुरी अब भी लिये है। [52] किसी एक अद्‌भुत, अत्यन्त निकृष्ट तथा पतित वैवाहिक पद्धति का स्मरण दिलाती है। भारतीय सस्कृति पति पत्नी का देव होता है। परमपूजस तथा श्रद्धा का पात्र होता है। इसी पति के पीछे इतनी बड़ी योजना तथा स्वय को छुरी द्वारा हमला , पाठको के लिए अद्‌भूत बन जाता है। इस प्रकार इतिहास के क्रूरतम कालो मे ऐसे भी वैवाहिक बन्धनो का ब्यौरा आया है।

बृद्धावस्था का विवाह समाज मे प्रचलित था।'राजा गगाधर राव' उम्र पार कर चुके है। लेकिन 'मनूबाई' से जिसकी आयु उनके आयु की आधी थी, विवाह करने को उधत हो गए थे। दीक्षित ने कहा मैने जन्म पत्रियो की परीक्षा कर ली है बिल्कुल मिल गई है। [53] विराटा की पद्मिनी के 'राजा नायक सिह' है। शरीर से रोगी, मन से लम्पट, शौर्य से विरागी पर विवाह तथा कामुकता मे कही बहुत आगे ।'नरपति' की लडकी 'कुमद' दुर्गा की अवतार मानी जाती थी। राजा उससे भी विवाह करने को व्याकुल था। राजा बोला मार डालो सबको, परन्तु उसकी लडकी को लिवा लाओ द्वारा पुन बृद्ध विवाह के विषय का ज्ञान होता है।

समाज मे बहू–विवाह की भी प्रथा थी । यह एक समाज के लिए एक विभीषिका थी। नारियो के लिए नर्क थी और राष्ट्र के लिए कलक। वर्मा जी के उपन्यास 'मृगनयनी' मे नसीर उद्दीन की बीबियो की सख्या बेसुमार थी। कहते है बेगमो की मर्दुमशुमारी– अभी पन्द्रह हजार मे डेढ हजार की कमी थी। [54] यही नही स्वय सच्चरित्र हिन्दू राजा 'मान सिह' के बारह परिणीता धर्म पत्निया थी।'मृगनयनी' की आखिरी रानी थी। उपन्यास गढ कुण्डार मे भी 'अर्जुन पाल' ने तीन विवाह किए थे ।[55]

बहु विवाह प्रथा बडी हेय है। उससे चारित्रिक प्रष्टता को प्रोत्साहन मिलता है। सामाजिक मान दण्डो को चुनौती मिलती है। और सामाजिक सारी व्यवस्था विनष्ट हो जाती है। इससे अलग व्यक्ति के ऊपर बडे बुरे प्रभाव दृष्टिगत होते है। 'मृगनयनी' के 'नसीरउद्दीन' के हरम मे सैकडो लड़के पाए गए। बेगमो की कामुकता, काम भावना को परिपोषण उन्ही के द्वारा होता था। राजा के कडे पहरे , मर्दुमशुमारी आदि का अल्प भी असर उन पर नही था।'मृगनयनी' का यह वाक्य कि "ये युवक कुछ बेगमो की कामवासना को दृष्टि करने के लिए आ घुसे हैं। [56] कितना लज्जालू है, राष्ट्र के लिए , समाज के लिए, फिर उस बादशाह और बेगमो के लिए घोर शर्म की बात है। यही नही इसके और भी घोर परिणाम हुए है।" 'सुमन मोहनी' एक विचित्र रानी है। लोग, मोह, माया, स्वार्थ की भावनाये उसमे प्रबल थी और इसी कारण ग्वालियर का राज्य रसालत को जा लगता , लेकिन 'मृगनयनी' की सूझ– बूझ तथा दूर दर्शिता ने राज्य को बना लिया । यह सब उसी बहु विवाह प्रथा के घनघोर , कालिमा से युक्त परिणाम हैं ।

समाज मे अर्न्तजातीय. विवाह प्रचालित थे। यद्यपि कर्णधारो की मुक्ती चक्र थी। यह उनकी चेतना के विपरीत था और नियमो का स्पष्ट उल्लघन था लेकिन इन के विपरीत ऐसे विवाह दृश्य थे। मृगनयनी में अटल गूजर है।'लाखी' अनिध्य सुन्दरी पर है। अहीर बाला , अटल , जैसा उपन्यास मे चित्रित है। बडा ही सच्चा उपासक तथा लाखी से प्रेम करने वाला था। विवाह का प्रस्ताव हुआ, तत्कालीन ब्राह्मण बोधन का रूढिग्रस्त मत होना, और ऐसे विवाह का प्रस्ताव

*

को स्पष्ट नकार दिया। स्वय 'राजा मान सिह' का अनुरोध पोगा पडित के मत मे विभिन्न न ला सका । मै राज्य के लिए वर्णाश्रम को लात नही मार सकता । [57] आदि यही नही समाज भी इसे निक्ष्य मानता था। दूसरे ने हाती , ऐसा अधर्म , हाय रे कलिकाल द्वारा समाज की नाडी का सही ज्ञान होता है। [58] उपन्यास 'गढ कुण्डार' मे 'अग्नि दत्त' के माध्यम से लेखक की आत्मा स्वय कोसती पडी है। कि यदि एक जाति वाला दूसरी जाति मे विवाह सबध करना चाहे तो मजे से करे। [59] और अर्न्तजातीय वैवाहिक बन्धन की प्रेक्षा की है।

वास्तविकता यह है कि अर्न्तजातीय विवाह ग्राह्य था। वैदिक काल मे ऋषियो द्वारा भी ऐसे विवाह अविचार्य थे। उसे वे 'गन्धर्व विवाह' की सज्ञा प्रदान करते थे। मध्यकालीन समाज मे इसका भीषण प्रचार था। 'दुर्गावती' का गौड "राजा दलपति," 'नाग देव' 'हेमवती' विवाह सबध उसी वैवाहिक –सूत्रो से परिपालित' थे । [60] यही नही 'माधव जी सिधिया' भी 'गन्ना' को चाहते थे। विराटा की 'कुवर सिह' दागी कन्या को हृदय दे चुका था। कचनार का राजा दिलीप सिह कचनार पर लट्टू था। टूटे काटे का 'मोहन' 'नूरबाई' को अपनी प्रेयसी मान बैठा । उपन्यासो से लगता था कि पूरा समाज इस प्रकार के विवाह से भरा पुरा था। विरोध था लेकिन गतिरोध न हो सका । लोग खुलकर इस प्रकार के विवाह करते थे।

समाज मे रखैल औरत रखने का रिवाज था। बिना विवाह की दासियो तो थी पर वे रखैल न कहलाती । रखैल औरत की सीमा बहुत कुछ समाज के थोडे वर्गो से था। [61] उस बेचारी को रखैल कहके घर मे डालेगे या किसी तरह का ब्याह सबध स्थापित करोगे। नाम का यह वाक्य बहुत कुछ रखैल औरत प्रथा का स्मरण दिलाती है। टूटे काटे का नायक 'मोहन' नूर बाई को रखैल औरत के रूप मे रखता है। उसकी परिणीता धर्म पत्नी रोनी थी। लेकिन उससे उसका लगाव अति अल्प था। [62] 'मोहन' बोला कुन्ध मे चलो चलो नूर बाई के होठो की मुस्कान पर नाच गया आदि वाक्य रखैल औरत के जीवन यापन कराते है। 'लक्ष्मीबाई' का 'शास्त्री नारायण' इसी प्रकार एक अहिरिन 'छोटी' को रखे था। शास्त्री बडा अनुग्रह हुआ, पर इसी के साथ झासी छोडने को तैयार हूँ। [63] उपन्यास 'सगम' भी इसी प्रकार के उदाहरण से भरा है। जिस अहिरिन को उन्होने रख लिया है, आदि वाक्य द्वारा नंद राम ने रखैल औरतो पर अपना विचार प्रकट किया है।[64]

मध्य कालीन समाज ने विधवा को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था। 'माधव जी सिधिया' उपन्यास मे जाटो की उस प्रथा का उल्लेख हुआ जिसमे विधवा भावज के साथ विवाह की प्रणाली थी। जाटो मे विधवा विवाह भावज के साथ विवाह करने की पुरानी प्रणाली है, परन्तु स्त्री मान जाय तो, 'कचनार' की 'कलावती' भी विधवा विवाह की प्रस्तावना करती है, हमारी जाति

*

के कुछ लोगो मे विधवा विवाह की रीति है। सगम उपन्यास का नायक राम चरण भी गगा के साथ विधवा विवाह करता है। मुखलाल ने राम चरण का विवाह गगा के साथ करा दिया और अचल मेरा कोई उपन्यास बिना किसी धूम धाम के अचल के साथ निशा का विवाह हो गया । वाक्य की घोषणा द्वारा विधवा की इसी प्रथा का उल्लेख प्रस्तुत होता है।

विधवा–विवाह समाज मे प्रचलित था। यह तत्कालीन उदार दृष्टि को परिमापक है। विधवा यदि नव युवती है तो वैवाहिक बन्धन अपेक्षित है। उसका सबध न करना घोर पाप है । समाज के लिये अनिष्ठ है और स्त्री की प्रकारान्तर से हत्या है। आज भी विधवा विवाह है। समाज के उच्च वर्ग यथा 'ब्राहमण,' 'क्षत्रिय' भी इस प्रथा को अवधारे है। कारण उचित है क्योकि और विवाह द्वारा उनके दुष्कर्म तथा पापाचार का तिरोधान होता है। अत मध्यकालीन समाज की यह परम्परा निश्चय ही ग्राह्य हो सकती है और विधवा विवाह किया जा सकता है।

पर्दा प्रथा मुसलमानी युग की देन है। इससे पूर्व भारतीय इतिहास के किसी काल–खण्ड मे इसका परिचय नही मिलता । वैदिक काल नारियो का पूर्ण स्वतत्र काल था। उस समय पर्दा नाम का कोई प्रचलन न था। मुसलमानो के आने के बाद औरत मे इसका प्रचलन हुआ । वर्मा जी के उपन्यास 'दुर्गावती' मे घूघट की चर्चा थी। गौड स्त्रिया घूघट साथकर प्रक्षोत्तर सुनने लगी।[65] राज कुमारी पर्दा से पर्याप्त दूर रहना चाहती है। उसका मन स्वच्छद विहार मे अधिक लीन है। लेकिन युगीन परम्परा ने उसे पर्दे वाली पालकी मे जाने को बाध्य कर दिया । पर्दे की पड़ी पालकी मे आना 'दुर्गावती' को अच्छा नही लगा था।[66] सस्पष्ट होता कि नारिया अब पर्दे का बहिष्कार करने को उधत थी , इस प्रथा को समाप्त करने मे तत्पर थी। पुन इसी पर्दा का प्रकारण उपन्यास के पन्द्रह्वे खण्ड मे 'चन्द्र सिह' द्वारा आता है। वह राजा का भाई है और पर्दा का पर्दापति , क्यो कि आप महारानी है और हमारे यहा पर्दा होता आया है। द्वारा उसने पर्दे की एक लम्बी परम्परा का उद्बोधन किया है। यह परिपाटी थी। एक लम्बी परम्परा थी, जिसने आपतत 'दुर्गावती' को भी पर्दा करने को बाध्य किया। मै विशेष अवसरो पर पर्दे को रखूगी के द्वारा उन्होने भी इस सामाजिक कलक को अवधारा था। अत पर्दे को पूर्णतया बहिष्कार करने की घोषणा रानी ने कर दी । मैं पर्दा बिल्कुल नही करूगी द्वारा उसने इस प्रचलन के चोले को उतार फेका , जो समाज तथा राष्ट्र दोनो हितो मे वरण्ये रहा ।

'राजा गगा धर राव' पुराने विचारो के पोषक थे। स्त्रियो की स्वाधीनता उन्हे साध्य नही । समाज मे पर्दा चाहे न भी रहे लेकिन राज महल मे पर्दा की कड़ाई के कायल थे। परन्तु अपने महल मे काफी पर्दा बरतने के दृढ पक्षपाती थे। [67] द्वारा उनके विचारो का स्पष्टीकरण होता है। इस प्रकार पर्दा प्रथा की धारा अभी भी अनवरत् ही बनी रही । पर्दा प्रथा के इसी प्रकोप के एक

*

सुन्दर स्थल का ज्ञान हमे उपन्यास के'झासी की रानी लक्ष्मी बाई'सेवक खण्ड से प्राप्त होता है। खुदा बख्श – "क्या कहू, वे तो मुझसे पर्दा करती है आप ही पूछियेगा ।" [68] इसमे'मोती बाई' के पर्दा के प्रति हुई आचरण का परिचय मिलता है।'कचनार'के राजा'दिलीप सिह'पर्दे से दूर थे। उन्हे पर्दा प्रथा का आचरण मान्य था। वह इसकी जानकारी अपनी 'रानी कलावती'को करा चुके है। लेकिन परम्पराओ, प्रथाओ, प्रचलनो ने रानी को अपनी पाशो न छोडा और पर्दा के प्रति अन्य भक्त बनने ही दिया। दिन भर नाते की असख्य सासो कदमों के पदस्पर्श की कवायद मे जितना लम्बा घुघट खीचना पडता है।·[69] द्वारा'रानी कलावती'के घूघट के प्रति हुई अभिन्नता का ज्ञान होता है।

इसी प्रकार पर्दा प्रथा थी। उसका प्रचलन था, लेकिन युग के थपेडो ने उसके रूप को बदल दिया। मध्यकालीन समाज भी इसको अधिक समय तक अवचार्य न बन सका ।'अमर बेल' की नायिका'अजना'पर्दे से सर्वथा दूर है। वह नारी हो कर पुरूष से बडा खतरनाक कार्य करती है और बिल्कुल स्वच्छन्द, उन्मुक्त विचार करती है।'अजना'सामान रखवाने लगी, हरे रग की पेटी की सावधानी से। उसके अफीम के कारोबार का ब्यौरा तथा उसके स्वच्छद जीवन का परिचय मिलता है।

वह विचरण शील है। पर्दा की घोर आलौकिक, सगीत, वावन की सातारा देवी । वह पर पुरूष अचल से भी वार्ता करती है तो पर्दा को ताक पर रख कर । आपको जहा जाना हो जाइए मैं लौटी जाती हू धारा उसके वार्ता तथा उन्मुक्त जीवन दर्शपन का ज्ञान होता है।

आहत की नायिका आशा चरम बिन्दु पर पहुचती है। विवाह प्रारम्भ है। दूल्हा वेदी पर आसीन है। पडित जी मगल मन्त्रो का उच्चारण कर रहे है। लेकिन बिना दहेज के मवर नही हो सकती है। इस बात पर वार्ता को क्रोध चढ गया और भरे दरबार मे उसने दुल्हा तथा उसके पिता को जूतियो से स्वागत किया और अपनी स्वच्छन्धता को अमिट छाप दी जब एक नव युवक दीप से स्वेच्छा से विवाह कर लिया विवाह वेदी के निकट किसी ने देखा कि उसने एक हाथ से दुल्हा के मुह पर दूसरे से दूल्हा के पिता के सिर पर तडा तड लगाई यही नही, यही नही, यहा है कोई साहसी जो मेरे साथ ब्याह करने को तैयार हो– है कोई ऐसा" द्वारा उसने युगो से आती नारी-को सर उठाने का अवसर लाभ कराया । पहली बार और विचित्र रूप से वर्माजी की लेखनी ने नारी स्वातन्त्रय का, उसके मनोबल का, सच्चा ब्यौरा प्रस्तुत किया है ।

आज नारी स्वतत्र है । पुरूष के हर कदम से उनका कदम मिलता है । कहीं वह भी स्थल है जहा वह पुरूष को काफी पीछे छोड देती है । शिक्षा से लेकर शासन तक आज उनका प्रभाव है । इतना सच है, लेकिन असीम घोर पिछडे समाज मे पर्दा प्रथा के अवशेष अवश्य है ।

*

आज भी वहा पर उसका प्रचलन है । समय, शिक्षा के बढते मानदण्ड और प्रगतिशील विचार सभवतया इस प्रथा को समाप्त कर सकेगे ।

'भुवन विक्रम' की नारी ह्मिानी अद्‌भुत है । उसने अपने पौरूष के आधार पर इतना बडा मेला सगृहीत कर लिया था, सारे नाटक का केन्द्र बिन्दु स्वय परिचालिक स्वय और मार्गदर्शक भी स्वय रही है ।

समाज मे 'सती प्रथा' का प्रचार न था । सती होने की पुरानी आदि ग्रस्त भावना का समय समाप्त था । अब पति के साथ पत्नी का मरना नारी का अवथार्थ न था । पति नही है, स्त्री उसके कार्यों को, उसकी कमी की अपूर्ति का प्रयत्न करेगी । 'महारानी दुर्गावती' मे सती होने का ब्यौरा आया है । 'चन्द्र सिह' राजा का सहौदर है । राज्य का लोभी और 'दुर्गावती' के ऐहिक जीवन का विरागी । उसे एक पल भी अवरानी का अस्तित्व साध्य नहीं था । दुख से भरे महल और 'मोहन दास' से उसने "अपने यहा सती की रीति भाषी रानी तैयार हो रही होगी" कहकर अपनी लोभी भावना का प्रदर्शन करता है । [70] सभव था कि सती होने वाल स्त्रियो को बलात् सती होना पडता था । [71] यद्यपि इस समय बलात् सती होने का भी रिवाज उठ गया था" मैं सती नही होऊगी द्वारा रानी ने उस लफगे तथा नीच कुत्ते को समझा दिया और सती होने से बच निकली ।

'गगाधर राव' भी मृत हो गए । 'रानी लक्ष्मीबाई' के सती होने का उदाहरण आता है ।[72] एलिस ने कहा "मुझे शका है कि कही रानी सती होने की कोशिश न करे ।" लेकिन रानी बहादुर थी, समय और समाज ने उसके कार्यो का आवाह्न किया और वह कूद पडी राष्ट्र के महान हित को, महान योजना को कार्यान्वित करने मे । 'मृगनयनी' की नायिका निन्नी भी सती प्रथा के विरोध मे भाव ज्ञापन करती है । वह कहती है "उनकी स्त्रिया चिता मे जलकर भस्म हो जाती हैं – मै तो इस तरह कभी मरने को नही" । इससे स्पष्ट होता है कि समाज मे सती प्रथा को थोड़ा भी रिवाज न था । स्त्रिया जागरूक थी, चेतना थी तथा समय के गति की जानकार थी । पति मर गया, पत्नी भी मरे, यह उन्हे अब ग्राह्य न था । 'विराट की पद्‌मिनी' मे भी रानी के सती होने का उदाहरण आता है । लेकिन –"द्वारा उसने इस कलक के चादर को दूर फेक दिया और सती नही हुई ।

सती होना एक आदर्श समझा जाता था । लोक मे इसकी मर्यादा थी । जनता मे इसके प्रति श्रद्धा थी । सती होने की कोई मनाही न थी, लेकिन सामाजिक प्रतिष्ठा अभी भी वही थी । सती होने को स्त्रियां अपना उत्तम धर्म मानती थीं, यही कारण था कि 'विराट की पद्‌मिनी' मे रानी ने सती होने की अभिलाषा प्रकट की है । "उसी के षड्‌यत्रो ने राज्याधिकार से वर्जित रहीं, उसी

*

की धूर्तता के कारण सती न हो पाई" आदि वाक्य रानी के सती होने के प्रति हुई अभिलाषा का ज्ञापन होता है ।

यथार्थ कुछ इससे भिन्न था । यथार्थ मे सती होना केवल कोरी कल्पना था । बिना मतलब का तथ्य होता है, इसीलिए इतिहास के उन कालखण्डो मे सतीप्रथा थी, लेकिन मध्यकालीन समय मे इसका पूर्णतया बहिष्कार था । आज स्थिति बिल्कुल भिन्न है । आज सतीप्रथा की ओर सरकारी अध्यादेश आ गया है ।'राजा राममोहन राय' के बाद के काल से लेकर आज तक इस प्रथा का कोई भी स्वरूप नही रहा । वर्तमान समाज इस कलक से पूर्णतया विमुक्त है और नारी जीवन पूर्णतया भय रहित ।

गोद–प्रथा मध्यकालीन इतिहास की देन है । उस समय हमे इस प्रथा का ज्ञान होता है। रानी लक्ष्मीबाई उपन्यास मे इसका उदाहरण प्राप्त है ।'राजा गगाधर राव' बीमार है, मृत प्राय है । ऐसी अवस्था मे राज्य के उत्तराधिकारी हेतु हमारे कुटुम्बी 'वासुदेव राव' ने बालकर का पुत्र 'आनन्द राव' है, तो आज ही शास्त्रानुसार गोद ले लू ·। इस प्रकार सतान न होने पर गोद लेने की भारतीय धार्मिक मान्यता थी । वह मध्यकालीन काल मे बडे ही प्रवेग मे थी ।'विराट की पद्मिनी' मे राजा इह–लोक–लीला समाप्त करने वाले है । उत्तराधिकारी का होना उस हेतु अतीव आवश्यक हो गया था । "जी कडा करके मैंने राजा से कहा कि किसी को गोद ले लिया जाय"। जनार्दन शर्मा का यह वाक्य गोद लेने की इसी प्रथा का ज्ञान कराता है। ठीक इसी प्रकार 'गढकुण्डार' के भारी व्यापारी तथा धनी व्यक्ति विष्णु दत्त पाण्डेय ने गोद लिया था" मरने के पहले विष्णु दत्त ने एक सजातीय को गोद लिया था, इससे उनका वश नष्ट नहीं हुआ ।

इस प्रकार डूबते वश के लिए गोद प्रथा सहारा थी । एक सबल था जो परिवार के नाम को रोशन कराने मे मदद करती थी । आज का वर्तमान समाज भी उससे प्रभावित है । आज भी लोग गोद ले सकते है, लेते है लेकिन राज्य के कानूनो को सानुकूल बनाते हुए । इस प्रकार प्रथा आदर्श थी और आचरण अनुकार्य था ।

त्यौहारो का आगम पुराना है । लोक जीवन मे इनका बडा महत्व है । दैनिक कार्यों से अब जन मानस त्यौहारो पर मनोरजित होता है और जीवन भार को हल्का बनाता है । मध्यकालीन समाज मे विभिन्न प्रकार के त्यौहार थे । प्राय त्यौहारो का निर्धारण राज्य, वर्ग, धर्म तथा अनेक कारणो द्वारा होता था । मेले बहुधा, इन्ही त्यौहारो के पृष्ठभूमि पर बनकर आते थे । 'दुर्गावती उपन्यास' मे इसी प्रकार का एक मेला मनियागढ़ मे सयोजित था । जिसमे गौंड राजा 'दलपतिशाह' स्वयं पधारे थे । अगहन के पूर्णमासी को 'मनियागढ़' मे मेला लग रहा था । [73] द्वारा समाज के इस क्रिया–कलाप का ज्ञान होता है । मेलो मे प्राय. समाज के हर वर्गों का सम्मलित

*

होना था । राजा से लेकर दरिद्र तक की पहुच होती थी । इसी प्रकार हरदी कूर्क (हल्दी कुकुर्म) का उत्सव 'रानी लक्ष्मीबाई' के उपन्यास मे प्राप्त होता है । इसमे गौर की प्रतिमा प्रतिष्ठित होती है। फूलो–आभूषणो से लादकर जनमानस पूजा किया करतीं थी ।'मृगनयनी' का होली का त्यौहार अपनी कुछ अलग ही सानी रखता है । जिसमे दीन–हीन समाज अपनी अल्प सीमाओ तथा अल्प जीवन प्रसाख्यायिकाओ को लेकर उत्सव मे निमग्न होता है ।'मृगनयनी' के समाज के अध्ययन से लगता है कि उस समय होली का उत्सव एक दिन नहीं, अपितु पाच दिन मनाया जाता था । "किसी युग मे एक महीने तक मनायी जाती थी ।" [74] निर्धन ग्रामवासी, दरिद्रता का मार वहन करते, रगो के अल्पाभाव मे कीचड और गोबर का सहारा लेते है, और होली मनाने की अपनी साध को पूरा करते है । 'लाखी' ने थोडा सा गोबर हाथ मे लिया, कीचड के लड्डू बनाकर पुरूषो के ऊपर फेक रही थी ।[75]

त्यौहारो का जनजीवन मे कितना महत्व है कि घोर अत्याचार तथा हत्याओ को भुलाकर ग्रामीण जनता होली का त्यौहार जमकर मनाती है । औरते और लडकिया देवरो को ही नही, गाव के पुजारी 'बोधन' को भी नही छोडतीं । वे उन पर भी रग डालकर अपना खोया विगत काल भुलाती है । मनाते समय आतताई 'सिकन्दर' का अभिनय तथा उसकी हसी अवश्य उडाई जाती है। इसी प्रकार "टूटे–काटे" उपन्यास मे दशहरे के त्यौहार का ब्यौरा आया है । दशहरे का उत्सव, सवारी, दर्शन, चढाईयो की भूमिका आदि को लेकर होता था । दशहरा आया किसान फसल काटने मे लग गये । [76] दशहरे का उत्सव अज्ञात रूप से उन्ही भावनाओ की पूर्ति, उमग भरी छातियो और सीधी गर्दनो पर बिखर–बिखर जाने वाली मुस्कानो का समर्पण था । दशहरे का उत्सव बड़ी ही धूमधाम से मनाया जाता था । पूना, सतारा नगरो और पुरो मे पान, इलायची बटी, मराठी सेना के लम्बे नेजे, लम्बी तलवार, तीर कमान, तोप–बन्दूक सबका एकत्रीकरण हुआ है । [77] 'सोना' उपन्यास मे दुधई गाव का मेला, जन–जीवन को एक बार उल्लासित, मनोरजित करने का प्रयास है । विशेषता यही कि मेले राजा–रानी तथा साधारण लोग सभी पधारते थे । समाचार फैला कि दुधई गाव मे मेला लगने वाला है । [78] पुन "आहत" उपन्यास मे दशहरे पर हुई रामलीला का ब्यौरा प्राप्त होता है। गाव मे रामलीला होती थी, साथ ही गणेश चौथ का विवरण प्राप्त होता है । भादो के महीने मे गणेश चौथ आदि अनेकानेक पर्वों का उल्लेख है ।

इस प्रकार त्यौहार लोक रजन के प्रधान अग थे । दैनिक कार्य भार से त्रस्त–उठा मानव इनकी गोद में उल्लास, उत्साह, नवीनता को प्राप्त करता है । इससे उसमे एक नवीन शक्ति ऊर्जा, और काम करने की भावना का उन्नयन होता है । और अतत. जीवन की कड़ी सुलझती जाती है, और मानव जीवन की लम्बी यात्रा को प्राप्त करता है ।

*

मध्यकाल राजाओ, महाराजाओ का काल था । इनमे आखेट की प्रवृत्ति सर्वोपरि थी । बालपन से लेकर जीवन के अखिरी तक यह उनका रूचिकर व्यसन था । आखेट, जगली जीवन, विकट हिसक पशुओ की मार, सभी कुछ राजकुमारो मे शौर्य, उत्साह, पराक्रम, और परिस्थितियो से लडने की भावना को जागृत करता था । यही पर भावी जीवन की घोरतम् परिस्थितियो से लडने, भयानक युद्धो मे रत रहने की महान् तैयारी की जाती थी । यहा से निकला राजकुमार प्रचण्ड और भयानक युद्धाओ से टकराने की क्षमता रखता था । शेरो से लडने वाला बालक आदमी से क्या डरे ? इस भावना को केन्द्र मे रखकर राजकुमारो को आखेट हेतु भेजा जाता था। 'महारानी दुर्गावती' मे इसी आखेट प्रथा का सज्ञान होता है । राजा 'कीर्ति सिह', राजा 'दलपतिशाह', यही नही स्वय राजकुमारी 'दुर्गावती' तथा उसकी सहेलिया भी शिकार करती थी । उपन्यास का आरम्भ ही आखेट को लेकर होता है । राजा एक बडा शेर मारा, जिसने निकटवर्ती जगल मे कई मनुष्यो को मार डाला था । [79] शिकार के लिए कितना प्रोत्साहन मिलता है । उसका एक सुन्दर स्थल दृश्य है । महाराज 'कीर्ति सिह' ने लिखा– हमारे जगल मे शेर बहुतायात से हैं, और भैंसे हैं, बड़े–बडे सुअर और कहीं–कहीं हाथी भी । इस प्रकार आखेट का मध्यकालीन जीवन मे बड़ा महत्व था । राजकुमारी 'दुर्गावती' भी आखेट मे रूचि लेती है । आखेट पर जाती राजकुमारी दुर्गावती की तैयारी– वाररी रखकर अगिया रग कर, मुढासा बाधा, हाथी तैयार थी, वे तीनो जा बैठी, और जगल की ओर चल दी । शिकार का कितना प्रचार तथा कितना व्यसन था, यह और भी स्पष्ट होता है, जब 'राजा कीर्ति' सिह 'दलपति' को शिकार के माध्यम से कन्यादान तक की सोच जाते हैं – आपका कालिजर मे स्वागत होगा, शिकार खेलने की योजना बनेगी–विवाह सस्कार वहीं होकर रहेगा । [80]

समाज मे शिकार मे अधिक उन्नत था । शब्द भेदी बाण मारने की भी चलन थी। पुरूष तो शब्द भेदी बाण तो मारते थे ही, यहा तक कि नारिया भी शब्द भेदी बाण मारने की कला मे अभ्यस्त थी । 'दुर्गावती' उन विकट राजकुमारी मे है जो शब्द भेदी वाण मारने मे निपुण हैं । कीर्ति सिह बोले–बेटी अपने शब्द भेदी बाणो से एक सुअर और शेर मारा, जो वहीं पडे है, द्वारा उप प्रथा का ज्ञान होता है ।

नारी आखेट व्यसन का बड़ा ही लोमहर्षक दृश्य 'मृगनयनी' मे मिलता है । 'मृगनयनी' और 'लाखी' गाव की बाला हैं । दोनो देहाती हैं, अनपढ़ तथा अशिक्षित हैं, लेकिन आखेट करती हैं, बास के पतले तारो से अरने को छेदती हैं और प्रचण्ड शौर्य, विक्रम तथा साहस का परिचय देती हैं । मध्यकालीन समाज ऐसा बेमिसाल उदाहरण शायद ही कही और प्राप्त हो, जैसा कि हम 'मृगनयनी' मे प्राप्त करते है । 'लाखी' निन्नी का आखेट व्यसन नही, आजीविका है । उसी पर

*

उसका जीवन पलता है और गृहस्थी का भार पलता है ।'निन्नी' ने सुअर पर तीर छोडा और लाखी ने अरने से भैसे पर । दोनो के निशाने सच हैं और दोनो का शिकार उनका अपना । लाखी प्रचण्ड है और घनघोर जगल मे अरने की खोज मे निकल पडी । लाखी ने तरकश मे से बास का बडा और पैनी नोक वाला तीर निकालकर भरपूर बल से छोडा । [81] "अरना उठा और पूछ उठाकर उसकी ओर झपटा" आदि पक्तिया लाखी के अलोकिक शौर्य और पराक्रम का परिचय देता है । आखेट के जीवन ने दोनो लडकियो को अपार वल प्रदान किया था । भैसे को तुम उठा ले चलो, और सुअर को मै टाग लेती हू – द्वारा आश्चर्य होता है कि उनमे कितना अपार बल था। [82] एक भैसे को पाच व्यक्ति भी नही ले जा पाते, उसको अकेले'निन्नी'उठाने की क्षमता रखती है और सुअर को लाखी । सच है कि आखेट का जीवन बडा महत्वपूर्ण है । वास्तव मे यह भावी जीवन की तैयारी है । शौर्य, पराक्रम उत्साह के प्रति लगाव का कारण है, और जीवन मे घोरतम् अगो मे साहस प्रदर्शन का एक सम्बल है । यही लाखी है जिसने नरवर को बनाया, और अपने बलिदान की कहानी को अमर बना दिया, यही नहीं'निन्नी'के पराक्रम ने शायद इतिहास को चुनौती दे दी । जबकि शायद ही कोई नारी ऐसे शौर्य का उदाहरण प्रस्तुत कर सकी हो । उसने उछल कर अपनी ओर आने वाले एक सीग को दोनो हाथो से पकड कर अरने को प्रचण्ड वेग के साथ धक्का दिया, अरना धम्म से गिर गया ।'मृगनयनी'के शौर्य, पराक्रम को'मानसिह'जैसा योद्धा भी सराहा, जब उसने कहा–"तुम्हारी सखी विकट है", 'मानसिह' ने हसते हुए कहा–यह आखेट है कि जिसने दोनो मे अपूर्व बल और साहस को भरा और आपतत उनकी कहानी बनाई ।

'गढ कुण्डार' का कुमार 'नागदेव' और 'अग्निदत्त' दोनो शिकार की खोज मे भरतपुरा के जगल मे जा पहुचते है । तलहटी–तलहटी भरतपुरा के जगल मे हिरन का शिकार करके चदेल के पास । इस प्रकार राजकुमारो का यह व्यसन चलता था । [83] आखेट मे भी वे नाना जीव–जन्तुओ पर अपने अस्त्रो का प्रयोग करते हैं और अभ्यास करते है । वास्तविकता यह है कि इतिहास के इस युग मे प्राय सभी शिकारी होते थे। यह सर्वसाधारण चलन थी । जिसका अभ्यासी समाज का हर वर्ग होता था । 'नागदेव' के पूछने पर "शिकार खेलना जानते हो", अर्जुन बोला– अरे राजा मैं दिन भर करतई हौं, रीछ, तेदुआ, जगली सुअरा और बनचीता मारे तो बड़े–बडे सिगरिया साभर ही घर भिजवा देऔं । [84] आशय है कि एक साधारण पहरेदार भी दैनिक जीवन के कार्यक्रमो मे शिकार को स्थान देता था ।'माधवजी सिधिया'मे माधव जी ने राजकुमार पेशवा को आखेट के लिए प्रोत्साहित किया और अनेक हिसक जानवरो का शिकार सिखलाया । पेशवा माधव के साथ शिकार के लिए चला गया । [85] एक बार जाने से उसको

*

लगा जैसे किसी चमत्कार पूर्ण ससार मे आ गये हो । अनेक हिसक पशु मारे, जगल नदियो के किनारे कई दिन रहने लगे । पुन आखेट के लिए कुमार उपन्यास के एक सौ बत्तीसवे खण्ड मे माधव का साथ करते है । [86]बसन्त पचमी के आठवे दिन पेशवा को माधव जी के सग मे शिकार खेलने का अवसर मिल गया । [87]

अत आखेट प्रथा की बहुलता का स्पष्ट परिचय मिलता है । मध्यकाल मे इस प्रथा का प्रसार और भी तीव्र हो गया था । अनेको राजाओ, उनके सामन्तो, राजकुमारो द्वारा इस प्रथा का अनुकरण होता आ रहा था । [88] विशेष बात यह भी थी कि सरकारी कोई प्रतिबन्ध भी न था । इससे लोग उन्मुक्त भाव से आखेट किया करते थे ।

वर्णों का कर्म जातिगत न था । कर्म की उन्हे छूट थी । ब्राह्मण तप करते, सेना नायक, राज्य के चालक बनते, बडे भारी व्यापारी तथा विश्वकर्मा से कभी शूद्र तक होते थे । कृषि, धौम्य माधव जी पेशवा, विष्णु दत्त पाण्डेय और आचार्य मेघ उसके ज्वलत प्रमाण है । [89] इसी प्रकार कभी शूद्र भी ब्राह्मण कर्म मे रत् होता था, कपि–जल उसका सबसे बडा जीवित प्रमाण है । आशय है कि जीवन पद्धति बडी विचित्र हो चली थी । किसी विशेष प्रकार का प्रतिबन्ध कहीं पर न था । समाज स्वच्छन्द भाव से चलता जा रहा था ।[90]

प्रेक्षागृह थे और नाटक मडली थी । जनता जनार्दन साथ ही राजाओ के मनोरजन का यह एक उत्तम साधन था । "महारानी लक्ष्मीबाई" मे प्रेक्षागृहो का बडा ही स्पष्ट उल्लेख है । झासी की नाटकशाला उस समय प्रसिद्ध थी । मनू से यह पूछने पर कि नाटकशाला– उसमे क्या होता है ? पर 'तात्या' ने बडा ही स्पष्ट बताया– अच्छे–अच्छे नाटक खेले जाते हैं, गायन वादन होता है । राजा 'गगाधर राव' प्रतिदिन नाटको मे परिवर्तन चाहते थे, इसलिए कभी 'मृच्छकटिक', और राजा 'हरिश्चन्द्र' आदि नाटक होते थे । राजा कितना नाटक प्रिय था कि 'मनू' के इस व्यग पर उसे कुछ सोचना पडा । क्या सचमुच आपको नाटकशाला का मेरा जाना नापसन्द है । यही नही नाटको का स्तर निश्चय ही ऊचा था, क्योकि विदेशी दर्शक कप्तान गार्डन भी खेल को देखकर चौक पडा था । नृत्यगान, अभिनय सभी की गार्डन ने प्रशसा की । इस प्रकार समाज मे इसका उद्गम हो चला था । राजाओ को इसका बडा शौक था । जनता भी इस ओर अपना रुझान प्रस्तुत कर चुकी थी ।

मध्यकालीन इतिहास मे विशेषतया मध्य भारत मे भैरव पूजा प्रचलित थी । 'भैरव' एक देवता है, नाना विभूतियां और अलौकिक दोनो का भण्डार है । उसी प्रकार के देवता भैरव की पूजा 'दलपतिशाह' के पूर्वज बड़ी ही निष्ठा तथा लगन से करते हैं । 'कीर्ति सिह' ने उन्हे 'दलपतिशाह' का कुल देवता माना है । [91] हमारे 'भैरव' की मूर्ति का दर्शन करके वह भक्ति भावना

*

से भर जायेगे । आदि–आदि दुर्गा देवी, नीलकण्ठ, महादेव और भैरव देवता के दर्शन अवश्य मिल जायेगे– द्वारा उन्ही देवताओ के प्रति श्रद्धा के विवरण है । [92] भैरव शक्तिशाली थे, बलिदान करने पर सदा प्रसन्न होने वाले थे, इसका एक बडा ही वीभत्सपूर्ण दृष्टात हमे दुर्गावती के चौथे खण्ड मे मिलता है । 'दलपतिशाह' के पूर्वज 'सग्रामशाह' ने पापी तात्रिक को मारकर जब कडाहे मे डाल दिया तब भैरव देवता प्रकट हुए और उन्होने राजा को दर्शन दिए, और उन्होने राजा को वरदान दिया कि तुम्हारा राज्य अखण्ड होगा । इस प्रकार पूरे मध्य भारत मे भैरव पूजा प्रचलित थी, और जनता का इन पर पूर्ण विश्वास था, पूर्ण श्रद्धा थी ।

समाज मे अनेक प्रकार का वस्त्र परिधार्य थे । 'राजाओ', 'महाराजाओ', 'रनिवासो' का स्तर ऐश्वर्य के मद से झूमता था, जबकि समाज का धरातल अत्यन्त शुष्क तथा नीरस, दरिद्रता की गोद मे था । 'मृगनयनी' के अध्ययन से समाज के दोनो वर्गो के रहन–सहन, खान–पान का सच्चा चित्र मिलता है । एक ओर अटल का परिवार तथा निन्नी है, दूसरी ओर 'नसीरूद्दीन' का ऐश्वर्य भरा जीवन था । लू की थपेडो मे चलती इन बालाओ को बहुत ही कम कपडे नसीब हैं । उन दोनो ने ओढनी को सिर से लपेट रखा था, घुटने तक मोटे लहगे का कच्छ, उरोज कचुकी से ढके हुए, पीठ से लगे हुए पेट उघाडे, कलाइयो पर दो मोटी चूडिया।

प्रजा वर्ग कितना गरीब था, इसका अनुभव होता है 'लाखी' के नगे पैरो को देखकर, जूतो का अभाव सभवतया उसे भी खटका, 'लाखी' के नगे पैर को देखकर उसको अपने जूतो पर अभिमान हुआ, बोली कुछ अनाज कही से आ जावे तो तुम भी जूते बनवा लेना । [93] इससे अधिक गरीबी तथा दरिद्रता का और क्या उदाहरण हो सकता है । इससे अलग स्थिति है उन्ही के राजाओ का, जो दिन रात शराब की नशा मे तथा वेश्या की गोद मे पलते हैं । माडू का विशाल महल, कमरे मे तख्त के ऊपर मखमली मसनद और तकियो पर गयासुद्दीन–खवासिने काच की सुराही मे आबरूदार उफनाती लाल–लाल शराब लिये हुँ– 'गयासुद्दीन' को स्वप्न लोक का आमत्रण दे रही थी । एक यह जीवन है जो जनता के पैसो पर आसमान छूने को उद्यत था, दूसरी ओर जन वर्ग था जो पसीना बहाकर भी सुख–चैन के लिए निहारता था । 'मृगनयनी' का राजा 'मानसिह' जन–वर्ग के इसी अवस्था पर बडा खिन्न हुआ और मजदूर से बोले– धिक्कार है मुझको जो मैं तो भरे पेट सो जाऊ और तुम भूखो रोगो मरो, मैं महलो मे रहू और तुम इस झोपड़ी मे भूखे ठडी से मरो । यह जीवन जन–वर्ग की सच्ची स्थिति का बड़ा ही सुन्दर चित्र है। इससे स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन समाज मे जनता बड़ी दुखी थी, त्रस्त थी, और बडा ही गरीबी का जीवन यापन करती थी ।

*

आभूषण भी परिधार्य था । समाज का हर वर्ग अपनी सीमाओ मे रहता, आभूषण पहनता था । आभूषण तत्कालीन सामाजिक आर्थिक स्तर का परिचय देता है । "सोना" उपन्यास मे एक अति सम्पन्न राजा का चित्र उभरता है । समाज का छोटा वर्ग भी सोने के आभूषण पहनता था । गले के लिए एक गहना सोने का और हाथ और पैरो के लिए चादी के ठोस गहने, कपडे रगीन जरा बारीक । [94]

'मामा' तथा 'रूपा' समाज मे साधारण व्यक्ति है वे राजा, महाराजा नही लेकिन सोने–चादी के गहने उन्हे परिधारित है । सोना सोने–चादी के गहने बनवाने के लिए 'चपत' से कह रही थी । [95] इस प्रकार रूपा के मामा 'सोना' के लिए उक्त गहनो का उपाय करता है । अब वही सोना राजा से ब्याही जाने वाली है । 'राजा धुरधर सिह' ने ढाका की मलमल, लखनऊ, रेशम की जरतारी के अनेक वस्त्र भेजे और हीरा–पन्नो से जड़े सोने के कुछ आभूषण । अब सोना के लिए राजा मोती इकट्ठे करवाता है, और हीरे मंगवाने का उपक्रम करवाता है । देर लगेगी ही, मोती इकट्ठे करने पडेगे, हीरे मगवाने पडेगे, सोना तो खैर है ही । इस प्रकार समाज राजा और रानिया एक अद्भुत ढग से विकसित जीवन का यापन करती थी । ऐश्वर्य का वह भी ढग दृश्य है, जब सोना का अग ही हीरे–मोती के कपडे से छिप जाते हैं । कहूगा कि हीरे मोतियो के बने से तुम्हारी कोमल देह छिल उठेगी । आश्चर्य है उस रानी पर और आश्चर्य होता है कि हीरे मोती भी अपनी मर्यादा के लिए तरस उठे व्याकुल हो उठे होगे । इस प्रकार सोना का समाज सही मायने मे सोना ही बन गया । ऐश्वर्य, ठाट की अलौकिकता मे राजा रानी जीवन बिताते है, जो तत्कालीन समाज के चित्र को उद्भाषित करता है।

"भुवन विक्रम" उपन्यास से भी दैनिक परिचर्या का ज्ञान होता है । 'हिमानी' एक सम्प्रभुता सम्पन्न सेठ की मात्र दुहिता है । धन, वैभव, सुख सभी कुछ सीमा रहित है । वह क्या–क्या पहनती है, उसका विवरण कुछ इस प्रकार है– हिमानी बढिया रग की रग–बिरगी साडी, निकाली–रेवती आओ तो इस मुक्ता हार का बध पीछे से बाध दो । [96] द्वारा पुन अजीब अमूल्य वस्त्र तथा आभूषण का परिचय मिलता है । राज्याधिकारियो का पहनावा कैसा था, इसका विवरण– श्रेष्ठी अभाव्य, महाशाला, हाथ मे सोने के मोटे कड़े वलय, गले मे मुक्ताहार, कमर मे चौडी करधनी, कोई बन्डी, कोई कुर्ता, कोई चादर आदि थे । [97]

'मृगनयनी' के अध्ययन से तत्कालीन जीवन के प्रमुख आभूषणो का परिचय मिलता है । 'निन्नी' तथा 'लाखी' दोनो ग्रामीण गरीब लड़किया हैं । उसके पास भोजन का प्रबन्ध नहीं, गहनो के प्रति रूझान इसलिए नही था । गले मे मूगी और काच के छोटे–बडे दानौ की माला, कलाईयो पर काच की मोटी चूडिया, पैरो मे कासे या पीतल तक का कड़ा नहीं, द्वारा उस समय के जातीय

*

जीवन मे प्रयुक्त प्रमुख आभूषणो का विवरण प्राप्त होता है । [98] मध्यकालीन समाज मे सोना प्रयुक्त होता था, लेकिन पैरो मे नही, पैरो मे स्वर्णाभूषण केवल रानियो के होता था । जनता की कोई नारी ऐसा नहीं कर सकती । 'मृगनयनी' के पैरो मे सोने के गहने थे । वह रानी थी । पैरो मे सोना केवल रानी पहन सकती है । [99] इसका एक अर्थ और है, राजा ही रानियो के लिए सोने का प्रबन्ध करा सकता है और पैरो मे पहनने का कार्य चल सकता था, लेकिन सामान्य व्यक्ति मे इतनी क्षमता कहा, इतनी आर्थिक सुव्यवस्था कहा । गले मे पडी हुई चादी की हसुली । इस प्रकार चादी के गहने भी प्रचलित थे । [100]

"टूटे–काटे" मे भी 'नूरबाई' के गहने के माध्यम उस समय के चलन का ज्ञान होता है । परन्तु सोने के पट्टो मे जुडे हुए 'हीरे,' 'लाल,' 'नीलम,' 'पुखराज,' द्वारा किसी एक अति वैभव सम्पन्न तथा समृद्धिशाली परिवारिक स्तर का ज्ञान होता है । इस प्रकार मध्यकालीन समाज शासक शासित मे बटा था, शासित जितना गरीब, असहाय, दरिद्र, शासक उतना ही वैभवशाली, धनी और समर्थ । इसलिए एक ओर गिलट नही मिलता, वही दूसरी ओर पैरो मे भी सोने के आभूषण बनवाये जाते है ।

मध्य काल मे घोडे को भी चादी के कडे पहनाने की प्रथा थी । यह उस समय पहनाया जाता था, जबकि योद्धा मरने के लिए मौत की खोज करता था । यह सच है और 'माधव जी सिधिया उपन्यास' के खण्ड एक मे इसका स्पष्टीकरण हुआ है । "चादी का कडा" दत्ता जी ने सयत होकर कहा– क्या कहते हो कन्नड ? ऐसा प्रण क्यो ? परिस्थति सहज ही बस मे आ जायगी, विजय के दीवाने योद्धा त्रियम्बक कन्नड ने कहा– मेरा नाम त्रियम्बक नहीं, यदि विजय लाभ न करू । [101] कल मेरे घोडे के पैर मे चादी का कडा पडेगा । इस प्रकार बहादुरी, वीरता, उत्साह तथा स्वाभिमान के प्रदर्शन मे इस प्रकार के कडे का प्रचलन था ।

'राखी बन्धन' भारत का पुराना त्यौहार है । इसमे बहन अपने भाई को राखी बाधती है, बदले मे आजीवन सुरक्षा तथा सहायता की शर्त । मध्यकालीन इतिहास मे बेसहारा रानिया भी दूसरे को राखी भेजी हैं । "विराट की पद्मिनी" मे रानी चारो ओर से घिर चुकी हैं और आत्मरक्षा मे 'अलीमर्दान' के पास राखी भेजती है, अर्थात् अपना भाई बनाती है और सुरक्षा के लिए प्रार्थना करती हैं । 'अलीमर्दान' चौंक पडा, छोटी रानी को राखी मजूर है । एक क्षण बाद बोला– "जाओ आज से वह मेरी धर्म की बहिन हुई" । [102] राखी के महत्त्व का निर्वाह करता 'अलीमर्दान' आया और रानी की पूरी मदद की।

जौहर– भारतीय इतिहास, विशेषतया राजस्थानी इतिहास का चिर–परिचित शब्द है । इसमे रानिया अपने पति वियोग मे अग्नि मे जलकर स्वाहा हो जाती थीं । कारण पति के वियोग

*

मे अपना ऐहिक जीवन रखना उन्हे सह्य न था । चित्तौड़ आदि मे इसका भरपूर प्रचलन था । मध्य भारत मे भी इसकी चर्चा थी । "विराटा की पद्मिनी" मे जौहर का पुन उद्धरण आया है । भरे स्वर मे उसने 'कुमुद' से कहा– जौहर हो रहा है। [103]

जौहर का सम्बन्ध स्त्रियो से था, नारिया जौहर करती थी, पुरूष केसरिया बाना पहनते थे । दोनो के उद्देश्य वही, गति वही, अतर केवल था माध्यम का, पुरूष तलवार का सहारा लेता, नारी अग्नि का सम्बल । दोनो मरकर खाक बनते । केसरिया बाना पहनने का एक उदाहरण विराट की पद्मिनी मे आया है । सब दाँगी केसरिया बाना पहने उछलते–कूदते फिर रहे है और फिर सृष्टि को हिला देना वाला दृश्य प्रस्तुत हुआ । [104] 'अलीमर्दान' के थोडे से सैनिक मर गए, परन्तु दागी कोई न बचा, केसरिया बानो से ढकी हुई पृथ्वी हल्दी से रगी मालूम होती थी, मानो रणचडी के लिए पावहा बिछाया गया है । [105]

जुआ भारतीय जीवन का पुराना रोग है । यह एक जाति विचित्र तथा बहुत हानिप्रद प्रथा थी । जुआ का प्रचार समाज मे कितना अधिक था, इसका कोई भी अदाजा नहीं है । कैसा भी प्रति पक्षी हो और किसी भी दशा मे हो, यदि जुआ का निमत्रण मिला वह तत्काल कूद पडा । इस अग्नि मे कभी–कभी जुआडी अपनी धन–सम्पत्ति, मकान, स्त्री, सारा वैभव स्वाहा कर स्वय को समाप्त कर डालता है । कभी–कभी आजीवन दास जीवन भी आरम्भ करना पडता है । उपन्यास "भुवन विक्रम" के खण्ड बारहवे के, जुआ के इसी प्रथा का ज्ञान होता है । समाज मे जुआ का रिवाज था ही, अब उसकी व्यापकता मे घनत्व भी आ गया है । जुए के लिए कोई बराबरी वाला न्यौता भर दे, फिर इन्कार का किसमे साहस । [106] जुए से मुकरना, कायर बनना और कायर से आशय समाज से बहिष्कार होता था । अत जुआ अगर आमत्रित हुआ तो खेलना अपेक्षित है । राजकुमार रोमक से खिन्न हैं, असन्तुष्ट है । इसका प्रतिरोध कडे शब्दो मे उसने रोमक से किया और बताया जुआ भी खेला करता है– पर इसका तो व्यापक रिवाज है । [107] इस प्रकार 'राजा रोमक' प्रकारान्त से समाज मे प्रचलित जुए के आचरण को भूल से कह जाते हैं और एक प्रश्न सा उनके सामने उठता है कि 'राजकुमार' को क्या करना चाहिए, क्या नही ?

जुआ समाज की अनहोनी प्रथा थी । राजा रोमक चितित हैं, कारण था राजकुमार का इस ओर आ जाना । इससे और भी स्पष्ट हो उठता है कि समाज मे जुए का क्या स्थान था । जुआ का विचार युगो से रहा है । आज भी समाज उसकी जाल से छुट नहीं सका है । आज भी जुआ होता है, जुआड़ियों का जमघट होता है, लेकिन स्थिति मे परिवर्तन अवश्य आया है । आज जुए की दावत पर आना न आ सकता कायरता नहीं होती है । यह अब पूर्णतया स्वेच्छा का

*

विषय बन चुका है, और समाज इस कलक को सम्भवतया आने वाले काल खण्डो मे मूलत समाप्त कर देगा ।

मध्यकालीन समाज मे एक और प्रथा थी । वह थी कटार के साथ विवाह करने की । राजा बीमार हो, अस्वस्थ हो, लगन का मूहूर्त आ चुकी हो तो वैवाहिक बन्धन राजा की तलवार के साथ सभाव्य था । कितना विचित्र आचरण था, कि विवाह जैसे मगल कार्य मे तथा आवश्यक बन्धन मे भी राजा न रहे । इस प्रकार का एक उदाहरण ही उपन्यास "कचनार" के प्रथम खण्ड मे मिलता है । इसमे राजा 'दिलीप सिह' अस्वस्थ हैं, उनका दूर का सम्बन्धी 'मानसिह' उनकी कटार ले जाकर 'कलावती' के साथ विवाह करवाता है ।

मध्यकाल मे दहेज मे सहेलिया आती थी । इस प्रकार का प्रचार बहुत ही व्यापक था । महारानी दुर्गावती की 'रामचेरी' उसके साथ ही गई और उसका भी सम्बन्ध वही हुआ– जिस राज्य मे दुर्गावती का हुआ । [108] "कचनार" मे रानी कलावती का ब्याह राजा 'दिलीपसिह' की कटार आशय स्वय राजा दिलीपसिह के साथ हुआ । कलावती की बिदाई हुई, लेकिन वह अकेली नही आई, उसके साथ 'कचनार' तथा 'लीलावती' भी आयी । ये दोनो कन्याये भी दहेज मे सम्मिलित थी ।

परीक्षा–प्रथा द्वारा व्यक्ति किसी दूसरी स्त्री का पाणि–ग्रहण करता था । जब तक यह सस्कार नही होता था समाज उस व्यक्ति के यहा पानी तक नहीं पीता था। "टूटे काटे" उपन्यास मे एक स्थल पर इस प्रथा का परिचय मिलता है । "ओ दैय्या–चौथरन ने ग्लानि की– घरीचा नही हुआ है तू अभी भी हमारी जाति मे नही मिल पाई है । जब रस्म दस्तूर हो जायेगी तब तुम्हारे हाथ का पानी पीवेगे"। [109] इससे बडा साफ है कि यदि व्यक्ति किसी नारी को अपनाता है तो उसके लिए इस महान जातीय सस्कार का करना अति-आवश्यक है । इसके बिना नारी तथा पुरूष समाज मे बहिष्कृत होता था । सामाजिक मान्यता से रहित होता था ।

समाज मे दहेज–प्रथा का आरम्भ हो गया था, यद्यपि मध्यकाल का पूर्व इतिहास इससे विमुक्त था, लेकिन उत्तरी इतिहास जघन्य तथा घृणित सामाजिक दोष से मुक्त हो गया । 'दुर्गावती', 'लक्ष्मीबाई,' 'मृगनयनी' तथा अनेक उपन्यासो के अध्ययन मे इसका थोडा भी परिचय नही मिलता, लेकिन "आहत" उपन्यास मे बिना दहेज लडकी की शादी ही रूक गई– चेक के अक पढ़ते हुए बोला– यह क्या ? केवल तीन हजार, हमारे साथ बेईमानी, दूल्हे का आधा भी खर्च नही, 'रामलाल' ने हाथ जोड़कर विनती की, ले लीजिए बाकी मकान बेचकर एक महीने के अन्दर दे दूगा । इस पर लोभी, दुष्ट वर का पिता ऐसे बदमाश के घर मेरा लड़का नहीं ब्याहा जायेगा, उठ बैठे– आश्चर्य है, दु ख है कि लड़की का बाप लडकी की शादी मे मकान बेचता है, फिर भी

*

वर का पिता ब्याह करने से नकार जाता है । [110] यह समाज का घोरतम् पाप है जो तब था, अब भी है, और इसका रूप दिन–प्रतिदिन बढता जा रहा है । आज भी अनेको गरीब लडकी के बाप दहेज के अभाव मे सुन्दर लडकी को राक्षस के हाथ, होनहार बाला को अनुपयुक्त पति की गाठ से सारे जीवन की नारकीय यातना हेतु भेजता है ।

एक बडी उत्तम रस्म दिखायी पडी जो विवाह के समय साधु जमात को बुलाया जाता था, और उसके आशीर्वाद से वर–वधू का जीवन आरम्भ होता था । इस का एक उदाहरण हमे उपन्यास 'आहत' के बाइसवे खण्ड से प्राप्त होता है । वर–वधू पर इतने महात्माओ के वरद हस्त की छाया मधुर स्वरो मे रामनामी गायन, जो कोई वैसे सुने आदर के साथ सिर झुका ले । [111] प्रथा आदर्श है, अनुकरणीय बन सकती है । बारात मे वैश्याओ के आगमन, नाटक, मण्डली के स्वर–वादन के साथ यदि वैवाहिक कार्य का समापन इन साधुओ के वरदानो से होवे तो बडा ही उत्तम हो । समाज इस प्रथा को अवश्य ही अपनावे । इससे विवाह मण्डल तरू तथा कृत्यो मे सात्विकता का समावेश होता है ।

स्त्री बेचने का धन्धा अति प्राचीन है । पुराकाल इससे विमुख न था । आधुनिक काल इससे अलग नही । सगम उपन्यास के सैतालिसवे खण्ड मे हमे इसका एक स्थल प्राप्त होता है। भुवन गाव का रहने वाला एक अत्यन्त चालाक व्यक्ति था । उसने एक पजाबी के हाथ सपत लाल को स्त्री बनाकर बेच देना चाहा । पजाबी बोला "मुझे तो ब्याह नहीं करना है, तू बेच्चे तौ आपणै भाई के लिए लै लूगा, पाण सौ आये से ज्यादा नही दूगा । [112] इस प्रकार पजाबी सौदा पटाना चाहा और छह सौ मे सौदा तय ही हो गया । स्त्री बेचने का धन्धा आज भी प्रगति पर है। आज भी नरकीय व्यक्ति इससे जीवन यापन करने की दाव लगाते है । निन्क्ष्य और हेय होते हुए भी समाज इस महा कलक को अषधौरे है ? एक आश्चर्य की बात है ।

समाज मे कलाए शीर्षस्थ थी । नाना कलाओ का पर्याप्त विकास था । 'चित्रकला,' 'सगीत कला,' 'मूर्तिकला,' 'वस्तुकला,' 'नृत्यकला' आदि का बडा ही उन्नत स्वरूप था । वास्तविकता थी कि मध्यकाल राजाओ से आसन्न था । हर बीस कोस पर राजा, हर सौ कोस पर महाराजा तथा इसी प्रकार व हजार कोस पर सम्राटों के दर्शन सुलभ थे । राजा जनता पर आश्रित था । जनता जितनी गरीब दरिद्र, असहाय राजा उतना अमीर, सम्पन्न तथा सबल होता था । राजाओ का यह जीवन प्रजा के उगाहे पैसों पर नाना क्रीडाए करता था । राजाओ पर अपार वैभव इन कलाओ के उत्कर्ष मे सहायक रहा । अनेक भवनो का निर्माण, सगीत की नई पद्धति का अन्वेषण, पत्थरो पर नाना प्रकार की खुदाई का लेखा–जोखा, प्रेक्षण गृहो मे अनेकानेक चित्रो का सृजन, प्राचीन–प्राचीरों पर नाना प्रकार की नक्कासी एक अद्भुत ढग से सुविकसित समाज का परिचय

*

प्रदान करती । यही नही नृत्य कला के क्षेत्र मे समाज ही आर्थिक साधन–सुलभ हो गया था । नाना नृत्यो के चलन तथा अनेक अभ्यास से समाज के उन्नतिशाली स्तर का सहज ही ज्ञान हो जाता है । [113]

'दुर्गावती' उपन्यास मे हस्त–कला, के वैदिक तथा उसकी सच्चता के दर्शन होते है । 'करमा,' 'शैला,' 'गोडा' – जाने और कौन से नृत्यो के विविध दृश्य है । राजा उठे और चले गए तीसरे पहर गौडो के करमा शैला इत्यादि नृत्य होगे, कुछ खेल भी इसी मैदान मे होगे द्वारा नृत्यो के विविधता के दर्शन होते हैं, करमा, शैला, गाडिया सभी तरह के नाच जानता हू कभी दिखाऊगा से स्पष्ट होता है कि समाज मे नृत्यो को बहुलता व्यापकता तथा उसका पूर्ण प्रसार था, तथा राज दरबार से लेकर, ही समाज का मच तक इससे भरा पुरा था । [114]

नाहरगढ मे इसी प्रकार के एक सगीत समारोह का आयोजन था । इसमे देश के विभिन्न अचलो से नर्तकिया पधारी थी और समारोह अपनी पराकाष्ठा पर था । नाहर के सगीत समारोह का अन्तिम दिन आ गया– सभी ने अपनी–अपनी कला की पराकाष्ठा का प्रदर्शन किया । [115] इस प्रकार के अनेक समारोह मध्यकालीन भारत के उत्तरीय भाग मे सम्पन्न होते थे और जन–वर्ग की समाज की रूचियो, आचरणो का ब्यौरा प्रस्तुत करते है । 'अजना' का प्रस्ताव––– उस सीमित समय के भीतर गायिकाए आठ रागनियो की राग माला गाए और नर्तकिया आठ प्रकार के नृत्यो को एक क्रम मे गूथ कर नाचे । [116] निश्चय ही एक अत्यन्त सुविकसित समाज के चित्र को उभारता है । समाज मे अनेको प्रकार का प्रचार था । तीसरे पहर गोडो के करमा, शैला, इत्यादि नृत्य होगे, कुछ खेल भी– द्वारा स्पष्ट है कि समाज मे विभिन्न प्रकार के नृत्यो का प्रचार प्रसार था। [117] शैला गौडा नृत्य भी हुए– खेल तमाशा अत मे होने थे । [118] पुन उसके अतिशयता पर ध्यान टिक जाता है। समाज मे गायन वादन तथा नृत्य का अत्यधिकता से प्रचार था । लोग इसके प्रति आशका रखते थे और अभ्यास भी करते थे । अचल ने गायन, वादन, नृत्य और तबले का बहुत अभ्यास किया था । [119] 'कर्नाटक,' 'तंजौर' आदि इन कलाओ से उन्नत् शीर्षता केन्द्र थे । 'टोडी,' 'रमैया' आदि अनेक सगीत के रागो का जन्म वहीं हुआ था ।

समाज मे गीतो प्रचार था । प्राय हर उत्सव, त्यौहार पर गीतो का गायन होता था । 'चुन्नी' का गला मीठा था– गाने के लिए जो राग उसने सुना था वह टीस पैदा करने वाला था––द्वारा बडा साफ है कि लोग सुरीले गीतो के आकांक्षी तथा प्रेमी थे, तथा उसे वरीयता प्रदान करते थे । [120]

नृत्य सगीत एक कला है । साधना उसके लिए परमावश्यक है । विभेदो तथा रूप शैधिय से सगीत जटिलता की ओर बढी है । इसमें भी बारीकी होती थी । देखू नृत्य मे पद चालन की

*

बारीकी ताल की परनी के साथ रहती है या नही, क्योकि कत्थक नृत्य मे उधर तबले या मृदग की परनै, उधर पैर के सूक्ष्मतम उद्योग और गीत के बोलो के सार्थक ठाठ जिन्हे आप भाव कहते है । बहुत ही जरूरी है । [121] इससे स्पष्ट है कि सगीत, नृत्य, बडे क्लिष्ट विषय है और पूर्णतया साधानात्मक है । पेचीदापन, बारीकी इसका सहज धर्म है, लेकिन साधक पुन इसी की सिद्धि की ओर अग्रसर होते है । सगीत आरोहो, अवरोहो से युक्त विद्या बडी ही भ्रम साध्य है । 'अचल' ने गाना शुरू किया, 'कुन्ती' ने तबला– अचल कुन्ति के तबले के जाच के लिए जरा थमा था– द्वारा यह मान होता है कि उस समय जानकारो की बहुलता थी । [122] कुन्ती की इसी प्रकार की एक परीक्षा हमे इस उद्धरण से प्राप्त होता है । समाज के दौत्र मे कितना पैना हो चला था, कितना बढ गया था । इसका अन्दाज इससे लगाया जा सकता है । 'मृगनयनी' का समाज सगीत के दौत्र मे और भी उन्नत है । 'बैजू बावरा' ऐसी सगीत उस समय 'मानसिह' के राजदरबार मे था । इसने सगीत के दौत्र मे बडी उन्नति की । नाना प्रकार के विशेष खोजो को किया । कला, विजयगम, बैजू आदि जाने कितने कला के मर्मज्ञ उस समय थे । सगीत की बैठक होती थी और एक दूसरे को चुनौती देते थे । 'कला बैजू' 'विजयगम बैजू' मे कुछ इसी प्रकार का मुकाबला हुआ करता था। कभी-कभी गायन, वादन का कार्यक्रम पूरी रात चला करता था । मानसिह ने कहा अवश्य अभी समय ही कितना हुआ है ? विहग के गाने का समय तो अब है द्वारा सगीत के नाना विभेदो एव उनकी शक्तियो का परिज्ञान होता है । [123] यही नही बैजू ने उत्तर दिया । मैने इनको अभी–अभी वीणा वादन मे कई बार चुकाया है । यदि वीणा के बजाने मे हरा दिया तो इनकी वीणा जीत लूगा, सडियल सी है फोडकर रख लूगा–स्पष्ट होता है गायन–वादन दोनो पर समान अधिकार रखने वाले मर्मज्ञ उस समय थे । आज जैसी प्रथा नही थी । लोग समय तथा श्रम देते थे और प्रत्येक विद्या मे कला मे निपुणता प्राप्त करते थे । कलाकार का जीवन असमान्य होता है । उसे कला मे जो तपस्या और तथा साधना मे खो जाना होता है । स्वय का अस्तित्व विसार देना पडता है । एक अद्भुत रसोत्पत्ति होती है और वह उसी मे छीन सा हो जाता है। 'बैजू' ने रस मग्नता का एक उदाहरण – कितना तन्मय हो कर गा रहा है– आचार्य उनको अपने आस–पास की बिल्कुल सुधि नही– कला और कलाकार इनको कहते है। 'बैजू' कला सिद्ध व्यक्ति था । [124] सगीत की कई परिपाटियो को खोज निकालना उसका स्वभाव था । उसकी एक नई परिपाटी का ज्ञान हमे– आज तुमको नायक 'बैजू' की परिपाटी का बहुत अच्छा गायन–वादन सुनने को मिलेगा– 'मानसिंह' ने कहा– कला का ज्ञान केवल साधक को नहीं वरन् राजाओ को भी होता था। [125] 'नृत्य', 'सगीत', 'कला', 'चित्रकारी' आदि मे राजाओ की सूझ–बूझ बडी ही सराहनीय थी । 'राजा मानसिह' कुछ उसी प्रकार के राजाओ मे

*

थे जो सगीत की नई सूझो मे पारगत थे । बैजू ने आवश्यकता बतलाई राजा की सगीत का गहरा ज्ञान है । जब सामने होते है, तब अनेक नई–नई सूझे निकलती है, इनको सामने रखना चाहिए । [126] इससे राजा 'मानसिह' के सगीत के प्रति हुई निष्ठा, लगन तथा रूझान का परिचय मिलता है ।

चित्रकला, वस्तुकला का मध्यकालीन जन–जीवन राज दरबारी ऐश्वर्य मे पर्याप्त प्रचार था। समाज के उन्नतावस्था का ज्ञान इससे भी लगता है । क्योकि नाना प्रकार की चित्रकारी, दस्तकारी, किसी एक विकसित समाज के ही परिचायक हैं । चित्रो के बनाने तथा विचित्र रगो से रगने की प्रथा बडी ही तेजी पर थी ।'महारानी दुर्गावती' अपने बचपन मे नाना चित्रो की रचना तथा उन पर रगो का उपक्रम करती है ।

'राजा दलपति' ने कालिन्जर की गाने–बजाने की पद्धति की प्रशसा की । इस पर रामचेरी ने बताया– हा श्रीमान् हैं – हमारी राजकुमारी तो भी बहुत प्रिय है । यह कला, साथ ही चित्रकारी थी । [127] वास्तविकता यह थी कि समाज मे गायन, वादन, नृत्य, चित्रकारी आदि का ताल मेल था । अव्येता इन सबको क्रमश पढा करता था और सफल होने की चेष्टा करता था ।

सूर्योदय, सूर्यास्त, बहती नदिया, कल –कलाते झरने, ऊचे उठते पहाड आदि विषय थे । जिन पर राजकुमारी 'दुर्गावती' चित्रो की सयोजना करती थी । राजकुमारी ही नही उसकी सहेली 'रामचेरी' तक इस कला मे सिद्ध हस्त है । पूछती है पहले पहाडियो का चित्र बनाऊ– आशय है कि वह भी इस कला की जानकार है और चित्रो के बनाने की क्षमता रखती है ।[128] राजकुमारी अपने इन्ही दिनो मे 'राजा दलपतिशाह' की एक भव्य मूर्ति तैयार की थी । कलाए भावनाओ की प्रतिक्रिया है । मन जो भाव उठे, कलम कूची, पेन्सिल से वही भाव साकार रूप लेने लगते है और चित्र जीवित हो–होकर जीवन के नाना भावो को सुनाते जाते है । रामचेरी का यह कथन बहुत कुछ वही तथ्य प्रकट करता है । हा खूब आया मेरे भीतर एकमात्र अपनी 'दुर्गावती' के मन्दिर के पास का दृश्य बडा सुहावना है । आपको वही दिखलाऊगा । [129]'दुर्गावती' चित्र की प्रशसा की चित्र बहुत अच्छा, बढिया बना है, नाम मत लिख–चित्र की रेखाये रग सारी अपनी और लिपाई नीचा सिर किए देखती रही, आदि स्थलो से मध्यकालीन कलाओ की ऊचाई का ज्ञान होता है । कला न होगा कि वह इन कलाओ के सुविकसित होने का स्वर्ण काल था । उनके अध्ययन से तत्कालीन बहु विकसित तथा बडे–बडे समाज का चित्र उभरता है । [130]

वास्तु–कला के क्षेत्र मे वह युग चोटी पर था । नाना भवनो, किलो, मन्दिरो, मीनारो, कब्रो की रचना मे युगीन कलाओ की भव्यता के दर्शन होते हैं । स्थान मे अनेकानेक शैलियो का विवरण है । कोई दक्षिणी शैली का भवन है तो कोई उत्तरीय । इस प्रकार का उदाहरण हमे

*

वर्माजी के उपन्यास 'मृगनयनी' से प्राप्त होता है । महाराज मानसिह 'मान मन्दिर' बनवाने मे व्यस्त है । प्रहर था शैली का । इस पर 'विजवर्मन' ने चलाया । तैलर्ग शैली का बनवाए । [131] ग्वालियर का 'तैल मन्दिर' बहुत ग्रुप दक्षिण के विषयो द्वारा बनाया गया था । वहा के शिल्पी इतने बचा कि उत्तर के शिल्पियो द्वारा बनाया गया था । वहा के शिल्पी इतने बचा कि उत्तर के शिल्पी उनके शिल्पी को समझ न सकेगे– यह कथन यहा उत्तर के शिल्पियो की इनकी परम्परा कुछ विचित्र है। [132]

समाज कलात्मक आदर्श की चोटी पर था । 'राजा मानसिह' का यह वाक्य बहुत कुछ उन्ही मनोभावो को व्यक्त करता है । शिल्पी और कारीगर निर्माणकला के शब्द और वाक्य है । उनकी योजना, शब्द न्यास, पदलालित्य और अनुपात की कविता तथा मजुल मगल की फुर–फुरी देना हमारा आपका काम है । [133] वस्तुकला के अति उन्नत आदर्श तथा चोटी के भावो का ज्ञापन बहुत कुछ राजा मानसिह के इन्ही विचारो से होता है । मस्तिष्क के मडराते नाना भाव जब पत्थरो पर साकार हो चले, कल्पना लोक के विचरते पक्षी जन जीवन्त रूप ले पत्थर के कलेवर हो, तो वह कितना ही आकर्षक होता—–मध्यकाल का समाज कुछ उस स्तर तक पहुच चुका था। इससे हम कलात्मक आदर्श की चोटी कहेगे और यह भी कहेगे कि तत्कालीन भारत इसमे विश्व मे बेजोड था, बेमिसाल था और पूर्णतया इससे गौरवान्वित था । राजा का यह कथन– सोचूगा किस प्रकार यह कल्पना पत्थरो की योजना द्वारा प्रकट हो सकेगी आप तो सोच ही रहे हैं । [134] बहुत कुछ कलात्मक आदर्श के उन्ही सीलो को इगित करनी है । कहना न होगा कि मध्यकालीन समाज का बहुत कुछ चित्र इनके द्वारा प्राप्त होता है । व्यक्ति को सौन्दर्यात्मक अनुभूति उसका सौन्दर्य बोध, कला बोध कितना उन्नत था, इसका विवरण ही प्रस्तुत नही किया जा सकता है । समाज जहा राजनैतिक उत्पीडन की घोरतम् परिस्थितियो मे था, अशान्ति की जहा अनवरत ज्वाला दहकती थी । आक्रमणो का जहा क्रम बना रहता था वही पर सगीत के स्वर लहरी का आकलन होता नृत्य के कल्पनातीत लोक का दर्शन होता और वास्तु कलाओ के जीवन्त प्रतीक, जीवन गाथा को सुनाने वाले नाना पाषोणो से मेल मिलाप होता है । कालिन्जर, झांसी, महोवा, खजुराहो– जाने कितने भव्य भवन जमाने के मूर्ति शिल्पी कलाकारो के विवेक बोध के परिचायक हैं । आज भी वे बोलते हैं, सदेश देते हैं और अपन युग की गाथा को बताना चाहते है । अत कलाओं के उत्कर्ष, उन्नयन का यह एक अतिरोचक आदर्श समाज था । वर्तमान कला इस क्षेत्र मे पर्याप्त पीछे है, भविष्य कैसा रहेगा– समय ही निर्णय देगा ।

इसी प्रकार समाज मे अन्य प्रथाए थीं । पेड पूजा की प्रथा, [135] नर बलि की प्रथा, [136] पान के बीडा उठाने की प्रथा[137], तीतर बटेर, उल्लुओ के लडाने की प्रथा[138], चर्खा

*

चलाने की प्रथा[139], गायो को हल मे जोतने की प्रथा[140], सिर को काट कर ले जाने की प्रथा[141], नीम की पत्ती खाने की प्रथा [142], यज्ञोपवीत सस्कार [143], सिकमी लगाने की प्रथा [144], पिकनिक की प्रथा[145], दाह सस्कार की प्रथा[146], दिशा शूल की प्रथा[147], तुलसी पूजन की प्रथा[148], तलाक देने की प्रथा[149], बेगार लेने की प्रथा[150], लक्ष्मी पूजन की प्रथा[151], गृह प्रवेश की प्रथा [152]आदि ।

प्रथाओ का अबार है । जीवन के दर्शन के विवरण मे प्रथाओ का बडा महत्व है। इन्ही के माध्यम से समाज के जीवन का अध्ययन होता है और सामाजिक सारे प्रारूपो का सज्ञान होता है। मध्यकालीन उपन्यासो के अध्ययन से इन सारी प्रथाओ का बडा ही मनोरजक तथा कौतूहल भरा चित्र उभरता है, और चेतना को एक स्पष्ट चित्र मिलता है ।

मध्यकालीन इतिहास शुद्ध रूप से मुसलमानी–बादशाहो का इतिहास था । उत्तर से दक्षिण भारत तक उनका अचल राज्य था । भारतीय जीवन बुझ चुका था । लोग दासता मे पलने के अभ्यस्त हो चुके थे । स्वतत्रता का कोई अस्तित्व न था । लेकिन इतिहास के इन्ही काल खण्डो ने नाना देश भक्त पैदा किए । उन्होने देश, राष्ट्र, समाज जन के नाम पर स्वत. ही पतगा बना दिया । अपने आपको मिटा दिया । इन देश भक्तो की टोली मे पुरूष ही नहीं स्त्रिया भी आयी और उन्होने पुरूषो से अधिक सक्रिय योगदान दिया । महारानी 'दुर्गावती' महारानी लक्ष्मीबाई, रामगढ की रानी आदि का नाम उल्लेखनीय है । ऐसा लगता है कि मानो दासता की बेडी से त्रस्त वर्ग की शिक्षा प्रदान करने हेतु प्रकृति ने ही नारियो के एक ऐसे प्रचड रूप को अवतरित किया ।'अकबर' ने 'रानी दुर्गावती' के पास एक खरीता भेजा– आप महज एक औरत है, आपको काम काज करना नहीं महल मे मौज करे––– राज धन्धो से वास्ता न रखे, वरना खैर न समझे– [153] इस पर रानी का प्रत्युत्तर उनकी अमिट भावना का द्योतक है । अपने धर्म और देश की रक्षा मे अपना सब कुछ श्वाहा कर देगे, परन्तु ऐसे दुष्ट के सामने एक दीन से दीन गौड भी सिर नही नवायेगा ।[154] कितना ओज है, उत्साह है, देश के प्रति बलिदान की उत्कृष्ट भावना है। युद्ध हारना जीतना कई तथ्यो, सेना संचालन साधन से प्रभावित होता है, लेकिन भावनाओ का उत्स, कही उनकी सच्ची वीरता बहादुरी का परिचायक होता है । झुकेगी नही, देश की रक्षा में स्वाहा हो जायेगी, पर देश को गुलाम नही होने देगी । यह 'दुर्गावती' का महान व्रत था, जिसे हम उपन्यास के इन्ही पृष्ठो पर पाते हैं ।'महारानी लक्ष्मीबाई' दूसरी विकट महिला थी । उन्होने विश्व मच पर प्रथम वीर महिला होने का नाम अर्जित किया । पहली भारतीय महिला थी । जिन्होने पूरे देश से अग्रेजी शासन समाप्त करने की योजना बना डाली थी । रानी लडी, मरी, समाप्त हुई, लेकिन उद्देश्य उसका स्वय के राज्य की रक्षा न थी । उनमे पूर्णतया स्वराज्य की आकाक्षी थी

और पूरे जीवन काल मे इसी अभीष्ट मत के परिपालन मे व्यग्र थी । उपन्यास के सत्ताइसवे खण्ड मे उनका हष्ट मत व्यक्त होता है । रानी– हम लोग स्वराज्य कैसे स्थापित कर पावेगे। [155] इससे रानी की मूल भावना का ज्ञापन होता है ।

स्वराज्य के प्रति रानी की लालसा कितनी प्रबल थी, इसका भी विवरण हमे उसी खण्ड से प्राप्त होता है । रानी बाबा से पूछती है । रानी– हम लोगो के जीवन काल मे स्वराज्य स्थापित हो जायेगा, [156] से रानी के स्वराज्य सबधी भावो का ज्ञान होता है। कितनी विकलता है, कितना मोह है, उत्साह, लगाव तथा आकाक्षा कितनी है । मृत–प्राय रानी केवल इसी स्वराज्य पर टिकी थी । उनमे स्वराज्य के लिए तडप भरी थी । इस प्रकार देश के, देश भक्तो मे उसने अपना एक अमिट स्थान बनाया । इतिहस के किसी काल खण्ड ने शायद ही ऐसी वीर प्रचण्ड महिला को जाना हो। रानी की स्त्री सेना को विदेशी सेना नायक रोज घबडा गया और 'स्टुअर्ट' के साथ बोला– "ये सब नेपोलियन हो गया क्या ? [157]। लो ने कहा– तब फासी वाटरलू होगा– रोज ने कहा– वह रानी नेपोलियन नहीं– 'जान लाल आर्क सी' जान पडती है । धन्य थी वह महिला जिनके सेनायकत्व की देखकर विदेशी जनरल तक काप जाते थे और जाने किनसे–किनसे उपमित करते थे ।

'तॉत्या टोपे' दूसरा भक्त था । गजब का रण–पडित, सेनानायक तथा प्रतिरोधी परिस्थितियो मे भी बोजोड शौर्य दिखाने वाला था । सच है भारतीय इतिहास मे शायद ही कोई ऐसा भी देश भक्त रहा हो जो निराशाओ मे आशा का राज्य लिए फिरता रहा हो । पेशवा मर चुके थे । रानी का बलिदान पहले ही हो चुका था । स्वराज्य की कोई आशा न थी । लेकिन फिर भी रण–बाकुरा–अदम्य शौर्यवान, अपनी रण–कुशलता से अग्रेजो के जनरलो को छकाते रहे। सारे देश पर अग्रेज छा गए, लेकिन तात्या अभी भी जीवित थे, और सैकडो अग्रेज जनरलो की सामूहिक सेना को ध्वस्त कर कही का कहीं जा लगता था । पर 1858 के अन्त तक सारे हिन्दुस्तान को अग्रेजो ने अपने फौजी शिकजे मे जकड लिया, तब भी 'तॉत्या टोपे' आधी और बिजली की तरह तडपता और कडकता रहा– अग्रेजो को भूल–भुलैया दिखाता रहा।[158] गजब का व्यक्तित्व था, अजब की उसकी रण कुशलता, विकट थी, उसकी सूझ–बूझ और कुल मिलाकर राष्ट्र के प्रति बलिदान देने की भी अमिट भावना ।

देश भक्तो की टोली मे 'माधव जी सिधिया' का नाम अमर है । वह भी देश का सच्चा प्रेमी था । आपसी कलह, राजनीति, उतार चढाव ने उनको समाप्त कर दिया । पान के द्वारा विष खिलाया गया, लेकिन सेना नायक माधव ने अपने को सिपाही बताया । षड्यन्त्र के प्रति प्रतिरोध न करके स्वेच्छा से उसको स्वीकार किया, साथ ही सहवर्गियो को किसी भी प्रकार की हत्या

*

आदि करने को मना किया । माधव जी देश की एकता, के प्रति कितने लोभी थे । कितने सजग थे कि मरते समय तक कसम खिलायी । हिन्दू को गगा जल की कसम, मुसलमान को कुरान की, ईसाई बाइबिल की कसम खाये, कि मेरे बाद कोई उपद्रव न होगा । मै एक सिपाही की मौत मर रहा हू । रज मत करो देखो यह प्रकट न होने पाये कि मै कैसे मर रहा हू, नही तो पूना, महाराष्ट्र, और सारा देश तलवारो का अखाडा बन जायेगा।[159] कितना उज्जवल चरित्र है, कितना महान अन्त है, कितनी ऊँची भावना और कितनी महान निष्ठा है, जाति के लिए, समाज के लिए और अतत अपने वतन के लिए । ऐसा महान अन्त, महान उद्देश्य को लेकर थोडी सी महान आत्माओ द्वारा सुनी गई है । यही नही आया स्वराज्य कहीं चला न जाय– इसके प्रति व्याकुल माधव जी की आत्मा रो–रो कर कहती है– अग्रेज चढ दौडेगे,'टीपू' 'निजाम' और न जाने कितने और कठिनाइयो से कमाया हुआ स्वराज्य तुरन्त ही चला जायगा– मेरा कहना करोगे न । [160] और यही कहते उनकी आत्मा इस लोक को छोड कर कहीं बहुत दूर जा लगी, जहा से पुन उसको माधव के रूप मे नही आना था, नही पैदा होना था ।

देश दासता मे बधा था । लेकिन जन मानस का स्वाभिमान अभी भी उन्नत था। यही कारण था कि मध्य युग स्वाभिमानी नर–नारियो से भरा था । महाराज 'कीर्ति सिह' कालिजर नरेश थे । राज्य छोटा, पर कोटे सीमित, लेकिन इच्छाए अपार, स्वाभिमान चोटी का था ।'शेरशाह सूरी', शक्तिशाली राजा था । 'हुमायू' तक हार मान चुके थे । लेकिन उसके बर्बर हमले पर भी कीर्ति सिह झुके नही । मरे लेकिन पहले शेरशाह को इस दुनिया से भेज कर ।'शेरशाह' के इस सन्देश पर कि "आत्म–समर्पण कर दो" कीर्ति सिह ने साफ उत्तर भेजवाया– जब तक हमारे तन मे एक सास भी शेष रहेगी युद्ध करते रहेगे। [161] इससे स्पष्ट होता है कि राजा कितना स्वाभिमानी तथा मौत को तिरस्कृत कर, चरण रखने वाला था ।'अकबर' का पत्र रानी दुर्गावती के दरबार मे यही प्रस्ताव आया, पढ डालिए दीवान जी, जैसा पत्र आया है वैसा ही उत्तर भी दिया जायगा। [162] रानी मरना उत्तम समझती है, लेकिन विदेशियो का स्पर्श उसे नितान्त अशस्थ है । आधार सिह अपनी कटार से मुझे तुरन्त समाप्त कर दो, मै युद्ध हार रही हू, परन्तु अपनी देह के स्पर्श मे नही आने दूगी– मारो ।[163] ठीक इसी प्रकार की इच्छा थी रानी लक्ष्मीबाई की जो स्वाभिमान की रक्षा हेतु अपने सेना नायक से साफ भिक्षा मागी थी, कि बैरी उनके शरीर को छू न पावे । यही नही रामगढ की रानी भी अपने स्वाभिमान की रक्षा मे वैरियो के स्पर्श से दूर करने की अभिलाषा व्यक्त की थी । रानी तुरन्त तलवार भोक ली, गिर पडी । 'वाशिगटन' नजदीक आया, 'उमराव सिह' ने मना किया, रानी साहब की आज्ञा है कि उनका शरीर आप न छुये ।[164] इन स्थलो से यह साफ स्पष्ट है कि इस स्वाभिमानी नर नारियों की उस समय कभी कमी न थी ।

*

सारा जन–जीवन इनसे भरा पडा था । ब्राह्मण बोधन युग के स्वाभिमानी इमारत का ऊचा स्तूप है । स्वाभिमानी ब्राह्मण अपने धर्म तथा जाति के परिवर्तन मे तनिक भी नहीं हिला । उसने मौत कबूल किया, लेकिन आत्म–दमन नहीं । जीवन छोडना वाछनीय समझा, लेकिन हिन्दू धर्म सच्युत होना कदापि नहीं । अपना धर्म नही छोडूगा, सिर काटकर फेक दो, क्योकि यह मेरा नही है। –[165]

'निहाल सिह' ने कहा– आपको भी जानना चाहिए कि आप ऐसे मेरे से बात नहीं कर रहे है । तोमर राजपूत से बात कर रहे है, जिसके पुरखो ने उसी दिल्ली मे लोहे की कील गाडी थी। जिसके राजा ने बैरी के सामने कभी सिर नहीं झुकाया । दिल्ली को दो हजार टको मे खरीद लिया होगा, परन्तु ग्वालियर को समूचे विन्ध्याचल की तौल सोने के बदले भी नही मोल ले सकेगे। [166] मरने के बाद भी स्वाभिमानी क्षत्रिय का सिर शान से खडा रहा । जब धड से सिर अलग हो गया तब भी तोमर का धड एक क्षण के लिए सीधा खड़ा रहा । [167] 'गढ कुन्डार' का समाज सम्भवतया स्वाभिमान की चोटी पर था । कोई भी किसी को थोडा भी नत न होता । एक दूसरे से चढकर सदैव रहते। बुन्देले, चन्देलो मे स्वाभिमान से भरे स्थल दृश्य है । चन्देल अपनी तलवार पर हाथ डाल कर बोला– कहो तो यही समझ लू– और इच्छा हो तो महाराज दुर्मति सिह को आपके स्वामिधर्मी सद्–विचारो से परिचित करा दू । उत्तर भी कुछ इससे बढ कर आया– यही समझ लो या जो मन मे आवे सो कर लो, कसर मत लगाना ।[168] इससे स्पष्ट है कि समाज बडा ही विचित्र था । स्वाभिमान को लेकर नाना प्रकार के युद्धो का सृजन होता रहा है ।

समाज मे गद्दार थे । जहा ऊचे चरित्र के महान लोग थे, वही पर निकृष्ट पतित विचारो वाले घोर नारकीय जन्तु भी थे । ये लोग स्वार्थ के अधड मे स्वय को स्वाहा किये– सारे राष्ट्र व राजा का सर्वनाश किये । महारानी दुर्गावती का 'सुधरसिह' था, 'कीर्तिसिह' के राज्य तथा कीर्तिसिह की हत्या का जिम्मेदार था ।[169] महारानी लक्ष्मीबाई के 'दूल्हा' तथा 'पीरअली' की सम्मिलित योजना झासी की पराजय का कारण बनी । [170] नरवर का महान अत, 'लाखी' 'अटल' का स्वर्गीय अत, एक क्षत्रिय बिना राज्य को राजा राजसिंह के द्वारा हुआ ।[171] माधव जी सिधिया ऐसा प्रकाम पुरूष, निस्वार्थ, देश भक्त की आत्मा का कलक लगा, नीच मल्हार राव द्वारा, जिसने पान की बीडे मे विष दे दिया । [172]

समाज मे मालिक के प्रति प्राय. वफादारी निभाई जाती थी । स्वामी की रक्षा, मान–जान के लिए स्वामिभक्त ने अपने सब कुछ लगा दी । इस प्रकार से अनेको उदाहरण हमे वर्माजी के उपन्यासो से प्राप्त हैं, जो भारतीय संस्कृति की विराटता तथा भव्यता मे चार–चाद लगाते हैं ।

*

'महारानी दुर्गावती' का महावत इसका पवित्र उदाहरण है । महावत रानी को हाथी से नदी पार करा रहा था । नदी की धारा प्रबल थी, फल यह निकला महावत का लडका नदी मे गिर पडा और मरने को हुआ । रानी (शौर्य की मात्र प्रतिमा थी) लेकिन स्वामिभक्त महावत रानी को बचाना अपना धर्म समझा, लडके को नही, "हे राम मेरा लडका गया" फटे स्वरो मे महावत बोला– परन्तु अपने स्थान पर डटा रहा । [173]'महारानी लक्ष्मीबाई' के हेतु झलकारी 'दुलैया' का त्याग– अपनी शान नही रखता । रानी पराजित थी, वह सुरक्षा के स्थान की ओर भागती है, इसी बीच अग्रेज जनरल उनका पीछा करते है । रानी बच पायेगी या नही यह दुविधा जनक था। स्थिति को झलकारी समझ गयी । स्वय रानी का वेश धारण किया और अग्रेजो के सामने से जा निकली । एक गोरा बोला–"ऐसे कौन" ? रानी–'झासी की रानी लक्ष्मीबाई,' [174] झलकारी ने बडी हेकडी के साथ जवाब दिया । इस प्रकार स्वय को मौत के मुह मे डालकर रानी के जीवन को सुरक्षित रखने का महान अभियान इस छोटी दुलैया ने किया । स्वामी के प्रति स्वय को स्वाहा करने का ऐसा उदाहरण इतिहास के अल्प खण्डो मे जाना पहचाना गया है ।'रघुनाथ सिह,' 'गुल मुहम्मद' का नाम भी बडे आदर से लिया जा सकता है । इसी के मरने के बाद, रघुनाथ सिह भी मरने के लिए बिल्कुल बेचैन हो उठा । अपनी बन्दूक मुझे दे दो 'कुवर साहब,' 'रघुनाथ सिह' ने प्रस्ताव किया और सब कुछ लेकर अकेला मौत की खोज मे जा लगा । [175] सैकडो को मार स्वय समाप्त हो गया ।'गुल मुहम्मद' की आह–"पश्चिम की ओर मुह करके कहा" खुदा पाक परवर दिगार, रहम, रहम !!! [176] शब्द किसी अतीव निकट सम्पर्की के हो सकते हैं । मुसलमान पर नेक था। नौकर और स्वामिभक्त, और कुल मिलाकर जीवन की अवशेष हड्डियो को तकता वह अवलिया बन जाता है और रानी के साथ उपन्यास का समापन अपने बने जुमले से करता है– "मजार किसका है, के उत्तर मे "हमारे पीर का, वो बडा बली था" आदि ।

भारतीय मध्य युग का इतिहास त्यागो से भरा था । यह काल ऐसा था, जब एक ओर विदेशी देश को निगले जा रहे थे, दूसरी ओर वीर त्यागी व्यक्ति अपने को स्वाहा कर एक नये इतिहास का सृजन करते जा रहे थे । कहा नही जा सकता था कि भारत के सारे इतिहास मे इससे भी अधिक कभी कोई काल रहा है जब कि एक साथ ही इतने सारे संदर्भों का लेखा–जोखा देखने को मिला हो । ऐसा होता है कि युगीन मानव मौत को करतल किए था । स्वामि–भक्त की कसम खाए था । बहादुरी, पराक्रम को शान बना था । 'कीर्ति सिह' कालिन्जर का राजा था ।'शेरशाह सूरी' के प्रस्ताव पर झुके नहीं वरन् मौत को जा चूमा । रण–बाकुरे बृद्ध राजा को मौत ही अच्छी लगी, आत्मसमर्पण नही ।[177] 'दुर्गावती' स्वय वीरो की मौत मरी, लेकिन 'अकबर' के प्रस्ताव को ठुकरा दिया ।[178] जीवन का क्या भरोसा, उससे लगाव क्या ? यदि

*

उसमे 'मर्यादा,' 'मान', और शालीनता न होवे । झलकारी ने अपने को समाप्त करना चाहा लेकिन अपनी रानी के अस्तित्व को बचाया । [179] चेतना स्तब्ध हो जाती है कि लगता है मानो मौत का मतलब न था । 'रघुनाथ सिह', 'तात्या टोपे', 'नाना,' 'लक्ष्मीबाई,' उपन्यास के ऐसे पात्र है, जिन्होने जातीय गौरव के समर्थन मे अपने को खपा डाला । उनका महान अन्त जातीय जीवन का महान पर्व बना और आज भी वे उसी कारण जाने–पहचाने जाते है । 'लाखी' का अलौकिक त्याग, 'मृगनयनी' को भी पराभूत बना देता है । उसका ऐसा शालीन गमन इतिहास के कम पृष्ठो पर उतर आया है । जितना महान उसका अत है, उससे महान उसकी दृष्टि थी । उसका अभिमत था नरवर की रक्षा मे प्राण की आहुति, लेकिन उससे अधिक उसका त्याग जातीय कहरतावो के प्रति हुई । जिसने उसे 'अटल' से ब्याह करने की मनाही की थी । [180] इसी प्रकार अटल ने मौत की तलाश मे सैकडो दुश्मनो को पार कर दिया, और जीवन के बलिदान द्वारा लाखी की आत्मा को शान्ति पहुचाई । मृगनयनी का चरित्र अद्वितीय रहा है । [181] रानियो के प्रतिरोध को उसने अपने प्यार से सीचा, उनके आक्रोश को अपनी शिष्टता से जीता, और उनकी समस्या को अपने बलिदान से पाटा । जहर मिले भोजन, जहर मिले पान, उत्तराधिकारी की तलाश मे 'मृगनयनी' ने जो मर्यादा निभाई -उसमे उसकी विराटता के दर्शन होते हैं । [182]

माधव जी सिधिया का पौत्र 'मोहन लाल' अपनी त्यागमयी प्रवृत्ति से इतिहास से अमर बन गया । जीवन के अल्प बसतो को देखने वाला युवक जीवन की शेष घडियो को अपेक्षित बना, जहर मिले पान का स्वागत करता है और पहले स्वय खाता है तब माधव जी को खाने देता है । पहले मैं पटेल जी पहले मैं खाऊगा । [183] इससे बडा त्याग और क्या हो सकता है, कि वह अभी–अभी वैवाहिक सूत्रो मे बधने वाला था कि परीक्षा सत्ता ने उसे बडे विवाह मण्डप मे पहुचा दिया । त्याग, बलिदान, आतृप्त भावनाओ की वह लकीर कभी मिटेगी ? नही यही कहा जायेगा, कि माधव जी स्वय का त्याग अनेक जीवन से अधिक महान बन गया । मरते समय के वाक्य– "हिन्दू गगाजल की, मुस्लिम कुरान की, ईसाई बाईबल की सौगन्ध खाये कि मेरे बाद कोई उपद्रव न होगा" ।

उनके असीम बलिदान' की भावना का ज्ञापन कराता है। 'नूरा बाई' वेश्या है पर देश के प्रति सच्चा स्नेह, तथा अनुराग उसका है। [184] यही कारण उसके काबुल व जाने का स्वदेश की गलियो की ठोकर खाना , र्दुदशा ग्रस्त जीवन यापन उसे सस्थ है लेकिन काबुल की शान शौकत तथा विलासिता कदापि नही, मरी लाश ईरान जायगी । हिन्दूओ के किसी तीर्थ मे हाथ पर जगह व मिल जायगी मुझको । [185]

*

'कचनार' के महन्त 'अचलपुरी' है। उनका जीवन स्वय भगवान का दूसरा रूप बन जाता है। मरतो को जीवन देना, पराजय को जय मे बदल देना , अन्यायी राजाओ की बुद्धि को ठिकाने लगा देने वाला बल, विक्रम, चातुर्य उनमे था। जीवन का अन्त पुन उन सब से अधिक मर्यादित था।, सारा राज्य 'दिलीप सिह' को और ऊची मरी पुरी नदी कन्टोल पूरी को देख कर विराग का मार्ग अवचार्य किया है। त्यागी महन्त ने जाते समय मुडकर राज्य की ओर निहारा भी नही । सब है भारत देश सदैव से त्याग बलिदान, गौरव से परा पुरा रहा, महन्त ने कन्टोल पुरी की महन्ती की गद्दी दी और यह आशीर्वाद दे कर अकेले चला गया। [186] अचल पुरी का त्याग, विराग, बलिदान, निश्चय ही असाधारण है, आलौकिक है।

अचल एक शान्त निर्विकाम नवयुवक है। कुन्ती से उसका सहज स्नेह है, पर उसके निकल जाने वर वह क्षोभ नही करता । सगीत का साधक, अब जीवन की साधना मे निरत हो जाता है। पुन उसकी सलाह पर विधवा निशा का पाणिग्रहण करता है और कुन्ती की आत्मा को सदैव के लिए पराभूत बनाता है। 'कुन्ती' अचल के इस महान त्याग की विसार नही पाती है। और अन्त मे अचल मेरा कोई– के आगे चेतना लोक को छोड पर लोक गामी बन जाती है। उस पर केवल इतना लिखा था। अचल मेरा को– आगे हाथ काप गया, केवल एक बिगडी लकीर थी। [187] भुवन विक्रम वर्मा जी के उपन्यासो अपना अचल ही अस्तित्व रखता है। भुवन मे जहा मेघ का ग्लानियो से भरा चरित्र है वही कृषि पौध साक्षात् ब्रह्म , ईश्वर का अवतार ले अवतरित होते है। कृषि पौध का असीम त्याग, कर्षिचल के निर्विकाम जीवन की झाडी को उगाया, भुवन को देवता की गरिमा से सचमूणित बनाया और आरूणि को अलौकिक गुणो से सजोया। अहकार, द्वेश, भय, परिग्रह और वासनाओ मे लिप्त लोग भी वस्य कलाये मे , मानव के सच से बडा शत्रु अहकार और स्वार्थ है । इससे उनके ज्ञान गरिमा का परिचय मिलता है। [188]

मध्यकाल का इतिहास शौर्य, वीरता से आपूरित था। इन स्थलो का अवेषक इस काल के कुण्डली की समीक्षा कर इन की प्राप्ति कर सकता है। जैसे वर्मा जी का समस्त उपन्यास शौर्य की गाथा से भरे है। लेकिन उनमे से कुछ विशेष उल्लेखनीय है। 'लक्ष्मी बाई,' 'मृगनयनी,' 'गढ कुण्डार,' 'माधव जी सिधिया,' 'विराटा की पद्मिनी' आदि का नाम सर्वोपरि है। लक्ष्मी बाई उपन्यास रानी शौर्य तथा तॉत्या की अमर गाथा है। अग्रेज वीरता से लडे और बहुत मरे लाल कुर्ती के सवारो ने तो कमाल ही कर दिया । अग्रेजो ने उस दिन का युद्ध बन्द करके दम ली । [189] 'गुल मुहम्मद,' 'रघुनाथ सिह' की प्रचडता प्रसिद्ध है, काफी समय तक रिसाले के सैनिको को हता हत करता रहा फिर एक गोली से मारा गया, रधुनाथ का चरित्र इसी से आका जा सकता है। 'गुल मुहम्मद' का वाफादारी– हमारे पीरका, वह बहुत बड़ा बली था। [190] 'मृगनयनी' उपन्यास की

*

पात्रा 'लाखी' तथा 'निन्नी' दोनो विकट है। अपने शौर्य पराक्रम के प्रतिफल मे उनको लोक ने जाना, परलोक ने पहचाना । राजा स्वय 'निन्नी' को पाने को व्याकुल हुए जिसका कारण था, निन्नी की अद्भुत वीरता तथा अलौकिक शौर्य । उसने उछल कर अपनी और वाले एक सीग को दोनो हाथो से पकड कर अपने को प्रचड वेग से धक्का दिया।'निन्नी' भी उसके सीग को पकडे हुए उस पर गिरी परन्तु तुरन्त सभल गई। [191]

'गढ कुण्डार' का पडिहार सरदार पुण्य पाल अद्भुद है। बडा पराक्रमी , बहादुर तथा मौत से लडने वाला, जीवन का सारा कार्य स्वाभिमान के सामने रख कर करता था। उसने भरे दरबार मे पवारो को ललकारा, अनेक युद्धो मे अपनी घोर साहसिकता का परिचय दिया। सच है वर्मा जी के सारे उपन्यासो मे तीन ऐसे पात्र है जो युग की पद्मिनी का, वीरता बहादुरी के प्रतीक है। पहला नायक है लोचन सिह विराटा की पद्मिनी का । दूसरा पुण्य पाल, गढ–कुण्डार , तीसरा देवी सिह विराटा की पद्मिनी का । इसके अतिरिक्त मराठो का शौर्य की अवलोकनीय है। मराठे ऐसे रण ठाकुर, योद्धा, सम्भवतया एशिया घर मे कोई और न थे। पुण्य पाल की यह सर्वोक्ति कि पडिहार हो या कुछ भी हो ?, लेकिन तुम अपनी मूर्खता की यामा इस समय भी माग लो तो मै छोड दूगा । [192] युद्ध मे पुण्य पाल का धर्य कभी नष्ट होता हुआ नही देख गया था, उसका अभिमान भी विख्यात था। [193] यही नही विष खाते नाना बन्धुओ को रण के लिए प्रोत्साहन देने का काम उसका था। जब ऐसी बुरी हालत है । तो विष पान की अपेक्षा रण मे लोहा खा कर मरना ज्यादा अच्छा है, चलिए कुण्डार या माहौनी, जहा हल्ला बोले, दो हाथ करके स्वर्ग यात्रा करे, विष पीकर कुत्ते की मौत मरना मुझे अच्छा नही लगता । [194]

इसी स्थल से बहुत स्पष्ट हो जाता है। कि पुण्य पाल कितना रण बाकुरा, लडाकू तथा विकट था। उपन्यास के अन्त मे है कोई खगार, जो मुकाबला करे हैं। किसी की छाती मे इतना लहू ? [195] स्थिति जो भी रही हो, लेकिन इस से पुण्य पाल का उमडता शौर्य का रहा है। पराक्रम, वीरता, रण –पाडित्य ही था। जो उसे वरिद्र ठाकुर से एक राज्य का स्वामी बनवाया। शादी का झागा पहने भी वह प्रचड पराक्रम का प्रदर्शन किया, दूल्हा इतने वेग से लडा कि जगह उसका झागा कट गया शरीर से रूधिर की धार बह निकली, कालपी वालो के छक्के छूट गए, जो सशक्त थे वे भाग गये। [196] इतना ही नही रण मे ही जीवन कितना उसे अच्छा लगता था। तभी तो नारी की वार्ता उससे सुहाती नही , सिपाही हू सिवाय, रण और तलवार के किसी और बात का ध्यान नही रहता । [197] अपने सहावरो देयर वासियो के रक्तो को देख कर 'देवी सिंह' का विशाल मावना जागृत हो उठा । बोला – इन्हे अवश्य बचाऊंगा चाहे हाड़ मे दिलीप नगर नहीं सारी पृथ्वी और स्वर्ग को भी भले हार जाऊगा , बढ़ो आज ही मा का ऋण चुकाना है– बढो

*

और मरो – इससे अच्छी मृत्यु कहीं नही मिलेगी । [198] 'लोचन सिह वर्मा' जी के उपन्यासो मे सब से महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यही वह पहला रण–योद्धा है जो अपनी शानी नही रखता। उसका प्रतिरोध स्वय हाजा 'नायक सिह' भी नही कर पाते, साथ ही राजा देवी सिह भी उसको लोहा मानते है। जिधर वह हैं विजय उसी ओर रहेगी , इस प्रकार की एक मान्यता राज्य मे थी। शत्रु 'अली मर्दान' भी 'लोचन सिह' का विरोध नही बडी सावधानी और कडाई के साथ करना पडेगा, उस सरीखा रण कुशल, और रण चतुर कठिनाई से कही मिलेगा इन शब्दो द्वारा वह सेना नायक लोचन सिह का गुण गान करता है। [199]

'लोचन सिह' सेना का नायक था। सेना के सहारे वह न था। सेना उसके सहारे थी । वह अकेला विकट सग्राम की ज्वाला को जलाता था। सहारा लेना जैसे उसकी प्रवृति से अलग ही रहा हो , साफा मेरी कमर मे बाध दो– पोतो की लाशो को आदमियो की लाशो को इक्ट्ठा करके गड्ढा पाट दो , मार्ग बना कर खाई को पाट लो। [200] 'अलीमर्दान' को विश्वास न था कि लोचन सिह की सेना खाई पार करके इतनी जल्दी आ जायगी । 'लोचन सिह' जैसे मौत तथा कफन को साथ लेकर जनमा हो । लेकिन दोनो का छोर उससे कही दूर होता जा रहा था। हाफता हुआ 'लोचन सिह' चिल्लाया– क्या सब मर गए है। उत्तर मिला –– अभी तो सिर का कफन गीला भी नही हुआ है। 'लोचन सिह' ने. तलवार से उन्हे असमर्थ कर दिया, दुश्मन––– नाव से उछल– उछल कर इधर गिरने लगे। [201] 'लोचन सिह' बडी ही तीखी पैनी बुद्धि वाला भी अवसर का लाभ उठाना उसे खूब आता था। तभी तो स्थिति का पारिज्ञान करते हुए सने कहा–दागो–पृथ्वी से सटे हुए उसके सैनिको ने बन्दूक की बाढ एक साथ दागी, पीछे के सैनिको ने गोली चलाई इससे कालपी की सेना का एक भाग बिछ गया । यही नही उनको ऐसे स्थल है जहा पर 'लोचन सिह' के प्रबल पराक्रम के दर्शन होते है। ऐसा लगता हैं जैसे प्रकृति ने उसे केवल युद्धो के हेतु ही सृजन किया हो । वह निरन्तर लडना ही जानता था। उससे अलग उसे कुछ रूचता न था।

दागी वीरो का चरित्र भी दृष्टि से औझल नही किया जा सकता है। जीवन के कठिनतम् क्षणो के लिए उन्होने केसरिया बाना पहनना सीखा था। उन्हे जीवन से अधिक मौत प्यारी हो जाती है। जय का अपेक्ष पराजय । वे हार कर भी विजयी बनते है। और एक जाति रमरणीय गाथा के कारण बनते है। सब दागी केसरिया बाना पहने उछलते कूदते फिर रहे है। [202] वे मरने के लिए व्याकुल हैं, व्यग्रह, और हस खेल उछल कर अपनी मौत के निकट होते जाते है। –केसरिया बाना पहने इन युवको ने जो युद्ध किया उसे देख कर यम देवता हल्दी से रगी– होती थी मानो रण चन्डी लग गए। केसरिया बानो से पृथ्वी हल्दी से रगी होती थी मानो रण चन्डी के लिए प्राचडा बिछाया गया हो। [203] अन्य वह घटा और इतिहास का काल खण्ड जिसने इन रण

*

ठाकुरो को जन्म दिया । निश्चय ही मौत के लिए व्याकुल इन सूरमाओ की गथा विश्व इतिहास मे बेजोड है । मजबूरियो, सीमाओ की आधी मे बहते ये बहादुर रणबाकुरे भारतीय सस्कृति के सब से विशाल स्तम्भ है।

एक लडाकू कौम थी मराठा । सौभाग्य से वे पूर्ण भारतीय थे । सारा युद्ध कौशल भारतीय पद्धति मे था। वही कौम ऐसी थी जो आधी और बवन्डर को झुठा बना देती थी और इससे भी तेजी मे आयी, तहस नहस किया और फिर जाने कहा से कहा जा लगी। विश्वास न होगा कि ऐसी मराठी सेना पचास मील तक छापा मारती थी, और शीघ्र वहा से लौट अपने निजी स्थान पर विराम करती थी। 'मुहम्मद' अहमद 'अब्दाली,' उसका लडका तिमूर शाह, ऐसी मराठो सेना से सदा भय खाता रहा । मराठे आधी की तरह आये थे, आधी की तरह गए और आधी की भवर की तरह लौट पडे, सिमट गए और उनके लम्बे नेजो और लम्बी तलवारो ने अधिकाश टुकडियो का तहस नहस कर दिया–– सब सामान ले गए मराठे । कुछ भी नही छोडा ।[204] द्वारा मराठो का सैनिक गुण स्पष्ट हो उठता है। ऐशिया की ऐसी लडाकू जाति का परिचय वर्मा जी के शब्दो , उस समय एशिया भर मे कोई ऐसी सेना नही थी जो रण क्षेत्र मे हार खाते हुए भी क्षण मात्र की अनुकूल परिथिति को पा कर इतनी शीघ्रता के साथ सिमट कर जुट पडती हो और हार को जीत मे परिणत कर लेती हो जैसी मराठी सेना थी। [205] अजब का रण कौशल था और अजब की थी तेजी जो तत्कालीन एशिया के किसी खण्ड के सैनिको मे न था। मराठे सेनापति विहीन होने पर घबराते न थे, यह उनकी जातिय स्तर का अपना गुण था। अपनी सूझ–बूझ से तुरन्त लडना आरम्भ करते थे। उस समय मराठो मे एक बडा भारी सैनिक गुण था। वे नायक विहीन या प्रधान रहित हान पर भी काम करने मे तत्पर हो जाते थे। सकट पूर्ण परिस्थिति के भाप लेने की भीतरी सचित शक्ति, सामने आने वाले खतरे और अटैक को पहले से ठीक समय पर उपचार को बता देती थी द्वारा उनकी महान सैनिक प्रतिभाओ सूझ–बूझो का परिचय मिलता है। [206]

निश्चय ही मराठो के व्यक्तिगत गुणो ने सेना के स्तर को बढाया था। उनका व्यक्तिगत चरित्र था जो युद्धो मे बैरियो को भाग जाने को बाध्य बना देता था। स्वय अब्दाली मराठो के भयकर हमलो पर हमलो के होने पर थर्रा गया था। अफगानो ने जम कर लड़ने का बहुत प्रयास किया परन्तु न ठहर सके, चार सौ लाशो को छोडकर , और उससे कही अधिक घायल भाग कर वे दिल्ली की दिशा मे भागे । [207] भागने से स्पष्ट था कि मराठो के नाम से विदेशी सैनिक घबराते थे । यह था उनका सैनिक गुण, समान्नत युद्ध कौशल और परिस्थिति मे बदल जाने की सूझ । भूख–प्यास से कतराती मराठी सेना, लाचार थी । समय का पूर्ण अभाव था, लेकिन फिर भी दुश्मन–अब्दाली को पीठ नही दिखाया । हर हर महादेव की ध्वनि कठो से गूज रही थी।

*

अफगानी गोलियो की बौछारो से विश्वास राय के दल मे से खून का मेघ सा बरस पडा और लाशे बिछ उठी । [208] पर मराठा सवार न रूके – 'अब्दाली' का केन्द्र टूट गया – अफगान भाग उठे यह था। विश्व इतिहास की बेजोड कौम , मराठो का शौर्य , जो मूर्खो, प्यासो रह कर अब्दाली जैसे चतुर सेना नायक को मैदान छोडने को विवश बना दिया । सच है महान चरित्रिक गुणो , एव सैनिक परम्परा ने ही गुणो ,एव सेनिक परम्परा ने ही मराठो को पूरे भारत का सिर मोर बना दिया था। कश्मीर से कन्या कुमारी, बगाल से पेशावर तक उनकी सीमा थी।राजाओ को बनाने बिगाडने का सेहरा उनका था। इस प्रकार भारतीय समाज का बडा ही सुन्दर चित्र हमे इन सदर्भो से प्राप्त होता है। इससे दैनिक प्रथाओ, विचारो, विश्वासो, कर्मो तथा चरित्रो का सज्ञान प्राप्त होता है।

*
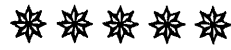
सन्दर्भ-सूची

1 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 212, खण्ड–27

2 मृगनयनी, वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ–38, खण्ड–6

3 लक्ष्मीबाई, वृनदावनलाल वर्मा, पृष्ठ–27, खण्ड–4, सस्करण–14, मयूर प्रकाशन,झासी

4 लक्ष्मीबाई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–493, खण्ड–92, सस्करण–14, सन्, 1970 मयूर प्रकाशन, झासी

5 माधव जी सिधिया, वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ–276, खण्ड–61, सस्करण–5, सन्, 1970 मयूर प्रकाशन, झासी

6 विराटा की पद्मिनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–1, खण्ड–1, सस्करण–7, सन्–1970, मयूर प्रकाशन,झासी

7 गढ कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–242, खण्ड–9, सस्करण–9 सवत्–2023 गगा पुस्तक माला, लखनऊ

8 कचनार, वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ–241,196,खण्ड–42,33, सस्करण–9, 1970, गगा पुस्तक माला, लखनऊ

9 माधव जी सिधिया, वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ठ–6, खण्ड–1,सस्करण–5, सवत् 1970, गगा पुस्तक माला, लखनऊ

10 वही पृष्ठ–192, खण्ड–44 शेष वही

11 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–91, खण्ड–12,सस्करण मयूर प्रकाशन, झासी

12 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–97, खण्ड–20, सस्करण–5, सन् 1971

13 लगन, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–197, खण्ड–41, सस्करण–9, सन् 1968।

14 लक्ष्मी बाई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–95, खण्ड–20,सस्करण–14, सन् 1971

15 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–30, खण्ड–6, सस्करण, मयूर प्रकाशन, झासी

16 वही पृष्ठ–383, खण्ड–54, सस्करण शेष वही।

17 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–25, खण्ड–2, सस्करण–7, मयूर प्रकाशन,झांसी

18. वही पृष्ठ–34, खण्ड–4, सस्करण–7 शेष वही ।

19. वही पृष्ठ–69, खण्ड–5 शेष वही।

20. महारानी लक्ष्मी बाई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–245, खण्ड–49, सस्करण– सन्, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

*

21 टूटे कान्टे, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–7 ,सस्करण–5, सन् 1972, शेष वही।

22 गढ कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–211, खण्ड– आखैट, सस्करण–9, सवत्–2023 गगा पुस्तक माला, लखनऊ

23 वही पृष्ठ–254, खण्ड– हुरमत सिह, शेष वही ।

24 कचनार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–137, खण्ड–24, सस्करण–9 सनृ 1971, मयूर प्रकाशन,झासी

25 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–41, खण्ड–4, सस्करण–7, सन् 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

26 वही पृष्ठ–175, खण्ड–15, शेष वही।

27 वही पृष्ठ–39, खण्ड–3 शेष वही।

28 सगम, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–172, खण्ड–44,सस्करण–8, वि0 2022, गगा पुस्तक माला, लखनऊ

29 झासी की रानी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–132, खण्ड–27, सस्करण–14 स0 1971 मयूर प्रकाशन,झासी

30 सगम, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–208, खण्ड–54, सस्करण–8, सवत्–2022, गगा पुस्तक माला,लखनऊ।

31 झासी की रानी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–240, खण्ड–46, सस्करण–14, स0 1971 मयूर प्रकाशन,झासी।

32 वही पृष्ठ–330, खण्ड–61 शेष वही।

33 टूटे कान्टे, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–2, खण्ड– 1,सस्करण–5सन् 1972, मयूर प्रकाशन, झासीं।

34 वही पृष्ठ–120, खण्ड–16, शेष वही।

35 वही पृष्ठ–30,265, खण्ड– 17 शेष वही।,

36. वही पृष्ठ–263, खण्ड 50, शेष वही ।

37. मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ–157, खण्ड–19, मयूर प्रकाशन,झासी।

38 वही पृष्ठ–273, खण्ड– 30 शेष वही।

39. गढ़ कुण्डार, वृन्दा वनलाल वर्मा , पृष्ठ–100, खण्ड– अर्जुन–प्रतत्व, उद्घाटन सस्करण– नवम्, सवत–2023, गगा पुस्तक माला, लखनऊ।

40 वही पृष्ठ–139, खण्ड– अर्जुन–प्रतत्व, सस्करण–9 शेष वही ।

*

59 गढ कुण्डार, वृनदावन लाल वर्मा, पृष्ट–34, खण्ड– भरतपुरी, सस्करण–सवत् 2023 गगा पुस्तक माला, लखनऊ

60 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–103, खण्ड–7, सस्करण–7 सन् 1970, मयूर प्रकाशन, झासी ।

61 गढ कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–111, खण्ड–पाडे की आत्म कथा, सस्करण–9 सवत् 2023, गगा पुस्तक माला, लखनऊ

62 टूटे कान्टे, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–389, खण्ड 69, सस्करण–5, सन् 1972, मयूर प्रकाशन, झासी।

63 लक्ष्मी बाई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–58, खण्ड–12,सस्करण–14 सन् 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

64 सगम, वृनदावन लाल वर्मा, पृष्ट–19, खण्ड–2, सस्करण–8, सवत्–2022, गगा पुस्तक माला, लखनऊ।

65 दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–4, खण्ड–1, सस्करण–7 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

66 वही पृष्ट–53, खण्ड–5 शेष वही ।

67 महारानी लक्ष्मी बाई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–94, खण्ड– 18, सस्करण–14, 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

68 वही पृष्ट–113, खण्ड–22, शेष वही ।

69 कचनार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–18, खण्ड–3, सस्करण–9, सन्, 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

70 दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–236, खण्ड–20, सस्करण–7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

71 वही पृष्ट–236, शेष वही।

72. महारानी लक्ष्मी बाई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–1, खण्ड–1, संस्करण–7 , 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

73 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–4 ,खण्ड–2, सस्करण– मयूर प्रकाशन, झासी।

74 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–7, खण्ड–2, सस्करण , मयूर प्रकाशन, झासी।

75. टूटे कान्टे, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–7 खण्ड–19, सस्करण–5, 1972, मयूर प्रकाशन,झासी।

*

76 वही पृष्ट–80, शेष वही ।

77 सोना, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–85, खण्ड–14, सस्करण–8, 1966, मयूर प्रकाशन, झासी।

78 दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–1, खण्ड–1, सस्करण–7, 1970 मयूर प्रकाशन, झासी।

79 वही पृष्ट–46, शेष वही ।

80 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–58, खण्ड–7, मयूर प्रकाशन, झासी।

81 वही पृष्ट–60, शेष वही ।

82 गढ कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–24, खण्ड– अर्जुन पहरेदार, सस्करण–9, सवत् 2023, गगा पुस्तक माला, लखनऊ।

83 वही पृष्ट–70, खण्ड–चिट्ठी शेष वही ।

84 माधव जी सिंधिया, वृन्द‚वन लाल वर्मा, पृष्ट–504, खण्ड–127, सस्करण–5, सन्1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

85 भुवन विक्रम, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–4, खण्ड– 15, सस्करण–1, 1957, मयूर प्रकाशन, झासी।

86 माधव जी सिंधिया, वृनदावन लाल वर्मा, पृष्ट–386, खण्ड–91, सस्करण–5 सवत्, 2023, गगा पुस्तक माला, लखनऊ।

87 गढ कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–493, खण्ड–20 विन्दो, दुर्गश, सवत्, 2023, गगा पुस्तक माला, लखनऊ।

88. भुवन विक्रम, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–328, खण्ड–77, सस्करण– प्रथम, सन् 1957, मयूर प्रकाशन, झासी।

89 वही पृष्ट–145, खण्उ–33, शेष वही ।

90 दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–41, खण्ड–3, सस्करण–7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी

91 वही पृष्ट–47, शेष वही ।

92 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–47, खण्ड–7, सस्करण– मयूर प्रकाशन, झासी।

93 सोना, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–10, खण्ड–3, सस्करण–6, 1966, मयूर प्रकाशन, झासी।

94 सोना, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–18, खण्ड–4, सस्करण–8, 1966, मयूर प्रकाशन, झासी।

95. भुवन विक्रम, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–267,खण्ड –65, सस्करण– 1 , मयूर प्रकाशन, झासी।

96. वही पृष्ट– 63, खण्ड–13, शेष वही ।

*

97 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–49, खण्ड–7, सस्करण, मयूर प्रकाशन, झासी।

98 वही पृष्ट–313, खण्ड–41, शेष वही ।

99 वही पृष्ट–321, खण्ड–42, शेष वही ।

100 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–7, खण्ड–1, सस्करण–5, 1971 मयूर प्रकाशन,झासी।

101 विराटा की पद्मिनी, वृन्दावनलाल वर्मा, पृष्ट–99 खण्ड–24,सस्करण–7, 1970 मयूर प्रकाशन, झासी।

102 वही पृष्ट–376, खण्ड–103, शेष वही ।

103 वही पृष्ट–376, शेष वही ।

104 वही पृष्ट–477, खण्ड–70, शेष वही ।

105 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–9, खण्ड–1, सस्करण–7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

106 वही पृष्ट–14, खण्ड–2 शेष वही ।

107. वही पृष्ट–18, शेष वही ।

108 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–308, खण्ड–40, सस्करण– मयूर प्रकाशन झासी।

109. वही पृष्ट–336, खण्ड–44, शेष वही ।,

110 वही पृष्ट–337, शेष वही ।

111 वही पृष्ट–338, शेष वही।

112 वही पृष्ट–339, शेष वही ।

113 दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–11, खण्ड–2, सस्करण–7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

114 वही पृष्ट–40, शेष वही ।

115 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–241, खण्ड–52, सस्करण–5, 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

116 सोना, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–28, खण्ड–6, संस्करण–8, 1972, मयूर प्रकाशन, झासी।

117. दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–259, खण्ड–21, सस्करण–1970, वही।

*

118 वही वही वही ।

119 माधव जी सिंधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट– 250, खण्ड–53, सस्करण–5, 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

120 कचनार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–86, खण्ड–14, सस्करण–9, शेष वही।

121 टूटे काटे, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–369, खण्ड–64, सस्करण–9, 1972, मयूर प्रकाशन, झासी।

122 टमर बेल, वृन्दा॰न लाल वर्मा, पृष्ट–13, खण्ड–1, सस्करण716, 1972, मयूर प्रकाशन, झासी।

123 अमर बेल, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–29, खण्ड–64, सस्करण–9, 1972, मयूर प्रकाशन, झासी।

124 सगम, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–146, खण्ड–37, सस्करण–8, 2023, गगा पुस्तक माला, लखनऊ।

125 वही पृष्ट–179, शेष वही ।

126 कुण्डली चक्र, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–53, खण्ड–16, सस्करण–1

127 माधव जी सिंधिया, वृनदावन लाल वर्मा, पृष्ट–70, खण्ड–13, सस्करण–5, 1971, मयूर प्रकाशन,झासी।

128 वही पृष्ट–60, खण्ड–9 शेष वही ।

129 सोना, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–133, खण्ड–27, सस्करण–8, 1966, मयूर प्रकाशन, झासी।

130 आहत, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–182, खण्ड–25, सस्करण–4, मयूर प्रकाशन, झासी।

131 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–263, खण्ड–21, सस्करण–7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

132. वही वही वही

133 महारानी लक्ष्मी बाई, वृन्दावन लाल वर्मा , पृष्ट–473, खण्ड–87, सस्करण–14, मयूर प्रकाशन, झासी।

134. वही पृष्ट–473, शेष वही

*

135 वही पृष्ट—365, खण्ड—69, शेष वही।

136 वही पृष्ट—500, खण्ड—परिशिष्ट—1 शेष वही ।

137 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—529, खण्ड—132, सस्करण—5, 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

138 वही वही वही ।

139 दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—211, खण्ड—18, सस्करण—7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

140 दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—289, खण्ड—23, सस्करण—7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

141 वही पृष्ट—331, खण्ड—23 शेष वही ।

142 रामगढ की रानी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—135, खण्ड—11, सस्करण—3, मयूर प्रकाशन, झांसी।

143 वही पृष्ट—363, खण्ड—50 शेष वही ।

144 वही पृष्ट—364 शेष वही ।

145 गढ कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—116, खण्ड— दलपति बुन्देला,

146 सस्करण—9, गगा पुस्तक माला, लखनऊ।

147 महारानी दुर्गाक्ती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—218, खण्ड—18, सस्करण—7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

148 महारानी लक्ष्मी बाई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—374, खण्ड—70, सस्करण—14, मयूर प्रकाशन, झासी।

149 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—393, खण्ड—55, सस्करण— मयूर प्रकाशन, झासी।

150 मधाव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—525, खण्ड—132, सस्करण—5, 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

151 महारानी दुर्गावती, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—179, खण्ड—16, , सस्करण—7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

152. महारानी लक्ष्मी बाई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट—425, खण्ड—77, सस्करण—4, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

*

153 वही पृष्ट–496, खण्ड–61 शेष वही ।

154 वही पृष्ट–489; खण्ड–90 शेष वही ।

155 महारानी लक्ष्मी बाई , वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–488, खण्ड–90, सस्करण–14, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

156 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–466, खण्ड–69, सस्करण– मयूर प्रकाशन, झासी।

157 वही पृष्ट–466, खण्ड–69 शेष वही ।

158 वही पृष्ट–414, खण्ड–59, शेष वही ।

159 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–525, खण्ड–132, सस्करण–5, 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

160 वही पृष्ट–529, शेष वही ।

161 टूटे काटे, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–170, खण्ड–37, सस्करण–5, 1972, मयूर प्रकाशन,झासी।

162 कचनार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–372, खण्ड–72, सस्करण–9, 1972, मयूर प्रकाशन, झासी।

163 अचल मेरा कोई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–264, खण्ड–32, सस्करण–11, 1971, मयूर प्रकाशन,झासी।

164 भुवव विक्रम, वृन्दावल लाल वर्मा, पृष्ट–124, खण्ड–28, सस्करण–1, 1957, मयूर प्रकाशन, झासी।

165 महारानी लक्ष्मी बाई, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–479, खण्ड–88, सस्करण–14, मयूर प्रकाशन, झासी।

166 वही पृष्ट–497, खण्ड–93, शेष वही ।

167 मृगनयनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–194, खण्ड–24, सस्करण– मयूर प्रकाशन, झासी।

168 गढ कुण्डार, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–318, खण्ड–द्वन्द, सस्करण–9, 2023, गंगा पुस्तक माला, लखनऊ।

169. वही पृष्ट–365, खण्ड–करेटा में शेष वही ।

170. वही पृष्ट–403, खण्ड–निराथा शेष वही ।

*

171 वही पृष्ट–खण्ड–महौत्सव शेष वही ।

172 विराटा की पद्मिनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–30,खण्ड–7, सस्करण–7, 1970, मयूर प्रकाशन, झासी।

173 वही पृष्ट–230,खण्ड–66, शेष वही ।

174 वही पृष्ट–382, खण्ड–104 शेष वही ।

175 वही पृष्ट–122, खण्ड–34 शेष वही ।

176 वही पृष्ट–126, खण्ड–35 शेष वही ।

177 विराटा की पद्मिनी, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–294,खण्ड–81, सस्करण–7, 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

178 वही पृष्ट–376, खण्ड–103, शेष वही ।

179 वही पृष्ट–384, खण्ड–105 शेष वही ।

180 टूटे काटे, वृन्दावन वर्मा, पृष्ट–110, 111, खण्ड–24, सस्करण–5, 1972, मयूर प्रकाशन, झासी।

181 माधव जी सिधिया, वृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ट–157, खण्ड–38, सस्करण–5, 1971, मयूर प्रकाशन, झासी।

182 वही पृष्ट–104, खण्ड–23, शेष वही ।

183 वही पृष्ट–105, खण्ड–23 शेष वही ।

184 वही पृष्ट–245, खण्ड–53 शेष वही ।

185 टूटे–काटे, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ – 170, खण्ड – 37, सस्करण–5,1972, मयूर प्रकाशन, झासी ।

186 कचनार, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 372, मयूर प्रकाशन, झासी ।

187 अचल मेरा कोई, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 264, मयूर प्रकाशन, झासी ।

188 भुवन विक्रम, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 124, मयूर प्रकाशन, झासी ।

189 महारानी लक्ष्मीबाई, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 479, मयूर प्रकाशन, झासी ।

190 महरानी लक्ष्मीबाई, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 467, मयूर प्रकाशन, झासी ।

191 मृगनयनी, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 194, मयूर प्रकाशन, झासी ।

192 गण कुण्डार, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 318, मयूर प्रकाशन, झासी ।

193 गण कुण्डार, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 365, मयूर प्रकाशन, झांसी ।

*

194 गण कुण्डार, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 403, मयूर प्रकाशन, झासी ।

195 गण कुण्डार, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 465, मयूर प्रकाशन, झांसी ।

196 विराटा की पद्मिनी, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 30, मयूर प्रकाशन, झासी ।

197 विराटा की पद्मिनी, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 230, मयूर प्रकाशन, झासी ।

198 विराटा की पद्मिनी, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 382, मयूर प्रकाशन, झासी ।

199 विराटा की पद्मिनी, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 122, मयूर प्रकाशन, झासी ।

200 विराटा की पद्मिनी, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 126, मयूर प्रकाशन, झासी ।

201 विराटा की पद्मिनी, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 294, मयूर प्रकाशन, झासी ।

202 विराटा की पद्मिनी, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 376, मयूर प्रकाशन, झासी ।

203 विराटा की पद्मिनी, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 384, मयूर प्रकाशन, झासी ।

204 टूटे काटे, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 110, मयूर प्रकाशन, झासी ।

205 माधव जी सिंधिया, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 175, मयूर प्रकाशन, झासी ।

206 बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 384, मयूर प्रकाशन, झासी ।

207 माधव जी सिंधिया, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 105, मयूर प्रकाशन, झासी ।

208 माधव जी सिंधिया, बृन्दावन लाल वर्मा, पृष्ठ– 245, मयूर प्रकाशन, झासी ।

अध्याय - तृतीय

अध्याय - 3

(क) आचार्य चतुरसेन शास्त्री का औपन्यासिक व्यक्तित्व और कृतित्व तथा उनके ऐतिहासिक सॉस्कृतिक तथा सामाजिक उपन्यास

1. जीवन-परिचय -:

"आचार्य चतुरसेन शास्त्री" के पिता 'ठाकुर केवल राम वर्मा' थे । वे आर्य सामाजी, प्रगतिशील के व्यक्ति थे । समाज मे व्याप्त अधविश्वासो के खण्डन के लिए वे सदा उग्रता से तत्पर रहते थे ।'चतुरसेन' की माता उनके शब्दो मे –"त्याग, स्नेह और सहिष्णुता को मिलाकर जो एक श्रद्धा और आदर्श की देवी की कल्पना की जा सकती है, वही थी । ऐसे घर मे चतुरसेन का जन्म हुआ था । पिता के तेजस्वी व्यक्तित्व और सुधारवादी दृष्टिकोण पर चतुरसेन के जीवन पर गहरा प्रभाव पडा । कोमलता एव सवेदनशीलता उन्हे माता से प्राप्त हुई थी । [1]

चतुरसेन जी के जन्म का नाम 'चतुर्भुज' था । यह नाम उनके पिता के अनन्य मित्र प्राणाचार्य वैद्य 'होमनिधि शर्मा' ने रखा था । उन्होने ही उनकी जन्म कुण्डली बनाई थी । बचपन मे शास्त्री जी को वे "कुलदीप" कहते थे । उनका कहना था कि लडके का गृह–प्रवेश तुम्हारे धर के योग्य नही है । बडा होकर यह 'कुलदीप' होगा, इसी से पिता का प्यार उस पर बहुत था।

चतुरसेन का बाल्यकाल अधिकाशत "चन्दोखा" (उत्तर प्रदेश) मे व्यतीत हुआ था । निकट के गाव रसूलपुर मे 'प0 गगाराम' से इन्होने शिक्षा प्राप्त की थी । बाद मे उच्च शिक्षा के लिये वे सिकदराबाद आकर रहने लगे । फिर वह काशी गये ।'शास्त्री जी' के शब्दो मे –"राह मे बहुत विपदाये झेली, काशी पहुचने पर कष्टो का सामना किया । वहा हम क्षेत्रो मे घूमा करते और खा–पीकर आवारा गर्दी मे पढते थे । विधार्थी तथा पडो की गुण्डागीरी के खूब हथकडे भी देखे । कुछ सीखे भी थे, पीछे पिताजी ने आकर 'श्री केशव दास शास्त्री' के यहा हमारी व्यवस्था रखने की कर दी । उनके अमेरिका चले जाने पर हम 'प0 जीवाराम' तथा 'श्याम लाल शास्त्री' के सानिध्य मे रहकर सात्यि तथा व्याकरण की उच्च शिक्षा प्राप्त की । [2]

उसके बाद शास्त्री जी 'सस्कृत कालेज जयपुर' मे चार वर्ष तक आयुर्वेद शास्त्र का विधिवत् अध्ययन किया । सन् 1909 तक इन्होने साहित्य और चिकित्सा सहित्य सम्बन्धी विभिन्न परीक्षाये प्राप्त की । तत्पश्चात् सिकदराबाद लौट कर कार्य आरम्भ कर दिया । इन्हे दिल्ली मे कार्य करने का अवसर मिल मया, साथ मे अध्ययन भी करते रहे । परिणामत: इन्होने आयुर्वेद विसारद 'उपाध्याय', 'शास्त्री' एव 'आचार्य' की परीक्षा पास की ।

जयपुर मे शिक्षा प्राप्त करते समय उनका विवाह मुहम्मदपुर देवमल 'द्वैविजनौर' के प्रसिद्ध वैद्य कल्याण सिह' की पुत्री 'तारा देवी' से सन् 1912 मे हुआ । पहले इन्होने किनारी बाजार मे निजी औषधायल चलाया, फिरी फतहपुरी के कटरा मेदगरान मे एक 'सेठ सावलदास' के औषधालय पर नौकरी करने लगे । इसी बीच इनके श्वसुर 'डी ए वी कालेज' लाहौर के व्यवस्थापको की ओर से उन्होने आयुर्वेद कालेज के प्रधनाचार्य पद पर नियुक्त हुए और अपना अजमेर का श्रीकल्याण औषधायल इन्हे सौप दिया । कुछ दिनो बाद 'शास्त्री जी' वहा प्रधानाचार्य बन गये, किन्तु अधिकारियो के मतभेद होने के कारण पुन अजमेर लौट आये । अजमेर लौटने तक इनके हृदय मे साहित्यकार का गुण आ चुका था । इस समय प्रथम महायुद्ध के विनाश को देखकर शास्त्री जी कहते है– "कि देश मे भयानक महामारी, 'इन्फुलुएन्जा', 'प्लेग' से प्रतिदिन दो तीन सौ लोग मर जाते थे, और उनके प्रियजनो के करूण कन्द्रन आर्तनाद को निकट से देखने का अवसर मिला । मेरे जैसे तरूण के लिए जिसके हृदय मे साहित्य की भावना सोई पडी थी, तीन–तीन नर–नारियो का नृत्य मेरी आखो के सामने झटपटा कर मना और प्राण त्यागना मन मे गूजता रहा । मैं अपनी आहत चेतना से उसे भूल नही सकता था । इसके अलावा मै अपनी औषधायल से उनका उपचार भी करता था । इनकी दर्दनाक मृत्यु अत्यत ही पीडादायक होत थी ।" यही दृश्य देखकर शास्त्री जी का सोया हुआ, साहित्यकार हृदय जाग उठा और उन्होने एक उपन्यास "प्लेगविभ्रा" की रचना कर डाली । [3]

चिकित्सा का काम करते हुए शास्त्री जी के सामने मानव के बहुत चरित्र सामने आये । वे बहुत से राजा महाराजाओ, सामतो, रानियो के क्रिया–कलाप भी देखे । अजमेर से वे चिकित्सा के लिए बम्बई चले जाते है । वहा एक पुस्तक विक्रेता की पत्नी का भीषण रोग इनकी चिकित्सा से दूर हो जाता है । वह प्रसन्न होकर इन्हे बम्बई मे रहने का स्थान देता है, और शास्त्री जी 'अजमेर वाले वैद्य जी" के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त कर धन कमाने लगे । उन दिनो ये जुआ भी खेलते थे और एक क्षण सबकुछ दाव पर लगाकर घर लौट आये । यहा उन्हे पता चला कि उनकी पहली पत्नी की मृत्यु हो चुकी है । एक वर्ष बाद 1926 मे मदसौर निवासी "नानूराम" की पुत्री 'प्रियवदा' से इनका दूसरा विवाह हुआ । इन्ही दिनो शास्त्री जी का सम्पर्क 'भगतसिह' जैसे क्रातिकारी के आन्दोलन से भी हुआ, और इन्होने प्रयाग की मासिक पत्रिका "चाद के फासी अक" और मारवाडी अक का सपादन किया । 'भगतसिह' के साथ इन्हे पर्याप्त सहायता मिली, और इस अक के सम्पादन से इनकी प्रसिद्धि फैली, लेकिन ब्रिटिश सरकार ने इसे जब्त कर लिया । इसी समय शास्त्री जी ने 'हृदय की प्यास', 'अमर अभिलाषा,' जैसे उपन्यासो मे तत्कालीन समाज का

*

चित्र प्रस्तुत किया । जिससे देश की जनता मे इनकी ख्याति फैल गई, लेकिन साहित्य के ठीकेदारो ने इनकी कृतियो को "घासलेटी" साहित्य के रूप मे घोषित कर दिया । [4]

साहित्य साधना मे जुडने से शास्त्री जी ने धीरे–धीरे अपनी चिकित्सा पद्धति को त्याग दिया, और अपने आत्मबल से वय रक्षाम, 'सोमनाथ,' 'गोली,' 'सोना और खून,' जैसे उपन्यासो की रचना कर तत्कालीन भारतीय जीवन पर ध्यान केन्द्रित कर लिया । आचार्य जी का जीवन साधना और श्रम का था । उनके निकट आने वाले एक विद्वान के अनुसार–"स्वस्थ गठा हुआ स्थूल किन्तु बलिष्ठ एव स्फूर्तिवान शरीर एव मुखमण्डल पर गभीरता तथा प्रौढता, नेत्रो पर नीले रग का सुनहरा कमानी का चश्मा, क्लीन सेव, बाये कपोल पर एक छोटा सा तिल, चौडी ललाट, 68 वर्ष के अधिक आयु मे एकदम काले सिर पर बाल, बत्तीसी इस आयु मे भी सगमरमर की तरह सफेद एव दृढ गेहुँआ रग तथा गठिया के कारण कुछ रूक–रूक कर चलने के अभ्यस्त अध्ययन के कारण धसे हुए नेत्र, स्वर मे दृढ़ता, बातचीत मे आत्मीयता, विद्रोह नवीनता एव अध्ययन का पुट आदि भरा हुआ था ।

'चतुरसेन' को समाज की सेवा–भाव का गुण विरासत मे प्राप्त हुआ था । उनके पिता निरन्तर चौदह वर्ष तक उनकी माता जो रोगिणी थी, कि सेवा की थी । शास्त्री जी के हृदय पर यही सेवा भाव अकित हो गया था । विद्राह की भावना शास्त्री जी मे कूट–कूट कर भरी थी और ये सामाजिक रूढियो का खण्डन–मण्डन करते रहते थे । धन, धर्म, समाज और राजनीतिक सत्ता के बोझ के दबे दलित वर्ग की पीडा के प्रति आकूल सहानुभूति धीरे–धीरे तरूण रक्त मे समा गई थी ।

'शास्त्री जी' के ऊपर देश की परिस्थितियो का गहरा प्रभाव पडा था । इससे पहले वे जातिवादी थे, छुआछूत की ज्वर भी उन्हे पकड लिया था, किन्तु बम्बई के "हाजी मुहम्मद अल्ला राखिया शिवाजी" से हुआ । जिन्होने इनकी विचार केन्द्र को बदल कर 'हिन्दुत्व,' 'राष्ट्रवादी' तथा देशभक्ति से भर दिया । साथ ही उनके मन से हिन्दू, मुस्लिम भेदभाव को निकला फेका । फलस्वरूप उनकी चेतना देशप्रेम और मानव प्रेम पर प्रखर हो उठी, जिसे इन्होने अपने उपन्यासो मे मूर्तिरूप दिया है ।

'चतुरसेन जी' जन्मजात साहित्यकार थे । उनके मन मे सृजन–शक्ति की लहर आती थी, और वे किसी न किसी उपन्यास को लिखने बैठ जाते थे । अत मे यहा देखना यह है कि 'चतुरसेन जी' की विपुल कथा सामग्री की पृष्ठभूमि क्या है और लेखन प्रक्रिया का मूल शक्ति–स्रोत क्या है ? 'शास्त्री जी' के शब्दो मे– "मै मनुष्य की पीड़ा नहीं सह सकता । खासकर स्त्रियो और बच्चो पर मेरा बडा मोह है । उनके दुःख दर्द को देखते ही मैं आपे से बाहर हो जाता हू, सुलगने

लगता हू, तब कलम उठाता हू, फिर वह कलम नही दुधारी तलवार बन जाती है । मै आगा पीछा नही सोचता , चौमुखी वार करता हू । उनका यही दृष्टिकोण उपन्यासो मे चित्रित हुआ है ।"

इस प्रकार 'शास्त्री जी' अतिम क्षणो मे अपराजित योद्धा की भाति जीवन सघर्ष करते रहे । उनकी "आत्मकथा" की आरभिक पक्तिया इस प्रकार है– "मै एक आहत किन्तु अपराजित योद्धा हू । अपने जीवन मे मैने सबकुछ खोया है, पाया कुछ भी नही। मैने एक भी मित्र जीवन मे उत्पन्न नही किया और जीवन की सध्या मे अपने को सर्वथा अकेला, असहाय, निरसग अनुभव करता हू । मेरी दशा उस मुसाफिर के समान है जो दिनभर निरन्तर मजिल काटता रहा हो, और जिसकी निर्जन राह मे ही सूर्य अस्त हो गया हो । वह बेसरो सम्मान थमकर राह के वृक्ष के सहारे रात काटने पड गया हो और मजिलो दूर अपने घर मे बिछी सुखद दुग्ध फेन समशैय्या की भाति स्निग्ध पत्नी को और फूल के समान अपने पुत्र की कल्पना केवल कर रहा हो ।"

अतत हम कह सकते है कि शास्त्री जी का सम्पूर्ण जीवन त्याग और तपस्या का जीवन था । उन्होने प्रारम्भ मे वैद्य जीवन से लेकर अत तक साहित्य के माध्यम से मानव कल्याण का ही कार्य करते रहे । अभी उन्होने केवल भारत के पाठको के हृदय मे ही स्थान पाया है, किन्तु वे दिन अब दूर नही जब उनकी रचनाये विश्व के पाठको के हृदय का हार बन जायेगी, और उनकी कीर्ति उसी प्रकार विश्व व्यापी हो जायेगी, जैसे– 'टाल्सटाय,' 'ड्यूमा,' 'ह्यूगो,' 'वाल्टर,' 'स्काटगोरकी' आदि विदेशी लेखको की फैली है। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि हिन्दी भाषा–भाषी दूसरे देशो की मणियो के गुण गाने के साथ–साथ अपनी गुदडी मे छिपे हुए लालो को पहचान ले। इस तरह उन्होने अपने जीवनकाल मे अनेक पुस्तको की रचनाये की । जिसमे 'कहानी,' 'नाटक,' 'निबन्ध,' 'स्वास्थ्य विज्ञान,' 'उपन्यास,' आदि उनकी महत्वपूर्ण प्रस्तके हैं । [5]

❋❋❋❋❋
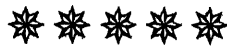
1 आचार्य चतुरसेन शास्त्री — डॉ0 शुभकार कपूर — पृष्ठ स0 – 27
2 उपन्याकार चतुरसेन के नारी पात्र — सूतदेव हस — पृष्ठ स0 – 57
3 आचार्य चतुरसेन शास्त्री का कथा साहित्य — डॉ0 शुभकार कपूर — पृष्ठ स0 – 89
4 आचार्य चतुरसन शास्त्री के नारी पात्र — सूतदव हस — पृष्ठ स0 – 25

*

2. ऐतिहासिक उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने लगभग पन्द्रह एतिहासिक उपन्यासो की रचना की है। जिसका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1. पूर्णाहुति (खवास का व्याह) (1949)

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक 'महाराज पृथ्वीराज' के जीवन से ससम्बन्धित है। कन्नौज के राजा जयचन्द की कन्या सयोगिता पिता की एकमात्र लाडली कन्या थी, पिता के असाधारण दुलार ने उसे हठी बना दिया था। एक दिन 'सयोगिता' अपनी दासी से पृथ्वीराज के रूप गुण का आकर्षक वर्णन सुनती है। और तभी से वह 'पृथ्वीराज' की कल्पना मे खोकर उसे प्राप्त करने की अभिलाषा करने लगती है। वह निश्चय कर लेती है कि यदि विवाह करूगी तो 'पृथ्वीराज' के साथ अन्यथा नही । उधर पृथ्वीराज भी 'सयोगिता' का रूप वर्णन सुनकर उसे प्राप्त करने के लिए लालाथित हो उठता है। इधर 'जयचन्द' अपनी कन्या 'सयोगिता' के लिए स्वयवर रचता हे साथ ही एक यज्ञ भी आरम्भ करता है किन्तु द्वेष वश वह पृथ्वीराज को नही बुलाता उसका अपमान करने के लिए पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा बनाकर वह द्वारपाल के स्थान पर खडी कर देता है। राजकुमारी सयोगिता सभी राजाओ की उपेक्षा कर जयमाल 'पृथ्वीराज' को र्स्वण प्रतिमा को पहना देती है। पृथ्वीराज, 'सयोगिता' को हरण करने के लिए चन्द बरदायी के साथ परोच्छरूप से खवारा बनकर कन्नौज आते है। यही सयोगिता तथा पृथ्वीराज का नाटकीय ढग से मिलन होता हे। पृथ्वीराज उसका अपहरण कर अपनी सेना के साथ जयचन्द की अपारवाहिनी को रोदता हुआ अपनी राजधानी जा पहुचता है। [1]

नव–विवाहिता संयोगिता के रूप मे स्वंय को खोकर 'पृथ्वीराज', राज्य कार्य को एकदम विस्मृत कर देता है। इसी अवसर पर गौरी भारत की दुर्बल स्थिति देखकर आक्रमण कर देता है। दोनो मे जमकर युद्ध होता है किन्तु अन्त मे पृथ्वीराज गौरी द्वारा पराजित होकर बन्दी होता है। गौरी उसे बन्दी बनाकर गजनी ले जाता है। वहा उस पर अमानुषिक अत्याचार होते है, उसको नेत्रहीन कर दिया जाता है। इसी समय पृथ्वीराजज का मित्र चन्द छद्म वेश मे उसके समीप पहुच जाता है। यही वह पृथ्वीराज के शब्दभेदी बाण के चमत्कार का प्रदर्शन करता कर, गौरी को पराजित करके मरवा देता है। अन्त मे पृथ्वीराज और चन्द स्वय आत्महत्या कर लेते है।

1 ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार डॉ0 गोपी नाथ तिवारी

*

2. वैशाली की नगर वधू (1948)

आचार्य जी का यह प्रथम वृहत्काय कलाकृति है, जिसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर चालीस वर्षों की अर्जित सम्पूर्ण सम्पदा को रद्द कर इसे अपनी प्रथम कृति घोषित किया था। लगभग एक हजार पृष्ठो का बृहत्काय उपन्यास है। इसमे सन्देह नही कि यह उपन्यास उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है, जिसमे अनुभव , अनुमान अध्ययन, कल्पना एव कला का अभूतपूर्व सगम हुआ है।

हृदय एव मस्तिष्क के सम्पूर्ण कोमल भावनापूर्ण एव सरस चित्र इस उपन्यास मे चित्रित हुए है। आचार्य जी ने एक बहुत बडी आकाक्षा लेकर यह उपन्यास लिखा है। इसका सम्बन्ध भारतीय इतिहास के एक बहुत ही महत्वपूर्ण, 900 ई0 पू0 से 500 ई0 पू0 काल से सम्बन्धित है जिसमे गान्धार से लेकर 'मगध' और 'अग' तक के 'राजनीतिक', 'धार्मिक' , 'सांस्कृतिक' एव 'सामाजिक' ऊहापोह का कलात्मक अकन किया गया है। इसमे बौद्ध कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थिति का अध्ययन प्रस्तुत किया है। वैशाली गणतन्त्र का यह अत्यन्त कठोर नियम निर्धारित कर दिया था कि सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को अनिवार्यत वेश्यावृति स्वीकार करनी पडेगी । वह सारे नगर की वधू होती थी। उसे विवाह आदि की स्वतन्त्रता प्राप्त नही होती थी, पर उनकी मर्यादा एव सम्मान का दायित्व भी राज्य पर होता था।

सामन्त महानामन की पाविता कन्या, जिसे उन्होने आम्रकुज्ज मे पाया था, और प्यार से 'अम्बपाली' कहा करते थे, अनिन्ध सुन्दरी थी। उसके रूप की ख्याति फैलती गई। युवक सामन्त पुत्र एव सेट्ठि पुत्र जो कि आकण्ड विलासिता मे निमग्न थे, उसकी पुर्ति के लिए गण पे सर्व सुन्दरी 'अम्बपाली' को नगर वधू बनने के लिए बाध्य किया । कुल वधू बनने की सम्पूर्ण कोमल आकाक्षाओ को वैशाली के विकृत कानून पर निछावर करने के पूर्व देवी 'अम्बपाली' ने गण से सप्त भूमि प्रासाद नौ कोटि स्वर्ण–भार प्रासाद को समस्त साधन तथा वैभव सहित माग लिया। किन्तु उसका हृदय वैशाली के प्रति बडी घृणा एव प्रतिहिसा से भर उठा और वह इस सघ के सर्वनाश की कामना करने लगी। 'हर्ष देव,' जिसकी वह वाग्दता पत्नी हो चुकी थी, वैशाली विनाश के प्रयन्त मे नगर छोडकर चला गया। विलासित के प्रागण मे नर्तन करती हुई, 'अम्बपाली' अपने कौमार्य की रक्षा करते हुए जीवन्–पथ पर अग्रसर हुई । किन्तु उसके हृदय मे वैशाली के विनाश की ज्वाला जलती रही । उसके लिए अम्बपाली ने 'हर्षदेव' को उसकाया, 'सोमप्रभ' को भडकाया किन्तु उसकी अभिलाषा पूर्ण न हुई। अन्त मे उसने 'मगध सम्राट विम्बसार' का आश्रय लेकर अपनी अभिलाषा की पूर्ति को, सम्राट के औरस से उत्पन्न अपने पुत्र को सम्राट का भावी सम्राट बनाया। अन्त मे, सब कुछ त्याग कर तथागत के आश्रय मे आकर, भिक्षुणी बन जाती है।

वैशाली की नगर वधू   भूमिका   आचार्य चतुरसेन शास्त्री   पृष्ठ स0   41 से 126
*

मगध की राजधानी थी राजगृह और सम्राट थे विम्बसार । किन्तु महाअमात्य वर्षकार ने बुद्धि-चातुरी तथा कूटनीति से अपने लिए एक विशेष स्थान बना लिया था। राजगृह के प्रसिद्ध वैज्ञानिक आर्चाय शाम्बव्य कश्यप की भारक औषधिया एव विषकन्या 'कुण्डनी' की सहायता से बिना युद्ध के ही वर्ष कार मगध की सीमा का राज्य–विस्तार करते जा रहे थे। इधर 'सोमप्रभ' भी आ गया था। 'सोमप्रभ' और कुण्डनी के ही कौशल से 'चम्पा' पर विजय मिली, और 'चम्पा' राजकुमारी की इन्ही के द्वारा रक्षा की गई ।

3. रक्त की प्यास (1951)

इस ऐतिहासिक उपन्यास मे गुर्जरेश्वर सोलकी सिद्धराज महाप्रतापी राजा थे । उनके बाद त्रिभुवन पाल, कुमार पाल, महिपाल, तथा 'अजय पाल' को क्रमश राज्यगद्दी प्राप्त होती है । अतिम राजा 'भीमदेव', 'परमार' की कन्या 'इच्छनी' के सौन्दर्य पर आकर्षित हो जाते है । इच्छनी कुमारी को देख भीमदेव उसे प्राप्त करने के लिए लालायित हो जाते है । इस कारण वह राजकुमारी से प्रणय निवेदन करते है । राजकुमारी उत्तर देती है– "छी राजपूत भी कही किसी से बेटी मागते है । मुझे चाहते हो तो हरण करने आना । [1] भीमदेव के हृदय मे यह बात चुभ गयी। वे सेना की तैयार करके नायिका देवी की आज्ञाओ को न मानते हुए परमार के पास आदेश भेजते है, पर परमार यह शर्त रखता है कि वह छत्रधारी राजा को ही अपनी बेटी देगा ।'भीमदेव' अपमान का घूट पीकर रह जाते है ।'भीमदेव' राजकुमारी को भूलते नही है । उनको 'इच्छिनी' की यह बात–"वीर नर जो असल क्षत्रिय होते है, कन्या मागते नही हरण करते है । हरण करना है तो आबू आना, अपने जुझारू सैनिको को लेकर ।" [2] यही बात 'भीमदेव' के मन मे गूजती है ।

वह आठ सौ भटो तथा साठ सामतो को लेकर आबू पहुचते है । तभी उन्हे मालुम होता है कि राजकुमारी का वागदान 'पृथ्वीराज' से हो गया है । वह उससे मिलने की कोशिश करते है और मिल नही पाते ।'पृथ्वीराज' के सम्मुख बुरी तरह से पराजित होकर बदी बना लिये जाते है, और उन्ही के सामने इच्छनी देवी से विवाह हो जाता है। 'भीमदेव' खाली हाथ घर वापस आता है । और वह 'पृथ्वीराज' के भाई 'सोमेश्वर' से बदला लेता है । इसी बीच 'मुहम्मद गोरी' भारत पर आक्रमण कर उसे पराजित करता है, और भारत परतत्रता की बेडियो मे जकड जाता है ।

4. सोमनाथ (1954)

"सोमनाथ" उपन्यास के अन्तर्गत प्रसिद्ध गुजरात के "सोमनाथ" मन्दिर के आक्रमण का वर्णन है ।'महमूद गजनी' धन की लिप्सा और गुजरात की सुन्दरी चौला देवी को प्राप्त करने के लिए गुजरात पर आक्रमण करता है । उसे जब धन की प्राप्ति हो जाती है, तो चौला के प्रति उसकी भूख जाग उठती है । [3] इसी बीच दासी पुत्र देवस्वामी की प्रेमिका 'शोभना' के घर द्वारा

*

अपमानित होकर वह धर्म परिवर्तन कर लेता है, और 'फतेह मुहम्मद' नाम से महमूद का साथ देता है । शोभना फतेह मुहम्म्द से कहती है कि महमूद हमारा शत्रु है, गद्दार है, लेकिन देवस्वामी महमूद को अपना मित्र मानता है और शोभना से चौला को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करता है ।

इसी समय के उलट फेरो मे महमूद विशाल वाहिनी के साथ सोमनाथ पर आक्रमण करता है । मार्ग मे 'अजय पाल', 'धोधा बापा', 'धर्म गजदेव' आदि को पराजित कर सोमनाथ महालय को लूट लेता है । भीमसेन और उनके सामत 'महमूद' से युद्ध करके सोमनाथ को नही बचा पाते है । महमूद अपनी कूटनीतिक चाल से सभी सामतो मे आपसी मतभेद पैदा करता है, और 'भीमदेव' से घनघोर युद्ध होता है । 'भीमदेव' पराजित हो जाता है । [4]

सोमनाथ महालय की समाप्ति के पश्चात् भीमदेव के साथ युद्ध करने की आकाक्षा तेजी से बढ जाती है । उसे महमूद को 'भीमदेव' का भय लग रहा था और वह भारत से लौटते समय कच्छ प्रदेश से होकर जाता है । वहा 'धोधा बापा' के पुत्र 'सज्जन सिह' के कारण 'महमूद' का रास्ता साफ हो जाता है । अत मे अपार सम्पित्त तथा चौला देवी के भ्रम मे 'शोभना' की छत्रछाया मे होकर वह गजनी पहुच जाता है । भीमदेव भी महमूद के चले जाने के बाद पुन अपनी राजधानी लौट आते है । यहा राजा होने के पश्चात् भी कुछ राजनैतिक बधनो के कारण विवाह करने के रूप मे असफल रहते है । चौला नर्तकी के रूप मे अपने स्थान को सुशोभित करती रहती है ।

5. लाल पानी (1959)

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक पाच सौ वर्ष पूर्व घटित काठिया वाड के कच्छ प्रान्त दो स्वतत्र राजाओ के पारस्परिक सघर्ष पर आधारित है । मायनो ओर ठाकुरो के राजा 'भीमजी' एव जाम रावण सिह' आपस मे शत्रु है । भीमजी के पुत्र जाम हमीर से 'जाम रावण सिह' हार्दिक द्वेष रखता है । किन्तु औपचारिक रूप से उनका सम्मान करता है । एकदिन जाम हम्मीर को मय परिवार अपने यहा निमत्रित कर रावण सिह पूरे परिवार सहित उसे समाप्त करना चाहता है । किन्तु बूढे नौकर 'छच्छर बूटा' की दूरदर्शिता के कारण जाम हम्मीर के दोनो छोटे राजकुमार बचा लिये जाते है । दोनो राजकुमार 'खण्गार जी' तथा 'सायब जी' गुप्त रूप से कच्छ की ओर ले जाये जा रहे थे, तो 'रावण सिह' के भय से मियानो के एक गाव मे 'छच्छर बूटा' आश्रय लेता है । मियाने डाकू थे, किन्तु उनके सरदार ने दोनो राजकुमारो को बचाने के लिए सकल्प किया । जिसके लिए उसे अपने आठ बेटो की कुर्बानी देनी पडी । [5]

इसी बीच मार्ग मे 'जालिम सिह' की बडी पुत्री से बडे कुमार तथा वीरसिह की कन्या का छोटे कुमार से हो जाता है । विवाह कार्य की समाप्ति के बाद दोनो कुमार 'छच्छर बूटा' के साथ गुप्त रूप से अहमदाबाद के लिए चल देते हैं । सम्पूर्ण मार्ग के अवरोध सहते हुए वे सकुशल

*

गुजरात पहुच जाते है । यहा गुजरात के बादशाह 'महमूद बेगडा' से दोनो कुमारो की भेट होती है। 'महमूद बेगडा' के साथ इनकी सौतेली बहन, 'कामाबाई' बिवाही जाती है । बेगम के भाई तथा प्राण रक्षक होने के कारण सुल्तान उनका स्वागत करते हैं, तथा 'रावण सिह' से प्रतिशोध लेने के लिए सैनिक मदद देते है। सैनिको की मदद लेकर कुमार 'जाम रावण सिह' पर आक्रमण करते है और उसे बन्दी बनाकर ले आते है । अत मे 'राव खगार जी' राजा होते है । 'रावण सिह' को क्षमा दान दे देते है ।

6. सहयाद्रि की चट्टानें (1961)

प्रस्तुत उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास है । इसके अतर्गत 'शिवाजी' तथा 'औरगजेब' का युद्ध विवरण ही मुख्य है । 'औरगजेब' मुगल साम्राज्य का अतिम मुगल शासक था । वह प्रबल प्रतिभा सम्पन्न तथा दूरदर्शी था । उसने शासन प्राप्ति के लिए भयकर षड्यत्र रचा था । जिसके लिए उसे अपने पिता को कैद करना पडा तथा भाईयो की हत्या करनी पडी थी । उसने पचास वर्षों तक शासन किया । लेकिन दस वर्ष वह शासन कर सका । बाकी वर्ष उसे असफलता, अशान्ति, विद्रोह एव अराजकता का सामना करना पडा 'शिवाजी' की शक्ति को छिन्न भिन्न करने के लिए वह चालीस वर्षों तक 'सहयाद्रि की चट्टानो' से सिर मारता रहा, किन्तु वह सफल नही हुआ, और अत मे उसकी जीवन यात्रा भी समाप्त हो गई ।

इन्ही 'सहयाद्रि की चट्टानो' मे शिवाजी का उदय हुआ था । जिस समय का उल्लेख इस उपन्यास मे किया गया है, वह समय शिवाजी के नेतृत्व मे हिन्दुओ के सगठन का बहुत तेजी से विकास हुआ । इस समय हिन्दुओ मे पर्याप्त चेतना जाग उठी थी । हिन्दू योद्धाओ के इतिहास म शिवाजी ने ही सबसे प्रथम रण–चातुर्य प्रकट किया । वे कट मरने या युद्ध जय के लिए नही लडते थे । उनका उद्देश्य राज्य वर्धन था । युद्ध उसका एक साधन था । युद्ध करने मे वे कम से कम हानि तथा अधिक से अधिक लाभ उठाने की चेष्टा करते थे । इसके लिए वे युक्ति, शौर्य, साहस और रणपाडित्य सभी का उपयोग करते थे, जूझ मरने की उनमे भावना ही नही थी । यद्यपि वे प्राण सकट तक का दुष्साहस करते थे । इस प्रकार हिन्दुओ मे शिवाजी महाभारत सग्राम के बाद पहले ही सेनापति थे । महाराज 'जयसिह' शिवाजी को सुलह के लिए बाध्य करते थे । वे कहते थे कि विद्रोह के लिए विद्रोह राजनीति तो नही है । युद्ध विग्रह इसलिए होते है कि अनुकूल निर्णय हो । यह सब बाते शौर्य पर नहीं बल्कि उसके लिए परिस्थितियो पर भी विचार करना पडता है । [6]

'शिवाजी' की कल्पना मे हिन्दू राज्य का धीरे–धीरे उदय होना अवश्यभावी था, क्योकि मुगल साम्राज्य की नीवें खोखली हो रही थी । वे विलासिता तथा आलस्य की तरगो मे डूब उतरा

*

रहे थे । ऐसे समय मे शिवाजी तथा औरगजेब का सघर्ष प्रारम्भ हो जाता है । सघर्ष बढता जाता है । औरगजेब शिवाजी को समाप्त करने के लिए कई योजनाये बनाता है, किन्तु उसे इस प्रयास मे कई अनुभवी सरदारो से हाथ धोना पडता है ।'औरगजेब' धूर्तता कर' मिर्जा राजा जयसिह' के द्वारा शिवाजी को सधि के लिए बुलाकर कैद कर लेता है । शिवाजी यही से अपनी मुक्ति का प्रयास करते है, और एक दिन मिठाई के खोचे मे बैठकर गुप्तरूप से बदीग्रह से पलायन कर जाते है । समस्त अवरोधो का अतिक्रमण करते हुए करते हुए शिवाजी 'औरगजेब' के राज्य की जडे हिलाना आरम्भ करते है । वे अपनी रणनीति मे सफलता प्राप्त करते चले जाते है। प्रस्तुत उपन्यास का अत "सिहगढ की विजय" से होता है । सिहगढ पर विजय प्राप्त करने का शिवाजी ने बीडा उठाया था । उस बीडे को तानाजी ने ग्रहण किया । किन्तु सिहगढ तो मिल जाता है, तानाजी वीरगति को प्राप्त हो जाते है । अपने इस वीर सेनानी की मृत्यु देख शिवाजी कहते है -"गढ आया पर सिह गया ।" [7]

जिस समय 'शिवाजी' का उत्थान हो रहा था, तब बहुत सी ऐसी अनुकूल परिस्थितिया उत्पन्न हो गयी थी, जिन्होने उनके उन्नत होने मे बहुत सहयोग दिया । 1758 मे 'शाहजहा' ने 'औरगजेब' को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया, किन्तु इसी समय 'शाहजहा' की बीमारी का समाचार सुनकर औरगजेब ने उत्तर भारत की ओर प्रस्थान किया । वहा पर पिता को बन्दी बनाकर, भाईयो को मारकर वह सम्राट बन बैठा । तब से 24 वर्ष तक दक्षिण मे कई प्रान्ताधीश नियुक्त किए गए । किन्तु सभी ने साम्राज्य विस्तार करने की इच्छा से वीजपुर के विरूद्ध विद्रोह करने का प्रयत्न किया ।'शिवाजी' ने इन लोगो की उदासीनता तथा सुस्ती से लाभ उठाकर अपना विस्तार करना आरम्भ किया । मुगल सैनिको मे विलासिता तथा आरामतलबी आवश्यकता से अधिक बढ चुकी थी, परन्तु 'शिवाजी' के सैनिक अत्यत जोशीले, देशभक्ति के उल्लास से भरपूर तथा बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करने वाले थे । उनकी गति इतनी तीव्र थी कि मुगल सेना पर उनके अकस्मात हमलो का आतक सा बैठ गया था ।'शिवाजी' की सेना मे घाटमाथा निवासी मावल लोगो का विशेष स्थान था ।

7. बिना चिराग का शहर

प्रस्तुत उपन्यास के अन्तर्गत प्रसिद्ध 'खिलजी बादशाह अलाउद्दीन' की कथा है। जिसका कथानक तेरहवी शताब्दी से सम्बन्धित है ।

'अलाउद्दीन' अपने चाचा 'जलालुद्दीन' को मारकर दिल्ली पर सिहासनारूढ होता है । प्रिय गुलाम मलिक काफूर दक्षिण विजय करके वापस आता है । उसी के स्वागत समारोह मे अलाउद्दीन दरबार करता है । दरबार के बीच 'मलिक काफूर' तथा उसके मगोल प्रतिद्वन्द्वी 'उलगू'

*

खा, मे भिडन्त हो जाती है । जब तक 'उलगू खा' को कुछ दण्ड देने की सोचता है, तब तक वह दरबार से पलायन कर चुका होता है ।

'राजा कर्णदेव' गुजरात का शासक था । वह योग्य शासक नही था । वह कायर, आलसी, अफीम का व्यवसनी और झक्की प्रवृत्ति का था । उसकी पत्नी 'कमला देवी' अप्रतिम सुन्दरी थी। अलाउद्दीन देवगिरी की सम्पदा का वर्णन सुनकर, जब उस पर आक्रमण करता है, तब 'कर्णदेव' परास्त होता है तथा अपनी पुत्री 'देवलदेवी' के साथ भागकर देवगिरी के राजा 'रामचन्द्र' की शरण मे चला जाता है । कमला देवी 'अलाउद्दीन' की बेगम बनकर स्वय को समर्पित कर देती है, साथ ही यह चाहती है कि 'देवलदेवी' का विवाह अलाउद्दीन के बेटे 'खिज्रखा' के साथ हो जाये तो वह एकदिन भावी 'शहशाह' की बेगम बनने का गौरव प्राप्त कर सकेगी । इसके लिए अलाउद्दीन को उकसाती है । अलाउद्दीन 'मलिक काफूर' को देवलदेवी को लाने की आज्ञा देता है । 'मलिक काफूर' देवलदेवी को ले तो आता है किन्तु स्वय उसके सौन्दर्य से पराभूत होकर देवलदेवी से प्रेमयाचना करता है । इसी समय दिल्ली मे 'उलगू खां' सम्बन्धित उपर्युक्त घटना घटित होती है । मलिक की प्रेमिका देवल का बलात् 'खिज्रखा' से विवाह हो जाता है । मलिक इस आघात को सहन नही कर सकता है कि उलगू खा उसका अग–भग करके देवल का अपहरण कर देवगिरी के नये राजा हरपाल की शरण मे पहुच जाता है । सुल्तान की आज्ञा से मलिक उन्हे देवगिरी पर आक्रमण करता है ।'उलगू खा' मारा जाता है, राजा जीवित पकड लिया जाता है । मलिक की आज्ञा से राजा की जिन्दा खाल खीची जाती है । किन्तु देवल को प्राप्त करने से पूर्व ही देवल आत्मघात कर लेती है । मलिक निराश हो जाता है । तथा उसका अत भी उसके सैनिको द्वारा हो जाता है ।

प्रस्तुत उपन्यास की पृष्ठिभूमि मात्र ही ऐतिहासिक है । कथानक काल्पनिक ही है । लेखक ने स्वय ही कहा है कि 'इस उपन्यास को' ऐतिहासिक घटनाओ से ओत–प्रोत होने पर भी विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नही कहा जा सकता । इसमे केवल उस युग की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति तथा मुस्लिम सुल्तानो की नृशस उच्छृखलता का जिसकी साक्षी असख्य है, दिग्दर्शन कराया गया है । [8]

8. आलमगीर

प्रस्तुत उपन्यास मुगलकालीन अन्तिम सम्राट 'औरगजेब' से सम्बन्धित है । प्रमुख रूप से दो कथाये इसमे है– बादशाह 'शाहजहा' का चित्रण, भोग विलास मे तन्मय रहने वाले व्यक्ति के रूप मे किया गया है । कुछ समय पश्चात् बादशाह के अस्वस्थ होने का समाचार फैलता है । राज्य के लिए भाई–भाई एव पिता के विरूद्ध विद्रोह का झण्डा लेकर खडा हो जाता है । अवसर

*

पाकर राज्य को हस्तगत करने के लिए आक्रमण कर देता है ।'औरगजेब' का बडा भाई दारा उसे रोकने का प्रयत्न करता है, किन्तु दारा हार जाता है । उसे शिकस्त देकर 'औरगजेब' 'शाहजहा' को भी परास्त कर उसे बन्दी बना लेता है । और स्वय 'आलमगीर' की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठ जाता है । [9]

'आचार्य चतुरसेन' जी का यह विशुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास है । इसकी सम्पूर्ण मुख्य घटनाये इतिहास सम्मत् है । इस कथा का नायक अतिम मुगल सम्राट 'औरगजेब' है । इस कथा को लिखने से पूर्व लेखक ने 'यदुनाथ सरकार' के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'औरगजेब' का अध्ययन किया था । इतिहास के अत्यधिक आग्रह के कारण कई स्थानो पर रोचकता बढने के साथ–साथ मुगल कालीन युग की 'धार्मिक', 'आर्थिक' 'राजनैतिक' तथा 'सामाजिक' स्थिति का सुन्दर चित्रण हुआ है ।

9. सोना और खून

प्रस्तुत उपन्यास सन् 1657 से 1947 तक का पूरा 'राजनैतिक', 'सामाजिक' तथा 'धार्मिक' परिस्थितियो का चित्रण करता है । इसकी चर्चा करते हुए आचार्य जी ने कहा था कि यह अग्रेजो के भारत आने से भारत छोडने तक के समस्त ऐतिहासिक काल की वृहद गाथा होगी । जिसमे एक विदेशी जाति के 'कौशल', 'देशभक्ति', 'धीरता', 'कूटनीति', 'स्वार्थपरता', और 'क्रूरता' के साथ पश्चिम और पूर्व की विचारधारा का टकराव, नये और पुराने का सघर्ष, भारत का राष्ट्रीय पतन ओर उत्थान, रूढिवाद पर विज्ञान की विजय, 'स्वतत्रता आन्दोलन', 'त्याग' और 'बलिदान' के सजीव चित्र प्रस्तुत किए जायेगे । वे इन दोनो भागो मे केवल 1857 तक की कथा रोचक ढग से प्रस्तुत कर सके है । सन् 1857 के विषय मे उनका दृष्टिकोण अन्य विद्वानो से भिन्न था । उन्होने एक स्थल पर कहा कि सत्तावन का विद्रोह देश भक्तो ने किया, मै यह नही मानता । कारण उस देश और एक राष्ट्र नही था । अत राष्ट्रीयता और देशप्रेम का प्रश्न ही नही उठता । और साथ ही यह नही मानता कि भारत मे वर्तमान स्वतत्रता सग्राम के सन् सत्तावन की कोई प्रतिक्रिया थी । कारण जब उस समय कोई राष्ट्रीय परम्परा न थी, तो उसकी प्रतिक्रिया का कोई प्रश्न ही नही उठता । [10]

प्रस्तुत उपन्यास के प्रथम भाग मे मुगल साम्राज्य के बूढे और अधे 'शाह आलम' की मार्मिक कथा है और भारत मे अग्रेजो के महान षड्यत्र तथा विरोधी शक्तियो का दमन करके उनके साम्राज्य की स्थापना करने का प्रयत्न आदि का इतिहास प्रस्तुत किया गया है । दूसरे भाग मे– ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना तथा अग्रेजो का आधिपत्य आदि का चित्रण है । इस अश मे झासी की रानी लक्ष्मीबाई का स्वाधीनता के प्रति लगन, प्रतिज्ञा की कि– "झासी अग्रेजो को नही दूगी", का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है । उन्होने जीवन भर सघर्ष किया विश्वास घातियो व

*

देश द्रोहियो ने सदैव शत्रु से मिलकर उन्हे नीचा दिखाया । उनकी स्वाधीनता की कल्पना धूमिल कर दी ।

अत मे निराश होकर वह आत्मघात करने की सोचती हुई कहती है– 'हमारे सभी शूरमा व गोलदाज काम आ चुके, शत्रुओ ने नगर अधिकार मे कर लिया है और वे किले को भी कुछ ही क्षणो मे हस्तगत कर लेगे । अब हम सब मिलकर पूरे एक सौ भी नही है । अभी अग्रेज यहा आ जायेगे, आप लोगो मे जो जीता उनके हाथ आयेगा या लडते–लडते जो बचेगा, वह फासी पर लटका दिया जायेगा । मै जिदा तो पकडी नही जाऊगी परन्तु मेरे शव को भी उन्होने छू लिया तो इतने मे ही मेरे पुरूखो मेरे श्वसुर का अपमान हो जायेगा । पर 'नाना भोपटकर' उन्हे बचन का स्मरण कराते है कि झासी मै अग्रेजो को नही दूगी । इस पर रानी का सिर नतमस्तक हो जाता है । फिर वह अन्तिम युद्ध की तेयारी करती है । फिर अत मे वह हारकर वीरगति को प्राप्त हो जाती है । वहा एक चबूतरा बनवा दिया जाता है, जो महारानी की मृत्यु का समाधि चिन्ह है ।

10. ईदो (1964)

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक द्वितीय महायुद्ध से सम्बन्धित है । जिसमे सम्पूर्ण युद्ध मे भाग लिया था । सभी की आकाक्षा थी कि वे अधिक से अधिक अपने राज्य सीमा का विस्तार करे । 'जापान', 'अमेरिका', 'ब्रिटेन', 'फ्रास', 'इटली', 'जर्मनी', 'रूस', 'अन्य राष्ट्र' सभी साम्राज्य विस्तार की दूरदम्य लालसा से एक दूसरे का ध्वस कर देने के लिए उत्सुक थे । 'अमेरिका' व 'रूस' को छोडकर सभी अन्य राष्ट्र इन ज्वलत विभीषिकाओ मे आहुत बनकर पडे तथा भस्म हो गये । प्रस्तुत कथा का प्रारम्भ जापान की साम्रागी के ईदो नामक राज्यमहल से प्रारम्भ होता है । जापान राज्य पर शासन करने वाले सम्राट व साम्रागी "शोगुन" कहलाते थे । शोगुनो ने लगभग चार वर्षो तक शासन किया । अत मे अधिक विलासिता और शोषण का मार्ग अपना लेने के के कारण इन शोगुनो का अत हुआ ।

उसके पश्चात् पुन एक नये जापान का उदय हुआ । जापान के साथ 'जर्मनी मे हिटलर', 'रूस मे स्टालिन', 'ब्रिटेन मे चर्चिल', 'रोम मे मूसोलिनी', 'भारत मे नेताजी', 'नेहरू जी' आदि के नेतृत्व मे स्वतत्रता सग्राम की भीषण तैयारिया हो रही थी । जापान ने अपने जासूस दूर–दूर देशो मे फैला रखे थे । जापान की 'मादाम, लुपेस्कू' सभी राष्ट्रो मे छद्म वेष भूषा व नाम धारण कर राजनैतिक बारीकियो की सूचना जापान पहुचाती रही । उसकी सूचना पाकर जापान भी जीतता गया, यहा तककि जर्मनी के एक मुख्य नगर पर भी जापान का अधिकार हो गया, किन्तु कुछ दिनो पश्चात् एक अमेरिकन लेफ्टिनेन्ट के कारण उसका रहस्योद्घाटन हो जाता है । मादाम लुपेस्कु जो 'केन' की छदम नाम से रहती थी, वे अत मे मार डाली जाती है ।

*

इसी प्रकार 'हिटलर' तथा 'मूसोलिनी' का भी अत हो जाता है । अमेरिका अपनी सम्पूर्ण सत्ता के समक्ष जापान को नतमस्तक किया चाहता है किन्तु प्रथम उसे सफलता नही मिलती है। जब अमेरिका जापान के दो बड़े औद्योगिक क्षेत्र 'नागासाकी तथा हिरोशिमा' पर अणुबम गिराता है। उसी समय जापान की शक्ति टूट जाती है, और सम्राट सन्धि के लिए याचना करने लगता है। जापान का विनाश हो जाता है तथा अमेरिका की शक्ति पूर्णता को प्राप्त कर एक विशाल सीमा मे आच्छादित हो जाती है । [11]

इस तरह आचार्य जी ने इस उपन्यास मे विज्ञान के प्रगति के परिणाम स्वरूप जिन अणुबम का निर्माण होता है, उसकी भीषणता तथा राज्य लिप्सा की भावना मनुष्य को कितना क्रूर बना देती है । इन दो चित्रो को खीचकर महायुद्ध के निर्माण की पृष्ठिभूमि बताई है और यह सकेत करते है कि विज्ञान मनुष्य के उपयोग के लिए नही बल्कि विनाश के लिए प्रयोग मे लाया जा रहा है । जापान के अत के बाद अमेरिका को छोडकर 'जर्मनी,' 'फ्रास,' 'इटली,' 'रूस,' 'रोम' आदि देशो का भी विनाश हो जाता है ।

※ पौराणिक उपन्यास :

11. वयं रक्षामः (1955)

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक 'राम–रावण' की पौराणिक गाथा है । किन्तु आचार्य जी ने उसे एक नवीन दृष्टिकोण से देखा है ।

कथा का प्रारम्भ एक दैत्य बाला के नृत्य से होता है ।'रावण' उस दैत्य सुन्दरी के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर स्वर्ण देकर अपने साथ ले लेता है । उसके साथ जीवन का आनन्द उपयोग कर रावण एकाकी ही दिग्विजय करने के लिए बाहर निकल पडता है। इस विजय यात्रा मे 'रावण' को दो स्थानो पर पराजित पडा– प्रथम किष्किधापुरी मे बालि से और दूसरे महिष्मति मे चक्रवर्ती अर्जुन से । किन्तु इन दोनो वीरो से पराजित होकर वह उनसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। वैजन्तीपुरी मे अपने साढू असुरराज तिमिरध्वज शम्बर से भी वह पराजित हुआ था । रावण भुक्त भोगी था, इस कारण असुर नगरी मे ही रावण ने उसकी पत्नी मायावती से अनुचित सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की थी । असुर ने उसकी इस लम्प्रटता को देख लिया था । इसी बात से क्रुब्द्ध होकर असुर ने मल्ल युद्ध का आह्वान किया और रावण को बदी बना लिया था, किन्तु देवासुर सग्राम मे पुन: असुर के मारे जाने के कारण असुर पत्नी 'मायावती,' रावण को बन्दी गृह से मुक्त कर पति के साथ सती हो गयी थी । इस स्थान के अतिरिक्त रावण की हर स्थान पर

*

विजय हुई । उसने 'यम', 'कुवेर', 'वरूण', 'इन्द्र' तक को अपनी विशाल वाहिनी के द्वारा अपने अधीन कर लिया था ।

जनकपुर मे धनुष यज्ञ का आयोजन होता है । वहा 'रावण' तथा 'राम' मे प्रथम बार साक्षात्कार होता है । इस घटना के पश्चात् 'राम' तथा 'रावण' की कथा प्रारम्भ हो जाती है । एक ओर तो रावण एक ओर तो 'रावण' 'देवलोक', 'गन्धर्वलोक', 'नागलोक', 'यज्ञलोक' आदि पर विजय प्राप्त करता है । दूसरी ओर 'कैकेयी', 'दशरथ' से राम के वनवास तथा भरत को राज्यगद्दी मिले, इसके लिए हठ करती है, और कैकेयी की हठ द्वारा राम को चौदह वर्ष का वनवास होता है । राम अपनी इस अवधि को पूर्ण करने के लिए वन–वन भटक रहे थे, इसी बीच रावण की भगिनी सूर्पनखा का पदार्पण होता है, लक्ष्मण उसका अग–भग कर देते है । रावण यह सब देखकर क्रोध से भर उठता है। बहन का प्रतिशोध लेने के लिए रावण राम की पत्नी सीता का हरण करता है और राम ससैन्य उस पर आक्रमण कर देते है । अत मे घनघोर सग्राम होता है । सग्राम के पश्चात् राम रावण का वध कर सीता को प्राप्त करते है । [12]

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक प्राचीन पौराणिक काल से लिया गया है, किन्तु शास्त्री जी ने इस कथा को एकदम नवीन एव मौलिक ढग से प्रस्तुत करते है ।

❋ मनोवैज्ञानिक उपन्यास :

12. पत्थर युग के दो बूत

इस उपन्यास मे शास्त्री जी ने एक औरत और दूसरा मर्द की कथानक को इस प्रकार चित्रित करते है कि मानवीय सभ्यता के आरम्भ मे स्त्री और पुरूष का सम्पर्क कैसे हुआ । जमाने ने सभ्यता के इन्ही बडे–बडे लिवास पहनाये, इन्हे सजाया, सवारा, सिखाया–पढाया और सभ्यता के शिखर पर यह जमाना पहुच चुका था, पर ये दोनो बूत आज भी अपने लिवास के भीतर वैसे ही पत्थर युग के बूत है । [13] शास्त्री जी ने उपन्यास मे रचना शिल्प की दृष्टि से एक नवीन प्रयोग किया है ।

'रेखा' कहानी की मुख्य पात्री है । उसका विवाह 'सुनीलदत्त' नामक एक ऊचे अधिकारी से हुआ । दोनो का वैवाहिक जीवन सामान्य है, सुखी है किन्तु इसी के साथ रेखा को मानसिक और शारीरिक अशाति रहती है । उसे पति से मनचाहा सानिध्य नहीं प्राप्त होता है । उसका पति शराब, और मित्रो की सगति मे मस्त रहता है । इसी बीच रेखा का परिचय उसकी एक सहकारी कर्मचारी 'दिलीप कुमार राय' से होता है । जो रेखा की इस अतृप्ति से लाभ उठाकर धीरे–धीरे अनिच्छा के बावजूद उसे अपने जाल मे फासता है । दूसरी ओर 'दिलीप कुमार राय' का 'माया' से प्रेम–विवाह हुआ था। सतान होने के बाद राय दूसरी स्त्रियों से सम्पर्क रखने लगा । उसकी पत्नी

*

माया वर्षों तक यह सब सहती रही, और अपनी पुत्री की परि–पालन मे लगी रही । परन्तु इसी बीच माया का सम्पर्क अपने पति के अधीनस्थ कर्मचारी वर्मा से होता है, जो निरन्तर घनिष्ठ हो जाता है । घटना चक्र तीव्र गति से घूमता है । माया अपने पति को तलाक देकर वर्मा से विवाह कर लेती है ।

'रायदत्त' की उपेक्षा का लाभ उठाकर रेखा को अपने चगुल मे फसा लेता है । दत्त को जब इन सारी बातो का पता लगता है । तो वह अपनी पत्नी की ओर अधिक ध्यान देता है, परन्तु अब रेखा का इससे सतोष नही होता पति की अनुपस्थिति मे राय से रेखा दृढ सम्पर्क रखना चाहती है । वह पति से तलाक लेकर वह विवाह के लिए भी तैयार है । परन्तु राय को विवाह मजूर नही है । दत्त घर लौटते है, पत्नी घर मे न थी, नौकरो से मालूम हुआ कि वह राय के घर गई है । राय के पास जाकर वह 'कहते है–कि क्या उसे 'रेखा' से विवाह करना पसद है ? परन्तु राय विवाह से इकार कर दिया, 'कामुक' अन्याय का दण्ड देने के लिए दत्त तीन गोलियो से राय का प्राणात कर देता है ।

* वैज्ञानिक उपन्यास :

13. खग्रास

यह एक वैज्ञानिक उपन्यास है, इसमे विज्ञान की कल्पना और भविष्य मे उसके सम्भावित सफल प्रयासो पर आधारित मानव जीवन का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किया गया है । 'वैज्ञानिक जोरा वस्की' 'रूसी तरूण चन्द्रलोक' की सफल यात्रा से वापस लौटता है, वह स्वय अपनी प्रेमिका 'लिजा' को चन्द्रलोक से लौटने के पश्चात् वहा की कथा सुनाता है । दोनो के साथ वैज्ञानिक स्मिथ की कथा भी आती है । चन्द्रलोक की यात्रा का विवरण समाप्त होते ही कुछ रूककर जोरा वस्की कुछ अन्य वैज्ञानिक कारणो से लिजा को साथ लेकर दक्षिणी ध्रुव की यात्रा के लिए चल देता है ।

इस कथा की समाप्ति के साथ पुन भारतीय वैज्ञानिक कथा का प्रारम्भ होता है, जिसमे साथ–साथ तिवारी की भी कथा है । भारतीय वैज्ञानिक 'गूढ–पुरूष' के शरीरात के पश्चात् उसकी पुत्री 'प्रतिभा' का तिवारी से विवाह हो जाता है । यही कथा समाप्त हो जाती है । इस उपन्यास के अन्तर्गत दो स्वतत्र कथाये है– एक है चन्द्रलोक की यात्रा से सम्बन्धित, दूसरी है भारतीय वैज्ञानिक से सम्बन्धित । दोनो कथाओ के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से 'शास्त्री जी' ने विज्ञान की प्रगति पर प्रकाश डाला है, साथ मे विज्ञान द्वारा मानव सहार का चित्र भी प्रस्तुत किया है । लेखक का रचना दृष्टिकोण साहित्य व विज्ञान का प्रारम्भ से होता है । जिस गति से विश्व

*

वर्तमान मे आगे बढ रहा है, उसे देखते हुए यही उचित है कि साहित्य मे प्राविधिक और वैज्ञानिक पुट अधिक रखा जाय ।" [14]

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

सन्दर्भ सूची :

1 रक्त की प्यास	पृष्ठ स0 – 29	
2 रक्त की प्यास	पृष्ठ स0 – 30	
3 सोमनाथ	पृष्ठ स0 – 413	
4 सोमनाथ	भूमिका	आचार्य चतुरसेन शास्त्री
5 लाल पानी	भूमिका	आचार्य चतुरसेन शास्त्री
6 सहयाद्रि की चट्टाने	पृष्ठ स0 – 74–75	आचार्य चतुरसेन शास्त्री
7 सहयाद्रि की चटटान	पृष्ठ स0 – 160	आचार्य चतुरसेन शास्त्री
8 बिना चिराग का शहर	पृष्ठ स0 – 3	आचार्य चतुरसेन शास्त्री
9 आलमगीर	पृष्ठ स0 – 249	डॅा0 इन्दू वशिष्ठ
10 सोना और खून	पृष्ठ स0 – 265	डॅा0 इन्दू वशिष्ठ
11 ईदो कथानक	पृष्ठ स0 – 281	डॅा0 इन्दू वशिष्ठ
12 वय रक्षाम	पृष्ठ स0 – 315 316 141	आचार्य चतुरसेन शास्त्री
13 पत्थर युग के दो बूत ,	भूमिका	आचार्य चतुरसेन शास्त्री
14 खग्रास	पृष्ठ स0 –21	आचार्य चतुरसेन शास्त्री

*

3. सामाजिक उपन्यासों का संक्षिप्त-परिचय

1. हृदय की परख

"हृदय की परख" चतुरसेन शास्त्री जी का प्रथम उपन्यास है । 'लोकनाथ' गाव का साधारण कृषक है । एक सवार रात्रि मे आकर बहाने से एक कन्या रात भर देखभाल के लिए उसके पास छोड जाता है, फिर वह लौटकर नही आता ।'लोकनाथ' अविवाहित था। उसने सारी आयु ब्रम्हचर्य पूर्वक व्यतीत कर दी थी। ऐसी दशा मे जैसा कि बहुधा होता है अविवाहित पुरूष सयम से न रहकर किसी न किसी नारी के गुप्त प्रेम मे फॅसे रहे है । वैसे ही इस कन्या को देखकर लोगो ने यही समझा कि यह भी लोकनाथ की ऐसी ही कन्या है, किन्तु 'लोकनाथ' स्नेह के वशीभूत हो इस विचारो की परवाह नही करता है । उस कन्या का 'सरला' नाम पडा । लोकनाथ उसे पढना-लिखना भी सिखाता है । वह लडकी मेधावी और तेजस्वी निकलती है । लोकनाथ के यहा सत्यव्रत नाम का एक युवक आता जाता है । जो 'सरला' के प्रति आकर्षित होता है, और मन ही मन उससे प्रेम करने लगता है, किन्तु सरला इस अनुराग से सर्वथा विरक्त थी । अतिम समय लोकनाथ सरला से अपनी इच्छा प्रकट करता है कि वह सत्यव्रत से विवाह कर ले, पर सरला मना कर देती है । [1]

अचानक एक दिन उसके पास एक रमणी आती है, और स्वय को 'सरला' की मा बताती है, पर सरला उसे अस्वीकार कर अपनी मा की अवहेलना करती है । मा के कहने पर भी सरला उसके साथ जाने को तैयार नही होती है । एकदिन अचानक वह प्रयाग के लिए चल देती है । वहा एक पत्रिका मे "हृदय" नामक लेख प्रकाशित करवाती है । जो उसकी राष्ट्रीय एव अतर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि का कारण बनता है । वहा वह 'शशिकला' के साथ रहती थी । वही वास्तव मे सरला की मा थी जो उसे अपनी पूर्ण कहानी सुनाती है । किन्तु इसका परिणाम कुछ नही निकलता, अंत मे सरला की मृत्यु हो जाती है ।

यह एक घटना प्रधान उपन्यास है । इसमे अवैध सतान की समस्या को उठाया गया है । अवैध सतान का समाज मे होना अभिशाप है । माता-पिता की अनुचित कार्यवाही बालक के भविष्य को अधकारमय बना देती है । भविष्य का प्रकाशवान बनना या अधकारमय बनना भी सयोग एव परिस्थिति की बात है । सरला जारज संतान थी, किन्तु 'लोकनाथ' जैसे ब्रह्मचारी व्यक्ति का आश्रय पाकर उसने ममता और प्रेम का पूर्ण सुख पाया । यही कारण रहा कि वह आगे चलकर स्वच्छन्द प्रकृति की बनी ।'लोकनाथ' द्वारा दी गई शिक्षा ने उसे यथार्थवादिता से कहीं दूर ले जाकर आदर्शवादी बनाने का प्रयास किया । उसकी वजह से वह यथार्थवादी ठोस

*

धरातल का सूक्ष्म पर्यवेक्षण नही कर सकी । वह भावुकता की लहरो मे बहती हुई वास्तविकता से कही दूर जा पडी थी ।

2. बहते आँसू (अमर अभिलाषा)

"बहते आसू" भी एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमे विधवाओ की समस्या को उठाया गया है । भारतीय समाज मे बाल विवाह की पद्धति कुछ शताब्दियो से चलती चली आ रही थी । किन्तु कोई ऐसी जागरूक चेतना बहुत दिनो तक जागृत न हो सकी, जो कि इस बाल–विवाह की बुराईयो की ओर दृष्टिपात कर सकती । विधवा हो जाने के पश्चात् विधवा जीवन, प्रताडना, अपमान, कलक और अपशकुन का जीवन बन जाता था । कही सात्वना नहीं, कही प्रेम नही, कही दया का भाव भी नही है । इस उपन्यास के अन्तर्गत मुख्य प्रकाश विधवाओ के जीवन पर ही डाला गया है । एक कथा है–'भवगती' 'नारायणी' की जो परस्पर बहने है, इनका बालपन मे विवाह कर दिया जाता है, किन्तु एक नौ वर्ष की और दूसरी ग्यारह वर्ष होने पर विधवा हो जाती है । दोनो ससुराल मे प्रताडित की जाती है और उन्हे घर से जर्जर अवस्था मे निकाल दिया जाता है । दूसरी कथा– विधवा 'सुशीला' की है, जिसे अपने विधवा होने का एहसास भी नही है, मॉ के साथ छोटी अवस्था से ही जीवन व्यतीत करती है । मा के मरने पर सिलाई करके जीविका चलाती है, पर लोलुप समाज उसे जीने नही देता । तीसरी कथा–'कुमुद' एव 'मालती' की है । कुमुद का सुहाग प्लेग से ग्रसित होकर स्वर्गधाम पहुच जाता है और वह अपना जीवन सती साध्वी की तरह व्यतीत करती है । कुमुद का ज्येष्ठ उसे प्रताडित करता है, और आताताइयो से बचने के लिए "विधवा आश्रम" मे पहुचा दिया जाता है । वह ऐसा विधवा आश्रम रहता है जहा के लोग पथ भ्रष्ट होने के साथ विलास का नग्न चित्र प्रस्तुत करते हैं । एक नारी को कुमार्ग पर ले जाकर भ्रष्ट करने वाले लोग एक तरफ है तो दूसरी ओर कुचले हुए फूलों को सजा सवार कर यथा स्थान बैठा देने वाले है । इसमे एक विधवा 'बसती' वेश्या है, जिसे समाज द्वारा शरण न मिली, किन्तु उसके रूप को बाजार की शोभा बना दिया गया । जिसने विधवा होने पर पिता से प्रार्थना की, कि उसे अपने यहा रख ले । पर पिता ने कोई ध्यान नहीं दिया और अत मे एक युवक द्वारा अतृप्त इच्छाओ को तृप्त करने का साधन मिल जाता है । [2]

इस प्रकार "बहते ऑसू" छ विधवाओ 'भगवती,' 'नारायणी,' 'सुशीला,' 'कुमुद,' 'मालती,' एव 'बसती' की करूण गाथा है । लेखक ने इस विधवा समस्या के साथ–साथ बाल–विवाह पर भी प्रकाश डाला है । बाल अवस्था मे बालिका केवल वस्त्रो एव आभूषणो की तडक–भडक देखकर प्रसन्न हो जाती है । वह इस बात से सर्वथा अपरचित रहती है कि– शादी का क्या तात्पर्य है ? पिता क्या होता है, विवाह के बाद उसके क्या कर्त्तव्य हैं, पति सम्बन्धियो के प्रति किस प्रकार का

*

आदर भाव रखना चाहिए । ऐसी अज्ञानता अवस्था मे दुर्भाग्य से यदि वे विधवा हो जाती हैं तो जीवन का सम्पूर्ण सुख अभिशाप की छाया मे बनकर उसके ऊपर मडराने लगता है । वह समाज द्वारा प्रताडित की जाने लगती है । उसका स्त्री सुलभ मन जब श्रृगार एव अच्छे व्यजनो के लिए तरसता है, स्त्रिया एव माताए जब पैरो मे मेहदी लगाती है, उबटन लगाती हैं, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनती है, तब वह विधवाये जो भाग्य की मारी है, उन्हे देख-देखकर तरसती है । बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक उन्हे नित्य रोना, तिरस्कार, अपमान सहना, साथ ही कामदेव के बाणो को सहकर युवावस्था ही क्यू, सारा जीवन ऐसे ही व्यतीत करना पडता है । यह सब उसके दुर्भाग्य का अभिशाप है । जो उसे अनिच्छा से वहन करना पडता है ।

इस उपन्यास मे प्रासगिक रूप से विधवाओ की समस्या को भी उठाया गया है। शास्त्री जी कहते है कि सम्पूर्ण ससार मे विधवाये है, किन्तु वे इतनी बधन ग्रस्त नही है, जितनी कि भारतवर्ष की विधवाये है । विधवा हिन्दू समाज मे एक बेकार चीज है, उसे घर पर भी चाकरी करके अपमान जनक टुकडो से पेट भरना पडता है, इसलिए विधवा का जीवन हिन्दू समाज मे सबसे अधिक वेदना पूर्ण है । पति के असहय वियोग की वेदना सभी देश की विधवा नारी सहन करती हैं, परन्तु 'दरिद्रता,' 'बेकारी,' 'असहायावस्था,' 'सतान शून्यता' और 'लाछन' जैसे भारतीय विधवाओ को सहन करने पडते है । वैसे ससार के किसी भी स्त्री जाति को सहन नही करना पडता है । भारत वर्ष मे वैधब्य नारी जीवन के लिए घोरतम् अभिशाप है । जिससे वे तभी मुक्त हो सकती है जब वह मृत्यु पाती है ।

3. हृदय की प्यास

प्रस्तुत उपन्यास के अन्तर्गत असफल वैवाहिक जीवन पर प्रकाश डाला गया है। कथा का प्रारम्भ प्रवीण युवक से होता है । प्रवीण 'सौन्दर्याभिलाषी,' 'कवित्तपूर्ण,' 'हृदय' वाला व्यक्ति है । अपनी कल्पनाओ मे वह सुन्दर से सुन्दर नारी मूर्ति की कल्पना करता है । जो पढी लिखी हो, सगीत, घर व्यवस्था, नृत्य एव भिन्न-भिन्न प्रकार के हाव भाव से अपने प्रिय को रिझा सके, किन्तु वास्तविक जीवन मे जो पत्नी कहलाने की अधिकारी थी, वह इन सम्पूर्ण गुणो से रहित थी, लेकिन पतिव्रता थी । कुरूप, अशिक्षित होने पर उसकी सुशील प्रवृत्ति, सेवाभाव, मूक बन सम्पूर्ण व्यथाओ को सहते हुए पति प्रेम की वचित व्यथा को सहना, यही उसके जीवन का क्रम था । यही कारण था कि पति प्रवीण की अत्रिप्त भावनाये इधर उधर तृप्त होने के लिए भटकती रहती थी। [3]

सयोग से प्रवीण को एक अवसर मिल जाता है, उसके बाल सखा भवगती की पत्नी सुन्दर थी । जिसके रूप ने प्रवीण को आकर्षण का पात्र बनाया । वह प्रथम परिचय मे ही उस

*

पर आशक्त हो जाता है ।'प्रवीण' एव अपनी वधू को 'भगवती' एकात मिलन करते देख लेता है । पत्नी बहुत अनुनय विनय करती है । स्वय को निर्दोष बताती है, किन्तु भगवती उसकी एक भी बात न सुनकर घर के द्वार बद कर देता है ।'भवगती' की पत्नी जहर खा लेती है, किन्तु अत मे प्रवीण आकर उसे बचा लेता है ।

इधर 'सुखदा' नित्य प्रति पति की प्रतीक्षा करती है । अत मे एक पत्र उसे प्रवीण का मिलता है, वह पति कार्य से गौरवान्वित हो उठती है ।'भगवती' की शका समाधान करने के लिए जाती है, किन्तु वहा भगवती भी अपनी वधू द्वारा एक लिखित पत्र है, जिसमे प्रवीण से घर न आने के लिए प्रार्थन की गई थी ।'सुखदा' अपने पति का दोष पाकर चुप और मरमाहत हो जाती है । फिर भी प्रवीण उसके प्रभाव से अपने प्रभाव से अपने को बदल लेता है और सुखदा से प्रतिज्ञा करता हे, कि मै कैसे भी उन्हे खोज निकालूगा ।'भगवती' को प्रवीण को ढूढ निकालना आदि घटनाये उपन्यासकार ने अपने उपन्यासो मे जमकर चित्रित किया है । बाद मे प्रवीण का सुखदा को अपनाना व भगवती व उसकी पत्नी का मिलन हो जाना कथानक का अत हो जाता है।

4. आत्मदाह

प्रस्तुत उपन्यास मे हमे किसी एक समस्या का रूप नही मिलता है, बल्कि कई समस्याये प्रासगिक रूप से आती रहती है । इस उपन्यास का नायक सुविन्द्र है । उसके पिता एक साधारण जमींदार थे । सुविन्द्र स्वय विज्ञान के माने हुए आचार्य थे । वे कविता कम लिखते थे, किन्तु उपन्यास और कहानियो की धूम मची हुई थी ।'सुविन्द्र' की दो बहने थी–'प्रभा' तथा 'इन्दू'। सुविन्द्र का प्रथम विवाह माया नाम की कन्या से होता है, किन्तु शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाती है। जिसका भीषण आघात उसके हृदय पर लगता है । ससार से वह विरक्त हो जाता है । सुधा नाम की कन्या से पुर्नविवाह होता है, किन्तु तब भी उसे मानसिक शाति नही मिलती है । वह दिन रात उलझनो मे घिरा रहता है । वह सोचता है कि सुधा जैसी अल्प वयस्क कुमारी के साथ विवाह करके मैंने उसके अधिकारो का हरण किया है । मैने उसी के समान नवीन उत्साह से पूर्ण मुग्ध हृदय पाने के अवसर से इसे वचित कर दिया है और उसके स्थान पर उसे घायल तथा वेदना पूर्ण हृदय दे दिया है, परन्तु सुधा उसके इस विचारो का खण्डन करती है और अदम्य साहस, आत्मविश्वास से पति की उपेक्षा सहन करती है । उसकी इस सहन शक्ति की सीमा को देखकर 'सुविन्द्र' स्त्री जाति के प्रति करूण हो उठता है, और यही सोचता है कि मेरी पत्नी इसलिए यह सब कष्ट सह रही है कि मैं उसका पति हू । उसे स्वाधीनता से सोचने विचारने का अधिकार भी नही है ? फिर 'सुविन्द्र' पत्नी के प्रति सोचता है कि क्या विवाह होने पर स्त्री पुरूष

*

के और पुरूष स्त्री का सर्वस्व हो जाता है । उन्हे प्रेम सुख सम्पत्ति भोग करने का अधिकार मिल जाता है । कर्त्तव्य क्या उनके सामने कुछ है ही नही, और उस प्रेम सम्पत्ति और सुख मे क्या कोई भागीदार नही हो सकता । वह सब एक कोठरी मे बद होकर दो व्यक्ति भोग करे, क्या यही विवाह के पवित्र बन्धन का हेतु है । तब तो विवाह एक तुच्छ स्वार्थ का शर्तनामा है । इस प्रकार सुविन्द्र बहुत चिन्तन मनन करने के पश्चात् अपने विवाह को सामाजिक रूप देता हे ओर विवाह शब्द को व्यापक अर्थ मे ले जाने का निश्चय करता है । अत मे 'सुधा' और 'सुविन्द्र' दोनो देश–भक्ति का व्रत ले लेते है और यह प्रतिज्ञा करते है, कि वे अपने प्रेम को देश के बच्चे के लिए प्रदान करेगे । दोनो ही राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेते है और अत मे सुधा को नौ मास की जेल की सजा और 'सुविन्द्र' को कालेपानी की सजा दे दी जाती है । 'सुधा' की मृत्यु जेल मे हो जाती है और 'सुविन्द्र' पागल होकर "आत्मदाह" कर लेता है । [4]

इस उपन्यास मे लेखक की सहानुभूति वेश्याओ के प्रति सजग हो उठी है । जिसमे गहरी कसक और सवेदना भरी हुई है, जिस तरह से घर की शुद्धता को बनाये रखने के लिए उसकी गन्दगी हम नालियो मे फेक देते है, ठीक उसी प्रकार से वेश्या भी है । जहा समाज के अभागे आदमी अपनी गदगी जरूर रफा करते है । वेश्या जितना सहन करती है, दुनिया मे इतना अन्य किसी नारी को सहन नही करना पडता। 'शास्त्री जी' के अनुसार– "प्रत्येक वेश्या तपस्विनी है, पाप से रहित है । उसने घृणा, विरक्ति, मान अपमान को जीत लिया है । वह समाज मे घृणित कीडे से बद्तर स्थिति मे रहकर भी हॅसती और कहती है– "जो लोग हमारे सामने कुत्ते की तरह दुम हिलाते और जूतिया सीधी करते तथा थूक चाटते है, वे भी अपने मा बहनो से हमारी मुलाकात नही करवा सकते । आपलोग छिप कर व्यभिचार करते है, प्रगट मे पवित्र, सज्जन, बनते है हम सभी आपके व्यभिचार की पूर्ति करती है और आपके बदले हम व्यभिचार का काला टीका अपने माथे पर लगाकर ससार मे मुह छिपाये रहते है । क्या हमारे इस त्याग और सेवा को आप जैसे लोग समझ सकते है ।"

5. नीलमणि

प्रस्तुत उपन्यास के अन्तर्गत एक नारी के अह की टूटती हुई गाथा है, जो आवश्यकता से अधिक स्वच्छद है । कथानक का प्रारम्भ नायिका नीलम एव माता से वाद–विवाद के रूप मे होता है । नीलम विवाहिता है, किन्तु पूर्ण युवती हो जाने पर भी अपने बाल सखा विनय से अल्प–वयस्क के समान किलोले किया करती है । कन्या के लिए इतनी स्वतत्रा का उपभोग करना माता को अखर जाता है । नीलम को विनय से न मिलने के लिए बाध्य करती हैं । इसी क्षण नीलम के पति महेन्द्र अपनी नवविवाहिता पत्नी से मिलन की मधुर भावनाये हृदय मे सजोये

*

हुए अकस्मात् आते है, किन्तु प्रथम साक्षात्कार में नीलम उनका अपमान करती है, वे सहन कर जाते है । इसके पश्चात् अपने पति के साथ ससुराल चली जाती है । 'नीलम' आधुनिक शिक्षा मे पली हुई नवयुवती है । वह स्वच्छन्द नारी इसी बात से असतुष्ट है कि उसका विवाह एक अपरचित से कर दिया जाता है । उपन्यास की मुख्य समस्या यही है कि–"स्त्रियो की बिना मर्जी जाने, बिना उनकी रूचि जाने माता–पिता जिनके साथ चाहे उनका विवाह कर देते है । खासकर जब स्त्रिया पढी लिखी होती है, तो उनकी दृष्टि मे यह प्रथा न्यायिक नही प्रतीत होती है । [5]

महेन्द्र के हृदय मे नीलम का यह सवाद घर कर जाता है । वह 'नीलम' द्वारा किये द्वारा अपमान को सहन करते चला जाता है । किन्तु बिना उसकी इच्छा के चाहने पर भी उसे स्पर्श नही करता है ।'नीलू' के हृदय मे भी प्रेम की आग धधकती है, किन्तु वह आत्मार्पण नही करती है, न ही अपने प्रेम को छलकने देती है । उसका शरीर दग्ध होता रहता है । किन्तु पति होने पर भी महेन्द्र उसके लिए अपरचित है । इसलिए वह नतमस्तक कैसे हो । इस तरह आकर्षण और विकर्षण के दायरे मे घूमता हुआ कथानक अगसर होता है ।'नीलू' वापस मातृगृह आती है । वहा बाल सखा विनय से पुन साक्षात्कार होता है । उसके समक्ष अपनी समस्या रखती है । विनय समस्या का निदान करके शकाओ का समाधान करता है, और नीलू का हृदय परिवर्तित हो जाता है । कथानक का अत पति पत्नी के सुखद मिलन से हो जाता है ।

6. नरमेघ

"नरमेघ" प्रस्तुत उपन्यास कथाकार आचार्य जी के शब्दो मे– "एक फासी की सजा पायी हुई स्त्री की असाधारण कहानी है ।" कथा का प्रारम्भ उपरोक्त स्त्री द्वारा की गई अप्रत्याशित घटना से होता है । एक स्त्री दुनिया की दृष्टि मे उपेक्षिता है, एक ठोकरे के सदृश्य है, नगर के प्रसिद्ध एडवोकेट जनरल 'गोपाल दास' की निर्मम हत्या कर देती है । हत्या करने के पश्चात् वह आठ घटे तक डटकर पुलिस का सामना करती है । अत मे सभी को आश्चर्य मे डालकर पुलिस के समक्ष आत्म–समर्पण कर देती है । इसके साथ ही दूसरी कथा– सर ठाकुर दास एव उनके पुत्र त्रिभुवन दास की कथा का सूत्रपात्र होता है । साथ ही एक ओर कथा–'सर शादी राम' एव पुत्री 'किरण' की भी है । जो सहायक रूप मे सर 'ठाकुर दास' एव उनके पुत्र 'त्रिभुवन दास' की कथा को विकास देती है ।'किरण' एव 'त्रिभुवन दास' का विवाह निश्चित हो चुका है। नगर एडवोकेट जनरल 'गोपाल दास' की हत्या का समाचार जब प्रकाशित होता है, सर ठाकुर दास इस समाचार को पढकर स्तम्भित हो जाते हैं । उनका आघात से निधन हो जाता है । ठाकुर सम्पूर्ण सम्पत्ति किरण के नाम कर जाते हैं, और 'त्रिभुवन दास' का विवाह त्रिभुवन से न कर जाने की आज्ञा दे जाते हैं । [6]

*

त्रिभुवन दास अपने स्वर्गीय पिता की इच्छा पूर्ति के लिए अपनी सम्पूर्ण सम्पदा एव प्रेयसी का त्याग कर नगर मे अनयत्र रहकर अपनी प्रेक्टिस आरम्भ करते है । यहा पुन हत्याकारिणी से सम्बन्धित कथा सजग हो उठती है ।

वैरिस्टर होने के कारण साथ ही पिता के मित्र बाबू 'त्रिलोकी नाथ' की अध्यक्षता मे वेरिस्टरी करने के कारण उन्हे प्रथम केस हत्याकारिणी का लेना पडता है । वे सरकारी वकील बनकर हत्याकारिणी के मामले को स्वय प्रस्तुत करते है । गुप्त रूप से हत्या के सम्बन्ध मे जानने की प्राणपण से चेष्टा करते है, किन्तु विशेष सफलता नही मिल पाती । बहुत प्रयत्न करने पर अत मे उन्हे कुछ ऐसे सूत्र प्राप्त होते है, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि त्रिभुवन दास स्वय हत्याकारिणी के पुत्र है । वह स्त्री पहले एक पवित्र देवी थी । पति पुत्र एव गृहस्थ सुख से सम्पन्न थी, किन्तु गोपाल दास के कारण ही उन्हे पाप–पक मे डूबना पडा । इस प्रतिशोध के लिए ही उसने गोपाल दास की हत्या की थी । इस रहस्य को केवल ठाकुर दास ही जानते थे । किन्तु घटना का रहस्योद्घाटन उनके जान का ग्राहक बनकर आता है । उनकी मृत्यु हो जाती है । त्रिभुवन दास अपनी माता को निर्दोष साबित करने का प्रयत्न करते हैं । किन्तु उनके सम्पूर्ण प्रयास निष्फल हो जाते है । हत्याकारिणी को मृत्युदण्ड मिलता है ।

अदालत मे मामला लडते समय जब 'सरशादी लाल' तथा उनकी पत्नी को यह खेल ज्ञात होता है कि हत्याकारिणी के पुत्र है तो उनका हृदय घृणा से भर जाता है, लेकिन उन्ही की पुत्री किरण और अपने प्रिय के निकट आ जाती है । वह माता–पिता की इच्छा के विरूद्ध त्रिभुवन दास से विवाह कर लेती है ।

7. देवांगना (मन्दिर की नर्तकी)

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक बौद्ध काल पर आधारित है । विक्रमशिला के नगर श्रेष्ठि 'धनन्जय' का इकलौता पुत्र "दिवोदास" प्रब्रज्या लेकर भिक्षु वृत्ति ग्रहण करता है। भिक्षु होने के पश्चात् वह अन्य भिक्षुओ के साथ काशी पहुचता है । यही उसका परिचय देवदासी "मजुघोसा" से होता है । प्रथम दृष्टि मे दोनो प्रेम करने लगते है ।'मजुघोसा' का लालन–पालन मदिर के महत 'सिद्धेश्वर' ने किया था । उसी ने 'मजू' की माता 'सुनयना' को बदी बनाकर गुप्त स्थान पर छोड़ रखा था ।'मजुघोसा' के युवती हो जाने पर सिद्धेश्वर उस पर मोहित हो जाता है । अवसर पाकर उससे प्रणय निवेदन करता है, किन्तु 'मजुघोसा' उद्विग्न हो उठती है । मदान्ध महत उसके साथ बलात्कार करना चाहता है, किन्तु 'दियोदास' द्वारा वह बचा ली जाती है ।'दियोदास' 'मजुघोसा' को लेकर भाग निकलता है । इसी बीच दियोदास का सेवक 'सुखदास' एक रहस्योद्घाटन करता है– "सुनयना कौन है, और उनसे उसका क्या सम्बन्ध है ? तब 'मजुघोसा'

को मालुम होता है कि 'सुनयना' उसकी मा है, तथा लिच्छवीराज की पट्ट राजमहिषी 'सुकीर्ति देवी' है । वे अपनी पुत्री के ही कारण अपनी मर्यादा तथा प्रतिष्ठा सिद्धेश्वर के यहा कष्टमय जीवन व्यतीत कर रही थी । अत मे सुखदास की युक्ति से सुनयना तथा मजुघोसा अधकूप से मुक्त हो जाते है । 'मजुघोसा' के पुत्र उत्पन्न होता है । सुनयना एक बार पुन बन्दी बनकर मुक्त हो जाती है । अत मे परस्पर ही सबका मिलन हो जाता है । [7]

इस उपन्यास के माध्यम से शास्त्री जी ने धर्म की गिरी हुई अवस्था को दिखाया है । उस समय बडे–बडे प्रसिद्ध महत तथा सत आदि सुन्दरी कन्याओ को 'देवदासी' के रूप मे ग्रहण कर उन्हे देवताओ को समर्पित कर देते थे । पुन उन्ही समर्पित की गई बालाओ के साथ बलात्कार कर व्यभिचार को बढावा कर देते थे । शास्त्री जी ने जिस धर्म का चित्रण किया है वह तत्कालीन युग समाज तथा वहा के मनष्यो की मनोवृत्ति का सफल अकन सामने प्रस्तुत हो जाता है ।

8. दो किनारे

प्रस्तुत उपन्यास के अन्तर्गत उपन्यासकार दो स्वतत्र कथाओ का समावेश किया है । प्रथम– "दो सौ की बीबी" और द्वितीय– "दादा भाई" ।

"दो सौ की बीबी" रमाशकर नामक व्यक्ति की मानसिक ऊहा–पोह से होता है, जिसकी पत्नी का देहान्त हो जाता है । 'रमाशकर' अपने ग्यारह वर्षीय पुत्र 'राजीव' के साथ अकेला रहता है। एकदिन वह स्वय के अतीत सुखद जीवन का इतिहास पुत्र को सुनाते हुए पुत्र से कहता हे कि बाल्याकाल मे वह घोडे पर स्कूल जाता था । पुत्र भी घोडा मागने की जिद करता है । पुत्र की आकाक्षा पूर्ति के लिए वह निकट के ग्रामो मे घोडा खरीदने के लिए जाता है । लेकिन घोडा के बदले 'मालती' नाम की स्त्री को खरीद लाता है । 'रमाशकर' प्रथम तो उससे रूष्ट रहता है, किन्तु बाद मे उसकी विन्रमता पूर्ण परिश्रमी व्यवहार से अत्यधिक प्रसन्न हो जाता है और उससे प्रेम करने लगता है । 'रमाशकर' ऊपर से मालती के प्रति कठोर बनकर हृदय से उसे प्रेम करता है । इसी समय दोनो के मध्य 'रमाशकर' का बाल मित्र रामनाथ का पर्दापण होता है । 'रामनाथ' को देखकर मालती उसकी ओर आकर्षित होती है, रमाशकर यह देखकर सहन नहीं कर पाता हे और रामनाथ को अपमानित कर घर से निकाल देता है । 'रमाशकर' के हृदय मे पत्नी के प्रति ईर्ष्या जाग जाती है और मालती रमाशकर की कठोरता से व्यथित होकर बिना कुछ कहे 'रामनाथ' के पास चली जाती है । 'रामनाथ' उसे आश्रय देता है, पत्नी मानकर नही बल्कि भाभी मानकर । लेकिन मालती उसी की होकर रहना चाहती है, किन्तु 'रामनाथ' उसके प्रस्ताव को ठुकरा देता है । मालती के आभाव मे 'रमाशकर' को उसका महत्व मालुम पडता है । वह अपने पुत्र को साथ लेकर

*

रामनाथ के यहा आ पहुचा है ।'रमाशकर' की दयनीयता तथा राजू के स्नेह को देखकर मालती पुन उसके साथ लौट आने को तैयार हो जाती है । अत मे 'रमाशकर' और रामनाथ की कटुता समाप्त हो जाती है । [8]

दूसरी कथा– "दादा भाई" की कथानक मे नरेन्द्र नामक व्यक्ति 'दादा भाई' के कारागार से छूटने से होता है । कारागार से छूटते ही स्वच्छन्द प्रकृति वाले नरेन्द्र को पैसे का आभाव होटल वाले से भिडा देता है । यही पर अकस्मात् 'जगदम्बा बाबू' से परिचय होता है । वह नरेन्द्र को अपने साथ ले जाते है ।'जगदम्बा बाबू' की अनुपस्थिति मे उनके अग्रेज आफिसर की पत्नी के लिए नरेन्द्र सेफ तोडकर दस हजार रूपये की चोरी करता है । लेकिन पुलिस के समक्ष अत्यधिक उदारता का परिचय दे जगदम्बा बाबू उसे छुडा लेते है ।'जगदम्बा बाबू' की अनुपस्थिति मे नरेन्द्र को अप्रत्याशित रूप से खडा देखकर उनकी लडकी "सुधा" नरेन्द्र को चोर आदि कहकर लाछन लगाती है । इसी समय 'नरेन्द्र' बाहर जाता है ओर मोटर दुर्घटना का शिकार हो जाता है । कुछ घटनाये आगे उपन्यास मे कथाचक्र के रूप मे घूमती है, और अत मे 'नरेन्द्र' और 'सुधा' का विवाह हो जाता है ।

9. अपराजिता

प्रस्तुत उपन्यास मे कथानक सुलझा हुआ है ।'व्रजराज' तथा राज मे पहले से ही प्रेम रहता है । उनका विवाह भी निश्चित सा हो गया है । किन्तु इसी समय राज अपने पिता 'गजराज सिह' के जातीय सम्मान की रक्षा के लिए अपने प्रेम को उत्सर्ग कर देती है । वह इच्छा के प्रतिकूल भी ठाकुर राघवेन्द्र सिह से विवाह कर लेती है । अपने प्रेमी 'व्रजराज' का विवाह अपनी प्रिय सखी राधा से करवा देती है । अपने विवाह मे प्राप्त दहेज भी वह अपने सखी राधा को दे देती है । राज के ससुराल मे दहेज को लेकर वाद–विवाद होता है । उसके पति तथा श्वसुर रूठ जाते है । किन्तु राज इस कार्य को स्त्रीधन कहकर उचित ठहराती है । राज के श्वसुर उसके पिता को अपशब्द कहते है । राज उनके विरोध मे सत्याग्रह का अमोघ शस्त्र अपनाती है । हठधर्मी एव सत्य का द्वन्द्व आरम्भ होता है । सम्पूर्ण ग्रामवासी राज का समर्थन करते है । अत मे राज के श्वसुर को उसके समक्ष झुकना पडता है । [9]

इसी समय राज के पति ठाकुर 'राघवेन्द्र सिह' मोटर दुर्घटना से घायल होते है । राज उनकी सेवा–सुश्रुषा करती है । वे स्वस्थ हो जाते हैं, किन्तु नेत्रहीन भी हो जाते है । फिर भी वे राज के सम्मुख झुकते नहीं है । राज अपना कर्त्तव्य पालन कर पुन श्वसुर के पास पहुच जाती है । इसी प्रकार राज को अपने पति से अलग रहते इक्कीस वर्ष व्यतीत हो जाते हैं । राज के श्वसुर का देहान्त हो जाता है । राज के पति ने गुप्त रूप से एक स्त्री से विवाह कर लिया था ।

*

जिससे एक पुत्र भी पैदा हो गया था । नेत्रहीन होने के पश्चात राज के पति का आचरण और खराब हो गया था, तथा वह पत्नी और पुत्र के प्रति कठोर हो गया था । अत मे उनकी द्वितीय पत्नी अपने पुत्र के हाथ राज के पास पत्र भेजती है । राज पति की दशा को पढकर स्वय का अह त्याग देती है और उनके समीप जाकर उन्हे सन्मार्ग पर चलाती है । ठाकुर भी अपने आत्म–सम्मान को भुलाकर राज को स्वीकार कर लेते है । अत मे ठाकुर राज से कहते हैं– 'जीवन गया, आखे गई पर जीता तो मै ही, जो तुम्हे पा लिया ।" राज उत्तर देती है– "मै स्वीकार करती हू , कि तुम जीत गये प्रिय मै हारकर ही तो तुम्हारे पास आयी हू ।"

इस तरह शास्त्री जी ने इस उपन्यास मे रूढि ग्रस्त बन्धनो से जकडे हुए पति के निर्मम अत्याचारो के विरूद्ध एक नारी के विद्रोह एव सत्याग्रह का चित्रण किया है । लेखक के अनुसार–"विषस्य विषमौषधम्" यह भारी गूढ तत्व है । इस तत्व पर मैने नारी समस्या को भी परखा है, और मै इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि नारी ही नारी की समस्या का हल कर सकती है। परन्तु नारी रहकर, नर बनकर नहीं । नारी बनने के लिए उसे 'नारी तत्व को आत्मसात करना होगा, ऐसा करने से ही वह "अपराजिता" के रूप मे उदय हो सकती है ।

10. अदल–बदल

प्रस्तुत उपन्यासो का परिचय एक जिज्ञासा को लेकर आता है । यह एक समस्या प्रधान उपन्यास है । उपन्यासकार ने पत्नी की अदल–बदल की समस्या को उठाया है । इसके अन्तर्गत दो प्रमुख कथाये है जो एक ही साथ चलती है । डा0 'कृष्ण गोपाल' अपनी एकनिष्ठ साध्वी पत्नी 'विमला' से असतुष्ठ है । जबकि 'मायादेवी' अपने सज्जन एव सरल स्वभाव के पति मास्टर हर प्रसाद से असतुष्ट हैं ।'मायादेवी' पाश्चात्य रग मे डूबी हुई तितली है । जिन्हे जीवन की रगीनी की सुख का सागर लहराता दिखाई देता है । वह क्लब जाती है, और डा0 'कृष्ण गोपाल' से साक्षात्कार होता है । वह उसकी तरफ आकर्षित होने लगती है । इधर 'कृष्ण गोपाल' अपनी पत्नी माया की उपेक्षा कर उससे विवाह करने का निश्चय करते हैं । मास्टर 'हर प्रसाद' एव 'विमला' सर्वथा मूक पक्ष के समर्थक हैं । धीरे–धीरे कथानक मे वेग आता हे, ओर माया का विवाह सम्पन्न हो जाता है । सुहाग रात्रि के दिन 'मायादेवी' के विचारो मे परिवर्तन होता है । वह पुन भागकर अपने पति के पास आ जाती है, और 'मास्टर हर प्रसाद' माया को पुन. आश्रय दे देता है ।

लेखक ने नारी एव पुरूषो के अधिकारो एव कर्त्तव्यो का विवेचन किया है । उसका कथन है कि– "आज की स्त्री पुरूष की सम्पत्ति परिग्रह बनकर नहीं रह सकती । वह पुरूष के सच्चे अर्थो मे सगिनी, सहभागिनी बनकर रहेगी । पुरूष यदि स्त्री के इस अधिकार को देने मे आनाकानी करता है, तो नि सन्देह उसे स्त्रियो से ऐसी खूनी लडाई लडनी पडेगी, जैसी आज तक

*

मनुष्य इतिहास मे मनुष्य ने इस स्त्री सम्पत्ति को अपहरण करने के लिए भी कभी नही किया होगा । वीर पुरूषो को खासकर पतियो को यह नेक सलाह देता हू, कि वे केवल परिणय प्रेम और सहृदयता से स्त्री को अपनी जीवन सगिनी बनाना सीख ले । जिससे उनका घर बसा का बसा रह जाये, क्योकि यह 'अदल–बदल' की हवा जो यूरोप के घरो को उजाड कर आयी है, यदि हमारे घरो मे घुस गई तो वे किसी दिन दफ्तर से लौट कर अपने घर को सूना और पडोसी के घर को आबाद पायेगे ।" [10]

11. धर्मपुत्र

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक हिन्दू–मुस्लिम एकता को लेकर प्रारम्भ हुआ है । "नवाव मुस्ताक अहमद" सालारगज बहादुर की एकमात्र पुत्री– "हुस्नबानू" है । जिसका लालन पालन वे बडे लाड प्यार से करते है । उसे बहुत स्वाधीनता भी प्राप्त हो जाती है तथा वह एक मुस्लिम युवक से प्यार करने लगती है । विवाह से पूर्व से ही 'हुस्नबानू गर्भवती' हो जाती है । नवाब इस मामले मे डा0 "अमृत राय" से सलाह लेना चाहते है और गर्भपात करा देने की इच्छा प्रकट करते है। किन्तु अमृत राय इस अनैतिक कार्य को करने के लिए तैयार नही होते है । नवाब साहब को अपने पिता का अभिन्न मित्र जानकर डॅा0 उनकी मदद करना चाहते है और अत मे वह अपनी पत्नी 'अरूणा' की सहमति से हुस्नबानू के पुत्र होने पर उसे अपना पुत्र घोषित कर देते है । नवाब साहब अपनी सम्पत्ति का आधा भाग बानू के पुत्र दिलीप के नाम घोषित कर देते है । दिलीप हिन्दू वातावरण मे बढता है और 'हिन्दू सस्कार' उसमे घनिष्ठ रूप से भर जाते है । डा0 के अन्य तीन बच्चे होते है । शिक्षा समाप्त कर अब उनके विवाह की चिन्ता 'डा0 दम्पत्ति' को होती है । किन्तु दिलीप जन्म से मुसलमान है, इसलिये उसका हिन्दू कन्या के साथ विवाह नही हो सकता । बहुत विचार कर वे राय साहब विलायत रिटर्न, जातिच्युत हुए की कन्या माया से विवाह की बातचीत करते हैं । किन्तु दिलीप के मस्तिष्क मे सीता सावित्री जैसी आदर्श पत्नी का रूप था । इसलिए वह विवाह को अस्वीकार कर देता है । इसी बीच भारत की राजनैतिक स्थिति डवॉडोल हो जाती है । हिन्दू मुस्लिम दगा होता है । 'दिलीप' क्रातिकारियो का नेतृत्व करता हुआ रग महल मे आग लगाने जाता है । जहा विधवा होकर 'हुस्नबानू' रहने गई थी । डा0 दम्पत्ति को जब यह पता चलता है तो वे दिलीप को रोकने के लिए जाते हैं । अत मे 'दिलीप' का रहस्योद्घाटन होता है, और वह 'हुस्नबानू' को मॉ कहकर उसके छाती से लिपट जाता है । बाद मे 'दिलीप' और माया का विवाह हो जाता है, और कथावन का सुखान्त हो जाता है । इस तरह से शास्त्री जी ने इस उपन्यास मे हिन्दू–मुस्लिम समस्या को उभारने की कोशिश की है । [11]

*

12. गोली

प्रस्तुत उपन्यास के प्रधान पात्री 'चम्पा' अपने दाता की बेटी 'कुवरी' के विवाह मे दी जाती है । कुवरी के पति अपनी विवाहिता के पास प्रथम रात्रि मे न जाकर 'चम्पा' के पास जाते है । क्योकि चम्पा के "चम्पई वर्ण" के लोभन ने ठाकुर को कुवरी से विमुख कर दिया है । समाचार मिलते ही कुवरी ठाकुर से कभी न मिलने का सौगन्ध खा लेती है । 'चम्पा' तथा 'राजा' सम्बन्ध बढता जाता है, और वह इक्कीस वर्षों तक राजा की उपपत्नी के रूप मे रहती है । राजा की औरस से पाच सतानो की वह माँ बनती है । किन्तु राजा केवल भोग का ही सम्बन्धी रहता है । असली पिता 'किसुन' नाम का गोला करार किया जाता है । जिसका कर स्पर्श चम्पा केवल विवाह के अवसर पर करती है । इक्कीस वर्ष सुख से तथा राजरानी की तरह भोगने के पश्चात् चम्पा किसी षड्यत्रो द्वारा नरकीय यत्रणाओ मे पिसने के लिए डाल दी जाती हे । जब भारत स्वतत्र होता है साथ ही सम्पूर्ण राज्यो का विलय होता है, तब राजा के नरकीय गृह से साठ हजार नर–नारिया मुक्त होकर स्वतत्रता की श्वास लेते हे । 'चम्पा' भी किसुन की सहायता से अपने बच्चो को स्वतत्र करके उन्हे अच्छी शिक्षा–दीक्षा देती है। अत मे 'चम्पा' स्वय अपनी कन्या के साथ दिल्ली मे बगला लेकर रहने लगती है । इस प्रकार कथा समाप्त हो जाती है ।

शास्त्री जी ने 'गोली' उपन्यास मे 'गोली' जीवन की दु खद गाथा का चित्रण किया है । वे स्वय लिखते है– "मैंने तो राजस्थान के साठ हजार निरीह नर–नारियो की एक ईकाई के रूप मे 'चम्पा' और 'किसुन' को आपके सामने उपस्थिति किया है । 'चम्पा' एक ऐसी नारी है, जिसकी समता कि स्त्री आप ससार के पर्दे पर नही ढूढ सकते, जिसका व्यक्तित्व निराला है । जिसका आदर्श निराला है, धर्म निराला है, सुख–दुख और ससार निराला है । जिसकी आप कल्पना नही कर सकते । उसका और जिन साठ हजार नर नारियो का व प्रतिनिधित्व करती है । यह अद्भुत अर्तकीय जीवन 'राजस्थान' के राजाओ मे देखने को मिलती है ।

लेखक ने गोली का जीवन उन स्त्रियो से सम्बन्धित किया है, जिन्हे भेड–बकरियो की रेवड की भाति वेचा और दहेज मे दान दिया जाता था । उनका विवाह केवल इसलिए होता था, कि वह 'गोली' के सतान का वैधानिक पिता बन जाये, पति से पत्नी का, गोली से गोली का, शरीर प्राय सम्बन्ध नही हो पाता है । इस प्रकार सतानो पर भी उस समय के राजाओ का कोई अधिकार नहीं था । न ही उनकी कोई अपनी सम्पत्ति थी, वे पूर्ण रूप से राजाओ के हाथ मे ही होती थी ।

*

13. उदंयास्त

इस उपन्यास के अन्तर्गत उपन्याकार ने कथा का आरम्भ राजा साहब के परिचय किया है। राजा साहब के एक पुत्र 'कुंवर 'सुरेश सिह' है । जो कि अपने पिता की रियासत के राजकुमार है । राजा साहब मे वह सभी गुण और विशेषताए है जो कि एक राजा मे होनी चाहिए । कथानक का विकास 'मगतू चमार' एव राजा साहब के वाद–विवाद से होता है । मगतू स्वय को चमार न समझ कर हरिजन समझता है ; वह आधुनिक प्रगतिशील विचारक है, और विचारशील नवयुवको का प्रतिनिधित्व करता है । राजा साहब रूढिवादी, सामतशाही का समर्थक है । दोनो विरोधी विचारो का सघर्ष बढता है ।'मगतू' राजा साहब के सम्मुख आ डटता है । धीरे–धीरे यह सघर्ष बढता है । प्रारम्भ मे 'कुवर सुरेश सिह' 'राजा साहब' और' मगतू' के बीच समझौता कराने का प्रयास करते है, किन्तु असफल हो जाते है । इसी बीच 'कुवर सुरेश सिह' अपनी पत्नी को लेकर दिल्ली भ्रमण के लिए निकल पडते है । उनके साथ–साथ तत्कालीन, सामाजिक, राजनैतिक दशाओ को प्रदर्शित करने वाली कितनी ही छोटी–छोटी कथाए इस उपन्यास मे दी गई हैं ।'कुवर सुरेश सिह' वापस रियासत आ जाता है । मगतू एव राजा साहब की कथा पुन जीवन दान पाती है । काग्रेस दल के भडकाने से मगतू राजा साहब पर मान–हानि का दावा कर देता है । इसी समय निर्वाचन होता है । काग्रेस दल मगतू को राजा साहब का विपक्षी बनाकर खडा कर देते है । राजा साहब मान–हानि के दावे मे मगतू से पराजित होते है । पराजय का आघात उनके सम्मान को ठेस पहुचाता है । जिसको सहन न कर पाने के कारण उनकी मृत्यु हो जाती है । अत मे कथानक मे आदर्शवाद का पुट मिलाया गया है । कुवर 'सुरेश सिह' की उदारता के समक्ष नतमस्तक हो जाता है । और अत मे वह कुवर साहब के फार्म पर काम करने लगता है । इस उपन्यास के माध्यम से शास्त्री जी ने देश एव समाज का चित्रण करने की कोशिश की है । चूकि 'शास्त्री जी' खुद गाधी जी से प्रभावित है ।'मगतू' की कथा नव जागरण की चेतना का सदेश देती है । मानव जीवन की कुछ अवस्थाओ की झाकी इस उपन्यास मे प्रस्तुत की गई है । [13]

14. बगुला के पंख

प्रस्तुत उपन्यास एक ऐसे अवसरवादी व्यक्ति से प्रारम्भ होता है । जो मनुष्यो की ऑखो मे धूल झोक कर एकदिन समाज़ मे प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर लेता है । उपन्यास का नायक जुगनू' नामक व्यक्ति है । वह सबको अपना परिचय मुशी 'जगन प्रसाद' कहकर देता है । वास्तव मे वह जाति का मेहतर है । बाद मे परिस्थिति वश मुसलमान बनकर मुंशी 'मुस्ताक अहमद' बन जाता है । इसी बीच भारत को आजादी मिलती है । जिन अग्रेजो के यहा वह कार्य करके अग्रेजी और उर्दू सीखता है । वह सब उसे छोडकर विलायत चले जाते हैं । आर्थिक स्थिति चितनीय

*

होने पर वह नौकरी के लिए इधर–उधर भटकता है । इसी बीच उसका साक्षात्कार पुराने मित्र 'शोभाराम' से होता है । जो उसे आश्रय प्रदान करता है । शोभाराम काग्रेस पार्टी का प्रभावशाली सदस्य रहता है । शिक्षित और दूरदर्शी किन्तु अस्वस्थ रहने से विवश है । ऐसे अवसर को उसकी विवशता देखकर जुगनू लाभ उठाता है और शोभाराम के नेतृत्व मे वह आगे बढता है । एक स्थिति ऐसी आती है कि शोभाराम की पूर्ण शक्ति प्राप्त कर मिनिस्टर बन जाता है । मत्री हो जाने के बाद 'जुगनू' की मान–प्रतिष्ठा बढ जाती है । वह बडे–बडे सेठो तथा महानुभावो के सम्पर्क मे आता है, पर धीरे–धीरे उसका नैतिक पतन होने लगता है ।'शोभाराम' की अस्वस्थता का लाभ उठाकर उसकी पत्नी 'पद्मा' को वह अपनी वासना का शिकार बनाता है । अत मे शोभाराम की मृत्यु हो जाती है, और उसे खुलकर काम बुभुक्षा को तृप्त करने का अवसर मिलता है । किन्तु वह पद्मा को मसूरी मे छोडकर फिर अपने राग–रग मे व्यस्त हो जाता है । उसके रग से प्रभावित होकर 'डा0 खत्री' अपनी कन्या 'शारदा' का विवाह जुगनू के साथ करना चाहते है। विवाह तय हो जाता है, बारात अगवानी के अवसर पर 'जुगनू' को दूल्हे के रूप मे उसका छोटा भाई 'घसीटा' भैया कहकर चिल्लाता है । अत मे 'जुगनू' का भण्डा फोड हो जाता है और वह मण्डप से भाग निकलता है । अत मे 'शारदा' का विवाह 'परशुराम' नामक व्यक्ति से हो जाता है ।

'शास्त्री जी' ने यह स्पष्ट किया है कि कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कोई अयोग्य अनाधिकारी व्यक्ति भाग्य चक्र या परिस्थितियो के कारण सामाजिक राजनैतिक रूप से बडा बन जाता है । और इस तरह से बडा बनने के लिए न उसे तपना पडता है । और न अपने मानस मन को सुदर बनाना पडता है ।'शास्त्री जी' का सकेत ऐसे श्वेत खादीधारी नेताओ के ऊपर एक प्रकार से व्यग्य है । जो 'काग्रेस पार्टी' मे अपने अवसर को तलाश कर इस तरह का कार्य करते रहते है । अपने पद और प्रतिष्ठा की आड मे अपनी अतृप्त वासनाओ से जैसे नगा नाच वह नाचता है, 'धोती कुर्ते' के नीचे वास्तविक रूप मे जैसा वह है, उसी को स्पष्ट करने की कोशिश करते है । [14]

15. मोती

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री' का यह अन्तिम उपन्यास है । जिसका कथानक 'खान बहादुर नियाज अहमद' की वृद्धावस्था से होता है । वे सत्तर वर्ष के थे, किन्तु उनका बाकापन और सनकीपन कुछ बढ गया था । उनकी द्वितीय पत्नी से एक ही लडकी सन्तान के नाम पर 'रोशन' थी, जिसका नाम 'नीलम' था । नवाब साहब का 'जोहरा बीबी' से विशेष सम्बन्ध था । जोहरा स्वय अच्छे विचारो वाली थी, किन्तु उसका भाई 'मोती' नये विचारो का था । एकदिन जोहरा मोती के

*

निठल्ले पन से ऊबकर उसे फटकारती है । उसकी विचारधारा एकदम परिवर्तित हो जाती है । वह अपने मित्र 'हसराज' के साथ मिलकर देश की स्वतत्रता आन्दोलन मे भाग लेने लगता है ।

इस प्रकार उसमे नई चेतना का सचार तथा 'राष्ट्रीयता' का उदय होता है । एक मुसायरे मे मोती की गजल सुनकर 'नीलम्' उसके प्रति आकर्षित होती है । साथ ही पूर्व धारणा का खण्डन कर देती है । पहले वह मोती को आवारा, बदचलन, समझकर घृणा करती थी । किन्तु प्रेम के आकर्षण पर वह मोती के प्रत्येक गतिविधि पर दृष्टि रखने लगी । उसने देखा कि मोती असाधारण बुद्धि वाला युवक है । जो देशभक्त भी है । 'हसराज' के साथ मिलकर वह वायसराय की ट्रेन उडाने का प्रयत्न करता है । 'हसराज' भागकर 'जोहरा' के यहा शरण लेता है । यह हसराज जोहरा का पूर्व प्रेमी रहता है । इधर मोती का दोस्त हुसैनी सदेह मे गिरफ्तार होता है । जेल मे उसे इतनी यातना दी जाती है, कि उसकी मृत्यु हो जाती है । 'मोती' को जब यह पता चलता है कि हसराज जोहरा का पूर्व प्रेमी है । तो वह स्वय को 'हसराज' के नाम से घोषित कर कैद करवा देता है । उस पर मुकदमा चलता है, किन्तु उसी समय पुलिस को एक मुखबिर द्वारा ज्ञात होता है कि 'हसराज' अभी भी मुक्त है । इस रहस्य के ज्ञात होते ही 'मोती' को छोड दिया जाता है । नवाब साहब 'नीलम' से उसका विवाह कर देते हैं । [15]

16. शुभदा

"शुभदा" उपन्यास के अन्तर्गत 18वी शताब्दी के राजनैतिक एव सामाजिक तथ्यो का विश्लेषण है । इस उपन्यास की नायिका "शुभदा" है । बाल्यकाल मे ही इसके पति की मृत्यु हो जाने पर इसको सती करने की कोशिश की जाती है, किन्तु चिता पर रखते समय यह अग्रेजो द्वारा बचा ली जाती है । एक ईसाई पादरी के सरक्षण मे रहकर यह ईसाई धर्म का स्वीकार कर लेती है । किन्तु अपने धार्मिक सस्कारो का पालन करती रहती है । यह साधारण सुन्दरी प्रतिभाशालिनी थी । उसके प्रेम की गाठ अग्रेज सैनिक एव लेफटीनेन्ट "मैकडोनल्ड" से बध चुकी थी । बाद मे दोनो का विवाह हो जाता है ।

कुछ राजनैतिक स्थितियो तथा धार्मिक विश्वासो का चित्रण इस उपन्यास मे किया गया है। चारो तरफ विद्रोह की भावना फैल गई है, और 'मगल पाण्डे' नामक युवक विद्रोह कर देता है। कई अग्रेज अफसर मारे जाते है । मगल पाण्डे को गिरफ्तार कर फासी देते समय उससे पूछा गया कि घर को कोई सदेश देना चाहते हो तो कहो– "मगल पाण्डे ऊचे स्वर मे कहता है– 'घर को नही देश भाईयो को मेरा खून देना ओर कहना– जब तक बदला न ले ले, वे चुप न बैठे, मरना है तो कुत्तो की मौत नही इसान की मौत मरना चाहिए ।" मेजर इस घटना से दुखी होकर त्याग पत्र दे देते है और वे शुभदा से इच्छा प्रकट करते है । तुमने जो मुझे गुरू मत्र दिया

*

कि सबसे पवित्र तीर्थ मानव हृदय है । उसका पालन न तो मै रानी के राजमहल मे कर सकूगा, और न ही इग्लैण्ड मे । मै भारतीय भूमि मे अपने प्राणो का विसर्जन करना चाहता हू । यदि मै कभी इससे विचलित भी होऊ तो प्रिय शुभदा तुम मुझको उससे बचा लेना ।

राजपूतो मे जौहर, स्त्रिया स्वय इच्छा से करती थी । 'शुभदा' की सती होने की स्थिति का चित्रण करते हुए शास्त्री जी ने बडा ही अच्छा सकेत इस प्रकार दिया है–"आज भोर ही मे उसके वैधव्य का समाचार मिला था और उसे पति के साथ सहगमन करने के लिए बुलाया गया था । उसकी प्रतीक्षा मे कई घण्टो तक चिता प्रज्जवलित नही की गई थी । बालिका को होश नही था, उसे भाग और धतूरा अधिक मात्रा मे पिलाया गया था । वह सीधी नही बैठ सकती थी । दो प्रौढ स्त्रिया उसे दोनो ओर से मजबूती से पकडे हुए बैठी थी। चिता मे आग लगा दी गयी, बालिका को चिता मे पहले रख दिया गया था । आग की असहय् ज्वाला से वह बालिका एकाएक चैतन्य हो गई । वह जोर से चित्कार कर लुढकती हुई चिता से कूद पडी । यह देख पाच सात ब्राम्हण अपना जनेऊ समालते आगे बढे । अधर्म, पाप, कलियुग, घोर कलियुग आदि उनके मुख से निकलने लगे । उनके हाथो मे गीले बासो की बनी एक ठठरी थी । जो कदाचित ऐसे समय के लिए ही बनी थी । उसी ठठरी से उन्होने बालिका को दबोच लिया । वह ठठरी के नीचे छटपटाने और आर्तनाद करने लगी । पर इसी समय उन ब्राम्हणो ने उसे हाथो–हाथो चिता मे झोक दिया । चिता की आग अब चैतन्य हो चुकी थी–"बालिका दोनो हाथ उठाकर पुन भागना चाह रही थी, लेकिन इसी कुछ क्षणो मे ही उसके प्राण पखेरू उड गये । [16]

सन्दर्भ - सूची

1 हृदय की परख	भूमिका		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
2 बहते ऑसू	साप्ताहिक हिन्दुस्तान	पृष्ठ स0 18	
3 हृदय की प्यास	भूमिका		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
4 आत्मदाह	पृष्ठ स0 237		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
5 नीलमणि	पृष्ठ स0 50		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
6 नरमेघ	पृप्ठ रा0 103		आचार्य चतुररोन शास्त्री
7 देवागना (मदिर की नर्तकी)	पृष्ठ स0 51 100		आचार्य चतुररो। शास्त्री
8 दो किनारे	पृष्ठ स0 76		डॉ0 इन्दू वशिष्ठ
9 अपराजिता	पृष्ठ स0 135, 6		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
10 अदल–वदल	भूमिका		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
11 धर्मपुत्र	पृष्ठ स0 65–66		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
12 गोली	पृष्ठ स0 19–20		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
13 उदयास्त	भूमिका		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
14 बगुला के पख	मुख्य पृप्ठ एक विचार		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
15 मोती	पृष्ठ स0 3, 4 14, 43		आचार्य चतुरसेन शास्त्री
16 शुभदा	पृष्ठ स0 13, 14, 216, 217		आचार्य चतुरसेन शास्त्री

✷✷✷✷✷

*

(ख)
आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में औपन्यासिक समय का प्रयोग

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री' के उपन्यासो पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है, शास्त्री जी ने अपने उपन्यासो की रचना इतिहास की प्राचीन सभ्यताओ को माध्यम बनाते हुये रचना करते उनका उपन्यास वय–रक्षाम जो वैदिक परम्परा पर आथारित उपन्यास से उनकी रचना प्रारम्भ होती है, द्वितीय विश्व युद्ध 1945 तक की घटना 'ईदो' उपन्यास के माध्यम से समाप्त होती है । इन कालक्रम को देखने से प्रतीत होता है, कि शास्त्री जी अपने उपन्यासो का माध्यम इतिहास के प्रारम्भिक अवस्था से लेकर देश की आजादी तक की घटनाओ को अपने उपन्यास का माध्यम बनाया है। 'शास्त्री जी' ने आजादी तक ही नही बल्कि 1960 मे अपनी मृत्यु तक अपने उपन्यासो की रचना करते रहे उनकी मृत्यु के बाद 'मोती और अपराधी' जैसे उपन्यासो का प्रकाशन 1975 मे हुआ जिससे सिद्ध होता है कि शास्त्री जी ने उपन्यास रचना प्रारम्भ करने से लेकर अन्त समय तक अपनी लेखनी को बन्द नही किया था। 'शास्त्री जी' के मन मे देश की विसगतियो और तृष्णा जीवन के प्रति गहरा क्षोभ था उन्होने अपने समाजिक उपन्यासो मे इस व्यवस्था की जम कर आलोचन, करते है इसलिए उनके अधिकतर उपन्यास सामाजिक व्यवस्था को आधार बना कर लिखे गये है 'शास्त्री जी' ने लगभग 12 एतिहासिक उपन्यासो की रचना की है और एक एतिहासिक उपन्यासकार के रुप मे इनको प्रसिद्धी भी मिली है इनका उपन्यास वय – रक्षाम जिसे वह ऐतिहासिक उपन्यास के कोटि मे रखते है पर आलोचक ने उनके इस उपन्यास को पौराणिक उपन्यास मना है इसलिए 'शास्त्री जी' को ऐतिहासिक उपन्यासकार के रुप मे ख्याति बहुत बाद मे प्राप्त हुई।

आचार्य जी के ऐतिहासिक उपन्यास 'पूर्णाहुति', 'वैशाली की नगरवधू', 'रक्त की प्यास' 'सोमनाथ' , 'लालपानी' ,'सह्याद्रि की चट्टाने', 'बिना चिराग का शहर' , 'आलमगीर', 'सोना और खून' तथा 'ईदो' प्रमुख उपन्यास है। 'शास्त्री जी' के उपन्यास वय – रक्षाम को पौराणिक उपन्यास के कोटि मे माना जाता है। इस खण्ड मे हमे 'शास्त्री जी' के इन ऐतिहासिक उपन्यासो के समय को ध्यान मे रख कर अध्ययन करना है ताकि यह स्पष्ट हो सके कि 'शास्त्री जी' ने किस परिवेश मे उपन्यासो का सृजन किया है।

उपन्यास मे औपन्यासिक समय का प्रयोग करते समय उपन्यासकार उस समय देश काल मे व्याप्त आचार–विचार, रीति–रिवाज, रहन–सहन और परिस्थितियो आदि को ध्यान मे रखकर

*

उपन्यास का सृजन करता है। कथानक मे विश्वसनियता लाने के लिए उपन्यासकार इस तत्वो का प्रयोग करता है कथानक के पात्र भी वास्तविक पात्र की भॉति देशकाल के बन्धन मे रहते है। [1] 'जिस प्रकार बिना अँगूठी के 'नगीना' शोभा नही देती है, उसी प्रकार बिना देश काल के वर्णन हुए पात्रो का व्यक्तित्व भी स्पष्ट नही हो पाता और घटनाक्रम को समझने के लिए भी आवश्यकता होती है'। [2] वास्तव मे समय और वातावरण ही पात्रो का अपना ससार होता है उनसे विहीन उनके क्रियाकलापो का कोई अपना निज का कोई अस्तित्व नही रह जाता है जितनी वास्तविकता पृष्ठ भूमि मे चरित्र को प्रकट करने के लिए की जायेगी उतनी ही गहरी विश्वसनियता का भाव लगाया जा सकता है । इस पृष्ठभूमि के बिना हमारी कल्पना को ठहरने की कोई भूमि नही मिलती और न हमारी भावना ही रमती और विश्वास करती है। [3]

'शास्त्री जी' ने अपने उपन्यास "वय–रक्षाम" मे बौद्ध कालिन ऐतिहासिक घटनाओ को सामाहित किया है इसमे लेखक ने कल्पना का समावेश खूब किया है । जिसमे पौराणिक काल की समस्त विशेषताओ को अपने वर्णन मे उतार राके। नगर, नदी, पर्वत आदि के नाम, व्यक्तियो के नाम वस्त्र वेश–भूषा, रहन–सहन, विश्वास, रीति–रिवाज आदि के द्वारा पौराणिक वातावरण की सृष्टि की जाती है।

ऐतिहासिक उपन्यास मे **उस** समय के देश काल का वर्णन करना बडी महत्वपूर्ण उपलब्धि होती है। इसके माध्यम से लेखक उस युग विशेष की पृष्ठिभूमि का चित्रण करता है । जिसके चरित्रो का वह वर्णन करता है उसके वर्णन मे उरा युग के विशिष्ट रीति–रिवाज, चाल–ढाल , वातावरण के प्रमाणिक चित्रण द्वारा यह आभास देना पडता है कि यह वही युग है जिसमे उपन्यास की रचना हुई है । इसके साथ ही उपन्यास मे सगठित एव सयोजित घटनाये भी उस युग के इतिहास मे घटित घटनाओ के मेल मे होनी चाहिए। इसके विरुद्ध नही इसके लिए ऐतिहासिक उपन्यासकार को उस युग के इतिहास का अच्छा ज्ञान होना चाहिए तथा उस समय के सास्कृतिक जीवन से भली–भॉति परिचित होना चाहिए। [4]

डा0 "श्याम सुन्दर दास" का कथन है कि 'ऐतिहासिक उपन्यास लिखने वाले का काम यह है कि पुरातत्व और इतिहास के जानकारो ने जिन रुखी–सूखी बातो का सग्रह किया हो उपन्यासकार उसमे सरस और सजीव रुप देकर अपने पाठको के सामने उपस्थित करे और उसमे इधर–उधर बिखरी हुई जो सामाग्री भिन्न–भिन्न साधनो से मिले उसकी सहायता से वह अपने कौशल के द्वारा एक सर्वांगपूर्ण चित्र प्रस्तुत करे । ऐतिहासिक उपन्यास के पाठक उसी लेखक का सबसे अधिक आदर करते है, जो किसी विशिष्ट अतीत काल का बिल्कुल सच्चा जीता जागता

*

और साथ ही मनोरजक वर्णन कर सके इससे उसके पाडित्य और पुरातत्व ज्ञान का भी आदर होता है पर उससे कही अधिक आदर उसकी वर्णन शक्ति का होता है। [5]

वास्तव मे यह सत्य है कि ऐतिहासिक उपन्यास मे घटनाओ और नामो की अपेक्षा वातावरण का महत्व अधिक है, क्योकि इतिहास की आत्मा नामो और घटनाओ मे न रह कर वातावरण मे ही निहित होती है अत हम कह सकते है जिस उपन्यासो मे कल्पना वातावरण, वर्णन शक्ति एव ऐतिहासिक सत्य का समानुपातिक समन्वय होता है, वही उपन्यास वास्तव मे सफल ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है ।

इसी प्रकार सामाजिक उपन्यासो मे उस समय के वातावरण का रचना के बारे मे काफी महत्व रहता है इस तत्व के आभाव मे रचना की कलात्मक महत्ता क्षीण हो जाती है । उपन्यासो मे स्थानीय रग का भी महत्व होता है, स्थानीय रग का तात्पर्य है कि उपन्यासकार किसी विशेष देश काल वातावरण एवम् व्यवहारिक जीवन का एक अच्छा खाका उपस्थित करता है । उदाहरण के लिए हम लखनऊ नगर को ले, यदि उपन्यासकार इस नगर का वर्णन करते समय यमुना, 'काशी विश्वनाथ का मदिर', 'लालकिला' आदि का वर्णन करे तो वह लखनऊ का वास्तविक चित्रण नही होगा और यदि इसके स्थान पर उपन्यासकार 'इमामबाडा', 'छतर मजिल', 'चारबाग' आदि का वर्णन करता है तो पाठक स्वय ही समझ जायेगा और अपने को 'लखनऊ' नगर मे भ्रमण करता हुआ मालुम पडने लगेगा । इस प्रकार स्थानीय रगो के समावेश से उपन्यास मे कथानक की विश्वसनियता बढ जाती है । [6]

उपन्यासो मे 'वस्तु वर्णन' का अपना अलग महत्व होता है इसमे सारी की सारी भौगोलिक सीमाये स्पष्ट हो जाती है आचार्य चतुर सेन शास्त्री के उपन्यास वय–रक्षाम के भौगोलिक चित्रण बडे ही सचिव है तत्कालिक भौगोलिक वर्णन के विषय मे शास्त्री जी ने स्वय लिखा ' उन दिनो भारत की भौगोलिक सीमाये आज के जैसी नही थी । आन्ध्र से लेकर अन्य द्वीप तक 'यवद्वीप,' 'स्वर्ण द्वीप,' 'लका', 'सुमात्रा' आदि द्वीप समूह स्थल सश्लिष्ट थे और इन द्वीपो मे 'नर,' 'नाग,' 'देव,' 'दैत्य दानव' 'असुर' 'मानुष,' 'आर्यब्रात्य' आदि सभी एक साथ रहते थे इसके अतिरिक्त भी उपन्यास मे शास्त्री जी ने 'धातु,' 'युग,' 'प्रलय,' 'नदी,' 'पर्वत,' आदि के विवरण दिये है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी के ऐतिहासिक उपन्यासो के कथानक को हम पॉच भागो मे विभक्त करके पूरे ऐतिहासिक सॉस्कृतिक समय के प्रयोगो पर विचार कर सकते है जैसे पौराणिक समय का कथानक 'वय–रक्षाम' मे, बौद्ध काल का कथानक 'वैशाली की नगरवधू' मे मध्यकाल के कथानक सोमनाथ तथा 'बिना चिराग का शहर' उपन्यास मे, मुगल काल का कथानक आलमगीर

*

व सह्याद्रि की चट्टाने जैसे उपन्यास मे तथा आधुनिक काल का कथानक "सोना और खून" जैसे उपन्यासो मे दिखायी पडता है।

1. पौराणिक समय का उपन्यास

शास्त्री जी के उपन्यासो के औपन्यासिक समय पर विचार करने के लिए उस समय की तत्कालिक 'सामाजिक', 'राजनीतिक', 'सॉस्कृतिक' तथा 'ऐतिहासिक परिस्थितियो' पर दृष्टि लगानी होगी,, जिस परिवेश को चुन कर शास्त्री जी ने अपने उपन्यासो मे ऐतिहासिक घटनाओ का सकलन किया है इसके लिए कमश उनके ऐतिहासिक उपन्यासो पर विचार करते हुए औपन्यासिक समय को स्पष्ट कर सकते है। यदि हम 'शास्त्री जी' के उपन्यास 'वय–रक्षाम' पर विचार करे तो वह उपन्यास मे सर्व प्राचीन आर्य सस्कृति का विस्तार से परिचय करता है। 'वय–रक्षाम" मे उपन्यासकार ने तत्कालिन देश की सामाजिक, राजनितिक, सास्कृतिक परिस्थितियो का सफल अकन किया है साथ ही आर्थिक गतिविधियो की भी जानकारी प्राप्त हो जाती है। इस उपन्यास का कथा क्षेत्र भारत 'भूमि', 'मध्य एशिया', 'अरब,' 'अफ्रीका' और 'पूर्वी द्वीप' समूह तक फैला हुआ था। सामाजिक परिवेश पर ध्यान देने से स्पष्ट होता है कि इस उपन्यास मे उस समय आर्यो एव देवो को छोडकर इतर जातियो की सामाजिक स्थिति सुगठित न थी। सुरा और सुन्दरी का इनमे आवश्यक रुप से अधिक प्रचलन था। 'मुक्त सहवास,' विवसन विवरण एव हरण एव पलायन आदि का प्रचलन था। नर नारी का खुले बाजार मे विकी होती थी,, विवाह बन्धन केवल आर्यो मे था। रावण ने विवाह बन्धन की मर्यादा अनार्यो मे भी स्थापित की थी। यदपि 'दैत्य' और 'असुर,' 'आर्यो' तथा 'देवो' के कोई भाई बन्धु ही थे, परन्तु उनके रहन–सहन और आचार विचार मे बहुत अन्तर था। उस युग की सामाजिक स्थिति बहुत अस्त–व्यस्त थी। आर्यो और देवो मे केवल राज्य की परम्परा चल रही थी। भूमि के लिए प्राय युद्ध होता था। आर्यो मे विवाह मर्यादा दृढ बद्ध हो चुकी थी और स्त्रियो के पुरुष पति या स्वामी हो गये थे। धीरे–धीरे स्त्रियो का अधिकार समाप्त होने लगा। आर्यो के जाति मे स्त्री की गणना न थी,, वह मात्र पुरुष की पूरक थी। पिता की सारी राज्य सम्पति पर पुत्र का अधिकार था। पिता द्वारा स्वयबर का आयोजन होता था। ऐसे स्वयबर मे कन्या को 'वीर्य शुल्का' कहा जाता था। [7] बहु पत्नी की प्रथा थी।

वय–रक्षाम उपन्यास मे भारत की राजनितिक परिस्थितियो पर विस्तार से वर्णन मिलता है। आर्यो ने 'लोक पालो','द्विक पालो' की स्थापना की थी। जो आर्यो के प्रान्त की रक्षा करते थे देवो की प्रबल जातियो मे तब 'मारुत', 'वसु', 'आदित्य' प्रभावशाली थे। चोटी के पुरुषो मे 'इन्द्र', 'वरुण,' 'कुबेर' चार लोक पाल थे अनार्यो की भी उस समय अनेक जातियॉ थी। [8] जिसमे महिष,

*

'कपिनाग', 'मृग', 'ऋक्ष,' 'ब्रात्य', 'आरजिक', 'राक्षस', 'दैत्य', 'दानव,' 'कीकर,' 'महावृष', 'बाल्हिक', 'मुजवन' आदि प्रमुख थे, इन सबका सयुक्त नाम अनार्य ही था। 'रावण' पहले इन छोटे छोटे राज्यो को अपने अधिकार मे किया था। स्थान–स्थान पर राजाओ ने उपनिवेश स्थापित किये थे ।'रावण' ने राक्षसो तथा दक्षिण के वहिरग भारतीयो की एक सयुक्त सेना बनाता है, उसी से उसने सबसे पहले अपने भाई कुबेर को दलित किया, उसके बाद यम और वरुण के उत्तराधिकारियो को रौंद देता है। इन्द्र को बन्दी बनाकर वह लका लाता है, मार्ग मे छोटे–छोटे राजाओ को पराजित करता है। केवल दो वीरो से उसे हारना पडा था। [9] एक दैत्य वशी कीर्तवीय 'अर्जुन' से 'महिष्मती' मेए, दूसरे किष्किन्धा के बालि से । इन दोनो से वह पराजित होकर मैली सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इस काल मे सर्वत्र राज तत्र का बोल बाला था, सम्पूर्ण सत्ता राजाओ के हाथ मे थी, आर्यो के यहाँ ब्राम्हणो का बोल बाला था, अनार्य उन्हे अपना शत्रु समझते थे, राज्यो को एक सूत्र मे बॉधने के लिये राजसूय यज्ञ करने की प्रथा थी,, इसके बाद अश्वमेध यज्ञ किया जाता था, दोनो ही यज्ञो मे दिग्विजय यात्रा की जाती थी,, कुछ लोग स्वेच्छा से अधीनता स्वीकार करते थे, तो कुछ लोग लडकर अधीनता स्वीकार कर लेते थे, जिस समय रावण अनार्यो को इकट्ठा कर रहा था। उस समय आर्य छोटे छोटे राज्य के लिये लड रहे थे, आर्य राजाओ का सघटन टूट चुका था, राष्ट्रीयता की भावना बिल्कुल विलुप्त हो चली थी। [10]

अनार्यों की शक्ति से ब्राम्हण सजग हो गये थे ।'परशुराम' और 'विश्वामित्र' इस दिशा मे सराहनीय कार्य करते हुऐ दिखाई देते है। उस समय ऋषि भी शक्तिशाली थे, स्वेच्छा से राक्षसो से युद्ध करते थे ।'अगस्त ऋषि' का राक्षसो पर काफी प्रभाव था, शास्त्री जी ने इस उपन्यास मे तत्कालिन समय की राजनीति, कूटनीति राज्य सम्बन्ध, सैन्य व्यवस्था आदि पर भी यत्र–तत्र प्रकाश डाला है। वय–रक्षाम मे जिस राजवशो का वर्णन किया गया है, उनकी आर्थिक स्थिति उत्तम थी, समृद्धि इतनी थी, कि 'रावण' लका को सोने के रुप मे स्थापित कर देता है। इस समय के सभी 'लोभी', 'धोखेबाज', 'ठग', 'व्यापारी', 'वणिक', 'पणिक' को 'आर्य' लोग बहिष्कार करके दक्षिण मे निष्काषित कर देते हैं, इस तरह उपन्यास के पाठन से तत्कालिन युग और समय की प्रत्यक्ष तस्वीर सामने प्रस्तुत हो जाती है।

2. बौद्ध कालीन उपन्यास

इस काल से सम्बधित शास्त्री जी का केवल एक उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' से हमे उस समय की प्राचिन भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण समय 600 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व तक के समय का और उसमे होने वाली गॅधार से मगध और अग तक के राज्यो की राजनीतिक, धार्मिक सॉंस्कृतिक एव सामाजिक्र उहापोह का कलात्मक अकन प्राप्त होता है।

✵

आचार्य चतुर सेन शास्त्री जी का उपन्यास' वैशाली', 'राजगृह' 'चम्पा,' 'श्रावस्ती' आदि नगरो ऐतिहासिक राजनीतिक घटनाकृम का साथ ही भूभागो का विस्तार से वर्णन करते है।

'नगर वधू' का सस्थागार का सभा मण्डप मत्स्य देश के उज्जवल श्वेत सगमरमर का बना हुआ था, और उसकी फर्श चिकने और प्रतिबिम्बित काले पत्थर की बनी थी, उसकी छत एक सो आठ खम्भो पर आधारित है, सभा भवन के चारो ओर भीतर की तरफ नौ सौ निन्यानबे आठो कुल के सभ्यगण आ–आकर चुपचाप बैठ रहे थे, भवन के बीचो बीच सुन्दर चित्रित हरे रग के पत्थर की एक बेदी है । जिस पर दो बहुमूल्य पत्थर स्वर्ण खचित चॉदी की चौकियॉ रखी थी।' [11]

इस उपन्यास से उस समय की राजनीतिक समय का विस्तार से वर्णन प्राप्त होती है, उस समय भारत बहुत छोटे छोटे राज्य थे कुछ गणतत्र थे, कुछ राजतत्र थे, गणराज्यो मे 'वज्जियो,' 'मल्लो' एव 'शाक्यो' के राज्य प्रमुख थे ।'अवन्ती,' 'कौशल,' 'वत्स', 'मगध,' 'चम्पा' आदि राज्य सतात्मक थे'प्रघोत,' 'प्रसेनजीत,' 'उदयन,' 'बिम्बसार' एव 'दधिवाहन,' क्रमश इन राज्यो के सम्राट थे, लिच्छबियो की राजधानी वैशाली थी, इस सघ मे 'विदेह,' 'लिच्छवि,' 'क्षात्रिक,' 'वज्जि,' 'उग्र,' 'भोज' 'इक्ष्वाकु' और कौरव ये आठ कुल मिलकर गणराज्य का निर्माण किये हुये थे, यह गणराज्य शक्तिशाली और सम्पन्न था। कोई कोई गण अत्यन्त दुर्बल थे, राजनीतिक हलचले राजधानी तक ही सीमित थे सभी गणो की सरकारे अपनी वैदेशिक नीति मे विशेष सर्तक रहती थी । सरकारो के गुप्तचर विभाग पर विशेष बल दिया जाता था, जासूसी कार्यो के लिये विष कन्याओ का उपयोग होता था। जिसमे मगध राज्य की '' कुडली '' ऐसी ही कन्या थी, वर्षेकार भी गुप्त भेदी थे । [12]

स्त्रियो के लिये राजा परस्पर लडाई करते थे,'वैशाली का महायुद्ध' भी एक स्त्री के लिये हुआ था। विलासिता एव ऐश मे डुबे राजा महाराजा सुरा–सुन्दरी के अलावा उन्हे कुछ दिखाई नही पडता था, कुण्डली के कारण ही'चम्पा' का पतन हुआ था, परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने के लिये राजा वैवाहिक सम्बन्धो को स्थापित करते थे ।[13]

गणराज्यो की अवस्था आज से भिन्न थी, गणपति का स्थान आज के स्वीकार के समान होता था, मतदान विभिन्न रग की शलाकाओ के माध्यम से होता था, गणराज्य की कार्य पद्धति पर भी उपन्यास मे विस्तार से प्रकाश डाला गया है, व्यवस्था परिषद मे प्रत्येक कुल का समान प्रतिनिधित्व था, प्रतिनिधियो की सख्या कुलो की सख्या पर आधारित थी, बाहर के व्यक्तियो को राज्य सेवाओ से वचित रक्खा जाता था।

इस उपन्यास के रचना काल के सामाजिक सॉस्कृतिक परिवेश का भी चित्रण करते ही इस समय नगर कम और गॉव अधिक थे । गॉव सम्पन्न थे, और उन पर मुखियाओ का शासन

होता था, खेती और पशु पालन मुखियाओ का पेशा था, बडे बडे व्यापारिक मार्ग थे, 'सार्थवाह' व्यापारियो का काफिला था । इस समय वैदिक काल से भिन्न परम्परा मे क्षत्रियो का स्थान ब्राहम्णो से भी उपर दिखाई देता है, दोनो मे काफी द्वेष और प्रतिस्पर्धा होती थी, ब्राम्ह्णो को अवसर पाने पर क्षत्रिय उन्हे नही छोडते थे, ब्राम्हण भी अन्दर ही अन्दर षडयत्र किया करते थे, और ब्राम्हणो को नीचा दिखाने के लिये बौद्ध जैन श्रमण आदि निरन्तर प्रयत्नशील रहते थे, क्योकि ब्राम्हण अछूतो का बडा अपमान करते थे, एक घटना इसी प्रकार की है, जब एक "चॉडाल मुनि " के अन्न मॉगने पर ब्राम्हणो ने उसे धक्के देकर निकालते हुअे कहता है कि " अरे दुष्ट चॉडाल तु अपने को मुनि कहता है । नही जानता, पृथ्वी पर केवल हम ब्राहम्ण ही दान पाने के प्रकृति अधिकारी है, ब्राहम्णो को ही दिया दान पुण्य फल देता है । अरे काणे चण्डाल तु हम ब्राहम्णो के सम्मुख बेदपाठी ब्राहम्णो की निन्दा करता है, याद रख हमारा बचा हुआ अन्न भले ही सड जाये और फेकना पडे पर तुझ निगठ चॉडाल को एक कण भी नही मिल सकता है, तु भाग।" [14]

इसके अतिरिक्त ब्राहम्ण स्वय भी लोलुप हो चुके थे। दासो की सख्या अधिक थी,, उन्हे पशुओ की भॉति खरीदा और बेचा जाता था, चत्पा की राजकुमारी की घटना इसका स्पष्ट प्रमाण है। इस काल मे गॉधार की सामाजिक स्थिति उत्तम थी वहॉ एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री के विवाह पर प्रतिबन्ध था। दासी प्रथा वहॉ नही थी,, परन्तु दूसरे जगह स्त्रियो की दशा बहुत ही खराब थी,, लोलुप सम्राट अत पुर मे भेड बकरियो के समान स्त्रियो को भर लेते थे, 'शिशु नाग वश' को आर्य धर्म मे प्रतिष्ठित करने वाले गोविन्द स्वामी जैसे महात्मा ने भी परस्त्री गमन करके 'वर्षकार' को जन्म दिया था। इसी प्रकार अज्ञात मे वर्षकार ने अपनी भगिनी 'मातगी' का उपभोग करता है। इतना ही सम्राट 'बिम्बसार' भी मातगी का उपभोग करता है। 'अम्बपाली' की यही दुर्दशा हुअी थी, वह असहाय थी, उसकी इच्छा न रहते हुअे भी 'नगर वधू' बनाई गयी। 'कुण्डनी' को कोडे मार मार कर विषकन्या बनाया गया। [15]

'गधार कुमारी' कलिग सेना का भी कोई मूल्य नही समझा जाता था। वह उदयन से प्रेम करती थी उसका विवाह प्रसेन जीत से कर दिया जाता है, 'चन्द्र प्रभा' सोमप्रभ से प्रेम करती है, पर उसका विवाह विद्डम से कर दिया जाता है। [16]

इस उपन्यास के समय पर सॉस्कृतिक जीवन भी विचित्र था, जिसमे इसकी ऐतिहासिकता ज्ञात हो जाती है। यज्ञ के माध्यम से ब्राहम्ण अपनी वासनाओ को शात करते थे, आर्य धर्म विलासिता के पक मे डूबा था, उनके धार्मिक क्रिया कलाप थे, यज्ञ तप और व्रत की प्रधानता थी,, यज्ञ के अलावा मॉस मदिरा का प्रचलन था यज्ञो के अवसर पर दास और दासियो का वितरण

*

होता था, अतिथि सेवा का बडा महात्म्य था। आर्य धर्म अस्त व्यस्त हो रहा था, ब्राहम्ण धर्म का ह्रास और जैन बौद्ध धर्म का उदय हो चुका था अधिकॉश लोग इन धर्मो के प्रति आकृष्ट हो चुके थे, सम्राट से लेकर व्यापारी धन कुबेर सभी बौद्ध धर्म की ओर झुक रहे थे । काशी जैसे आर्य सस्कृति के केन्द्र मे भी बौद्ध धर्म तेजी से बढ रहा था। 'सारनाथ' से ही भगवान बुद्ध ने अपनी शिष्य परम्परा का प्रारम्भ किया था, धर्म को आगे रखकर ब्राहम्ण केवल अत्याचार करने मे लगे हुअे थे, आर्य अधिकतर मघ, आलसी, घमण्डी और अकर्मण्य हो गये थे, वे यज्ञाडम्बरो की हास्यापद बिडम्बना मे फॅसे थे, या कोरे कल्पित ब्रम्हवाद मे, आखेट का भी प्रचलन था, सामन्त पुत्रो के साथ नगरवधू भी आखेट पर जाया करती थी। [17]

इन सभी उपयुक्त विवरण इस औपन्यासिक समय की ऐतिहासिक सामाजिक सॉस्कृतिक परिस्थितियो का विस्तार से अॅवलोकन हो जाता है। 'शास्त्री जी' ने स्वय लिखा है, कि-इस उपन्यास के माध्यम से एक तरफ जहॉ पॉचवी–छठी शताब्दी ईसा पुर्व की सम्पूर्ण धर्म नीति और समाज की रेखाचित्र खीचू , वही दूरारी तरफ मुझे अपनी बात की कहने के लिये जैन बौद्ध हिन्दी साहित्य तथा सस्कृति साहित्य के साथ साथ बैदिक साहित्य दर्शन, विज्ञान और मनोविज्ञान का भी अध्ययन करता जाऊॅगा, इस अवलोकन से हम इस निस्कर्ष पर पहुॅचते है, कि 'शास्त्री जी' ने जहॉ तत्कालिन युग एव समाज का अकन करते है, वही साथ मे ब्राहम्ण धर्म के ह्रास और बौद्ध एव जैन धर्म के उत्पन्न होने और विकसित होने की परिस्थति का भी वर्णन करते है।

3. मध्यकाल से सम्बन्धित उपन्यास

शास्त्री जी ने 1000 ई0 से 1500 ई0 तक की मध्यकालीन घटनाओ का उल्लेख कई उपन्यासो के माध्यम से करते है, जिसमे 'सोमनाथ' (10 वी और 11 वी शताब्दी) 'रक्त की प्यास', 'हरण–निमत्रण', 'पूर्णाहुति' (11वी शताब्दी) 'देवॉगना', 'बिना चिराग का शहर' (12वी और 13वी शताब्दी) एव 'लालपानी' (15 वी शताब्दी) के उपन्यास है।

इन उपन्यासो के रचना काल मे भारतीय इतिहास की तस्वीर पूरी तरह से बदल चुकी थी। देशी राजा महाराजा का शासन समाप्त हो चुका था या तो एकदम कमजोर अवस्था मे हो गया था भारत की धन सम्पति मदिरो, और महलो मे सचित थी, विदेशी आक्रमणकारी की ऑखे भारत की धन सम्पदा पर लगी हुअी थी, और इन्ही सब कारणो से 'महमूद' का आक्रमण निरन्तर होने लगा और लगभग 17 बार आक्रमण करके 'महमूद' ने यहॉ से अपार धन सम्पति को उठा कर ले गया, उसने यहॉ के राजाओ को पराजित किया। मदिरो को लूटा और पुजारियो का कत्ल करके एक मूर्ति भजक के रुप मे भारत की संम्पत्ति को नष्ट किया। इसी क्रम मे 'महमूद' का 1025, 26 का आक्रमण सोमनाथ मदिर जो गुजरात के कठियावड मे था, उस पर किया गया और

*

उसने अपार धन सम्पत्ति लूटी, इसी आक्रमण के आधार को लेकर शास्त्री जी का प्रसिद्ध उपन्यास सोमनाथ लिखा गया है।

उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति दयनीय थी, सम्पूर्ण देश छोटे छोठे राज्यो मे विभक्त था। इनमे एकता लाने की कोई प्रबल शक्ति न थी, राजपूतो के छोटे बडे राज्य पजाब से लेकर दक्षिण और पूर्व मे बगाल तक फेले थे, आये दिन इनमे परस्पर युद्ध हुआ करते थे

सबसे महत्वपूर्ण बात इस समय की राजनीतिक परिस्थिति मे यह थी, कि राजा शैव और हिन्दु होता था, तो मत्री उसका सैनी होता था, इससे राज्य की वाधा का भार जैनियो के ऊपर था। सेठ, साहुकार भी जैन होते थे, यह बात गुजरात मे थी, राजस्थान मे नही, शास्त्री जी के उपन्यास "रक्त की प्यास" मे एक जगह शैव राजा और जैन मत्री के भीषण युद्ध का उल्लेख मिलता है, राजस्थान, सिन्धु, मालव और गुजरात के शासको मे आपसी कलह, का बोल बाला रहता था, प्राचिन राजवश जर्जर हो चुके थे, मानसिक अन्धता राजवर्गियो मे फैली हुआी थी, नित्य युद्ध हुआ करते थे, ये युद्ध प्राय .किसी बिना प्रयोजन के निरर्थक और विजय के लिये किये जाते थे, "रक्त की प्यास" मे राजा भीमदेव एव पृथ्वी राज की विजय युद्ध केवल एक कन्या को लेकर हुआ है। इसी प्रकार "पूर्णाहुति" उपन्यास मे पृथ्वीराज द्वारा सयोगिता के अपहरण की बात को लेकर युद्ध होता है। [18]

"सोमनाथ" पर महमूद जिस समय आक्रमण करता है उसे समय गुजरात की गद्दी पर 'चामुण्ड राय' ऐसा आलसी एव आफीमची राजा था। किन्तु उसी समय घोधा बापा धर्मगज देव ऐसे प्रतापी राजा भी थे पर वे परस्पर सगठित नही थे, केवल युद्ध करके कटना मरना ही जानते थे सोमनाथ लुट जाने बाद भी भारत की राजनीतिक स्थिति मे कोई परिवर्तन नही हुआ था। [19] इसके बाद ही पृथ्वी राज और भीमदेव से युद्ध होता है, 'पृथ्वीराज' 'सयोगिता' का अपहरण करने के लिये कन्नौज पर चढ आता है, 'सयोगिता' हरण तो कर लिया पर क्षेत्रीय राजाओ का सहयोग खो दिया, इसी परिस्थिति मे जब 'मुहम्मद गोरी' आक्रमण करता है, तो उसको बुरी तरह पराजित होना पडता है, और भारत की सत्ता मुसलमानो के हाथ मे चली जाती है। [20]

इसके बाद भी भारत सोता रहा, किसी को भी सुझ बूझ से युद्ध प्रणाली अपनाने पर जोर नही दिया और 'अल्लाउद्दीन खिलजी' के आक्रमण के समय दक्षिण तक के हिन्दू राजाओ को पराजित कर मुसलमानो का एक क्षत्र साम्राज्य कायम हो गया। 15 वीं शताब्दी मे भी भारत की यही दशा रहती है, कच्छ प्रदेश के छोटे–छोटे राजा जो आपस मे लड रहे थे धीरे धीरे मुसलमानी सत्ता के अधीन हो गये । [21]

*

शास्त्री जी ने उपन्यासो मे उस समय के सॉस्कृतिक जीवन का बडा ही सजीव चित्रण करते है। महमूद सोमनाथ को लुटा उसने राज सत्ता स्थापित करने की कोशिश नही की क्यो की वास्तव मे वह एक लुटेरा था। वह देवालय को भग कर दिया। रुढिवादी ब्राहम्ण, पूजारी अपने घमण्ड और कट्टरता से मन्दिरो को नष्ट करवा रहे थे, जनता अध विश्वासो का शिकार थी, मन्दिरो मे धर्म के नाम पर अनैतिक कर्म होते रहे, वाममार्गी घुर्त साधुओ के घमण्ड के कारण ही सोमनाथ देवालय का पतन हुआ था, उस समय त्रिपुर सुन्दरी के मदिरो मे नरबलि खुलेआम दी जाती थी, ब्राहम्ण यज्ञ एव वेद पाठ अपने अधिकार मे सुरक्षित रखे हुये थे उसको प्रकार के धार्मिक उत्सव को भौरा सोमनाथ से मिलता है। [22]

इस तरह से इन उपन्यासो मे मध्य कालिन समाज की तत्कालिन तस्वीर स्पष्ट होने लगती है, उस समय महमूद के साथ आये कुछ मुसलमान लेखको से भी भारत की राजनीति के बारे मे जानकारी मिलती है, "अलबरुनी" लिखता है –"हिन्दू लोग अभिमानी है, वे विदेशियों को मलेच्छ कहते है, और उनमे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही रखते थे, यद्यिप वे ऐकेश्वरवादी थे, पर मूर्तिपूजा पूरे देश मे फैली हुई थी देश मे भिन्न–भिन्न जातियॉ थी, परन्तु सब लोग एक ही गॉव या शहर मे रहते थे, और परस्पर मिलते जुलते भी रहते थे, बाल विवाह न होने से विधवाये आग मे कूदकर मर जाती थी । शास्त्री जी ने 'सोमनाथ' उपन्यास मे तो 'अलबरुनी' द्वारा वर्णित सभी कथानक और सामाजिक प्रवृत्तियो का सामने उसी रुप मे रखते हुये दिखाई देते है, जैन, बौद्ध धर्म का पतन एव शैव, वैष्णव धर्म अभी भी प्रबल थे समाज मे कुरुतियॉ और अधविश्वास फैले हुये थे, छुआछूत का प्रचलन तेज था, देव स्वामी इसी छुआछूत का शिकार होकर यवन बन गया था।

बाल–विवाह प्रचलित था, विधवा की स्थिति दयनीय होती थी, क्योकि 'सोमनाथ' उपन्यास का 'कृष्णस्वामी' ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति भी अपनी एक मात्र पुत्री 'शोभना' के विधवा हो जाने पर भी पुन विवाह नही कर सका था। [23]

धन सम्पदा उस समय देश मे बहुत थी, परन्तु इस सम्पदा के भोक्ता देश के सब लोग न थे, केवल राजा ब्राहम्ण और सेठ लोग ही उसे उपभोग करते थे, शेष लोगो की दशा दयनीय थी, राजमहलो मे धन को भोग विलास के रुप मे खर्च करते थे, उदाहरण के लिये गुर्जरेश्वर नरेश " कुमार पाल " "रक्त की प्यास" उपन्यास का भीमदेव और पृथ्वीराज " पूर्णाहुति " उपन्यास के पात्र तो पूरे धन को ही भोग–विलास मे खर्च करते थे, दास दासियो के फौज के बिना इनका काम नही चलता था, घरो मे स्त्रियो का जमावडा लगा रहता था, राजा के विलासी और आलासी होने से जनता की दशा खराब हो चुकी थी। [24]

4. मुगलकाल के उपन्यास

इस प्रकार शास्त्रीजीइतिहास मे आगे बढते हुऐ मध्यकालीन राजपूती, शौर्य, वैभव, विलासिता एव अक्लडपन के चित्रण के साथ साथ आचार्य 'चतुर सेन शास्त्री जी' ने मुगल वैभव एव विलासिता का बडा ही यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। 'शास्त्री जी' ने 16वी और 17वी शताब्दी मे भारत के राजनैतिक इतिहास को दो उपन्यासो "आलमगीर और सहयाद्रि" की चट्टाने ' के माध्यम से देश के राजनैतिक, सॉस्कृतिक, सामाजिक समय को चित्रित करते है। इस समय तक मुगल भारत मे प्रतिष्ठित हो चुके थे, और अकबर ने पूरे भारत को जीतकर एक शक्तिशाली साम्राज्य स्थापित कर चुका था, वास्तु कला का विकास बहुत तेजी से हुआ और बाहशाह ज्यादा से ज्यादा धन को मस्जिद किले, महलो को बनवाने पर खर्च करते थे, और जनता पूर्ण रुप से मुगलो के अधीन हो चुकी थी, मुगल काल की वास्तुकला ससार मे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी, किलो के भीतर तो एक से बढकर एक शोभनीय खास महल बनाये गये थे, बादशाह अपने को रहने के लिये किलो मे दिवाने आम दिवाने खास, आदि महलो का निर्माण करवा रहे थे, एक से बढकर एक गुम्बजो का निर्माण हुआ था, ससार प्रसिद्ध 'ताजमहल' एव 'एतमादुद्दौला' का मकबरा स्थापत्य कला का अनोखा उदाहरण है। [25]

शास्त्री जी ने अपने उपन्यास " आलमगीर " मे ऐसी वस्तु कला का विस्तार से वर्णन करते है, बेगम के महलो की बनावट सगमरमर की थी, इस उपन्यास मे "आम खास कर दरबार" "तख्तेताऊस" "दिल्ली का लाल किला" "खासगाह" आदि का चित्र बडे ही विस्तार से मिलता है, खम्भो और दिवारो पर सच्चे जवाहरात की पच्चीकारी इतनी भव्य और कलापूर्ण थी, कि हम उसे उस युग की स्थापत्य कला का एक आदर्श नमूना कह सकते है। [26]

इस काल की सामाजिक स्थिति विशेष उत्तम न थी, एक ओर 'मुगल बादशाह' का दरबार एश्वर्य शान–शौकत एव भोग विलास का आगार था। तो दूसरी तरफ जन साधारण दुखी और गरीबी से त्रस्त था। हिन्दु मुसलतानो का आपसी भेद भाव दूर नही हो पाया और मुसलमान कट्टर होने के कारण दूसरे धर्मों की इज्जत नही करते थे, धर्म का समाज पर पूर्ण प्रभाव था, बादशाह और उसके दरबारी विलासी हो गये थे हरम मे लाखो स्त्रियो के ऊपर करोडो रुपये खर्च किये जाते थे हरम मे बेगमत के अतिरिक्त, 'वासवानियो', 'कचनियो', 'मुगलनियॉ' और 'उस्तरनियॉ' आदि स्त्रियॉ रहती थी। मुगल महिलाओ का सम्बध आनन्द मे खराब सगीत और फूलो की महक मे व्यतीत होता था। हरम के निवासी रातदिन के करोडो दीप–हीन कृषको की कमाई से निष्ठुरता पूर्वक उगाहे धन को पानी की तरह बहाते रहते थे मदिरा–पान पेशा बन गया था। [25] 'शाहजहॉ' एक कामुक बादशाह था, उसके राज्य मे सुन्दर स्त्री का सतीत्व हमेशा सकट मे रहता था।

*

प्रत्येक वर्ष खिराज कर को साम्राज्य भर के सूबेदारो को एक नियत तादात मे रग महल के लिये सुन्दर सुकुमारियो के लिये भेजा जाता था। [28]

'औरगजेब' के काल मे भोग विलास तो अवश्य ही कुछ कम हो गया था, किन्तु उसकी धार्मिक कट्टरता के कारण समाज की दशा और भी दयनीय हो गई थी। उसके हिन्दू विरोधी कार्यों से हिन्दू समाज मे अशान्ति व्याप्त हो गई थी, राज्य के पहले ही वर्ष मे उसने नये मदिरो के निर्माण का निषेध और पूराने मदिरो को नष्ट करने की आज्ञा जारी कर दी थी। [29] उसने अनेक मदिरो को भ्रष्ट किया और नष्ट करके उसके स्थान पर मस्जिदो का निर्माण किया। मथुरा का नाम बदल कर इस्लामाबाद रख दिया और जनता मे गतिविधि के निगरानी के लिये उसने जगह जगह "मोहतशिव" की नियुक्ति कर दी थी। एक ओर भोग विलास की मात्रा बढ रही थी, धर्म पर कुठारघात हो रहा था, दूसरी ओर किसानो की स्थिति बिगडती रही थी, आबादी कम थी, खेती के तरीके रद्दी थे, लाखो करोडो किसान असहाय पडे थे, अधेर गर्दी यहॉ तक बढ गई थी कि उनके बाल बच्चो को गुलाम बना लिया जाता था। [30]

वैसे तो राज्य मे आर्यो की स्थिति दौलत खजानो मे भरी हुयी थी, खजानो मे बडे–बडे कीमती जवाहरात ककड, पत्थर की तरह ढेर पडे हुए थे,'शाहजहॉ' के काल मे तो कई उमरा जब मर जाता था तो उसकी सारी सम्पत्ति शाही खजाने मे जमा हो जाया करती थी, उसने बडे बडे खर्चीले कार्य किये, उसने हिन्दुओ पर जजिया लगा दिया और बोझ पडने से हिन्दू व्यापारी शहरो को छोडकर गॉव की तरफ भागने लगे, व्यापार थोडे ही दिन मे चौपट हो गया। [31]

'शास्त्री जी' ने इन उपन्यासो मे उस समय की राजनीतिक गतिविधियो पर विस्तार से वर्णन करते है, उनके उपन्यास से पता चलता है, कि मुगल काल मे करोडो हिन्दू मुसलमान ऊँचे पदो पर विराजमान थे, बादशाह को सदैव युद्ध के लिये तत्पर रहना पडता था उसे शॉन्ति काल मे भी बहुत बडी सेना रखना पडता था। इस सेना पर अपार व्यय किया जाता था, जल सेना नही थी। सम्पूर्ण साम्राज्य मे कही न कही विद्रोह हुआ करते थे, नदियो और बन्दरगाह सब विदेशियो के लिये खुले थे, वास्तव मुगल शासन सैनिक शासन था और पूर्ण रुप से खोखला होता जा रहा था, सुदूर प्रॉन्तो के सूबेदार बडी बडी सेना रखकर शक्तिशाली हो गये थे, और लूटखसोट तेजी से बढ गया था क्यो कि 'शाहजहॉ' के रुग्ण होते ही उत्तराधिकार का युद्ध इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'शाहजहॉ' की बडी बेटी 'जहॉआरा' का राजनीति मे गहरी दिलचस्पी थी, स्वय बादशाह और दारा को अपने इशारे पर नचाता रहती थी, 'शाहजहॉ' की दूसरी बेटी 'रोशनआरा' 'औरगजेब' की जासूस थी, और उसका पक्ष लिया करती थी। [32]

*

'सहयाद्रि की चट्टाने' उपन्यास मे उस समय की भारत की दयनीय स्थिति का वर्णन आता है, औरगजेब के भ्राता भी युद्ध मे लीन थे, 'मराठे,' 'राजपूत,' 'सिक्ख,' 'जाट' सभी हिन्दू राजा विद्रोही बन गये थे, सहयाद्रि की चट्टाने उपन्यास मे औरगजेब की दक्षिण नीति स्पष्ट रुप से उभर कर आती है, शास्त्री जी स्वय लिखते है कि "महाराष्ट्र का उत्थान ऐसी उग्रता से प्रचण्ड अग्नि शिखर के समान हुआ था, कि उसने मुगल साम्राज्य को भस्म ही कर दिया वास्तव मे सहयाद्रि की यह दिवानगी शताब्दियो से गहराई मे दबी हुई थी, मुगल साम्राज्य पर सिक्खो के, राजपूतो के बुन्देलो के, जाटो के और दूसरी सत्ताओ के, जो धक्के लगे, वे मुगल साम्राज्य को केवल हिलाकर ही रह गये, किन्तु सहयाद्रि की ज्वाला तो मुगल साम्राज्य को भस्म कर देती है। दक्षिण मे 'बीजापुर' और 'गोलकुण्डा' नामक दो छोटी रियासते थी, जहॉ 'शिवाजी' को अपनी शान्ति आजमाने का अवसर मिला था, 'शिवा जी इनमे युद्ध करके ओर सन्धि करके मुगलो के विनाश के कारण बने, मराठो से डरकर 'बीजापुर' और 'गोलकुण्डा' राज्य सन्धि करने के लिये वाध्य हुए। 'आदिलशाह' शराब पीते पीते मर गया। [33]

'औरगजेब' उस समय के सॉस्कृतिक जीवन को नष्ट करने पर लगा था, उसने हिन्दुओ के त्यौहार बन्द कर दिये, मनाने वालो को दण्ड दिया जाता था, उसने मुसलमानो के 'मुहर्रम' और 'ताजिये' पर भी रोक लगा दी थी । सहयाद्रि की चट्टाने उपन्यास मे महाराष्ट्र की धार्मिक स्थिति का बडा ही अच्छा विवरण प्राप्त होता है। उत्तर भारत से भिन्न महाराष्ट्र मे एक धर्म राष्ट्र धर्म था। अनेक सुधारक जैसे 'नामदेव,' 'एकनाथ,' 'रामदास,' 'केशवस्वामी,' 'जर्नादन पन्त' आदि ने मराठो को एकसूत्र मे बॉधने की कोशिश करते थे, जाति पाति का उतना बन्धन नही था। उन्होने महाराष्ट्र की लोक भाषा मे ग्रथ लिखे, महाराष्ट्र की एकता को पढरपुर के देव मदिर और उससे सम्बधित यात्राओ से भी बडा लाभ पहुँचा था। यह पवित्र स्थान मराठो का सबसे बडा तीर्थ स्थल था। इस प्रकार एक भाषा एक धार्मिक प्रवृत्ति और एक सामाजिक सस्कारो को मिलाकर महाराष्ट्र मे उस राज्य क्रॉन्ति का उदय हुआ, जिसने मुगल तख्त के भीतर उसकी कब्र का निर्माण किया।

5. ब्रिटिश शासन प्रणाली के उपन्यास

शास्त्री जी ने आधुनिक कल के समय को अपने उपन्यास "सोना और खून" मे विषय वस्तु के रुप मे उस समय के राजनीतिक गतिविधियो को स्पष्ट करते है।

मुगलो की सत्ता छीड होने से धीरे यूरोप की व्यापारिक कम्पनियॉ 'भारत' मे व्यापार करने के उद्देश्य से आती रही और इन्होने धीरे धीरे यहॉ की राजनीति मे हस्तक्षेप कर अपनी शक्ति को प्रतिष्ठित करना चाहती रही, उसने यहॉ के देशी राजाओ और नवाबो से युद्ध किया, 'बगाल,' 'मद्रास' और 'बिहार,' 'उडीसा' मे धीरे धीरे अपनी शक्ति को स्थापित कर ली, अग्रेजो ने, फ्रेच, डच

*

और पुर्तगालियो से व्यापारिक अधिकार छीनकर स्वय एक शक्तिशाली रुप मे प्रतिष्ठित हो गई। उन्होने भारत के बादशाहो से नवाबी छीन कर स्वय दिवानी को अपने हाथ मे ले लिया और अपने प्रशासन को भारत की जनता पर लागू किया, भारत की दशा को अग्रेजो के समय मे अत्यन्त ही खराब हो गई, मुसलमानो के विपरीत अग्रेजो ने यहाँ की धन सम्पत्ति को 'इग्लैण्ड' भेजना शुरु किया और भारत की जनता गरीबी से पिसने लगी।

इस तरह अग्रेजो के समय साधारण प्रजा की दशा अत्यन्त खराब हो गई थी, सम्पूर्ण भारत मे अराजक्ता फैली हुयी थी, देश के निर्धन और धनी व्यक्ति सभी उनके नाम से कॉपते थे। अँग्रेज इनसे मनमाना धन वसूल करते थे वास्तव मे मुगल साम्राज्य के पतन के बाद वह इस तरह से जमीन पडा हुआ था कि कोई शक्ति आये और उसे उठा कर ले जाये, अग्रेज शैने शैने भारत को अपने शिकजे मे कसते जा रहे थे उन्होने बडे मॅहगे और जटिल कानूनो का प्रचलन किया, जो टैक्स नही दे पाते थे, उनके लिये सारे कानून के दरवाजे बद थे । [34]

सभी बडे बडे पद अग्रेजो के लिये सुरक्षित थे, और शासन मे विश्वास और जिम्मेदारी के काम पर किसी भारतीय को नही रक्खा जाता था। विद्यालयो मे अधिक से अधिक फीस लेते थे वास्तविकता तो यही थी कि भारतीय जो उस समय जीवन के उद्योग धन्धो मे व्यस्त थे, असयोग, नालायक, अयोग्य बनाकर उन्हे दबा दिया गया था। इस समय भी भारत के राजा भोग विलास मे तल्लीन थे, अवध के नवाब 'नसीरुद्दीन हैदर' के समय तक आते आते अवध की दशा अत्यन्त ही दयनीय हो गई थी। वे अग्रेजो के कठपुतली मात्र रह गये थे अग्रेज भारतीयो को समझौता, सहायता देकर अपनी मुठठी मे कसने की कोशिश मे लगे हुए थे । [35]

वैसे भी इस समय तक हिन्दू–मुस्लिम मे एकता की भावना तेजी से बढ गई थी, साम्प्रदायिक झगडो को बढाना और फूट डाल कर उन्हे लडाना अग्रेजो की नीति का अनिवार्य अग बन चुकी थी। अग्रेज सभी से रिश्वत लेते थे, सारी मालगुजारी हडप लेते थे, स्त्रियो की दशा नष्ट प्राय थी, यूरोपीय स्त्रियो के साथ होने से अग्रेज यहाॅ व्याभिचार मे फॅसे हुए थे विरोध करने पर उनकी सम्पत्ति जब्त कर लेना और कोडे से पीटने का आदेश जारी कर दिया जाता था। अपहरण और बलात्कार के साथ, भ्रूण हत्याये भी खूब हो रही थी। बालिकाओ का वध होता था। सतीयो पर निर्मम अधर्म और अत्याचार लागू कर दिये जाते थे । शूद्र स्त्रियो का अधिकार न होने की वजह से लोग छिपकर उनसे अभिचार मे लिप्त रहते थे ।

इन सभी बातो का चित्रण उपन्यासकार अपने उपन्यास मे करता है, देश की आर्थिक स्थिति गिर चुकी थी, प्रजा पिस रही थी, अग्रेज जनता को लूटकर अपना घर भर रहे थे । [36]

*

भारत मे अब तक केवल दो प्रधान जातियॉ हिन्दू और मुसलमान थे और अग्रेजो के आने के बाद ईसाई मत का बोलबाला शुरु हुआ लोग सुरक्षा पाने की दृष्टि से अपने धर्म का त्याग कर ईसाई बनना शुरु कर दिये थे । हिन्दू रुढीवादी परम्परा से अब भी ग्रसित था और अग्रेज हिन्दू मुसलमानो को दूध और पानी की तरह जो मिले थे उन्हे अलग करने की पूरी कोशिश पर जुटे थे।

सन् 1757 का 'प्लासी का युद्ध' एव सन् 1764 के 'बक्सर के युद्ध' के पश्चात अग्रेजो की शक्ति बढ गई थी। उनका बगाल एव अवध पर पूर्ण अधिकार हो गया था। मराठा सघ टूट चुका था, उनका केन्द्र पूना अग्रेजो के अधिकार मे आ गया था। पेशवा को विठूर मे कैद कर दिया गया। 'रामेश्वरम' से लेकर 'दिल्ली' तक सभी केन्द्र अग्रेजो के हाथ मे आ गये थे । 'लार्ड डलहौजी' भारत मे 1848 मे आया और उसने अपनी हडपनीति से देश के बचे खुचे राज्यो को भी हडप लिया इस तरह भारतीयो मे उसकी नीति से गहरा असतोष व्याप्त हो गया और परिस्थितियॉ अग्रेजो के प्रतिकूल बनती जा रही थी। [37] सारे राज्यो मे विद्रोह की आशका फैलती जा रही थी, लोगो ने विद्रोह की भावना को स्वाधीनता के रुप मे ग्रहण किया, लेकिन सभी लोगो मे सगठन का आभाव था। एक नेतृत्व का आभाव था इस विकट परिस्थिति मे जब 1857 की क्रान्ति हुई थी, वह कुछ दिन मे ही समाप्त हो गई और धीरे धीरे अग्रेजो ने पुन अपने राज्य पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार शास्त्री जी ने 'सोना और खून' उपन्यास मे इस समय की गतिविधियो का पर्याप्त रुप से प्रकाश डाला है। "सोना और खून" के द्वितीय खण्ड मे इस क्रॉन्ति को कथा के रुप मे परिणित किया गया है। [38]

शास्त्री जी ने "सोना और खून" उपन्यास मे भारत के बाहर की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियो का सफल चित्रण करता है। इसमे 17वीं से 19वी शताब्दी तक के ससार के विभिन्न देशो की उन राजनीतिक एव सामाजिक घटनाओ का वर्णन प्राप्त होता है। इस घटना के माध्सम से उपन्यासकार ने तत्कालीन विश्व की राजनीतिक सामाजिक एव सॉस्कृतिक परिस्थितियो का भी अकन करता है। 'इग्लैण्ड', 'चीन', 'फ्रॉस', 'जर्मनी', 'जापान', 'रुस', 'पोलैण्ड' आदि देशो की परिस्थितियो का वर्णन है। [39]

इस उपर्युक्त विवेचन के आधार पर भारत की तत्कालीक राजनीति परिस्थितियॉ स्पष्ट हो जाती है, वैसे तो केवता ऐतिहासिक उपन्यासो मे ही देश काल, वातावरण समयएं का महत्व होता है। पर 'शास्त्री जी' 1857 की क्रॉन्ति के बाद के समय को भी अपने सामाजिक उपन्यासो के माध्यम से प्रस्तुत किया है। चुकि सामाजिक उपन्यासो पर हमे दृष्टि डालने पर शोध ग्रथ का

*

विस्तार अधिक हो जायेगा। इसलिये मै अपने विषय केवल ऐतिहासिक उपन्यासो के समय को ही स्पष्ट करने की कोशिश किया है'

संक्षेप में -:

मै भारत के आगे की गतिविधियो का वर्णन कर देना उचित समझाता हूँ। सन् 1857 की क्रॉन्ति के बाद भारतीय जनता मे स्वतन्त्रा का विकास होने लगा और 20 वीं शताब्दी के आरम्भ मे यह भावना भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस के नेतृत्व मे तेज हो गई आचार्य 'चतुर सेन शास्त्री जी' ने अपने सामाजिक उपन्यास "आत्मदाह" मे प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व और पश्चात की घटनाओ का बहुत ही अच्छे ढग से वर्णन करते है। प्रथम विश्व युद्ध के समाप्ती के बाद भारत मे अग्रेजो की शक्ति को धक्का लगा और वह चौकन्ना हो गई, इसी समय 1919 मे 'जलियॉवाला बाग हत्या काण्ड' हुआ। जिससे देश की जनता और जन नेताओ मे तीव्र असतोष फैल गया और गॉधी जी के नेतृत्व मे भारत के लोग आजादी की लडाई मे सक्रिय हो जाते है। [40]

द्वितीय महायुद्ध आते-आते असतोष की भावना सम्पूर्ण भारत मे व्याप्त हो चुकी थी। गॉधी जी का अहिसात्मक आन्दोलन तेजी से बढ गया उधर यूरोप युद्ध की ज्वाला मे जलकर राख हो गया था। 'हिटलर' जल, थल, वायु मे सर्वग्रासी महाकाल बनकर नर रक्त मे स्नान कर रहा था। ब्रिटिश साम्राज्य महा सकट से गुजर रहा था। कॉग्रेस के नेतृत्व मे बुर्जुग नेताओ " ठहरो और इन्तजार करो " के नीति पर भारत को स्वतन्त्र कराने की कोशिश करते रहे। 'जवाहर लाल' और 'सुभाष बोस' दोनो महत्वपूर्ण लोग एक जेल मे तो दूसरा देश के बाहर रहते थे, पर नजर अदाज रुप मे देश के युवाओ को क्रॉन्ति के लिये प्रेरित करते रहे थे सुभाष के भाषण देश की जनता को झकझोर दिया था। देश मे विद्रोही भावनाऐ व्याप्त हो चुकी थी। गॉधी सहित चोटी के नेताओ को जेल मे डाल दिया गया था। लगभग 4 करोड व्यक्तियो को कारागार मे ठूस दिया गया। 7 अगस्त 1942 का विद्रोह बहुत तीव्र था। यह खुला विद्रोह गोलियो की बौछारो मे बदल गया। विद्यार्थी की लाखो सख्या इस आन्दोलन मे सक्रिय थी। अन्त. महा युद्ध के 1945 मे समाप्त होने के पश्चात यह आन्दोलन भी दबा दिया गया। इन सभी घटनाओ का, अकन 'शास्त्री जी' ने अपने उपन्यास " धर्मपुत्र" के माध्यम से चित्रित करते है । [41] इस प्रकार अनेको विरोध क्रॉन्तियो के फलस्वरुप 1947 तक आते आते अग्रेजो ने भारत को छोडने के लिये तैयार हो गये 15 अगस्त 1947 को भारत छोडकर चले गये किन्तु भारत को दो खण्डो मे विभाजित कर दिया गया। जिन्ना ने पाकिस्तान के लिये तुरन्त एक्सन की कार्यवाही कीए प0 पजाब और पूर्वी बगाल मे मारकाट लूट पाट की बडी ही अजीब घटनाये 'धर्मपुत्र' उपन्यास मे देखने को मिलती है। [42]

*

इस 'शास्त्री जी' ने 1947 के बाद की घटनाओ का आकलन भारत की स्थिति का वर्णन उनके उपन्यास " उदयास्त " " बगुला के पख " एव " खग्रास " आदि उपन्यासो मे देखने को मिलती है। इन सामाजिक उपन्यासो मे स्वतत्रता के पश्चात की परिवर्तित होती हुआी भावनाओ, स्वार्थी नेताओ की लोलुपताओ एवं अन्य अनेक समस्याओ का सविस्तार वर्णन है।

सन्दर्भ - सूची

1 साहित्यालोचन	डॉ0 श्यामसुन्दर दास	पृष्ठ स0 – 210
2 काव्य का रूप	डॉ0 गुलाब राय	पृष्ठ स0 182
3 काव्य शास्त्र	डॉ0 भगीरथ मिश्र	पृष्ठ स0 – 27
4 काव्य शास्त्र	डॉ0 भगीरथ मिश्र	पृष्ठ स0 – 88
5 साहित्यालोचक	डॉ0 श्यामसुन्दर दास	पृष्ठ स0 – 212
6 काव्य शास्त्र	डॉ0 भगीरथ मिश्र	पृष्ठ स0 – 88
7 वय रक्षाम	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 294, 424 349
8 वय रक्षाम	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 423 425
9 भारतीय सस्कृति का इतिहास	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 242
10 वय रक्षाम	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 108 106 152
11 वैशाली की नगर वधू	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 2, 285
12 वैशाली की नगर वधू	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 615 620
13 वैशाली की नगर वधू	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 232 240
14 वैशाली की नगर वधू	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 299 454
15 वैशाली की नगर वधू	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 153 357
16 वैशाली की नगर वधू	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 287, 100
17 वैशाली की नगर वधू	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 615, 620
18 अपने विचार		
19 रक्त की प्यास	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	परिचय
20 पूर्णाहुति	आचार्य चतुसेन शास्त्री	परिचय
21 बिना चिराग का शहर	आचार्य चतुसेन शास्त्री	परिचय
22 सोमनाथ	आचार्य चतुसेन शास्त्री	परिचय
23 भारत का इतिहास	डॉ0 ईश्वरी प्रसाद	पृष्ठ स0 – 177
24 हिन्दी साहित्य का द्वितीय	डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा	पृष्ठ स0 – 39, 40
25 अपने विचार		
26 आलमगीर	आचार्य चतुसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 4 से 58

*

27 आलमगीर — आचार्य चतुसेन शास्त्री — पृष्ठ स0 – 34, 35

28 आलमगीर — आचार्य चतुसेन शास्त्री — पृष्ठ स0 – 40, 41

29 सह्याद्रि की चट्टानें — आचार्य चतुसेन शास्त्री — पृष्ठ स0 48 52

30 आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य — डॉ0 शुभकार कपूर — पृष्ठ स0 387

31 आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य — डॉ0 शुभकार कपूर — पृष्ठ स0 – 393

32 आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य — डॅा0 शुभकार कपूर — पृष्ठ स0 – 394

33 आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य — डॉ0 शुभकार कपूर — पृष्ठ स0 – 395

34 अपने विचार

35 आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य — डॉ0 शुभकार कपूर — पृष्ठ स0 - 394

36 आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य — डॉ0 शुभकार कपूर — पृष्ठ स0 - 395, 396

37 सोना और खून — आचार्य चतुसेन शास्त्री — पृष्ठ स0 207, 309

38 सोना और खून — आचार्य चतुसेन शास्त्री — पृष्ठ स0 – 310 311

39 सोना और खून — आचार्य चतुसेन शास्त्री — पृष्ठ स0 – 112 118

40 आत्मदाह — आचार्य चतुसेन शास्त्री — पृष्ठ स0 288

41 आत्मदाह — आचार्य चतुसेन शास्त्री — पृष्ठ स0 – 281

42 धर्मपुत्र — आचार्य चतुसेन शास्त्री — पृष्ठ स0 – 15 135

(ग)
आचार्य चतुरसेन शास्त्री के औपन्यासिक प्रयोग के ऐतिहासिक सॉस्कृतिक संदर्भ

इतिहास ही घटनाओ को उपन्यास मे प्रयोग करने के सन्दर्भ मे उपन्यासकार के सम्मुख जो सबसे बडी समस्या खडी होती है, वह है कथावस्तु के सगठन की । इतिहास अपने प्रकृति रूप मे उपन्यासकार को न तो कोई बना बनाया कथानक दे सकता है और न कोई ऐसा ढाचा ही। जिसपर वह अपने उपन्यास का भवन खडा कर सके । इतिहास मे अनेक घटनाये होती है । उस समय सास्कृतिक अवस्था को ध्यान मे रखना पडता है । अनेक चरित्र होते है, किन्तु ये प्राय इतने असम्बद्ध और बिखरे हुए होते है कि उनके प्रकृति रूप को लेकर किसी कथा की कल्पना करना अत्यत कठिन हो जाता है । वस्तुत उपन्यासकार की प्रतिभा एव कल्पना ही ऐसी शक्ति है जिसके सहारे वह कथानक के विभिन्न विखरे तत्वो, घटना, चरित्र आदि को सकलित कर तथा उनकी पारस्परिक सगति एव सम्बन्ध का निर्धारण कर एक सूत्र मे सगठित करता है और उसे कथानक का रूप देता है ।

किसी उपन्यासकार के सम्मुख विशेष रूप से ऐतिहासिक उपन्यासकार के सन्मुख जो सबसे कठिनाई होती है, वह है ,उपयुक्त और उचित घटनाओ के तथ्यो के सकलन और सचय की। किसी उपन्यास के लिए कथानक अथवा उसके बीज पा लेना ही उचित नही होता है । जैसा कि ***"ए० टी० शेपार्ड"*** का कथन है कि– "इतिहास के प्रत्येक युग मे, प्रत्येक उपाख्यान मे प्राचीन राजभवन के प्रत्येक खडित अश मे, एक प्राचीन हथियार मे ध्वस्त समाधि के नाम मे, यहा तक कि काव्याश मे भी ऐतिहासिक उपन्यास का बीज दिया रहता है । इस बीज को पालने के पश्चात् उसे अकुरित करने तथा विकसित करने के लिए उपन्यासकार को अनुकूल भूमि ओर वातावरण की आवश्यकता होती है ।" [1]

प्रश्न उठता है कि ऐतिहासिक उपन्यास के बीज को अकुरित करने तथा उसे विकसित करने के निमित अगणित घटनाओ और चरित्रो के समूह मे से उपन्यासकार क्या चुने और क्या छोड दे । कथावस्तु के सगठन तथा निर्मित हेतु प्रयुक्त इतिहास के अगणित घटनाओ तथा चरित्रो मे से उपन्यासकार क्या ले, क्या छोड दे । यह बहुत कुछ उपन्यासकार के बुद्धि और विवेक पर निर्भर करता है, जिसमे उसका उद्देश्य भी सम्मिलित रहता है, किन्तु आवश्यक भी है कि उपन्यासकार का विवेक और अनुशासन ठीक वैसा ही हो, जैसा कि इतिहासकार का होता है।

इस सन्दर्भ मे *'डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी'* का विचार है कि– "इतिहास का सारा अतीत समान भाव से अज्ञात या ज्ञात नही होता है । साधारणत सुदूर अतीत के बारे मे तथ्यो की जानकारी कम होती है और निकट अतीत के सम्बन्ध मे अपेक्षाकृत अधिक । ऐतिहासिक उपन्यास का लेखक अल्पज्ञात तथ्य वाले सुदूर अतीतकाल की घटनाओ का सूत्र मिलाने के लिए कल्पना का अधिक आश्रय लेता है, और निकट अतीत का कम । उपन्यास का लेखक वास्तविकता की उपेक्षा नही कर सकता । वह अतीत का चित्रण करते समय भी 'पुरातत्व,' 'मानवतत्व,' और 'मनोविज्ञान' आदि की आधुनिक प्रगति से अनभिज्ञ रहकर थोथी कल्पना का आश्रय लेने से उपहासास्पद बन जाता है । इसलिए ऐतिहासिक उपन्यास का लिखना, कठिन कार्य होता है, इसमे छोटी–छोटी बातो के प्रति सावधान रहना पडता है । सामान्य सम्बोधन, शिष्टाचार के लिए प्रयुक्त शब्द और तत्कालीन अधविश्वासो के विरूद्ध जाने वाले वाक्याश भी 'रस बोध' मे बाधक हो जाते है ।" अत सुदूर काल के चयन मे जहा सुविधा है, वही असुविधा भी है ।

इसी प्रकार *"एच० वाटर फील्ड"* ने "इतिहास विश्रुत" घटनाओ के महत्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि– "ऐतिहासिक उपन्यासकार के लिए एक महान इतिहास विश्रुत घटना उन प्रासगिक कथाओ की अपेक्षा, जो सामान्य इतिहास से की जाती है, अधिक विस्तृत कथासूत्र प्रस्तुत करती है । इसी के ठीक विपरीत *"सेण्ट्सबरी"*– के अनुसार उपन्यास की विषयवस्तु के लिए ऐतिहारिक घटनाये अनउपयुक्त और घटिया होती है, और यदि महत्व की होती है भी तो तभी होती है, जब वे किसी कल्पित चरित्र अथवा कम ज्ञात चरित्र से जुडकर कथा के विकास एव पात्रो के अदृष्ट को सुलझाने मे सहायता करती है ।" इसी प्रकार *"लेस्ली स्टेफिन"* ने कहा हे कि– "किसी उपन्यास मे ऐतिहासिक चरित्र प्राय हमेशा ही आपत्ति जनक एव अनुपयुक्त होता है। *"सर वाटर रैले"* ने अपनी पुस्तक *"इग्लिस नावेल"* मे लिखा है कि– "ऐतिहासिक उपन्यासो के प्रधान पात्र स्वय ऐतिहासिक नही होने चाहिए ।" [2]

उपर्युक्त विवरण से हम इसी निष्कर्ष पर पहुचते है कि उपन्यासकार यदि किसी ऐतिहासिक घटना को आधार बनाकर गभीर और जीवित कृत प्रस्तुत करना चाहता है तो उसके कार्य का एक अत्यत महत्वपूर्ण अश यह है कि वह अभीष्ट काल मे अपने आपको अकण्ठ डुबा ले। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक स्थल का गभीरता से अध्ययन करे। सम्पूर्ण उपलब्ध प्रमाणो और आप्त बचनो को जाने परखे । परस्पर विरोधी साक्ष्यो पर अपना कोई स्वतत्र निर्णय दे । यह निश्चय करे कि किस तथ्य का प्रयोग किया जाय और किसे छोड दिया जाय ।

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' अपने ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास की घटनाओ का सकलन करने मे पूरी तरह सक्षम थे । और उपर्युक्त विवरण पर भी खरे उतरते है । वह अनेक

प्रकार की सावधानियो, कमियो और दोषो को दूर करने का प्रयास करते हुए अपने उपन्यासो का सृजन करते है । वैसे तो उपन्यास लेखन की दृष्टि से 'शास्त्री जी' का स्थान 'वृन्दावन लाल वर्मा जी' से पूर्व आता है, पर ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप मे बहुत बाद प्रसिद्ध हुए थे । इनके द्वारा लिखित और प्रमाणित ऐतिहासिक उपन्यास कालक्रम की दृष्टि से "खवास का ब्याह" (1932), 'वैशाली की नगरवधू' (1949), 'पूर्णाहुति' (1949), 'रक्त की प्यास' (1950), 'सोमनाथ' (1954), 'आलमगीर' (1954), 'वय रक्षाम' (1955), 'सह्याद्रि की चट्टाने' (1960), 'सोना और खून' (1957–1960) के समय मे लिखा गया था । जिसमे वैशाली की 'नगरवधू' उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति मानी जाती है ।

'शास्त्री जी' इतिहास को अपने ढग से स्वीकार करते है, अर्थात् इतिहास के सत्यो के प्रति इन्हे बडी निष्ठा थी । शास्त्री जी उसका रम ग्रहण करते है, या हम यू ही कहे कि 'शास्त्री जी' इतिहास के विशिष्ट सत्य के स्थान पर चिर सत्य को स्वीकार करते है । इनके अनुसार– "वही चिर सत्य है । ऐसे कथानको मे साहित्यकार उसी चिर सत्य को अपनाता है । इतिहास के विशिष्ट सत्य का पूर्ण ज्ञान नही होता, होने पर भी वह जान–बूझ कर उनकी उपेक्षा कर सकता है, क्योकि उसका काम समाज को तत्कालीन वेग दिखाना पडता है ।" [3] इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए 'शास्त्री जी' ने अपनी कल्पना का खूब प्रयोग करके उपन्यासो मे नये पात्र, नई घटनाये, नये प्रसग, को गढे ही हैं साथ मे ख्याति मे प्राप्त पात्रो को भी नया मोड दिया है । ये पात्र उपन्यासो मे ऐतिहासिक दृष्टि मे सत्य नही जान पडते, किन्तु लेखक की सामाजिक दृष्टि और सामाजिक दृष्टि और उद्देश्य को सफलता से प्रफिल अवश्य करते है । 'शास्त्री जी' अपने को मानवता का नही बल्कि मानव का पुजारी मानता है और वे 'घृणित', 'पापी', 'अपराधी', 'खूनी डाकू', 'हत्यारे', 'व्यभिचारी', तथा 'पागल' मनुष्यो को भी अपना देवता मानता है । मनुष्य के प्रति यह दृष्टि जो मनुष्य के भीतर सौन्दर्य देखने की है । यह 'शास्त्री जी' की एक नई देन है ।

शास्त्री जी के उपर्युक्त विचारो को देखते हुए हम उनके उपन्यासो मे इतिहासिक सॉस्कृतिक की सदर्भो को विभिन्न उपन्यासो के माध्यम से स्पष्ट करने की कोशिश करेगे । यदि हम शास्त्री जी के उपन्यासो को लिखने के कालक्रम को ध्यान से हटा दे और भारत की सस्कृति के विकास के आधार पर उनके उपन्यासो पर दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि उनका उपन्यास "वय रक्षाम" भारत की प्राचीन काल की 'वैदिक परम्परा' को समाहित करते हुए पौराणिक कथाओ का विवेचन करता है। यह उपन्यास मूलत 'तुलसी' और 'बाल्मीकि रामायण' से लिया गया है । शास्त्री जी के उपन्यास मे यह कथा भिन्न रूप मे इसमे शास्त्री जी के कल्पना शक्ति को देखने का अवसर मिलता है । वे रावण को "जगदीश्वर" के रूप मे प्रतिष्ठित कर उसे नवीनता प्रदान

करते है, साथ ही 'राम–रावण', 'मेघनाद', 'कुम्भकर्ण', 'इन्द्र', 'वशिष्ठ', 'लक्ष्मण', 'सीता', 'हनुमान', 'विश्वामित्र' आदि ऐतिहासिक पुरूषो को स्थान दिया गया है ।

सम्पूर्ण जम्बू द्वीप के आर्य दल की राज्यसत्ता को दलित कर रावण ने धर्म और अध्यात्म पर भी छाप लगाई है । रावण के वेद मे 'शिश्न पूजा' का अधिक महत्व है । युद्ध के समय भी स्वर्ण से निर्मित लिग को भी अपने साथ ले जाता है । बालू की वेदी पर स्थापित कर पूजा करता है । 'रावण' और 'दैत्यबाला' के माध्यम से 'शास्त्री जी' ने 'रावण' के कामुक और विलासी रूप को भी स्पष्ट किया है । वह मद्यपान करता है, 'दैत्यबाला' के साथ रमण करता है । 'शास्त्री जी' के शब्दो मे– "तमाल की सघन छाया मे छनकर अपराह्न की सुनहरी धूप उसके अनावृत्त व्यवसन पूर्ण अगो पर पड रही थी, सरोवर मे पक्षी कलरव कर रहे थे । दोनो निश्चल, निस्पद, उस विजय उपवन मे पर्ण शैय्या पर एक दूसरे मे समाप्त हुए आनन्दा–तिरेक से तृप्त सुप्ता विस्मृत पडे थे , फिर तरूणी ने अपनी भारी–भारी पलको मे बकिम कटाक्ष भर, आवाद तरूण को विवसन देख दातो मे लाल जीभ दबाकर, सीत्कार सी करते हुए मद स्वर मे कहा– 'अब ररिरम्पणदे, आप्याचित कर, चुम्बन कर, सर्वांग छुम्बन कर । उसने दोनो भुज मृणाल ऊचे किये तरूण ने आल्हाद अतिरेक से आवेसित होकर सन्ध्य वनश्री सी कमनीय कामिनी को अपनी बलिष्ठ बाहुओ से उठाकर वक्ष मे समेट लेता है और उसके प्रत्येक अग के अगणित चुम्बन ले डाले । आनन्दाविभोर हो तरूणी ने अपनी भुज बल्लरी रमण के कण्ड मे लपेट सत सहस्र प्रति चुम्बन लिये । जैसे उसका जगत ही खो गया हो ।"[4]

इस तरह शास्त्री जी ने अपने उपन्यासो मे राक्षसो के भी अच्छे गुणो को उद्घाटित करते हुए स्पष्ट किया है कि राक्षसो की अपनी मर्यादाये होती है । 'रावण' के अनुसार– "स्त्री एक ही पुरूष की अनुबन्धित हो और एक ही रमण करे, कुमारी का हरण हमारे लिये वैद्य है । हरण की गयी स्त्रिया हमारी अनुबन्धित होती है । मै रमण नही रावण हू , "पौलस्त्य वैश्रवण रावण", इसी भावना से प्रेरित होकर वह सीता का हरण करता है और अपनी बहन 'सूर्पनखा' को भी बाध्य करता है कि वह अपने प्रेमी के साथ भाग जाये । इस उपन्यास मे रावण का चरित्र दुराचारी अधिक और अच्छा कम है, फिर भी शास्त्री जी ने उसमे मानवीय गुणो को खोजा है, और वह "रक्ष सस्कृति" की स्थापना कर अपने राक्षस वश को स्थापित करता है । [5]

'राम' की कथा प्रासगिक रूप मे ली गयी है । राम–वनवास के समय मे प्रबल शत्रु राक्षस 'विराध' से युद्ध करते है । वह 'सीता' को उठाकर भाग जाता है और राम विलाप करते हैं । इस तरह से उपन्यासो मे सभी पात्रो को शास्त्री जी ने बहुत ही अच्छे ढग से कल्पना के माध्यम से प्रस्तुत करने की कोशिश की है । यह उपन्यास इतिहास न होकर मूलत पौराणिक कथानक पर

आधारित है । शास्त्री जी इसे ऐतिहासिक उपन्यास घोषित करते है पर वे ऐतिहासिक उपन्यास बनाने मे सफल नही हो पाये है । [6]

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' ने 900 ई0 पूर्व से 500 ई0 पूर्व की ऐतिहासिक घटनाओ को 'वैशाली की नगरवधू' मे प्रस्तुत करते है । यह बौद्ध कालीन परिवेश पर आधारित है । इस समय नगरो की अपेक्षा ग्राम अधिक थे, और व्यापारी सुखी और सम्पन्न थे । ब्राम्हणो का स्थान ऊचा था, लेकिन अधविश्वास मे धीरे–धीरे हिन्दू धर्म नष्ट होता रहा । क्षत्रिय राजा अब ब्राम्हणो से घृणा करने लगे थे । ऐसे ही समय मे महात्मा बुद्ध और 'महावीर स्वामी' का जन्म होता है । वे छुआछूत का विरोध करते है । शास्त्री जी ने ब्राम्हण "हरिकेशीबल" का एक वर्णन इस प्रकार देते है कि वे– निम्न जातियो के प्रति किस तरह का व्यवहार अपनाता है । जैसे– अरे दुष्ट चाण्डाल तू अपने को मुनि मत कह । पृथ्वी भर हमारे अलावा किसी के पास विद्वानता नही है ।

नगरवधू मे मुक्त सहसवास की प्रवृत्ति जोरो पर दिखाई पडती है । इस समय बौद्ध कालीन युग की सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थितियो पर प्रकाश डालते हुए शास्त्री जी ने रहस्योद्घाटन किया है कि स्त्री पुरूष वर्ग के प्रति किस तरह से समर्पित और शोषण का आधार बनती है । जहा नारी विवशता को शास्त्री जी ने प्रस्तुत किया है, वही पुरूषो की आकण्ठ विलासिता एव नारी के प्रति घृणा एव उपेक्षा का भाव भी प्रस्तुत करते है ।

आचार्य जी का साहित्य रचनाओ का मुख्य विषय नारी ही रहा है । इसलिए उन्होने नारी समस्याओ के पहलुओ पर ज्यादा विचार किया हे । इस उपन्यास मे 'आम्बपाली' मुख्य पात्र हे । शास्त्री जी के अनुसार– "जिसके आचल मे दूध और आखो मे निरन्तर पानी रहता है, वह रोती है, सिसकती है, इसलिए कि उसके लिए सौन्दर्य अभिशाप है ।'वैशाली' के कानून व्यवस्था के अनुसार किसी सुन्दर कन्या को 'कुलवधू' से हटकर 'नगरवधू' बनने के लिए बाध्य किया जाता है । इसी अभिशाप के फलस्वरूप 'अम्बपाली' जैसी असाधारण सुदरी को बाजार मे बैठकर ऊचे नीचे दामो मे बिकना पडता है । वह 'कुलवधू' से 'नगरवधू' बना दी जाती है । वह हर तरह के सुख सम्पन्न से विमुख होकर कामुक तरूणो के विलासिता का शिकार बनती है । उसके हृदय मे वैशाली के प्रति क्षोभ जागता है, और वह 'हर्षदेव' की सहायता से 'वैशाली' को मिटा देना चाहती है, किन्तु जब 'विम्बसार' भी उसकी मदद नहीं कर पाता तो वह नारी की असहाय अवस्था समझकर बुद्धि की शरण मे चली जाती है । [7]

इस उपन्यास मे सौन्दर्यपूर्ण कथानक, श्रृखला तथा उत्सुकता से भरा पडा हुआ है । इस उपन्यास के अन्तर्गत ऐतिहासिक तथ्यो की खोज करना सम्भव नहीं है, क्योकि इसमे पात्र अवश्य ही ऐतिहासिक है किन्तु उनका कार्य कल्पना प्रसूत है । लेखक ने उस युग के इतिहास को

अधिक रूचि लेकर तत्कालीन युग के समाज प्रवाह को दिखाने की कोशिश की है, और ऐतिहासिक यथार्थवाद छिप नही पाया है । पात्रो को छोडकर अधिकाश कथाये काल्पनिक है । शास्त्री जी ने विम्बसार के सेनापति 'सोमप्रभ' के सवाद को बडे ही अच्छे ढग से प्रस्तुत किए है । जब विम्बसार 'अम्बपाली' के आवास मे निमग्न हो जाता है, और सोमप्रभ को यह पता चलता हे तो वह युद्ध बन्द कर देता है और 'विम्बसार' से उत्तर देता है– "एक स्त्रैण काम पुरूष, कर्त्तव्यच्युत, सम्राट ने अपनी पद–मर्यादा और दायित्व का उल्लघन कर सार्वजनिक स्त्री को पटमहिसी बनाने के उद्देश्य से युद्ध छेड था 'तेरा क्या कर्त्तव्य था रे, मैने तथ्य शिला के विश्व विश्रुत विद्याकेन्द्र मे राजनीति और रणनीति की शिक्षा पाई है। मेरा यह निश्चित मत है कि साम्राज्य की रक्षा के लिए साम्राज्य की सेना का उपयोग होना चाहिए । सम्राट की अभिलाषा और भोग लिप्सा की पूर्ति के लिए नही होना चाहिए । सम्राट की अभिलाषा और भोग–लिप्सा की पूर्ति के लिए नही ।" इस तरह से आचार्य जी ने तत्कालीन राजाओ की विलासमय युग का नग्न चित्रण किया है । [8]

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'शास्त्री जी' ने सभी कल्पना निराधार रूप से ली है, पर सभी सोद्देश्य है । इतना अवश्य कहा जाता है कि यदि यह कल्पनाये उपन्यास मे नही होती तो उसमे रूचि कभी कम न होती 'शास्त्री जी' ने 'नगरवधू' मे ऐतिहासिक प्रधानता केवल पात्रो तक ही सीमित और सकुचित होकर रह गयी है । कल्पना तथा प्रवाह का वेग अधिक है ।

'शास्त्री जी' ने कहा है कि " भौतिक ससार मे 'शास्त्री जी' आकर मानव अपने क्रिया–कलापो मे इतना सलग्न हो जाता है, कि कुछ ही दूर जाने पर उसे अपना जीवन बोझ लगने लगता है। और वह जल्दी से कुछ कर डालने की कोशिश करता है।

शास्त्री ने अपने उपन्यास " सोमनाथ" मे भारत की उस समय की ऐतिहासिक राजनेतिक सॉस्कृतियो का बडे विस्तार से विवेचन करते है। इस उपन्यास मे 'महमूद गजनवी' द्वारा भारत पर आक्रमण और राजाओ के आपसी मतभेद को उपन्यासकार ने उपन्यास का विषय बनाकर घटनाओ का सकलन किया है। 'महमूद' के आक्रमण के समय भारत की राजनैतिक स्थिति बडी छिन्न–भिन्न थी। दसवी शताब्दी मे 'सुबुक्तगीन' नाम का एक गुलाम अपनी शक्ति से सम्पन्न होकर खुरासन तथा गजनी पर अधिकार कर बैठा था, उस पर अधिकार करने के पश्चात् भारत की आरक्षित अपार सम्पत्ति को देखकर उसने भारत की ओर अपना ध्यान लगा दिया। अपनी शक्ति व साहस से वह भारत मे घुस गया। 'महमूद' उसका लडका भी अपने पिता के साथ था, और उसके बाद 'महमूद' द्वारा भारत को लूटने मे सफलता मिलती है, जिस समय 'महमूद' आक्रमण किया, भारत

पूर्णरूप से आपसी कलह मे विखर चुका था, 'हर्षवर्धन' की मृत्यु हो चुकी थी,, राजपूतो मे निरन्तर युद्ध चलते रहे, कोई एक शक्ति नही थी जो इनका सामना कर सके।

आचार्य जी ने हिन्दू राजाओ के बारे मे लिखा है कि 'चामुण्डराय' को एकदम लापरवाह और निष्त्रेज राजा बताया है। और वह आक्रमणकारियो के प्रति एकदम लापरवाह था। अन्य छोटे मोटे राजा मे 'धोधागढ', 'सपादलक्ष', 'धर्मगजदेव', 'आमीर के दुर्लभ राज' और 'सोमतीर्थ' शौर्य प्रकट करने वाले थे। जिन राजाओ ने पूरे सामर्थ्य से युद्ध किया वे देशद्रोहियो के कारण हार जाते है। गुजरात के राजा शैव और मत्री जैन होते थे। शास्त्री जी ने कथानक मे "चौंलादेवी" के रूप मे वह प्रेम का मूक सघर्ष और त्याग की देवी है, उसकी मूर्ति को उपन्यासकार ने जितना अमल, धवल, कोमल, भावुक बनाकर उसे सारे सघर्षो मे इस पार से उस पार तक पहुँचाकर फिर अपने प्रियतम के वक्ष से लगाकर विदा कर देते है। इस विदा की भावना, वेदना, ऑसू ही नही बल्कि रूलाने के साथा शारीरिक कष्ट भी देता है। चोला का प्रेम सच्ची प्रमिका बनकर उसे तडपाता और मूर्छित भी कर देता है। वह 'महमूद' को 'बुत–शिकन' और धर्म द्रोही बताकर स्वय चोला देवी बनकर महमूद की ऑख मे धूल झोक देती है, और हमेशा गुजरात का कल्याण चाहती है। चौला और 'भीमदेव' का मिलन नही हो पाता है और वे विछड जाते है।

'शोभना' उदार मनोवृत्ति की उस चित्र की ओर सकेत करती है जहा नारी अपने देश को बचाने के लिए प्रेम का बलिदान स्वय अपने हाथो उपेक्षित पात्र की सहगामिनी बन शत्रु को भ्रमित करती हुई उसे स्वदेश से कही दूर ले जाकर उसे आश्वस्थ करती है। दया और त्याग की कहानी को शास्त्री जी ने बडे ही सच्चे ढग से प्रस्तुत करते है। उदाहरण के लिए –

'शोभना', 'फतेहमुहम्मद' (देवस्वामी) के प्रेम मे सबकुछ लुटा देना चाहती है किन्तु देश की रक्षा के लिए वह प्रेम का तिरस्कार भी करती है। "कहती है देव तुम अपने को बेच चुके हो"

" तो उससे क्या, उसकी कीमत कितनी मिली – जानती हो? शोभना, मेरी प्राणो से भी अधिक प्यारी चीज है एक बादशाहत"

"परन्तु देवा एक दिन शोभना न रहेगी न यह भीख मे मिली बादशाहत, केवल तुम्हारे यह काले कारनामे रह जायेगे।"

" क्या कहा भीख मे"

" नही गद्दारी, विश्वासघात देश और धर्म के द्रोह के सिलसिले मे मिली बादशाहत"

देवा दास है इसलिए ही उसने न विदेशी दासता को स्वीकार किया। दास के रक्त ने प्यार को दासता के दाव पर लगा दिया ॥[8]

शास्त्री जी ने "रमाबाई" के चरित्र को उपर से कठोर हृदय और अन्दर से सवेदनशील नारी के रूप मे उभारते है, उसकी कठोरता के आगे रक्त पिपासु 'महमूद' भी नतमस्तक हो जाता है। महमूद "रमाबाई" के बारे मे कहता है " बहुत लोग मुझसे राज्य के लिए लडे लेकिन इसान के लिए मुझसे आज तक कोई नही लडा । खुदा का बन्दा 'महमूद' वही कहूँगा जो मुझे कहना चाहिये यह औरत जो हमारे सामने खडी है, उसने मुझे एक नयी बात बताई है, जिसे मै नही जानता था। इसके हाथ मे तलवार नही है, तलवार का इसे डर भी नही है, वह रोती और गिडगिडाती भी नही है, बादशाहो के बादशाह 'महमूद' को फटकारती है। इसान के प्यार ने इस कदर मजबूत बनाया है। कि इसके आसुँओ का मोल तमाम दुनिया के हीरे मोती से भी नही चुकाया जा सकता है। इसने मुझे मेरी मॉ की तरह नसीहत दी है। और मै 'महमूद' का बन्दा खुदा वही कहूँगा जो मुझे कहना है। •

'शास्त्री जी' ने उपरोक्त नारी चित्रण मे नारी के अन्दर छिपी हुई मनेवृत्ति का आवरण उन्मुख किया है। वह हमारे लिए अपरचित नही है। फिर भी शत्रु के सामने अत्याचार से न डर के इस तरह के कार्य करती हैं। जो पूजार्थ है। शास्त्री जी ने 'महमूद' की क्रूरता का चित्रण करते है। शास्त्री जी कहते है " 'महमूद' का सच्चा चरित्र चाहे जो हो पर वह एक दृढ योद्धा, आक्राता और वीर पुरूष था, उसका पूरा जीवन कठिन अभियानो मे बीता था। उसमे व्यक्ति के मानोचित गुण नही थे, यह मै कैसे कह सकता हूँ?– मैने अपने सम्पूर्ण 'साहित्यिक कोमलता,' 'भावुकता,' 'प्रेम' की सम्पन्नता उसे प्रदान कर दी है। मुझे यह याद नही रहा कि वह शत्रु, खूनी और डाकू है, अन्तत वह मनुष्य ही है यह मै कैसे भूल सकता था, फिर भी वह मनुष्य साधारण नही महान विजेता और नियन्ता है। अत उसमे जो घर्षणा के योग्य था उसकी घर्षणा कर और उसमे जो पूजार्थ था, उसकी मैने पूजा की है यहा शास्त्री जी कल्पना पूरी तरह से उभर कर सामने आ जाती है, क्योकि वास्तव मे 'महमूद' का कोई पूजार्थ गुण भारत के प्रति नही था। शास्त्री जी ने महमूद को मानव के रूप में परखने का इसलिए प्रयत्न किया है, जिससे उपन्यास का "इतिहास रस" सूखने न पाये ।

मदिर मे घुसकर ब्राहमणो की प्रार्थना का ठुकराकर मूर्ति तोडता है, मूर्ति और सोने चादी हीरे जवाहरात गजनी उठाकर ले जाता है। वहा मस्जिद बनवाता है। 'अल्बरूनी' विवरण देता है कि " महमूद ने मूर्ति को पाठहिजरी मे तोडा था, खुदा उस पर रहम करे, उसने मूर्ति के उपरी भाग को चूर चूर कर डाला और नीचे के भाग को उसने श्रगार आभूषण तथा वस्त्रों सहित गजनी ले जाने का आदेश दिया, कुछ मूर्ति गजनी के चौराहे पर फेकवा देता है,[9] और कुछ गजनी के

द्वार पर टाग देता है, 'सोमनाथ मदिर' के द्वार पर जो चादी और चदन के किवाड लगे थे, उसको भी वह उठाकर ले जाता है।

'महमूद' जब मदिर मे घुसता है, तो 'कृष्णास्वामी' उससे विवाद करता है और कहता है कि महालय को मत तोडो जितना चाहे धन सम्पदा ले जाओ, पर 'महमूद' उत्तर देता है कि मैं मूर्तिपूजको के धर्म का तिरस्कार करता हूँ और मूर्ति भजक महमूद हूँ और बुतपरस्ती से कुफ्र को दूर करना मेरा धर्म है। मै मूर्ति बेचता नही बल्कि मूर्तियो को तोडकर अल्लाताला खुदा के पैगम्बर मुहम्मद की आन कायम करता हूँ।

अगले क्रम मे शास्त्री जी का उपन्यास 'पूर्णाहुति' है। जो बारहवी तेरहवी शताब्दी के घटना चक्र को लेकर लिखा गया है, इस समय देश मे कोई परिर्वतन नही हुआ था बल्कि नवीनता यही थी कि मुसलमानो की जगह– जगह बस्तिया बस गयी थी, और किसी भी शक्तिशाली शासक द्वारा भारत को किसी विदेशी सत्ता के हाथ मे जाने का इतजार था। शासन प्रणाली मे केवल देशीय राजाओ के वशावलियो मे उलटफेर हो गया था। शेष परिस्थिति भारत की वैसी ही थी जैसी दसवी और ग्याहवी शताब्दी मे थी । [10] इस उपन्यास को लिखने के पीछे शास्त्री जी ने उस समय की भारत की युगीन परिस्थितियो जैसे राजपूत जीवन, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक जीवन का ही विवरण ही देना था । इस उपन्याास के माध्यम से तत्कालीन इतिहास के मुख्यत दो प्रतिद्वदी दिखाई पडते है। कन्नौज का शासक 'जय चन्द' तथा 'दिल्ली' और 'अजमेर' का शासक 'पृथ्वीराज चौहान' है इनमे वीरता तो कूट–कूट कर भरी है, पर दोनो एक दूसरे के शत्रु है। जरा सी बात पर दोनो युद्ध करते है, ऐ शूरवीर होते हुए भी दूरदर्शी नहीं है इसी कारण वाह्य आक्रमण से न स्वय को बचा सकते है न ही स्वाधीनता की रक्षा कर पाते है

दूसरी तरफ भारतीय सस्कृतियो मे अधविश्वास तथा ब्राहमणो की सकुचित तथा सकीर्ण शिक्षाओ के कारण जाति के अन्दर एक ऐसी मानसिक शिथिलता पैदा हो गयी थी कि सर्वसाधारण के साथ साथ शासक वर्ग भी इसकी राजनीति तथा सामरिक स्वाधीनता तथा सुरक्षा की ओर से उदासीन हो गये थे। क्षत्रिय राजा मलेच्छो से पथभ्रष्ट न हो इस झूठी शानशाही मे स्वय का बलिदान कर देते थे और उनकी स्त्रिया भी सती हो जाती थी । उपर्युक्त दशा ही विदेशियो के पैर जमाने के लिए काफी थी।

जयचन्द की इकलौती पुत्री 'सयोगिता' प्यार दुलार से हठी और चचल बन गयी थी । वह पृथ्वीराज के पराक्रम की प्रशसा सुन कर शादी करने के लिए व्याकुल है, और 'पृथ्वीराज' भी खवास् का रूप धारण कर उसे प्राप्त कर लेता है। 'सयोगिता' के व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषता को शास्त्री जी ने उसके द्रढ सकल्प शक्ति और विवेक को उभारा है। 'पृथ्वीराज' को पति वरण करने

के लिए वह कभी विचलित नही होती है। " सयोगिता कहती है कि जब तक इस तन पजर मे प्राण पखेरू हैं मै सभरी नाथ को छोड कर और किसी को भी वरण नही करूगी चाहे धरती इधर से उधर हो जाये। या तो मेरा पाणिग्रहण 'पृथ्वीराज' के साथ होगा या तो मै गगा मे निमग्न हो जाऊँगी। "[11]

नवबुद्धि की यह बालिका के मनोवेग को शास्त्री जी ने बडे सूक्ष्म दृष्टि से परख कर उभारा है। एक जगह उपन्यास मे 'सयोगिता' फिर कहती है कि " क्या मै किसी के सिखाने से या आग्रह करने से उस नरश्रेष्ठ को भूल जाऊँगी ? कभी नही " पृथ्वीराज से उसका अनन्य प्रेम है पिता के प्रबल विरोध को वह दरकिनार करके अपने प्रियतम से वह शास्त्री जी के शब्दो मे इस प्रकार कहती है कि " हे नाथ । आपके सब सामन्त मेरे पिता की सेना के सामने दाल मे नमक की तरह भी नही है, हे स्वामी । आप कैसे फूँक से पहाड उडाना चाहते है मै पल भर भी आपसे अगल नही रहना चाहती, मेरा यही अदेशा है।"[12]

शास्त्री जी ने इस प्रकार के राजा महाराजा और सामन्त तथा देश की दुर्बल स्थिति को प्रकट करने की कोशिश करते है, उनका दृष्टिकोण यही था कि विलासिता और सुन्दरियो के चक्कर मे राजाओ को तनिक भी चिन्ता नही रहती थी । पूरे देश को वे लोग कोई जिम्मेदारी के रूप नही सिचित करते थे, और हमारा देश ऐसे बहादुर राजाओ की लापरवाही से मुसलमानो के हाथ मे चला गया।

शास्त्री जी ने 'पृथ्वीराज' के सामत 'कैमास', 'चामुण्डराय', तथा स्त्रीपात्र 'इच्छकू,' पुण्डरीन, 'इन्द्रावती,' 'कर्मी,' तथा 'हम्मीरानी' का भी चित्र वेखुदी से उभारा है। ये सभी लोग 'पृथ्वीराज' की लापरवाही की ओर ध्यान आकृष्ट करने मे मदद करते है।

इसी प्रकार आचार्य "चतुरसेन शास्त्री" जी का उपन्यास " रक्त की प्यास " बारहवी सदी की राजनैतिक स्थिति पर लिखा गया है, जिसमे राजा 'भीमदेव' और राजकुमारी 'इच्छिनी' के असफल प्रणय प्रेम कथा को लेकर लिखा गया है। इस समय जो उत्तर भारत मे बिखरी हुई सबसे बडी हिन्दू शक्ति थी। एक ओर दिल्ली और अजमेर का शासन चौहानो के हाथ मे, और कन्नौज का राज्य गढावारो के हाथ मे था तो दूसरी ओर गुजरात मे सोलंकियो का राज्य और चित्तौड मे सिसोदिया वश का राज्य था । ऐ चारो राज्य आपस मे रक्त सम्बन्धी थे, फिर भी एक दूसरे के कट्टर शत्रु थे । शास्त्री जी ने इन सबको सयुक्त रूप से अपने उपन्यास मे माध्यम बनाया है। इस दुर्भाग्य पूर्ण वातावरण मे भारत की करोडो निरीह प्रजा सवर्था अरक्षित थी , जिसे खाने के लिए क्रूर भयकर गिद्धो के झुड (मुस्लिम देश) पश्चिम के दुर्गम पहाड़ो मे बैठे रहते थे, वे अवसर देखते तथा भारी मारकाट कर राज्यो को वीरान कर देते थे। [13]

'रक्त की प्यास' का कथानक गुजरात शासन के इर्द–गिर्द आवर्तित है, "गुर्जरेश्वर सोलकी" महा प्रतापी राजा थे , उनके नि सतान मरने के बाद 'त्रिभुवन पाल' के छोटे पुत्र कुमार पाल को गुजरात की गद्दी मिलती है। इसके समय मे साहित्य का निर्माण और मदिरो का जीर्णोद्धार हुआ। उसके बाद 'अजय पाल' गद्दी पर बैठा। उसके समय मे जैन और शैवो की शत्रुता अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी । यह पद्मावती के प्रभाव मे रहता था। और जैनो का सहार करने के लिए आतुर था। बाद मे इसके छोटे भाई "भीमदेव" को गद्दी प्राप्त हुई यह उदार प्रवृति का था। और इसके शासन काल मे शाति रही। शास्त्री जी उपन्यास मे यही से घटना को नया मोड देते है। 'मूलदेवराज' की मृत्यु के बाद परमार कन्या इच्छनी देवी का प्रणय पृथ्वीराज चौहान के साथ हो चुका है। 'भीमदेव' उसका अपहरण करना चाहते है तभी 'मुहम्मदगोरी' स्थिति का फायदा उठाकर आक्रमण करता है, और 'भीमदेव' दोनो लोगो से पराजित हो जाता है।[14]

'शास्त्री जी' के इस उपन्यास पर दृष्टि डालने से यह सकेत मिलता है कि धर्म विद्वेष ही ऐसा कारण था जिसके कारण राज्यो को समाप्त होना पडा। हिन्दुओ के आपसी कटुता ने ही अपने घर मे आग लगा रखी थी और भारत का नैतिक पतन अपनी चरम सीमा पर था। ब्राहमण स्वय को सर्वेसर्वा समझते थे। देश का धर्म आत्याधिक दूषित कुचक्र मे फस गया था। निम्न जातियो के प्रति ब्राहमणो के दिलो मे कोई स्थान नही था और क्षत्रिय राजा सुन्दरियो के चक्कर मे मौजमस्ती मे लीन रहते थे । शूद्रो के पढने लिखने का अधिकार भी छीन लिये गये थे। ऐसी स्थिति मे राजनीति सामजिक, धार्मिक और नैतिकता सभी का पतन हो चुका था। इस तरह शास्त्री जी ने उपन्यासो मे युगीन् राजाओ की लापरवाही तथा झूठी आन–शान का रहस्योद्घाटन किया है। आपसी कलह के परिणाम भयकर हुए। और हिन्दू राजा अस्त हो गये और मुस्लिम सत्ता का उदय हो गया । जिसमे 'ऐबक' भारत की सत्ता का कर्णधार बना। इससे बडा दुर्भाग्य भारत का भला क्या हो सकता था। 'भीमदेव' और उसका 'गोरी' के साथ आक्रमण के अलावा शेष सारी कथाए प्रेम प्रसग के रूप मे 'शास्त्री जी' ने कल्पना के रूप मे प्रस्तुत कर उपन्यास का विस्तार एव उसमे रसिकता लाने की चेष्टा करते है।

आगे की परिस्थितयो मे उलटफेर होता रहा और 'दिल्ली' की सत्ता धीरे–धीरे खिलजियो के हाथ मे आ गयी। और 'खिलजी वश' के सस्थापक 'जलालुद्दीन फिरोजशाह' की हत्या कर " अलाउद्दीन खिलजी" दिल्ली के सिहासन पर बैठा । इस समय के घटना क्रम को 'शास्त्री जी' ने अपने उपन्यास बिना " चिराग का शहर " मे प्रस्तुत करते है। यह उपन्यास भी पात्रो के द्वारा

इतिहास सम्मत है। लेकिन सुन्दरियो के हेर फेर की कथा मे शास्त्री जी ने कल्पना का प्रयोग किया है।

उपन्यास के अनुसार 'अलाउद्दीन' का शासन सुदृढ राजनैतिक व्यवस्था पर आधारित है । उसके नृसश अत्याचारो से जनता मे असतोष की भावना तीव्र गति से फेल गयी है, वह विस्तारवादी है। और उत्तर भारत ही नही बल्कि दक्षिण के राज्यो को अपने राज्य मे मिलाने को आतुर है। सुल्तान के दरबार भी मौजमस्ती मे तल्लीन है, और उसके स्वेच्छाचारी आज्ञाओ से सूबेदार उब चुके है। व्यापारी वर्ग बाजार के कठोर नियन्त्रण से नाराज है तो हिन्दू जनता अपमानित जीवन व्यतीत कर गर्म सासे छोड रही है। इस तरह आम जनता की स्वतन्त्रता, प्रसन्नता, और उल्लास समाप्त हो चुका है। फिर भी देश आर्थिक रूप से सम्पन्न है पर भारतीय राजा " अपनी अपनी डफली और अपना अपना राग ही अलापते रहे" कुछ करने की स्थिति से बाहर थे। [15]

उत्तर भारत मे राजा 'कर्ण देव' का राज्य सम्पन्न है पर वे विलासी और ऐय्यासी मे तृप्त है तो दक्षिण मे देवगिरी का हिन्दू राजा 'रामचन्द्रदेव' अदूरदर्शी है। सभी जगह दास–दासियो और भोगी स्त्रियो का बोलबाला है। उपन्यास मे देवगिरी के राज्य मत्री 'राज्यवर्मन' नैष्ठिक ब्राहमण है। उनकी पुत्री 'आनन्दलता' बालविधवा है। पर उनकी जाति मे विधवा विवाह निषेद्य होने के कारण वैसी ही रहती है। दक्षिण मे पाड्य राज्य शक्तिशाली है। हिन्दू राजाओ की लापरवाही का फायदा उठाकर 'अलाउद्दीन' के वफादार सामन्त 'मलिक काफूर', उलगू खॉ आदि भारत की जनता को निर्दयता पूर्वक लूटते और हत्या करते है। मुसलमानो के अनुसार – जो हिन्दू है वह पैगम्बर का घोर शत्रु है । इसलिए वह इस्लाम कबूल करे या उसे जान से मार डाला जाता था। जबकि हिन्दू राजा मे देशभक्ति थी पर वे कट्टर न थे और सतीत्व की रक्षा के लिए उनकी स्त्रिया आत्मघात कर लेती थी देवलदेवी का आत्मघात इसी बात का प्रमाण है।

शास्त्री जी ने कल्पना के माध्यम से इस उपन्यास मे 'देवलदेवी' तथा 'मलिक काफूर' के प्रेम प्रसगो का वर्णन किया है । दिल्ली पहुॅचने पर 'खिज्रखॉ' से 'देवलदेवी' का बलात् विवाह तथा 'उलगू खॉ' द्वारा 'देवलदेवी' का अपहरण, तथा मलिक काफूर का पुन देवगिरी पर आक्रमण तथा देवल देवी का आत्महत्या करना, सबकुछ काल्पनिक है। पात्र और नामकरण ऐतिहासिक है। एक जगह शास्त्री जी ने कल्पनाधिक्य का प्रयोग करते हुए लिखा है कि " देवल देवी की आत्महत्या करने के बाद 'मलिक काफूर' क्रोधान्वेषण मे दिल्ली वापस आता है। और सुल्तान की गैरहाजिरी मे कत्लेआम का आदेश देता है और दिल्ली पर अधिकार करना चाहता है,[16] पर 'अलाउद्दीन' के पहुॅचने पर उसका बध कर दिया जाता है। सारी घटनाये काल्पनिक है।

इसी समय की एतिहासिक, सॉस्कृतिक सदर्भो को शास्त्री जी ने अपने उपन्यास 'लाल पानी' मे भी व्यक्त किया है। जो गुजरात के काठियावाड प्रान्त के अनेक छोटे मोटे देशभक्त जैसे राजाओ के कथानक को उपन्यास मे रखा है। जिसमे पथरगढ के राजा ' जामरावडसिह' ,मायनो और ठाकुरो के राजा ' जामभीमजी' एव उसके पुत्र 'जाम हम्मीर जी' तथा हम्मीर के विश्वासपात्र नौकर " छच्छरबूटा" को लेकर भास्त्री जी ने उपन्यास को विस्तार दिया है साथ मे गुजरात के शासक "महमूद बेगडा" तथा कच्छ के " मिया मियाना " को भी उपन्यास मे स्थान दिया है।

इस उपन्यास मे शान और आन पर प्राण न्यौछावर करने वाले स्वामीभक्त के जहा दर्शन होते है,वहा क्रूर और अत्याचारी विश्वासघती व धमण्डी राजाओ के दर्शन होते है। एक ओर राजा 'रावण सिह' सम्पूर्ण शक्ति से सम्पन्न होकर उसका प्रयोग गाव वालो तथा अपने हार्दिक शत्रु मित्र 'जाम हमीर' के परिवार को समाप्त करने मे रत है। दूसरी ओर मियामियाना डाकू होने पर भी इतना क्रूर नही बन सका है। वह राजा द्वारा प्रजा और प्रजा द्वारा राजा पर क्या कतर्व्य है अच्छी तरह से जानता है, हम्मीर के पुत्रो को वह अपने गाव मे शरण देकर छुपा देता है। 'जाम रावण सिह' के हत्यारे उस गाव मे आकर खोज करते है किन्तु कही भी कुमारो का पता नही चलता है। क्रोधोन्मत होकर 'रावण सिह' के व्यक्ति "पटेल गिया मियाना" के आठ पुत्रो को तलवार के घाट उतार देते है। फिर भी वह विचलित नही होता है। उसका हृदय दु ख से तो बोझिल हो जाता है। हत्या का ताण्डव नृत्य देखकर उसका गला भर जाता है किन्तु शत्रुओ के पूछने पर भी वह कहता है " अभी समय है, तूने अवश्य ही घास की गजियो मे राजकुमारो को छिपा रखा है। भलाई इसी मे है कि उन्हे निकाल कर उन्हे सौप दो और अपने परिवार को विनाश से बचा लो। वह सुन कर एक शब्द नही बोलता है। किन्तु इतना अवश्य कहता है कि महाराज यदि मेरे परिवार के भाग्य मे इसी रीति से नष्ट होने की बदा है तो मै आपको दोष नही दूँगा, लेकिन राजपुत्र मेरे पास नही है। "[17]

इस तरह 'शास्त्री जी' ने इन घटनाओ के राजपूतो के विसगतियो को चित्रित करते है। व्यर्थ के धमड और द्वेष मे सदैव इन्होने अपने राज्य का विनाश किया है। इसी कारण वे राज्य का विस्तार नही कर सके है। दूसरी तरफ कतर्व्य निष्ठ की भावना भी प्रशसनीय है, जो सभी मे नही पायी जाती है। [18]

इसी प्रकार अगले क्रम मे 'शास्त्री जी' ने ऐतिहासिक सास्कृतिक सदर्भो मे सत्राहवी और अठारहवी शताब्दी की घटनाक्रम को अपने उपन्यास " सहयाद्रि की चट्टाने और आलमगीर "में प्रस्तुत करते है।

'शिवाजी' का युग हिन्द तथा मुसलमान दोनो की स्थितयो से भिन्न था। यह वह समय था जब दक्षिण मे मराठो का उत्थान हो रहा था। उसका नेतृत्व करने वाले 'शिवाजी' थे । हिन्दू जाति पूर्ण रूप रो 'शिवाजी' के देशभक्त थे ओर हर तरह से उनको राहयोग देती थी । मुसलमानो के अत्याचार और शोषण से व्यथित होकर 'शिवाजी' ने "जजिया" जैसे करो का विरोध करते है। हिन्दुओ को न सताने का आग्रंह करते है। उस समय महाराष्ट्र के हिन्दुओ मे एकता और धर्म निष्ठा थी। एक दूसरे के लिए सहयोग की भवना थी । स्त्रियो के प्रति 'शिवाजी' के हृदय मे अपार श्रद्धा थी। " तानाजी" मुलसरे की पत्नी का अपहरण पर प्रतिशोध की ज्वाला महाराष्ट्र मे फैल जाती है।"हरिनाथ" स्वामी कहता है कि " यह ताना जी का व्यक्तिगत मामला नही है। वैसे ही हजारो बहनो का अपहरण हुआ है, इसलिए इसे व्यक्तिगत प्रश्न न समझकर हिन्दू धर्म की अबलाओ की रक्षा स्वाधीनता के लिए जीवन का उत्सर्ग करे। [19]

दक्षिण की हिन्दू जनता मे उच्च आदर्शो तथा जीवन मे सादापन लिये हुए थे। ऐ कूटनीतिज्ञ, चतुर,, वाक्पटु, और अत्याचारो के खिलाफ जूझ मरने वाले थे। इस समय दो मनोवृत्तिया एक साथ पल्लवित हो रही थी, एक नृसशता के नीचे दब कर घुट रही थी तो दूसरी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने के लिए 'शिवाजी' के नेतृत्व मे वीरता पूर्वक कठिनाइयो का सामना कर रही थी। 'औरगजेब' अपने बृद्ध पिता 'शाहजहॉ' को कैदकर तथा अपने भाइयो की निर्मम हत्या कर वह मराठो को समाप्त करने मे पूरे जिन्दगी लगा देता है। उसके सरदार "अफजलखॉ" और 'शाइस्ताखॉ" दोनो शिवाजी का विनाश करने के लिए तत्पर हे। पर दोनो शिवाजी द्वारा मार दिये जाते है। और अपनी कूटनीति से शिवाजी आगरे मे 'औरगजेब' की कैद से भाग जाते हे। इन घटनाओ को शास्त्री जी ने इतिहास से ग्रहण किया है।

शास्त्री जी ने अपने इस उपन्यास मे सास्कृतिक "सदर्भो" को बडे ही अच्छे ढग से प्रस्तुत करते है। शास्त्री जी के अनुसार 'औरगजेब' अपने धर्म के प्रति जितना कट्टर और मुसलमानो के प्रति जितना उदार था। उतना ही हिन्दुओ के प्रति दुष्ट और प्रताडित करने वाला था। महाराष्ट्र की धार्मिक एव सॉंस्कृतिक स्थिति पर भी शास्त्री ने सुन्दर और स्पष्ट विवरण दिया है। महाराष्ट्रीय जाति 'आर्यो' तथा 'द्रविणो' के मिश्रण से पैदा हुई थी। इसलिए उनके खून मे आर्यो की सामाजिकता और द्रविणो की कट्टरता भरी हुई थी । धार्मिक विचारो पर सादगी का असर था पर धर्म पर ब्राहमणो की ठेकेदारी थी। और जात–पात का कोई बन्धन नही था। [20]

'औरगजेब' 'सोमनाथ', 'काशीविश्वनाथ,' 'मथुरा' के केशवराय मदिर आदि को नष्ट करता है। इन सभी ऐतिहासिक घटनाओ के साथ शास्त्री जी ने कल्पना का भी खुलकर प्रयोग किया हैं। पर उनकी कल्पना इसमे अलग नही दिखाई पडती है इसलिए ये शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की कोटि

मे आते है। यदि " आलमगीर" मे ऐतिहासिकता का प्राधान्य है, तो "सहयाद्र की चट्टाने" मे औपान्यासिकता की प्रधानता है। वास्तव मे शास्त्री जी ने " ऐतिहासिकता और औपान्यसिकता " का सुन्दर समन्यवय स्थापित किया है। इस प्रसग मे शास्त्री जी का चित्रण जैसे ताना जी मदूसरे की बहन का अपहरण, 'शिवाजी' का उनको बचाना, और 'शिवाजी' द्वारा यवनो पा आक्रमण आदि घटनाओ पर इतिहास मौन है। पर यह प्रसग शास्त्री जी की कल्पना का आश्रय लेता है। शिवाजी की छापामार युद्ध पद्धति मे इतिहासकार उन्हे लुटेरा तो " खाफीखॉ " उन्हे डाकुओ का सरदार कहता है। पर शास्त्री जी ने शिवाजी की सभी जगह एक आर्दश रूप मे प्रतिष्ठित करते हुए उन्हे सच्चे अर्थो मे राष्ट्र निर्माता बताते है।[21]

आचार्य जी ने 'शिवाजी' के किसी भी कृत्य के पीछे उनकी आस्था को " भवानी " के प्रति दृढ बताते है। शास्त्री जी की कल्पना मे 'शिवाजी' ने कठिनाईयो मे अधिक बुद्धिमता से कार्य करते हे। शिवाजी वीरो की जोशीली कथाए अपनी माता से सुनते है। और उन्ही की आज्ञा से किलो की विजय भी करते है। अपनी बहन का बदला लेने के लिए छद्म वेश घारण कर वह राजपूतो से बदला लेते है। और अपने चुने हुए सैनिको के साथ वह सिहगढ की विजय तो कर लेते है, लेकिन उसी समय वह वीरगति को प्राप्त हो जाते है। 'शिवाजी' की कठिनाई की छडो मे ताना जी पर बडा विश्वास और भरोसा तथा 'ताना जी' की मृत्यु पर 'शिवाजी' को आघात लगता है और वह कहते है " गढ आया सिह गया " इन शब्दो मे शास्त्री जी ने 'शिवाजी' के प्रति ताना जी के प्रति वफादारी को बडे अच्छे ढग से प्रकट करते है। [22]

शास्त्री जी का उपन्यास " आलमगीर" का केवल पूर्वाद्ध भाग ही प्रकाशित हुआ है और उत्तरार्द्ध भाग जिसमे 'औरगजेब' 'आलमगीर' बन कर उपन्यास का विस्तार करता है, वह भाग अभी तक प्रकाशित नही हो पाया। सम्राट 'शॉहजहॉ' के समय प्रजा सुखी और सम्पन्न थी। वह कट्टर और अत्याचारी नही था। पर इतना अवश्य था कि विलासिता और कामुकता लिप्सा से वह वचित नही था वह स्त्री प्रेमी, कला प्रेमी, और सगीत प्रेमी था जबकि 'औरगजेब' इन व्यसनो से दूर कट्टरवादी था। समाज मे हिन्दू धर्म की दीवार को जर्जर कर दिया गया था। अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर था। मुगल सैनिक युद्ध मे प्रस्थान के समय मार्ग मे फसलो को रौद डालते थे । जितना अधिक से अधिक कष्ट इस्लाम धर्मावलम्बी हिन्दुओ को देना चाहते थे। उतना ही हिन्दू भी मुगलो को जडमूल से नष्ट करने के लिए प्रयत्नशील थे।[23] इन ऐतिहासिक तथ्यो के अलावा शास्त्री जी ने 'इतिहास-रस' के चक्कर मे औरगजेब के हृदय मे कट्टरता के साथ-साथ उसके हृदय मे प्यार और मानवीय गुण को भी दिखाने का प्रयास अपनी कल्पना के माध्यम से करते है। शास्त्री जी के अनुसार 'औरगजेब' विलासी भी था। साथ मे हृदय प्रेमी भी था। वह बुरहानपुर मे नौ

माह रूकना 'औरगजेब' के कट्टर जीवन मे सरसता उत्पन्न करने वाली " मीर खलील " की गुलाम दासी "हीराबाई" थी ।'हीराबाई' के मरने के बाद ही 'औरगजेब' के प्रेम लिप्सा खत्म हो जाती है। वरना वह 'शाहजहा' की तरह स्वर्णिम सपनो मे उलझाये रहता। उपन्यास मे 'हीराबाई' जैसी सुन्दर स्त्री की चचलता ने उसे कुछ समय तक के लिए कट्टरता से दूर कर दिया था। औरगजेब और 'हीराबाई' के प्रेमालाप सवाद को शास्त्री जी ने इन शब्दो मे व्यक्त किया है।

औरगजेब 'हीराबाई' के समीप आकर प्रेम मे विभोर हो जाता है, उसके रूप को देखकर अपने पूर्व जीवन को भूल जाता है। वह 'हीराबाई' के पास आकर कहता है –

" क्या कर रही हो दिलवर ?

मै कुछ सोच रही थी।

क्या सोच रही थी ?

एक बात ।

कहो प्यारी।

अच्छा कान मे कहती हूँ। "

सुन्दरी चुपचाप औरगजेब के समीप मुँह ले गयी, और चट से उसका मुँह चूम लेती है।

'आह बात कहो जानेमन '

'यही तो बात थी हुजूर '

' दिलबर तुम मुझे इतना प्यार करती हो '

जाइए मैं क्यो प्यार करती? हीराबाई

औरगजेब का स्वर काँप उठता है वह इतन पिघल जाता है कि कूटनीतिक और कपट का यह पुतला इस चचल बालिका के सम्मुख प्रेम मे विभोर होकर अपने को भूल जाता है। हीराबाई को वह हीराबाई को कसकर छाती से लगा लेता है।[24]

इस तरह 'शास्त्री जी' ने इस उपन्यास के माध्यम से मुगल साम्राज्य के अतिम शासक 'औरगजेब' के व्यक्तित्व का विवरण दिया है वह बहुत लम्बे समय तक शासन करता है।

शास्त्री जी कहते है कि भातृघातक के रूप मे उसके चरित्र को दोष नही दिया जाना चाहिये , क्योकि उस समय के शासको की ऐसी शाही परम्परा थी । इस लिए शास्त्री जी ने 'औरगजेब' के हृदय मे मानवीय गुण भरने की कोशिश की है । यदि उसके हृदय मे एक तरफ क्रोध, विद्रोह, कट्टरता भरी हुई है। तो दूसरी तरफ उसके प्रेमी हृदय मे प्रेम की अकुलाहट भी है। इतना होते हुए भी वी कभी भी हिन्दुओ के प्रति शाति अर्जन नही कर पाता और अपने जीवन को हिन्दू विद्रोह का ही दबाने मे त्याग देता है।

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' ने 1657 से लेकर 1947 तक के एक लम्बे घटनाचक्र को अपने उपन्यास " सोना और खून " मे समेटने की कोशिश करते है। यह उपन्यास अग्रेजी शासन द्वारा भारत की दुदर्शा पर आधारित है। अग्रजो के भारत आगमन और भारत छोडने तक की वृहत गाथा होने के साथ–साथ इस उपन्यास मे तत्कालीन ऐतिहासिक, सास्कृतिक जीवन को भी बडे क्रम बद्ध ढग से प्रस्तुत करते है।

भारत मे अग्रजो का प्रवेश व्यापारिक दृष्टिकोण से हुआ था। इसके अतिरिक्त 'डच,' 'पुर्तगाली,' 'फासीसी,' 'अग्रजी' भारत मे व्यापार करने के लिए आते थे, और 'इग्लैण्ड' जाकर भारत की धन सम्पदा के बारे मे बढा –चढा कर वर्णन करते थे। अग्रजो के मस्तिष्क मे भारत की सम्पन्नता धन वैभव आच्छादित होने लगा और वे अधिक मात्रा मे भारत मेप्रवेश करते चले गये । धीरे– धीरे उन्होने देशीय राजाओ के शासन मे हस्तक्षेप किया जिसका परिणाम बगाल के नबाव के साथ "प्लासी" और "बक्सर" का युद्ध था जिसका परिणाम यह हुआ कि अग्रेजो के पैर भारत मे जम गये। धीरे– धीरे उन्होने अपने व्यापारिक मार्ग से हटकर भारत की राजनीति मे हस्तक्षेप किया। और कूटनीति तथा षडयत्र का सहारा लेकर उनमे आपसी फूट डाल दी और स्वय उनके रक्षक बन गये। अग्रजी शासन मे " लार्ड क्लाईव", " वारेन हेस्टिगज", "वेलेजली" "डलहौजी" "मैकाले" " विलियम वेटिग" "कैनिग" " कर्जन" " रिपन" और " डफरिन" जेसे एक से बढकर एक गर्वनर जनरल भारत मे आये और अनेको नियम कानून लागू करके भारतीय राज्य तथा भारत की जनता की स्वतन्त्रता को हडप लिया। यहा के धन से वे 'इग्लैड' को समृद्ध करने लगे तथा इसाई मिशनरियां यहां की जनता को अग्रजी शिक्षा मे लिप्त कर अपने कार्यालय मे क्लर्क, की भर्ती को पूरा किया ।[25]

अग्रजो के अत्याचार से भारतीय भावनाये कुठित हो गयी और धीरे–धीरे उनमे विद्रोह की भावना बढने लगी जिसका परिणाम 1857 का स्वतन्त्रता सग्राम के रूप मे प्रकट हुआ । लेकिन अन्त मे सभी देश भक्तो को फॉसी पर लटका दिया गया ।[26]

हिन्दू धर्म की व्यापकता विचारो की सीमा मे सकीर्ण व सकुचित हो गयी थी। और मलेच्छो के स्पर्श करने वाले व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। स्वय खाने के लिए कुछ नही था। परन्तु मृत्यु की आत्मा का सतुष्ट करने के लिए हजारो की सख्या मे ब्राहमणो को खिलाना व दानधर्म करना आत्याधिक आवश्यक था। इसी हिन्दू धर्म की प्रतिक्रिया फलस्वरूप सती प्रथा, विधवा समस्या बडे ही प्रबल रूप मे सामने आयी थी । जिसका विरोध अंग्रजो ने भी किया। उन्ही कारणो से भारतवासियो का तरूण खून क्राति कर उठा और उन्होने तभी सांस ली जब उन प्रथाओ को समाप्त कर दिया ।

एक ओर जागरूप वर्ग पनप रहा था। जिसका नेतृत्व "राजा राममोहनराय", "दयानन्द सरस्वती" " स्वामी विवेकानन्द" कर रहे थे। दूसरी तरफ ऐसा वर्ग भी पनप रहा था। जो भरती धर्म और समाज की निरन्तर उपेक्षा करता रहा , अग्रेजी पढकर युवक तेजी से नौकरी पा रहे थे। और समाज के लोगो पर बडा ही बुरा प्रभाव पड रहा था। प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चे को अग्रजी पढाना चाहते थे क्योकि उससे उनके नौकरी मे लगे होने की अभिलाषा बनी रहती थी। अग्रजो ने बगाल मे कितने ही लोगो को धनाढ्य बना दिया था। इस तरह अग्रजी का प्रचार हो ही रहा था साथ ही भारतीय अपनी धार्मिक कूपमडूकता से निकल कर जागृति की रोशनी भी देख रहे थे। इस पढी लिखी पीढी के खून मे *" बैथम क्लाईव "* और *" मिल्ट"* के अनेक विचार देश के प्रति बलिदान जागृत करते रहे। अन्त मे राष्ट्रीयता की एक आधारशिला स्थापित हो गयी और अग्रजी पढे लिखे लोगो का ऐसा दल उत्पन्न हुआ जिसका उद्देश्य सामाजिक था तथा अपने देश और समाज को पहचानने की इच्छा रखने लगा उस समय समाज और देश के प्रति जो चेतना जागी, और उसी के भीतर से हमारी सारी राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्रातियो का जन्म हुआ। [27]

इस उपन्यास मे शास्त्री जी ने ऐतिहासिकता का अधिक समर्थन किया है इतिहास मे रसिकता लाने के लिए शास्त्री जी ने "चौधरी प्राणनाथ " तथा " खैर मुहम्मदशाह " , " सावल सिह", " पुतली" " कुदशिया बेगम" आदि की कथाए काल्पनिक है। किन्तु यह कल्पना भी इतिहास को रग देने मे सफल रही है। इन कथाओ के माध्यम से शास्त्री जी ने हिन्दू मुस्लिम एकता तथा उनका अग्रेजो के प्रति सामूहित विरोध प्रर्दशित किया है । 'पुतली' नटनी होते हुए भी 'सावल सिह' के प्रति एकनिष्ठ थी। अग्रेज उसके सौदर्य पर मुग्ध होकर शराब मे धुत उसका कौमार्य भग करना चाहते है। किन्तु वह अकेली ही उन्हे ऐसा सबक देती है। जहा अग्रेज अपना साहबी ठाठ को भूलकर भाग खडे होते है। [28]"पुतली" के ब्याज से शास्त्री जी ने भारतीय नारी के शील को प्रर्दशित किया है जो नटनी होकर भी धन के लोभ मे नही पडती है। वास्तव मे इस उपन्यास मे "ऐतिहसिकता एव औपन्यासिकता" समन्यवय है इस उपन्यास को हम इतिहास प्रधान काल्पनिक उपन्यास के रूप मे रख सकते है।

अन्त मे उपन्यास के अवलोकन से यह निष्कर्ष सामने आता है कि 1857 की क्राति के बारे मे शास्त्री जी का दृष्टिकोण इस प्रकार से है कि " अग्रेजो ने भारत मे कोई युद्ध नही किया था और न ही कोई पैसा युद्ध के लिए खर्च किया था। तो अग्रजो द्वारा भारत को जीतने का कोई सवाल ही नही उठता दूसरी बाते महत्तव पूर्ण है कि 1857 के विद्रोह का नेतृत्व देशभक्तो ने नही किया था बल्कि देश की जनता के प्रेरणा एव प्रोत्साहन से राजाओ ने युद्ध लडा था। इस

लिए राजाओ के प्रति देशभक्ति का कोई मतव्य ही नही था। लेकिन यह विचार शास्त्री जी का उचित नही लगता है। क्योकि मातृभूमि के लिए शस्त्र उठाने वाला कोई भी व्यक्ति देश भक्त ही कहा जायेगा । परन्तु 'शास्त्री जी' का यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि विद्रोह के समय कोई एक राष्ट्रीय भावना नही थी, कोई एक साथ युद्ध करने के लिए तैयार नही हुआ था।

इस तरह शास्त्री जी ने "सोना और खून" उपन्यास को "पूजी " और "युद्ध" के रूप मे आरोपित करते हुए अपनी धटनाओ को उपन्यासो मे स्थान दिया है।[29]

अन्त मे 1939 से 1945 तक की घटना जो 'द्वितीय महायुद्ध' के भीषण विनाश और विशेषकर जापान की स्थिति को ध्यान मे रखते हुए अपने प्रसिद्ध उपन्यास " ईदो कथानक " मे चित्रित करते है। इसका सक्षिप्त विवरण देकर इस खण्ड को समाप्त करने की कोशिश करूगा।

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक 'जापान' अधकार के गर्त मे पडा था। 'शास्त्री जी' के अनुसार यहा रूढिवादियो का बोलबाला था। ईशा पूर्व 660 मे "जिम्मू टेनो" नामक व्यक्ति ने जापान की नीव डाली और स्वय को सम्राट घोषित किया । कुछ समय बाद शासन सत्ता ऐस व्यक्ति के हाथ मे चली गयी। जो दरबार का उमराव था। उसने सूर्यदेव के पोते का वशज बताया। इनका नेता " यारीतोमा" था । तथा देश मे छोटे– छोटे राजा तथा जमीदार थे। यारीतोमा ने उन्हे परास्त कर "शोगून" की उपाधि धारण की इसकी राजधानी " कियोतो" बनाई गयी । सम्राट ने अपने सम्पूर्ण अधिकार अपने सम्बन्धियो को सौंप दिये।[30]

सोलहवी शताब्दी के उत्तरार्ध मे 'जापान' ने विदेशी जहाजो को आने की छूट दे दी । और 'पुर्तगाली' तथा 'अग्रेज' यहा व्यापार कर अग्रेजी शिक्षा का प्रचार किया तथा जापानियो को इसाई बनाने पर जोर देने लगे । इससे क्षुब्ध होकर सम्राट ने व्यापार पर रोक लगा दी और जापान धीरे– धीरे कमजोर होने लगा । लेकिन सौभाग्य से पुन उन्नीसवी शताब्दी मे यूरोपीय लोगो को व्यापार की छूट दे दी गयी । यूरोपीय राजाओ के प्रतिनिधि ईदो राजमहल मे रहने लगे परन्तु इनके क्रियाकलाप से जापान 10 वर्षो मे नष्ट हो गया शोगुनो की सत्ता का समाप्त कर दिया गया । लेकिन जापानी लोगो ने धीरे धीरे अपनी सत्ता को पुन मजबूत किया और प्रथम विश्व युद्ध के समय तक जापान मे 'फार्मोसा', 'कोरिया', 'द0 सारवालिन,' और 'स्वागतुग' उपनिवेश मजबूत हो गये ।[31]

जापान की सॉंस्कृतिक जीवन मे यह परम्परागत धारणा थी कि जापान ईश्वर की ओर से एक अचल भूखण्ड है। जो सुरक्षित और अखण्ड है । इसलिए यही भावाना उनमे राष्ट्रीय जागरण और उत्थान का मौलिक आधार बनी । वे एक दूसरे राज्यो पर आक्रमण करके अपने उपनिवेशो को बढ़ाते चले गये और अमेरिका की सारी विलासिता की वस्तुओ को खरीदना बन्द कर दिया ।

जापान की इस नीति से पश्चिमी राष्ट्र और अमेरिका ने जापान की जड खोदने का निश्चय किया। जब जापान 1942 तक लगातार उपनिवेशो को कब्जा करता चला गया तो मित्र राष्ट्रो ने उसे आत्मसर्मपण की धमकी दी और कहा कि यदि वह अपने अधिकार को नही रोकता है तो हम उस पर बमवर्षा कर सकते है।

जापान सर्मपण नही करना चाहता था ऐसी स्थिति मे मित्र राष्ट्रो ने 6 अगस्त 1945 को जापान के "हिरोशिमा" और 9 अगस्त 1945 को " नागासाकी" शहर पर बमवर्षा शुरू कर दी जिससे 75 हजार आदमी मारे गये और लगभग 1 लाख आदमी अपग हो गये । जापान के आत्मसर्मपण पर उसकी शर्त मान ली गयी और सम्राट की मर्यादा को भग न करने का आश्वासन दिया गया । इस तरह से 1945 मे द्वितीय महायुद्ध भी समाप्त हो गया ।

आचार्य जी ने प्रस्तुत उपन्यास मे जापान की सम्पूर्ण स्थिति को ऐतिहासिक दृष्टि से देखते हुए इसकी रचना की है । और कथा मे सरसता प्रदान करने के लिए " केन" जैसे जासूस की कथा का समन्वय किया है । यह निशचित है कि 'जापान' की शक्ति उस युग मे अपने चर्मोत्कर्ष पर थी और उसके पीछे इश्वरीय सत्ता की छाया थी । किन्तु गृह युद्ध तथा अपरिसीम शक्ति का विश्वास ही उनके लिए धातक हुआ ।

अत 'शास्त्री जी' ने इस उपन्यास के माध्यम से विश्व घटनाओ का परिचय कराने के लिए "सोना और खून" उपन्यास की अगली कडी के रूप मे " ईदो कथानक " उपन्यास की रचना कर डाली थी । साथ ही लिखने का आशय यह भी था कि विज्ञान मनुष्य के विनाश का कारण बन जाता है। "नागासाकी", "हिरोशिमा", वैज्ञानिक उपकरणो से ही नष्ट हुए थे। और विज्ञान से मानव सहार की प्रक्रिया आसान हो गयी, और भविष्य मे किसी देश के लिए यह कभी भी "खग्रास" का रूप धारण कर सकता है। इसी व्यग्य को ध्यान मे रखते हुए 'शास्त्री जी' ने अपने प्रसिद्ध वैज्ञानिक उपन्यास "खग्रास" की रचना कर डाली है।

सन्दर्भ–सूची

1	डॉ0 गोविन्द जी	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास प्रयोग	पृष्ठ स0– 151, 52
2	डॉ0 गोविन्द जी	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास प्रयोग	पृष्ठ स0– 153 से 156
3	डॉ0 राम दरस मिश्र	हिन्दी उपन्यास की एक अर्तयात्रा	राम कवल प्रकाशन नई दिल्ली
4	कुछ विचार		
5	आचार्य चतुर सेन शास्त्री	वय रक्षाम	पृष्ठ स0– 7
6	वही	वही	पृष्ठ स0– 9 12
7	डॉ0 इन्दू वशिष्ठ	वैशाली की नगरवधू	पृष्ठ स0– 380 – 384
8	डॉ0 इन्दू वशिष्ठ	वैशाली की नगरवधू	पृष्ठ स0– 382
9	डॉ0 सुरेश सिन्हा	हिन्दी उपन्यास का उद्भव एव विकास	पृष्ठ स0– 216
10	डॉ0 शिव नारायण श्रीवास्तव	हिन्दी उपन्यास	पृष्ठ स0– 118
11	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	पूर्णाहुति	पृष्ठ स0– 28
12	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	पूर्णाहुति	पृष्ठ स0– 96
13	डॉ0 डी0 आर0 भडारी	भारतीय इतिहास का प्रवाह	पृष्ठ स0– 146
14	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	रक्त की प्यास	पृष्ठ स0– 68
15	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	बिना चिराग का शहर	पृष्ठ स0– 30, 32
16	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	लाल पानी (भूमिका)	
17	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	लाल पानी	पृष्ठ स0– 26
18	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	लाल पानी	पृष्ठ स0– 11
19	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	सहयाद्रि की चट्टाने	पृष्ठ स0– 61–67
20	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	सहयाद्रि की चट्टाने	पृष्ठ स0– 48, 49,
21	डॉ0 शुभकार कपूर	आचर्य चतुरसेन का कथा साहित्य	पृष्ठ स0– 217
22	डॉ0 रतिभानु सिह नाहर	भारतवर्ष का इतिहास	पृष्ठ स0– 112–115
23	एस0 आर0 शर्मा	भारत मे मुगल साम्राज्य	पृष्ठ स0– 147
24	जदुनाथ सरकार		पृष्ठ स0– 42
25	कुछ विचार		
26	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	सोना और खून	भूमिका
27	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	सोना और खून	पृष्ठ स0– 273, 298
28	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	सोना और खून	पृष्ठ स0– 367
29	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	श्री हसराज रहबर (दिसम्बर 1975) धर्मयुग	पृष्ठ स0– 14
30	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	ईदो कथानक	भूमिका
31	वही	वही	वही

अध्याय - चतुर्थ

अध्याय– 4

वृन्दावन वर्मा और आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन

(क) वृन्दावन लाल और आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में ऐतिहासिक सॉस्कृतिक संदर्भों का साक्ष्य

वृन्दावन लाल वर्मा के .अनुसार- इतिहास, विज्ञान और साहित्य के बीच की वस्तु है । ऐतिहासिक उपन्यासकार एक ओर जहा इतिहास के प्रति सच्चा और ईमानदार रहना पडता है, वही दूरारी ओर उपन्यास को साहित्यिक बनाने के लिए आश्रय भी लेना पडता है । उसमे लेखक को काल विशेष की स्मृतिया सजग और स्पष्ट रूपेण अकित करनी पडती है । सामान्य जनता और विशिष्ट व्यक्तियो दोनो का परिचय देना पडता है । वातावरण का ऐसा सजीव और सप्राण चित्र प्रस्तुत करना होता है, कि देश काल साकार हो उठे । इसके लिए पर्याप्त अध्ययन तथा गहन ऐतिहासिक दृष्टि की आवश्यकता होती है, साथ ही प्रतिभा और उर्वर कल्पना का भी सहयोग लेना पडता है । जब कोई ऐतिहासिक उपन्यासकार भूतकालीन जगत रो घटना और पात्र ग्रहण करता है, तो उसमे वातावरण, रहन–सहन, वेष–भूषा, तद्युगीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति, युग चिन्तन, भौगोलिक ज्ञान, युग विकास तथा अन्य यथार्थमयता का ध्यान रखने के अतिरिक्त उन बीतो मुर्दों मे प्राण का सचार करना पडता है, तथा तत्कालीन युग वैभव की नब्ज पर दृष्टि रखनी पडती है । ऐतिहासिक उपन्यासो मे देशकाल और वातावरण के महत्व को भी प्रतिपादित करते हुए

डॉ0 'वृन्दावन लाल वर्मा जी' कहते है कि–"मै स्काट ह्यूगो से भिन्न ऐतिहासिक इतिहास उपन्यास मे आजकल के समस्याओ का भी समावेश करता हू, मै गौरव गाथा द्वारा वर्तमान को भूल जाता है, और न ही पाठक को पलायन वादी बनाता हू । मै उनको उत्तेजित करके भविष्य के लिए प्रबल बनाता हू" । [1]

उनका मत है कि कुछ समस्याये तो सर्वकालिक होती है । यदि किसी युग के इतिहास मे उन समस्याओ के अनुकूल वातावरण और परिस्थिति मिल जाये तो ऐतिहासिक उपन्याकार उनका उपयोग कर सकता है . अपने बारे मे वर्माजी लिखते है कि "मुझे तो ऐसी समस्याओ के लिए बहुत ऐतिहासिक सामग्री मिली है, पर वह जानते हैं कि उपन्यासकार न तो उपदेशक बने और न कल्पना विलासी । साथ ही आज की कोई समस्या उस समय के वातावरण में रखकर

सुझाव देने पडेगे, हल के लिए । परन्तु उपदेशक की हैसियत से नही न लाल बुझक्कड की तरह, बल्कि केवल सुझाव देने वाले की हैसियत से" । [2]

इसके विपरीत **"आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी"**- ने इतिहास की ठोस सामग्री एव इतिहास पर आधारित उपन्यास लेखन के पक्ष धर नही है । उन्होने "वैशाली की नगरवधू" उपन्यास मे विस्तृत भूमिका दी है । यहा शास्त्री जी कभी–कभी आलोचक बन बैठते है । अपने ऊपर चोट खाकर वह तिलमिला उठते है और प्रतिहीनता की भावना से वह खण्डन–मण्डन पर टूट पडते है। वह आलोचको को करारा उत्तर देते है, साथ ही अपने पक्ष का मण्डन करते है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री का मत है कि ऐतिहासिक उपन्यास केवल उपन्यास है। इसमे इतिहास नहीं ढूढना चाहिए । ऐसा करना मूर्खता है । इतिहास मे परिवर्तन होता रहता है, फिर भला कैसे इतिहास दिया जा सकता है । ऐतिहासिक उपन्यास कोई इतिहास नही है, जिससे इतिहास का ज्ञान सीखा जाय । उसमे तो एक कहानी मिलेगी । इतिहास काल विशेष की चीज है । ऐसी चीज क्यू न दी जाय जो युगो से ऊपर की हो, जो शास्वत् हो सार्वभौम हो । वह है 'इतिहास रस" । अत पाठको यह आशा नही करनी चाहिए कि उपन्यास काव्य या कहानी पढकर वे ऐतिहासिक ज्ञान अर्जन करेगे । इसकी पुष्टि मे 'शास्त्री जी' कहते है– "यह कहा जा सकता है कि उसे ऐतिहासिक उपन्यास और कथानक लिखने से पहले ऐतिहासिक विशेष शक्तियो को जानना चाहिए, परन्तु यदि वह ऐसा करे तो कदापि कोई रचना जीवन मे नही कर सकता । क्योकि ऐतिहासिक विषय सत्यो का ज्ञान भी पूरा नही हो सकता । उनमे गवेषण करने वाले के द्वारा नई–नई जानकारी होते रहने से निरन्तर परिवर्तन होते रहते है । फिर क्यो न साहित्यकार अपनी कहानी और उपन्यास की चिर सत्य के आधार पर जिसमे गवेषणा की कोई गुजाइस नहीं, रचना करे "। [3]

जीवन एव वातावरण को सजीवता प्रदान करने के लिए बडी कुशल कल्पना अपेक्षित होती है । यदि लेखक के रूप मे विधायनी कल्पना नही है तो उसकी कृति का इतिहास से अधिक मूल्य नही होगा । 'कल्पना' और 'इतिहास' का कलात्मक समन्वय इन उपन्यासो की सर्वप्रमुख विशेषता है । यद्यपि उपन्यासकार को कल्पना के प्रयोग की पूरी स्वतत्रता है । फिर भी यह कल्पना इतिहास की विरोधिनी बनकर नही आ सकती । उसके पूरक रूप मे आ सकती हैं । उदाहरण के लिए यदि कोई ऐतिहासिक चरित्र इतिहास द्वारा क्रूर, अत्याचारी, नृशस सिद्ध हो चुका है तो उसको सदय उदार प्रजापालक के रूप में चित्रित करना इतिहास विरूद्ध बात होगी । इसी प्रकार भिन्न युगो के प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्तियो को एक ही युग के भीतर समकालीन रूप में चित्रित करना भी उचित न होगा । कल्पना का उचित प्रयोग यह होगा कि किसी पात्र के

चरित्र के विषय मे इतिहास द्वारा जो जानकारी प्राप्त होती है, उसी को पुष्ट करने के लिए काल्पनिक प्रसगो की अवतारणा की जाय । यदि इन काल्पनिक प्रासगो से ऐतिहासिक चरित्रो के गुण दोषो का विकास हो तो उनकी उद्भावना उचित ही कही जायेगी, चाहे उनका उल्लेख इतिहास मे कही न मिले ।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि जहा 'वर्माजी' ऐतिहासिक उपन्यासो मे यथार्थ और ऐतिहासिक तत्व की खोज करते है । इतिहास की घटना क्रम को आधार बनाकर इतिहास लिखने की प्रेरणा देता है । यह आवश्यक हो तो घटना के माध्यम से घटना का विस्तार कर सकते है, पर वह ऐतिहासिक उपन्यास मे ऐतिहासिक रेखा से भटकने की बात करते हैं, पर शास्त्री जी इतिहास तत्व की अपेक्षा इतिहास रस खोजने को तत्पर रहते हैं । वह इतिहास की घटनाओ को केवल माध्यम बनाना चाहते है और उपन्यास का प्रस्तुतीकरण अपने दृष्टिकोण से करते है । विशुद्ध ऐतिहासिक घटना की वे एकदम पक्षधर नही है ।

वृन्दावन लाल वर्मा जी ऐतिहासिक उपन्यास को इतनी स्वच्छन्दता देने के पक्ष मे नही है कि वह अपनी कृति मे इतिहास का मनमाना उपयोग करे । –"मेरी सम्मति मे इतिहास के साथ खिलवाड करना अनुचित है", वह जानते है कि इतिहास का निर्वाह करने मे उपन्यास लेखक को कठिनाई होती है, परन्तु जब वह इस कठिनाई पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो उसे अपनी सफलता पर अपार सतोष होता है । अत ऐतिहासकि उपन्यासकार को इतिहास का पूर्ण एव गम्भीर अध्ययन करने के उपरान्त ही ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के कार्य मे प्रवृत्त होना चाहिए।

'वृन्दावन लाल वर्मा जी' साहित्य की अन्य विधाओ की भाति, "सत्यम, शिवम्, सुन्दरम्" का समन्वय चाहते है । वह इतिहास को तो विज्ञान की श्रेणी मे रखते हैं, परन्तु उनका स्पष्ट मत है कि विज्ञान मे सौन्दर्य हो सकता है । विज्ञान केवल 'तथ्य और यथार्थ' को जानता है, कला केवल 'सुन्दरता' को । मेरा मत यह नही है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को दोनो का समन्वय करना चाहिए । यथार्थ तथ्य का केवल बाहरी रूप नही है । रूप के भीतर जो भाव है, यथार्थ मे वह समाविष्ट है । यथार्थ का आकर्षक प्रभाव सौन्दर्य की निष्पत्ति का एक बडा कारण है । यथार्थ और सौन्दर्य का समन्वय कला के नाना प्रकारो को अभिव्यक्त करता है और समाज के लिए कल्याणकारी भी बनना आवश्यक है तभी "सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" की कल्पना सूत्र अपनी व्याख्या के साथ सार्थक हो सकता है । [4]

वर्माजी ने अधिकतर उपन्यास रोमास मे लिखे है, क्योकि उनकी दृष्टि में रूमानियत द्वारा ही कलाकार सत्य को परिचित स्तर से ऊपर उठाकर उसे अधिक प्रभावशाली और आकर्षक बना देता है । पाठक को भाव जगत के सत्य से मार्मिक सौन्दर्य को उभार कर सामने रख देता है ।

ऐतिहासिक उपन्यासकार का लक्ष्य बताते, वर्माजी ने स्पष्ट लिखा है कि "चमत्कार की सच्चाई और सच्चाई का चमत्कार" "आनन्द की कमनीय सुन्दरता" और "सुन्दरता का कमनीय आनन्द" ये ऐतिहासिक कथाकार के प्रयत्न के लक्ष्य होने चाहिए। वर्माजी का यह कथन अग्रेजी कवि की कीट्स की निम्न पक्तियो का स्मरण करा देता है –

Beauty is truth, truth is Beauty

That is all ye know,

And all ye need to know

वृन्दावन लाल वर्मा जी चाहते है ऐतिहासिक उपन्यास के पात्र आदर्श हो, सदेश वाहक हो, अपने कृतित्व द्वारा पाठको के समार्ग पर ले चलने वाले हो– सामाजिक जीवन जैसा होना चाहिए, वैसा बनाने की प्रेरणा देने वाला हो । इसलिए एक ओर उनके पात्र उपन्यास जीवन के कठोर कटको को पार करते है, रौदते कुचलते है, पीडित होते हुए भी छाती तानकर चलते है, और दूसरी ओर वह स्वय अपनी रचनााओ मे वर्तमान समस्याओ को प्रस्तुत कर अपने विचार प्रकट करते हुए निश्चय किया कि वर्तमान की समस्याओ को लेकर रम जाओ और उपन्यास के रूप मे जनता के सामने अपनी बात रख दो । **"सेण्ट्स बरी"** जैसे पाश्चात्य आलोचक और **"स्कॉट ड्यूमा"** आदि यूरोपीय उपन्यास लेखको ने ऐतिहासिक उपन्यासो मे अभिजात्य भाव पर अधिक बल दिया है । उनकी रचनाओ मे पात्र घटनाये एव प्रसग सभी अभिजात्य हैं, परन्तु वर्माजी अभिजात्य भावना को ऐतिहासिक उपन्यास के लिए अनिवार्य नही मानते है । कुछ लोग कहते है कि ऐतिहासिक उपन्यासो का अर्थ कल्पना के ससार मे खो जाना यथार्थ से पलायन करना, सामतो की वीरता का बखान करना दुस्साहसिक घटनाओ का चित्रण करना अर्थात् अविकसित मानव को तृप्त करना है । कई ऐतिहासिक उपन्यासकारो के बारे मे यह बात सही हो सकती है जैसे– 'ड्यूमा' परन्तु वर्माजी सबसे बचने की कोशिश करते है । वर्माजी साधारण जन्म को अधिक महत्व देते है और जहा सामतो की वीरता का चित्रण करते हैं, वहा उनके पोचपन को भी नही छोडते है । [5]

वर्माजी यदि सामन्त युग का चित्रण करते हैं, तो इसलिए कि उससे हम कुछ लाभान्वित हो, कुछ सीखे । वर्तमान या भविष्य के लिए उसकी उपादेयता ही उन्हे सच्चा चित्रण करने की ओर प्रवृत्त करती है । वह स्वीकार करते है कि इतिहास मे सामतो का ही नाम अधिक होता है, जनता कम उल्लेख होता है इसलिए उपन्यास मे भी इन्हीं सामतो को केन्द्र मे रखकर कथा कही जाती है, पर बीसवीं शताब्दी के प्रजातत्र वादी लेखक के नाते वह भी जनता की शक्ति को स्वीकार करते है और अपनी रचनाओ मे जनता का चित्रण उसकी कठिनाइयो और उनसे होने

वाले सघर्ष का चित्र प्रस्तुत करते है । "पुरूषार्थ मानव के लिए सदा अनिवार्य रहा है और रहेगा। मै तो इस पर बहुत जोर देता हू । जनता मे यह गुण प्रचुरता के साथ रहता है" ।

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री' का दृष्टिकोण ऐतिहासिक उपन्यास लेखन मे वर्माजी से भिन्न रूप मे दिखाई देता है । जैसा कि पहले ही पैरा मे स्पष्ट कर चुके है कि शास्त्री जी ऐतिहासिक उपन्यासो मे 'यथार्थ' और 'इतिहास' की आशा नही करते है । वर्माजी की तरह शास्त्री जी इतिहास वृत्ति और इतिहास रेखा की सत्यता पर विश्वास नही करते है । 'शास्त्री जी' स्पष्ट आलोचक के रूप मे व्याख्या भी करते है ।'शास्त्री जी' कहते है कि "उसका नाम ऐतिहासिक उपन्यास है, जो इतिहास की भूमि पर खडा किया गया है तब भला कैसे भूमि न देखी जाय और मकान की चिता की जाय । कुर्सी की सीट न देखी जाय और कमर टेकने के लकडी पर ध्यान दिया जाय" ।'शास्त्री जी' का यह वकतव्य यह स्पष्ट सकेत करता है कि वृक्ष का तना मत देखो शाखाओ पर नजर गडाओ । ऐतिहासिक उपन्यासो मे पहली भावना यही प्राप्त होती है कि उसमे इतिहास है और वह इतिहास कहानी के पीछे छिपा है, फिर क्यो नही इतिहास देखा जायेगा ? उनका दूसरा भी तर्क यही है कि इतिहास वदलता रहता है । उस पर ध्यान न दिया जाय विज्ञान भी बदलता रहता है, तो उस पर क्यो ध्यान दे ? शास्त्री जी की तीसरी चीज है "इतिहास रस", यह इतिहास रस क्या बला है ? इसको समझाते हुए'शास्त्री जी' कहते है कि "अभी तक भोजनो मे छ रस चखे हैं, काव्य मे नौ रस पढे हैं, यह'इतिहास रस' नया रस है । यह सत्य है कि यह रस गन्ने और रसगुल्ले की तरह मीठा नही है । हम इतिहास पढते है उसमे भी बडा आनन्द आता है, वहा क्या इतिहास नही है । अत 'शास्त्री जी' का मत है कि वहा इतिहास तत्व आता है, यदि केवल इतिहास तत्व है तो इतिहास के पाठको को वहा आनन्द क्यो आता है ? यदि इतिहास रस हो सकता है, तो 'भूगोल रस', 'दर्शन रस', ओर 'विज्ञान रस' भी मानना होगा। विज्ञान के आधार पर लिखे गये उपन्यास से 'विज्ञान रस' प्राप्त होगा, भूगोल की पृष्ठभूमि से लिखे गये उपन्यास से 'भूगोल रस' प्राप्त होगा । दर्शन की गुत्थी सुलझाने वाले नाटक या उपन्यास मे 'दर्शन रस' उमडता हुआ दिखाई पडता है । इन रसो की सख्या 'सुरसा' की तरह दिखाई पडती है, अर्थात् जितने प्रकार के उपन्यास होगे उतने ही प्रकार के रसो की वृद्धि होगी । [6]

अपने पक्ष मे 'शास्त्री जी' अपने आलोचको को फटकारते है, वे कहते है–"मेरे उपन्यास मे इतिहास की भूले है तो क्या हुआ, मैंने इतिहास को बदला है तो क्या हुआ? इसमे 'इतिहास रस' है मुझे चिन्ता नहीं कि आलोचक क्या कहते हैं । भले ही वह अशुद्धिया निकाले, पहाड से टकरावे, पर इस उपन्यास का सौन्दर्य उनकी काव–काव से फीका न होगा । इसका रस नही घटेगा " । आगे फिर 'शास्त्री जी' कहते है– "अब कोई इससे प्रमाणो के प्रबल धक्के देकर हजार ऐतिहासिक

भूले निकाले फिर भी उसे भ्रात और विकृत कहता हुआ फिरे पर कवि ने जिस इतिहास रस की सृष्टि की है, वह इतिहास के लाख सत्य प्रकट होने पर फीका न होगा । [7]

वास्तव मे शास्त्री जी के दृष्टिकोण से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'शास्त्री जी' ने अपने उपन्यासो मे अधिक से अधिक '**कल्पनाधिक्य**' का प्रयोग किया है, उसी का नाम 'इतिहास रस' रखा है । ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास की अधिक चिन्ता न करे तो कल्पना द्वारा उसे बदला जा सकता है । इसी कल्पना द्वारा पाठक को उपन्यास से मनोरजन प्राप्त होता है, उसे आनन्द आता है । इसी को वे 'इतिहास रस' कहते है ।

वैसे तो कल्पना का प्रयोग 'वर्माजी' ने भी किया है, लेकिन 'शास्त्री जी' उस कल्पना से सतुष्ट नही है । वे उनमे 'इतिहास तत्व' ही देखते है, चूकि वर्माजी इतिहास के सत्य की परम्परा को अपनाते है । इसलिए उनकी रचनाओ मे 'इतिहास रस' की अपेक्षा 'इतिहास सत्य' अधिक दिखाई पडता है और वर्माजी की रचनाओ मे भावना और तल्लीनता की अपेक्षा सर्तकता अधिक व्यक्त हुई है । इसी कारण वर्माजी के उपन्यासो मे इतिहास वृत्ति की झलक दिखाई पडती है, तथा उनके उपन्यास 'हृदय' की अपेक्षा 'मस्तिष्क' पर अधिक जोर डालते हैं और पाठक उनके सुख–दुख को अपने सुख दुख मे आरोपित नही कर पाता है तथा एक सहानुभूति दर्शक मात्र ही रह जाता है । इस तरह से हम विचार करे तो जहा एक तरफ वर्माजी के उपन्यास मे इतिहास वृत्त ही वृत्त है वही शास्त्री जी का उपन्यास लबालब श्रेष्ठ रसो से भरा है, पर ऐसा नही है कि वर्माजी का उपन्यास आनन्द और रस से न भरा हो और पाठक के हृदय को न छूता हो, पर शास्त्री जी ने इसी मात्रा को अधिकाधिक रूप मे प्रयोग कर दिया है । वह कल्पना द्वारा इतिहास के रूप ढाचे तक को बदल देते है और मनमाने ढग से इतिहास का प्रयोग करते है । [8]

एक बात यह भी विचार में आती है कि यदि आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' के खडन मडन प्रत्युत्तर से इस बात की पुष्टि नहीं हो पाती है कि ऐतिहासिक उपन्यास मे इतिहास तत्व के साथ मानमानी करने का अधिकार लेखक को प्राप्त है या नही ? लेखक यदि इतिहास के समन्वय से यदि उपन्यास नहीं लिखना चाहता तो ऐतिहासिक उपन्यास मे क्यो हाथ लगा देता है ? यदि केवल कल्पनाधित्य द्वारा रस उत्पन्न करना है तो सामाजिक उपन्यास ही लिखे और उसमे रोमाटिक रग भरे । वास्तव मे इतिहास की पृष्ठभूमि पर लिखे उपन्यास में इतिहास होना ही चाहिए । उपन्यास मानव जीवन का चित्रण है । जब वही चित्रण विज्ञान की पृष्ठभूमि पर होगा तो वैज्ञानिक उपन्यास होगा, पर यह तार्किक प्रश्न है कि 'वैज्ञानिक उपन्यास' को क्या यह अधिकार है कि वह अपने उपन्यास मे पृथ्वी को गतिहीन, तारे नक्षत्रो को उझलता हुआ, कूदता हुआ दिखाये । एटमबम के आविष्कार कर्ता को चर्चिल बना दें । क्या उसे अधिकार है कि वह

*

विज्ञान के साथ खिलवाड करे ! इसलिए सही और सार्थक तथ्य वही हो सकता है कि लेखक कल्पना का प्रयोग भले ही करे, परन्तु ऐसी कल्पना न करे और ऐसा विज्ञान रस न बनावे कि विज्ञान के सर्वमान्य सिद्धातो का खून हो जाये । इसी प्रकार भूगोल के पर्दे पर लिखे उपन्यासकार को यह अधिकार कदापि नही होना चाहिए कि वह भूगोल रस तैयार करने के लिए भूगोल की हत्या करे । क्योकि नारियल रेगिस्तान मे नही उगाये जाते, ऊट को समुद्री जहाज बना दे, यह प्रकृति विरूद्ध है । इसलिए उपन्यासकार को चाहिए कि वह कल्पना का प्रयोग करे पर उसमे उच्छृखल का प्रयोग न करे । वह कल्पना से पात्रो एव घटनाओ मे सम्यक एव उचित रग तो भर सकता है, हृदय को रग सकता है, चित्रो को सभाल सकता है, परन्तु उसे अधिकार नही कि वह इतिहास को बदल दे ।

वृन्दावन लाल वर्मा जी अन्य लोगो की तरह शौकिया तौर पर एकाध ऐतिहासिक उपन्यास लिखकर छुट्टी नही पा ली थी । ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना ही इनका प्रधान साधन क्षेत्र रहा है । अब तक 'वर्मा जी' ने 'गढ–कुण्डार,' 'विराट की पद्मिनी,' 'कचनार,' 'मुसाहिबजू,' 'रानी लक्ष्मीबाई,' 'मृगनयनी,' 'माधव जी सिधिया,' 'भुवन विक्रम,' आदि उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यास लिख चुके है । वर्माजी की ऐतिहासिक सामग्री प्राय मुस्लिम काल की है । जिसे 'वर्माजी' ने अध्ययन, जन श्रुतियो और परम्पराओ द्वारा ग्रहण किया है । वर्माजी ने ऐतिहासिक सामग्रियो का उपयोग अपेक्षाकृत मानवीय कोमल प्रवृत्तियो के साथ सफल अकन किया है । इन्होने इतिहास की उन्ही सामग्रियो को ग्रहण किया है, जिसके चयन से उपन्यास की मनोरजकता तो बनी ही रही साथ–साथ जीवन के विविध पक्षो का पारस्परिक सघर्ष और उदात्त वृत्तियो की विजय भी अकित होती चली गई । वर्माजी रोमाटिक परम्परा के लेखक होने के कारण इनके चित्रण मे जादू है । कहानी कहने कहने की आकर्षक होने पर भी वर्माजी कही–कहीं विस्तृत विवरणो मे उलझ जाते है, जैसे– 'मृगनयनी' उपन्यास मे इतिहास के अनेक तथ्यो की भीड हो गई है, जिससे उपन्यास का गठन आद्योपान्त बडी मुश्किल से बना रहता है, तो भी मुख्य कथा और प्रासगिक कथा का सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होने पाता । [9]

'वर्माजी' के चरित्र मनुष्य हो अर्थात् जो साधारण कोटि के और खल प्रकृति के पात्र है । वे तो मनुष्य हैं ही इनके देवोपम उदात्त पात्र भी अपने अत सघर्षो के कारण मिट्टी की ही उपज मालुम पडते हैं । इनके नारी पात्रो मे रानिया तथा सामत वर्ग के राजा भी आते हैं और उनकी वर्गगत् विशेषताए साफ तौर पर लक्षित होती हैं । उदाहरण के लिए– रानिया प्यार की देवी होती हैं । उनमे प्यार का दमन करने की अद्भुत क्षमता होती है । सभी शस्त्र सचालन मे कुशल होती हैं, उनमे आत्मबल इतना होता है कि वे मृत्यु से भी भय नही खाती । पात्रो मे

'दिलीप सिह', 'मानसिह', 'अटल', 'अग्निदत्त', 'रघुनाथ सिह', आदि भी व्यक्तिगत विशेषताओ के कारण अपनी पहचान बनाते है । दुष्ट राजा, खल रानियो, छली मत्रियो, रूढिवादी पडितो, लुटेरो, बादशाहो और भले–बुरे सेवक आदि के चित्र मे वर्माजी ने बडी बारीकी से चित्रण किया है । सभी के सभी पात्र मिट्टी से भूटते जान पडते है । 'कुमुद' जैसी देवी सदा अपनी कमजोरी का विश्लेषण करती है । इतना होते हुए भी सभी पात्रो मे यथार्थ और रोमास का सुन्दर मिश्रण दिखाई देता पडता है ।

इसी तरह आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी ने अपने सारे ऐतिहासिक उपन्यासो मे अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए कल्पना का खुलकर प्रयोग किया है । कल्पना के नये पात्र नई घटनाये और नये प्रसग तो गढे ही है, ख्याति प्राप्त पात्रो के चरित्र को भी नया मोड दिया है, नई भगिमा दी है । ये पात्र ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नही जान पडते है, किन्तु लेखक की सामाजिक दृष्टि और उद्देश्य की सफलता से प्रतिफलित अवश्य करते है । लेखक अपने को "मानवता का नही, मानव का पुजारी मानता है" और वह घृणित, पापी, अपराधी, खूनी, डाकू, हत्यारे, व्यभिचारी, पागल मनुष्यो को भी उसमे मानवता का नया रग भरकर अपना देवता मानने लगता है । उपेक्षित मनुष्य के भीतर सौन्दर्य की यह प्रवृत्ति शास्त्री जी द्वारा नवीन युग की देन है ।'शास्त्री जी' ने अपने जीवन मूल्यो से प्रेरित होकर हमारे इतिास की कुलीन और धर्मोज्जवल कही जाने वाली सभ्यता और मान्यता की कुरूपता और वीभत्सता को भी चित्रित करते है । जिसमे "वयरक्षाम" उपन्यास का पात्र रावण को 'शास्त्री जी' ने 'जगदीश्वर' के रूप मे चित्रित कर उसके अन्दर मानवीय गुण को भर देते है । [10] "वैशाली की नगर वधू" मे शास्त्री जी ने 'आम्रपाली' को जो एक वेश्या थी, उसमे अपनी मनोरम कल्पना से देवी का गुण भर कर उसे नैतिकता और आदर्श की मूर्ति के रूप मे स्थापित कर देते है । इस उपन्यास मे विविध प्रसगो की रोचकता के कारण कथा इतनी रोचक नहीं हो पाती-परन्तु घटनाओ का भारी सयोजन जासूसी उपन्यस की कथानक की भाति ही है । इस उपन्यास के अदर मूल कथा का स्थान एकदम गौड है ओर सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियो का चित्र अधिक उभर का आया है । आलोचको का यह कथन तथ्य परक है, कि कथा के माध्यम से 'शास्त्री जी' ने इतिहास को साधन बनाकर अपने साध्य रूप को कल्पना के माध्यम से कहा से कहा तक रखते है और जिसमे उपन्यासकार को पर्याप्त सफलता मिली है । [11]

इस तरह वर्मा जी के उपन्यासो मे पात्रो की अधिकता है, वही शास्त्री जी ने भी अपने उपन्यासो मे पात्रो की अधिकता रखते हैं । वर्माजी अपने पात्रो को इतिहास के अनुकूल रखते है और कल्पना के प्रयोग से भी उनके पात्र इतिहास से हटते नही हैं, पर शास्त्री जी अपने इतिहास

रस के चक्कर मे मूलकथा को गायब कर देते है और इतिहास को माध्यम बनाकर उस समय के समाज और सॉंस्कृतिक जीवन का यथार्थ रूप उकेरने की कोशिश करते है । शास्त्री जी अपने उपन्यास के मुख्य पात्र, जैसे– 'महमूद' 'रावण' 'औरगजेब' आदि क्रूर शासको मानवीय सवेदना खोजने की कोशिश करते है और अत मे यही सोचते हे कि "आखिर वह भी मानव है और कौन सी परिस्थति उनमे अनैतिक विचार भरने के लिए जिम्मेदार है और कौन सा परिवेश उनमे किस रूप मे ढाल लेता है । इसी दृष्टिकोण को लेकर शास्त्री जी वर्माजी से भिन्न हो जाते हैं, जबकि वर्माजी नायको को जो इतिहास मूलक हैं उन्हे उनके चरित्र को उनके मूल रूप मे रखने की कोशिश करते हैं और उनमे ज्यादा परिवर्तन करने की कोशिश नही करते है । इसलिए वृन्दावन लाल वर्मा जी को शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास की धारा प्रवर्तक के रूप मे माना जाता है और शास्त्री जी वर्मा युग के ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप मे ही जाने जाते हैं जिनके उपन्यासो मे समाज की करूण व्यथा दिखाई पडती है ।

(ख)

वृन्दावन लाल वर्मा और आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में ऐतिहासिक सांस्कृतिक सन्दर्भ और औपन्यासिक समय का प्रयोग

वृन्दावन लाल वर्मा :

बुन्देलखण्ड के गौरवपूर्ण इतिहास को उपन्यासो के माध्यम से सजीव एव सप्राण करने का श्रेय *वृन्दावन लाल वर्मा जी* को है । उन्होने अपने अधिकाश उपन्यास इस भू–प्रदेश की त्यागपूर्ण और वीरता भरी घटनाओ पर लिखे है । उनके अतिरिक्त अन्य कोई हिन्दी उपन्यासकार ने अभी तक इस भूमि को स्पर्श को नहीं किया है और बुन्देलखण्डी इतिहास के चित्रण को हिन्दी ऐतिहासिक उपन्यासो की प्रवृत्ति मानने मे कुछ सकोच हो सकता है । तथापि ये कृतिया कला पूर्ण हैं कि उनका विवेचन करना अनुपयुक्त न होगा । वर्माजी के उपन्यासो मे इतिहास और कल्पना का सुन्दर प्रयोग है। उनकी अधिकारिक कथा कोई सबल रोमास होती है, जिसके आधार पर तत्कालीन युग का चित्रण किया जाता है । जिस प्रकार आर्य सस्कृति और गुजरात वैभव "के0 एम0 मुशी" का प्रिय विषय रहा है, उसी प्रकार बुन्देलखण्ड का मध्य युगीन वीरतापूर्ण वातावरण वर्माजी का प्रेरणा–श्रोत रहा है । इस बात को हम जानते हैं कि ऐतिहासिक उपन्यास को यथार्थ प्रदान करने के लिए अनुकूल वातावरण की आवश्यकता होती है । इसलिए 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' मे वर्माजी ने रानी के जीवन के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक प्रथाओ तथा मर्यादाओ का वर्णन भी करते हैं । उस समय के चलने वाले साम्प्रदायिक झगड़ो का सकेत लेखक ने जनेऊ प्रसग द्वारा दिया है, तथा बताया है कि उस समय समाज मे वर्ण व्यवस्था के नियमो का पालन कडाई के साथ किया जाता था और राजा स्वय वर्णाश्रम व्यवस्था का पालन कडाई से करता था । अन्य सामाजिक रश्म रिवाज महाराष्ट्र के 'हर्दी कू–कू' इत्यादि त्यौहारो तथा उत्सवो तथा स्त्री पुरूष के वस्त्राभूषणो के चित्रण कर तत्कालीन बुन्देल खण्ड के समाज का सजीव चित्र उपस्थिति कर दिया है । तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितियों का चित्रण भी यथार्थ है। जनरल रोज की मक्कारी और अग्रेजो की दुर्नीत का सफल अकन हुआ है।

"मृगनयनी" उपन्यास मे ग्वालियर नरेश 'मानसिंह' के समय की आपाधापी और सुरक्षा के आभाव का परिचय पाठक को 'मृगनयनी' पढ़कर सहज ही हो जाता है । "झासी की रानी" के समान ही इस उपन्यास के अन्दर भी बुन्देलखण्ड का समाज अपने स्वाभाविक रीति रिवाज और रश्मों के साथ सजीव हो उठा है । होली आदि त्योहार कितना महत्व दिया जाता था, और उनको मनाने की क्या विधि थी, इसका सजीव वर्णन इसमे मिलता है । 15वीं शताब्दी के सामाजिक,

आचार विचारो विवाह सम्बन्धी नियमो, इत्यादि की सूचना अटल और लाखी के प्रणय और विवाह के सम्बन्ध मे वैष्णव पडित बोधन के विचारो द्वारा दी गई है । शैवो के और वैष्णवो के पारस्परिक द्वेष तथा मुसलामानो द्वारा मदिरो और मूर्तियो के भजन के दृश्य भी तत्कालीन युग को समझने मे सहायता देते हैं ।'गढ–कुण्डार' चौदहवीं सदी के बुन्देलखण्ड की राजनीतिक उथल–पुथल का हृदय ग्राही वर्णण प्रस्तुत करता है । इस प्रकार वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे देशकाल का सजीव चित्रण उपन्यास को सफल बनाता है । [1]

इस तरह 'बुन्देलखण्डी जीवन' की पृष्ठभूमि पर निर्मित वर्मा जी के उपन्यासो के कथानक बडे ही प्राकृतिक और अल्हड वेग से उन्मुक्त सौन्दर्य लिये हुए चलते है । 'बुन्देलखण्ड' की ऊची–ऊची पहाडियो पर उठे हुए हरे–भरे पेडो को देखकर यह प्रश्न होता है कि इन्हे रस कहा से मिलता है ? इस सौन्दर्य के स्रोत का पता अनयत्र न पाकर यह विश्वास करना पडता है कि ये पेड वहा की हवा से हरितमा प्राप्त करते है। इसी प्रकार वर्माजी भी अपने कथानक और चरित्र को अपने आसपास के सहज वातावरण मे स्वाभाविक गति से इस प्रकार फूट पडते है कि उनके प्राकृतिक सौन्दर्य मे पाठको को अपूर्व रस मिलने लगता है । यह कहा जा सकता है कि 'वर्माजी' के कथानको के सजाव, श्रृगार मे बुन्देलखण्डी जीवन की प्रतिच्छाया है । जिस प्रकार बुन्देलखण्ड के लोगो के पहनावे घुटने तक की धोती, लम्बा ढीला कुर्ता, सिर पर बडा सा पग्गड एव हाथ मे लम्बी सी लाठी मे आसामन्जंस्य और ढीलापन दिखाई पडता है। ऐसा ही आसामन्जस्य वर्माजी के कथानको मे दिखाई पडता है । वे कुशल शैलीकार की भाति उन्हे छाटते, सवारते नही है, लेकिन इन तमाम आसामजस्यो मे भी इनके कथानक अपूर्व आकर्षक से भरे है । इसका रहस्य है– 'उनमे सहज वन्य और स्वच्छन्द जीवन शान्ति का प्रवाहित होना । [2]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री :

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' ने किसी विशेष भागौलिक खण्ड को देखकर या उसकी प्रेरणा–श्रोत से उन्हे उपन्यास रचना का आधार नहीं मिला था, न ही 'शास्त्री जी' 'वर्मा जी' की तरह हर उपन्यास मे किसी एक क्षेत्र की गतिविधियो को ध्यान मे रखते हुए उस क्षेत्र की ऐतिहासिक घटनाओ को लेकर उपन्यास की रचना करते है, बल्कि शास्त्री जी का दृष्टिकोण बहुत व्यापक है और पूरे देश की 'राजनीतिक', 'ऐतिहासिक', 'सामाजिक', 'धार्मिक' प्रतिक्रियाओ को ध्यान मे रखकर व्यापक दृष्टिकोण से उन्होने उपन्यासो की रचना की है । नारी विश्लेषण तो दोनो लोगो के उपन्यासों के माध्यम हैं, पर 'शास्त्री जी' नारी हृदय के अन्दर झाकने की कोशिश करते हैं । उसको बडी सूक्ष्म दृष्टि से परखते है । इसलिए समाज की विसगतियो को खोलकर 'शास्त्री जी' अपने उपन्यासो मे उसको प्रणयबद्ध करते हैं । इसलिए 'शास्त्री जी' के अधिकतर उपन्यास चाहे

वह ऐतिहासिक हो या फिर सामाजिक, उसमे नारी चित्रण की भावना और साहस तथा लाचारी सबकुछ विभिन्न रूप से कथानक मे प्रस्तुत किया गया है । शास्त्री जी का दृष्टिकोण पूरे देश की राजनीतिक गतिविधियो पर था, और 'शास्त्री जी' स्वय पूरे देश मे चिकित्सक के रूप मे भ्रमण कर चुके थे, और सारी तृष्णाओ से परिचित हो चुके थे ।

आचार्य जी के ऐतिहासिक उपन्यास लेखन सामाजिक व राजनैतिक पृष्ठभूमि का अवलम्ब लेकर निर्मित हुए हैं, जिसमे चिर सत्य के साथ–साथ **'इतिहास–रस'** की अनुभूति होती है । आचार्य जी के विचार मे ऐतिहासिक उपन्यासो मे ऐतिहासिक तथ्यो को पीछे बैक ग्राउण्ड मे फेक देना है और स्थिर सत्य के आधार पर कल्पना की मूर्तियो को आगे लाना है । मेरी वह कल्पना मूर्ति बनती है "दूल्हा" और ऐतिहासिक तथ्य "बाराती" बन जाते है । [3]

इसी कारण शास्त्री जी 'औरगजेब' और 'महमूद गजनवी' जैसे पात्रो को भी 'आचार्य जी' ने मानव पूजा के रग मे रगकर चित्रित करते है । 'पात्रो' की क्रूरता 'प्रेमी' हृदय का रूप धारण कर लेती है । इस परिवर्तन का कारण है कि इतिहास मे चित्रित 'ओरगजेब' व 'महमूद' लेखक के भावना जगत से 'औरगजेब' व 'महमूद' से मेल नही खा सके है । इसलिए लेखक ने अपनी कल्पना के आधार पर जो मानव व प्रेमी हृदय चित्रित किया है वह एक अन्य प्रकार के शील और आदर्श का निर्माण कर हमारे हृदय मे सहानुभूति उत्पन्न करते है । कल्पना का आग्रह कर क्रूर शासक के अदर मानवीय गुण को परिलक्षित कर देना 'शास्त्री जी' की निसन्देह एक मौलिक देन है ।

आचार्य जी ने ऐतिहासिक उपन्यासो का आधार विगत ससार की राजनीतिक प्रतिक्रियाओ को बनाया है । इस राजनीति के क्षेत्र की गतिविधि को 'शास्त्री जी' 1500 ईसा पूर्व से आर्यों के इतिहास से लेकर 19वीं शताब्दी तक के राजनैतिक घटना क्रम को उपन्यास मे स्थान देते है । मुख्य रूप से 18वीं और 19वी शताब्दी को उपन्यास मे 'शास्त्री जी' ने स्थान दिया है । इसके अन्तर्गत देश की युगीन समस्याओ व राजनीतिक पार्टियो के सम्बन्ध मे 'आचार्य जी' के विचार स्पष्ट होते है ।

भारतीय स्वतत्रता आन्दोलन मे गाधी जी से आचार्य जी अत्यधिक प्रभावित होते हैं । गाधी दर्शन का मूलाधार था कि किसी भी कार्य का ढंग और उद्देश्य दोनो ही पवित्र होने चाहिए । गाधी जी कम्यूनिष्टो के पक्ष मे थे, किन्तु उनके हिसात्मक ढग के विरोधी थे । सम्भवत 'आचार्य जी' के जीवन को इस अहिंसात्मक प्रवृत्ति ने स्पर्श कर लिया था, इसलिये उनकी रचनाओ मे अधिकतम् अहिसात्मक और आदर्श के प्रति आग्रह मिलता है । 'काग्रेस पार्टी' देश के लिए हितकर है, अथवा नही इस सम्बन्ध मे आचार्य जी के विचार भिन्न हैं । काग्रेस का सगठन इस कारण सुदृढ है कि इसके विभिन्न तत्व विदेशी शासन के विरोध मे एकत्र हुए हैं, अन्यथा एक स्थान पर

तो कभी एकत्र नही हो सकते थे । इसलिए जब देश स्वाधीन हो गया तो उनके उद्देश्य की पूर्ति हो गई । अब इसे भग कर देना चाहिए । अपने जीवन काग्रेस नेताओ का वास्तविक रूप देखकर ही आचार्य जी की उपरोक्त धारणा निर्मित हो गई थी । [4]

इस प्रकार स्वतत्र पार्टी के सम्बन्ध मे वह देश के लिए हितकर है, अथवा नही उनका विचार था कि पार्टी के अन्दर कुछ पुराने लोग सम्मिलित हुए है जो ऊपर से देखने मे बुद्धिमान प्रतीत होते है, पर आधुनिक ससार की वास्तविकता से सर्वथा अनभिज्ञ है । समाज और देश के अदर सह–अस्तित्व की भावना निसन्देह शाति व कल्याणमय दिशा की ओर इगित करती है । स्वतत्रता की भावना के साथ–साथ जनता मे सह अस्तित्व की भावना अवश्य होनी चाहिए, किन्तु हमारे देश मे स्वतत्रता आई और अपने आचल मे दुनिया भर की बुराईया लेती आई । हमने आज तक यह जाना ही नहीं कि हम स्वतत्र हो गए है, न यह आज तक जान सके कि देश के प्रति कर्त्तव्य क्या है, हम तो अब अपनी स्वार्थ सिद्धि मे लग गये है । [5]

तुलनात्मक दृष्टिकोण :

"वृन्दावन लाल वर्मा" जी का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास "गढ–कुण्डार" 1927 मे प्रकाशित हुआ था । इसके प्रकाशित होते ही हिन्दी जगत वर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यास लेखन प्रतिभा से अवगत हो गया । बुन्देल खण्ड की बीती हुई सामती युग की स्मृति, जब वहा वीरता एव साहस की आधिया उठा करती थी, प्रस्तुत उपन्यास का मूलाधार है । क्षत्रियो के आपसी कलह को वर्माजी के उपन्यास मे दिखाया है । बुन्देले अपने को खगारो से ऊचा समझते थे, पर खगार बुन्देलो की अधीनता स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं थे । यह उपन्यास पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है, रोमास की धारा ने इसे और आकर्षक बना दिया है । सामतीय युग के युद्धो और प्रेम से सने गढ–कुण्डार मे हमे वीरता का अद्भुत प्रदर्शन, प्रेम की सुन्दर झलक दिखाई पडती है। 'हेमवती' और 'नागदेव' का प्रेम–प्रसग बडा ही रोचक है । इस प्रेम प्रसग के माध्यम से तत्कालीन सामतीय युग की प्रवृत्तिया उजागर होती है, जो अपनी प्रेमिकाओ को पाने के लिए मारकाट, युद्ध, धोखेबाजी, अपहरण आदि करते थे । जिस युग का चित्रण यह उपन्यास करता है, वह सामन्तीय युग था, जो जरा सी बात पर तलवार निकाल भीषण युद्ध करते थे । प्रेम, वीरता, शौर्य आदि इस युग के विशेषता थी । अपने व्यक्तिगत और जातीय स्वार्थ के लिए किस प्रकार तुष्ट हो जाते थे । इस उपन्यास को पढने से तत्कालीन, राजनैतिक, सामाजिक और धार्मि दशाओ का अनुमान लग जाता है । [6]

इसी प्रकार 'आचार्य चतुरसेन जी' का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास "पूर्णाहुति" है, जो 1928 ई0 में प्रकाशित हुआ था । शुरू में इसका नाम "खवास का ब्याह" शीर्षक से था, पर 1949 मे

इसे पूर्णाहुति के नाम से रूपान्तरित कर दिया गया है । लेखक इसमे पृथ्वीराज रासो की वीरता और बहादुरी का कथानक प्रस्तुत करता है । इस उपन्यास मे 'पृथ्वीराज' और सयोगिता की प्रेम–प्रसग की सफल कथा का अकन है । पृथ्वीराज, वर्माजी के 'नागदेव' की तरह ही बहादुरी है, परन्तु हेमवती नागदेव से प्रेम नही करती है । वह नागदेव को फटकार देती है, जबकि सयोगिता पृथ्वीराज से अपार प्रेम करती है और पृथ्वीराज के सोने की मूर्ति मे जयमाल डाल देती है । दूसरी तरफ वर्माजी का पात्र 'अग्निदत्त' और 'मानवती' दोनो अपार प्रेम करते है, पर तब भी वे परिस्थिति के बिगड जाने के कारण नही मिल पाते है । नागदेव हेमवती का अपहरण करना चाहता है, पर तब भी वह असफल होता है । इस तरह शास्त्री जी का पात्र वीर, साहसी होते हुए प्रेम को भी प्राप्त कर लेता है, पर वर्माजी के दोनो प्रेम प्रसग पात्र असफल हो जाते है ।

इस प्रकार दोनो लोगो ने क्षत्रियो की तत्कालीन सामाजिक और आपसी विद्वेष पर कथानक प्रस्तुत करते है । वर्माजी के दो सामत खगार और बुन्देला तो शास्त्री जी के दो क्षत्रिय सामत– राजा जयचद और पृथ्वीराज हैं । दोनो को भीषण युद्ध दिखाया गया है । दोनो लोगो ने क्षत्रियो की जरा सी बात पर युद्ध का जिक्र करते है, और दूरदर्शी नहीं हैं । वर्माजी इतिहास को आधार बनाकर उपन्यास लिखे है । शास्त्री जी कल्पना का समावेश अधिक कर देते है । शास्त्री जी इतिहास रस के समर्थक होने के कारण ऐसा लगता है कि वर्माजी के उपन्यास के विपरीत अपनी उपन्यास मे प्रेम प्रसंग को सफल दिखाया है । दोनो लोगो के उपन्यास् रचना मे दो–तीन वर्ष का अतर है । कथा एक जैसी है, पात्रो का समावेश केवल भिन्न है । [7]

वृन्दावन लाल वर्मा जी ने "विराट की पद्मिनी" उपन्यास ओर शास्त्री जी के "वैशाली की नगरवधू" उपन्यास का अनुशीलन करने पर भी कुछ नवीन तथ्य और अतर उभर कर सामने प्रस्तुत हो जाते है । वर्माजी का उपन्यास शुद्ध ऐतिहासिक उपन्यास नहीं है, प्रत्युत युद्ध रोमास है। इसी तरह शास्त्री जी के उपन्यास "वैशाली की नगरवधू" मे भी इतिहास खोलना भूल होगी और 'कल्पनाधिक्य' के माध्यम से 'इतिहास रस' की प्राप्ति होती है ।

वर्माजी का रोमास निखर उठा है । कल्पनाओ के माध्यम से ऐतिहासिक घटना के रूप मे इस उपन्यास को वर्माजी ने लिखा था । वर्माजी का अधिकतर उपन्यास मध्यकाल से सम्बन्धित है। इसलिए इस उपन्यास मे भी 18वी सदी के मुसलमानी राजवश का चित्रण है । 'फर्रूख सियर' बादशाह था । उस समय राजनीति मे भीषण अव्यवस्था छायी हुई है । शासन की बागडोर सैय्यद भाई के हाथ मे है, पर इसमे प्रस्तुत कथा जनश्रुतियो और किवदन्तियो पर आधारित है । घटना इतिहास की पृष्ठभूमि पर है । कथा का प्रधान आकर्षण "कुमुद" है । सारा घटनाचक्र उसी को लेकर निर्मित है, वह देवी 'दुर्गा' की अवतार है और 'कुजर सिह' तथा 'कुमुद' की प्रणय कथा

सफल प्रेम को दिखाया गया है, कथा मे प्रधान आकर्षण है, कथानक मे वेदना और मार्मिकता भी है । 'कुमुद' साधारण स्त्री थी, दरिद्र थी, पर उसकी सुन्दरता का शोषण करने के लिए उस पर दैवित्व का बोझ डाल दिया जाता है । सामत लोग उसे अपनी वासना का शिकार बनाना चाहते थे और अत मे कुजर सिह के मरने पर वह स्वय आत्महत्या कर लेती है । वर्माजी के इस उपन्यास मे घटनाए ऐतिहासिक न होकर भी इतिहास का जीता जागता चित्र प्रस्तुत करने लगती है । सामतो के दुष्चक्र मे पिसती जनता का चित्रण है । [8]

इस तरह **"आचार्य चतुरसेन शास्त्री"** जी का उपन्यास भी मूल कथा को गौड करते हुए तत्कालीन समय की राजनीतिक, आर्थिक, सॉंस्कृतिक परिस्थितियो का चित्रण करता है । वैशाली नगर मे किसी सुन्दर कन्या का जन्म लेना श्राप है । वहा का नियम, कानून और राजाओ, गण–राजाओ की विलासिता का वर्णन शास्त्री जी करते हैं । बौद्ध कालीन परिस्थितियो को उजागर करते है । वर्माजी के कुमुद की भाति शास्त्री जी की "आम्रपाली" (अम्बपाली) भी अपार सुन्दरता की मूर्ति है । जिस पर सारे राजा, सेनापति की निगाहे लगी हुई है । ऐतिहासिक तथ्यो को सगेटते हुए शास्त्री जी ने इसमे कल्पना का भरपूर प्रयोग किया है ।'आम्रपाली'भी कोई निम्न कुल की अवैध सतान है, लेकिन उसकी सुन्दरता सबको आकर्षित करती है और उसे वेश्या यानी "वैशाली नगर की कुलवधू" बना दिया जाता है, और वह वैशाली के प्रति घोर हिसा मे जलती रहती है। वर्माजी की 'कुमुद' की तरह ही शास्त्री जी की 'अम्बपाली' का रूप, सौन्दर्य, तेज, प्रेम, यौवन किसी को भी यह अप्रीतम सौन्दर्य मत्रमुग्ध कर दे रहा था । 'कुमुद' और 'कुजर' की तरह का प्रेम अम्बपाली और हर्षदेव के बीच है, और कुजर सिह कुमुद को बचाने के लिए जिस तरह 'अलीमर्दान'और अन्य सामतो पर आक्रमण करता है और अत मे प्राण न्यौछावर कर देता है, उसी तरह 'अम्बपाली' भी 'हर्षदेव' को वैशाली के विनाश के लिए प्रेरित करती है । काम वासना नहीं बल्कि प्रतिशोध का बदला लेने के अम्बपाली तत्कालीन भ्रष्ट वैशाली के कानून को साफ करने के लिए वह विम्बसार का प्रणय निवेदन स्वीकार कर लेती है । यदि वर्माजी की पात्री "कुमुद" का बलिदान पाठक की नेत्र के सामने नाचता रहता था तो शास्त्री जी की 'अम्बपाली' की करूण गाथा पाठक हृदय को रूलाने के लिए मजबूर कर देती है ।'अम्बपाली'की एक उक्ति से उस समय की असहाय नारी की दशा को समझ सकते है– "मै सहस्र बार इस शब्द को दोहराती हू, यह 'धिक्कृत' कानून वैशाली जनपद के यशस्वी गणतत्र का कलंक है। मेरा अपराध बस केवल इतना है कि विधाता ने मुझे यह अथाह रूप दिया है, इसी अपराध के लिए आज मैं अपने जीवन के गौरव को लाघना और अपमान के पक मे डुबो देने को विवश की जा रही हू । आप जिस कानून

के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश कर रहे है, वह एक बार लाख बार धिक्कृत होने योग्य है' ।[9]

''वृन्दावन लाल वर्मा जी'' ने 1947 मे अपना उपन्यास ''कचनार'' को प्रकाशित किया था। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि ऐतिहासिक है । घटनाए भी सत्य है पर समय और स्थान का फेर है। इसमे 'दिलीपसिह' का भाई 'मानसिह' अपने भाई के साथ धोका करता है, और 'दिलीप सिह' के विवाहित पत्नी कलावती से अपने प्रेम–प्रसग को मजबूत कर लेता है । कलावती के साथ दिव्य सुन्दर कन्या उसकी देखभाल के लिए 'कचनार' और 'ललिता' आती है । दिलीपसिह अपनी पत्नी के मोह को भग देखते हुए 'कचनार' पर आकर्षित होते हैं और 'कचनार' से विवाह कर लेते हैं । वर्माजी इस उपन्यास के माध्यम से उस समय की पारिवारिक विद्वेष को बडे ही अच्छे ढग से प्रस्तुत करते है । भाई–भाई का दुश्मन बन जाता है । वासना पूर्ति के लिए बडे भाई की पत्नी को जाल–फास लेता है, कितनी नैतिक पतन उस समय हिन्दुओ मे व्याप्त था । यहा तक भाई को 'मानसिंह' विष देकर उसे श्मसान तक पहुचा देता है । आज के परिवेश मे ज्यादा कुछ लडाई झगडे इस तरह के देखने को मिलते हैं । समाज भ्रष्ट हो चुका था और मान मर्यादा नैतिकता की कोई सीमा नहीं रह गई थी । इसी नैतिक पतन को लेकर आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री' का उपन्यास ''देवागना'' (मन्दिर की नर्तकी) 1951 मे प्रकाशित हुआ था ।'शास्त्री जी' के 'वर्मा जी' से दो चार वर्ष बाद प्रकाशित उपन्यास मे दो चार हाथ और आगे बढकर कथानक को प्रस्तुत कर देते हैं । शास्त्री जी ज्यादा कुछ सामाजिक बुराईयो को ध्यान से देखे थे, और इन्होने इस उपन्यास मे पिता के द्वारा पुत्री को काम वासना का शिकार बनाने की कोशिश करना जैसे प्रसगो को दिखाकर हिन्दू महत, पुजारियो और ब्राह्मणो के आडम्बर को नगा कर दिया है ।

बज्र तारादेवी मन्दिर का महत ''सिद्धेश्वर'' जिसने ''सुनयना'' से एक पुत्री को जन्म दिया और अप्रीतम सौन्दर्य से मण्डित इस पुत्री 'मजुधोसा' को जब लालन–पालन कर बडा करता है, जब यौवन रूप मे तैयार उसकी बेटी 'मजुधोसा' 'धनन्जय' के पुत्र 'दिवोदास' जैसे भिक्षु पर प्रेम न्यौछावर करने के लिए तैयार हो जाती है, तो 'सिद्धेश्वर' खुद ही अपनी पुत्री के साथ बलात्कार करना चाहता है । शादी कर लेने के याचना करता है । समाज कितना गिर चुका था वह किस हद तक भ्रष्ट हो चुका था यह कल्पना से परे है । आम स्त्रिया मदिरो मे महतो के भ्रष्टाचार से, जाने की साहस नहीं कर सकती थीं । सारी देवदासिया इसी तरह ब्राह्मण कुप्रभाव से त्रस्त थी और लोक लज्जा की वजह से स्वय अपने कलकित जीवन को नष्ट कर लेती थीं ।'सिद्धेश्वर' जैसे पतित पुजारी के माध्यम से 'शास्त्री जी' ने मन्दिरो मे व्याप्त भ्रष्टाचार को पाठको के सामने प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं ।'मजुधोसा' का यह शब्द समझने के लिए पर्याप्त है जो

"सिद्धेश्वर जैसे बाप से निवेदन के रूप मे कहती है– "प्रभु मै आपकी पाली हुई पुत्री हू और आप मेरे सृजनकर्ता है । आप देव है और देव इस तरह के कर्म पर उतारू हो जाये तो पुत्रियो का बाप पर से भी विश्वास उठ जायेगा । आप मुझे छोड दीजिए, छोडिए–छोडिए–छोडिए" कहती हुई सिद्धेश्वर का विरोध करती है । [10]

दोनो ही लेखको ने नारी के माध्यम से तत्कालीन समाज मे व्याप्त कुरीतियो का उजागर करते हैं । एक पारिवारिक नैतिक पतन को पाठक के सामने रखता है, तो दूसरा समाज मे फैले अनैतिक रीति–रिवाज को उजागर करता है ।

'वृन्दावन लाल वर्मा जी' ने 1946 मे "झासी की रानी लक्ष्मीबाई" उपन्यास का प्रकाशन किया । यह उपन्यास वर्मा जी के दस बारह वर्षों के अथक प्रयास के बाद लिखा गया था । इस उपन्यास को लिखने का मुख्य उद्देश्य भारतीय आदर्शों से मुक्त एक वीर नारी का चित्रण करना तो है ही साथ मे "पारससीन" के उस कथन को भी सिद्ध करना है कि 'झासी की रानी' ने भारतीय स्वतत्रता हेतु न लडकर अग्रेजो की ओर से झासी का शासन करती हुई बाध्य होकर जनरल रोज से अपने राज्य झासी को बचाने के लिए लड रही थी । विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यो द्वारा खोज करके वर्माजी ने "पारससीन" के कथन को भी सिद्ध किया है । उपन्यास चार भागो मे विभक्त है । उषा से 'पूर्व,' 'उदय,' 'मध्यान्ह,' और 'अस्त', वर्माजी ने उषा से पूर्व मे 'गगाधर राव' की प्रकृति और झासी राज्य की स्थापना का वर्णन है । उदय वाले भाग मे रानी की बाल क्रीडाए, 'गगाधर राव' से विवाह राव की मृत्यु, पुत्र का गोद लेना आदि कथानक वर्माजी ने प्रस्तुत किया है। मध्याह भाग मे वर्माजी अग्रेजी राज्य की गतिविधिया झासी राज्य के प्रति उनकी दृष्टि पर चर्चा करते हैं और अस्त भाग मे अग्रेजो द्वारा झासी राज्य पर अधिकार एव अग्रेजो की बीच लडती हुई शरीर को उत्सर्ग कर देने की कथा है । "झासी की रानी" मे कथानक बहुत व्यापक है । युद्ध होता है, देश की स्वाधीनता के लिए भारत वर्ष को विदेशी दासता से मुक्त करने के लिए यह उपन्यास समस्त राष्ट्र की राजनीतिक गतिविधि पर विचार करते हुए लिखा गया है । पुरूष पात्रो की अपेक्षा स्त्री पात्र का चरित्र अधिक आकर्षक है । पुरूष पात्र जैसे– 'गगाधर राव,' 'तात्या टोपे,' 'पीर अली,' 'सागर सिह डाकू,' 'रघुनाथ सिह,' 'जवाहर सिह' एव 'खुदाबक्श' है । 'गुलमुहम्मद' भी अजेय पराक्रमी है । स्त्री पात्रो मे प्रमुख से रानी हैं । रानी अग्रेजो के विरूद्ध मे झासी में स्त्री पुरूष बच्चो मे एक नई चेतना जागृत कर दी हैं । 'जूही,' 'मोतीबाई,' 'सुन्दर' सब रानी के साथ लडते हुए प्राण न्यौछावर कर देते हैं । वर्माजी ने इसमे तत्कालीन युग की दशाओ का पूरा परिचय उपन्यास मे प्रस्तुत कर देते हैं । सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक आन्दोलन आदि का वर्णन बडे ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते है । तत्कालीन समय में अग्रेजो की नीति और अग्रेजो

की छावनियो का वर्णन विस्तृत है । स्वाधीनता सग्राम के पूर्व का राजनैतिक दृष्टिकोण अव्यवस्था और अग्रेजो की नीतियो का जनसाधारण द्वारा विरोध, विद्रोह की चिगारी का फूटना सारी की सारी बाते अत्यत सजीवता के साथ अकित है । [12]

जबकि **''आचार्य चतुरसेन शास्त्री जी''** ने अग्रेजी राज्य के दृष्टिकोण को 1958 मे प्रकाशित अपने उपन्यास ''सोना और खून'' मे प्रस्तुत किया है ।'वर्माजी' और 'शास्त्री जी' मे एक अतर यह स्पष्ट हो जाता है– जहा वर्माजी ने 1857 के सग्राम और झासी क्षेत्र को ही कथानक मे प्रस्तुत किया है । उन्हे शास्त्री जी ने इस उपन्यास को 12 खण्डो मे लिखकर 1857 से 1947 तक के अग्रेजी राज्यो के प्रति विचार प्रस्तुत करते है। इस उपन्यास को शास्त्री जी 10 भागो मे लिखने की कोशिश किये थे और यह अब तक का वृहत्तम् उपन्यास होता पर शास्त्री जी दो भाग ही लिख पाये थे कि उनकी मृत्यु 'हो गई, इसलिए यह अब दो भाग और 12 खण्डो मे प्रस्तुत है । शास्त्री जी के इस उपन्यास मे अग्रेजो के आने से लेकर भारत छोडने तक की वृहद गाथा है । शास्त्री जी भी एक जगह कहते हैं कि– ''सत्तावन का विद्रोह देश–भक्तो ने किया यह मै नही मानता कारण यह है कि उस समय भारत एक देश और एक राष्ट्र नही था । अत 'राष्ट्रीयता' और 'देश प्रेम' का प्रश्न ही नहीं उठता और साथ ही मै यह नही मानता कि भारत के वर्तमान स्वतत्रता सग्राम मे सन् सत्तावन की कोई प्रतिक्रिया थी, कारण यह है कि जब उस समय राष्ट्रीय परम्परा ही न थी तो उसकी प्रतिक्रिया का प्रश्न ही कहा उठता है'' । [13]

शास्त्री जी इस काल मे अग्रेजो की नीति से प्रजा की दयनीय अवस्था का चित्रण करते है । किसान सर्वनाश हो गये थे, पूरे राजसी खानदान पतन के कगार पर पहुच चुके थे । अग्रेज स्त्रियो को बेइज्जत करते थे । आचार्य जी ने कुछ काल्पनिक पात्रो के माध्यम से जैसे–'चौधरी प्राणनाथ,' 'खैर मुहम्मदशाह,' 'सॉवल सिह,' 'पुतली' 'शुभदा,' 'कुदासिया' तथा 'अवध के नवाब' व 'मालती' की कथाए काल्पनिक रूप मे प्रस्तुत कर उसे ऐतिहासिक रग से भर देने की कोशिश कर दी है, 'पुतली' नटनी है और 'सावल सिह' के प्रति एकनिष्ठ है, अग्रेजो को वह खूब सबक सिखाती है, अग्रेज उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हैं ।

इस तरह 'वर्माजी' और 'शास्त्री जी' दोनो लोगो ने अंग्रेजी राज्य के प्रति व्यवस्था को अपने उपन्यासो मे स्थान दिया है । दोनो लोगो का दृष्टिकोण रानी के प्रति भिन्न–भिन्न है । वर्माजी 'रानी लक्ष्मीबाई' जहा यह कहकर स्पष्ट करते है कि रानी झासी को बचाने के लिए युद्ध की थी, वही शास्त्री जी का दृष्टिकोण यह है कि यदि रानी को भारत की जनता का और स्त्रियो का साहस वेग, मनोबल, प्रोत्साहन न मिलता तो वह अपने झासी राज्य के प्रति इतने बडे अग्रेज अधिकारी से युद्ध के लिए उद्धृत न हो पाती ।'वृन्दावन लाल वर्मा जी' ने अपने उपन्यास ''भुवन

विक्रम" मे प्राचीन भारत की सस्कृति को आर्यों द्वारा निष्पादित होने का वर्णन करते है । उनका उपन्यास उत्तर वैदिक काल की परिस्थिति का सजीव चित्रण करता है । तत्कालीन परिस्थितियो को वर्माजी ने अनुमान एव धर्म ग्रन्थो का सहारा लेकर अपने उपन्यास मे प्रस्तुत करते है । वर्माजी का यह पहला उपन्यास है जो मध्यकाल से हटकर लिखा गया है । कथानक को वर्माजी एक छोटी सी बालिका के मुख से कहानी के रूप मे सुने थे । अयोध्या के राजा के समय प्रजा बडी सुखी थी, अकाल मे प्रजा दु खी हो गई आदि बालिका की छोटी सी कहानी से वर्माजी ने एक बडे उपन्यास "भुवन विक्रम' की रचना कर डाली । उपन्यास की कथा पूर्व कल्पित है । कथा की प्रमाणिक सूची भी लेखक नहीं जुटा पाया है, पर तब भी इसे ऐतिहासिक उपन्यास क्यो माना है, इसके बारे मे आलोचक उत्तर देते है– "उपन्यासकार ने उस युग के समाज सम्बन्धी ग्रथो को मनोयोग से पढकर तत्कालीन वातावरण तथा साधारण जन की मनोवृत्ति का सूत्रबद्ध एव तर्क सगत चित्रण किया है । यही भूमि इसकी ऐतिहासिक आधार है"। इस'भुवन विक्रम'के माध्यम से वर्माजी भारतीय जीवन के प्रचीन सन्दर्भ मे यही बताना चाहते हैं कि अयोग्य अध्यापक एव उच्छृखल शिष्य एक दूसरे को अधेरे मे किस तरह धकेल देते हैं । [14] योग्य शिक्षक कैसा हो ? शिष्य का सस्कार कैसा हो ? कर्त्तव्यच्युत राजा कौन हो ? राजा का उद्देश्य क्या हो ? उसके आश्रितो का भला कैसे हो ? शूद्र वास्तव मे परिश्रम से बचने वाले तामसिक प्रवृत्ति के लोग हैं, जो दूसरो का प्राप्य छीनते हैं । भुवन अपने पिता अयोध्या के'राजा रोमक'के लाड–प्यार से बिगड जाता है, उसके हृदय मे शिक्षक'मेघ'के प्रति श्रद्धा नही है और न मेघ मे अध्यापक जैसी योग्यता ही है ।'रोमक'ने'नैमिषारण्य'के'ऋषि धौम्य'के यहा भुवन को सौंप देते हैं । धौम्य के शिक्षा प्रभाव से भुवन मे अच्छे गुण पैदा हो जाते है, वही आश्रम मे निर्धन युवती'गौरी'के प्रति उसके मन मे प्रेम जाग जाता है और दोनो का विवाह हो जावा है।'राजा रोमक'के समय मे अकाल से त्रस्त जनता उसकी विरोधी हो जाती है । राज्य अपदस्त होता रोमक प्रयास से फिर राज्य को प्राप्त कर लेता है । [15] उपन्यास मे दिखाया गया है कि आरम्भ से सत और असत के बीच सघर्ष है । दोनो पात्र भारतीय सस्कृति के पोषक है । दूसरी तरफ श्रेष्ठ 'नील' और उसकी पुत्री 'हिमानी' पतित सस्कृति के प्रतीक है । ये आत्मवेषी तथा दासप्रथा के पोषक हैं । 'भुवन' और 'हिमानी' के विवाह प्रस्ताव के अवसर मे नील रोमक के राज्य को समाप्त करने का षड्यत्र रचकर उसे समाप्त करना चाहता है । उपन्यास मे भले और बुरे लोग दो स्पष्ट भागो मे बट गए है । बुरे वर्ग मे अभिमानी शिक्षक मेघ और शूद्र स्त्री हिमानी, शोषक नील और जड दीर्घबाहु है । अच्छे वर्ग मे धौम्य, रानी ममता, शिष्य'आरूणि'आदि हैं ।

इसी तरह की सस्कृति और वैदिक सभ्यता को आधार बनाकर **शास्त्री जी** ने "वयरक्षाम" उपन्यास की रचना की है । इसमे भी कथा सत के प्रतीक अयोध्या के 'राजा राम' और असत का प्रतीक 'रावण' की कथा को चित्रित किया गया है । शास्त्री जी ने वर्माजी की तरह उपन्यासो मे असत का प्रतीक रावण को दुराचारी घोषित करने के साथ ही उसमे राक्षस तत्व को खोज निकालते है । वह इतना विद्वान है कि राम भी उसकी विद्वानता का आदर करते है । रावण घृणा का पात्र नही बल्कि पाठको के लिए सहानुभूति का पात्र बन जाता है । लोग रावण पर भी श्रद्धा रखने लगते है । वह राक्षस होकर "रक्षसस्कृति" की रक्षा का बीणा उठाता है । जबकि वर्माजी असत के प्रतीक मेघ, हिमानी और नील मे कोई मानवीय गुण खोजने की कोशिश नहीं करते हैं और उनके माध्यम से उस समय की व्याप्त बुराईयो को सामने रखने की कोशिश करते हैं । शास्त्री जी राम–रावण मे अतर देने की ज्यादा कोशिश नही करते है । रावण सीता का हरण किसी प्रतिशोध के कारण नहीं बल्कि सुदरता के कारण करता है । "दैत्यबाला" के प्रति उसका प्रेम अपार है । वस्तुत यही कहा जा सकता है, कि शास्त्री जी अपने हर उपन्यास मे अच्छे–बुरे पात्रो को उसके दिल के अन्दर घुसकर उसकी मानवीय सवेदना खोजने की कोशिश करते है, जबकि वर्माजी ज्यो कि त्यो परिस्थितियो मे व्याप्त नीति को उजागर करते है । वर्माजी से भिन्न शास्त्री जी की यही नवीन मौलिकता ही उनके उपन्यास को रसदार बना देती है । राम का विलाप जितना 'लक्ष्मण' के प्रति है, उससे अधिक और मार्मिक विलाप रावण का 'मेघनाद' के प्रति है। जिसे पढकर पाठक रावण के क्रूर और निर्दयी हृदय को भूल जाता है, और सहानुभूति से भर जाता है, रावण की एक उक्ति ही यहा स्पष्ट करने से उसके मानवीय हृदय की पहचान हो जाती है– "अरे मेघनाद मैंने आशा की थी कि तुझे राज्य भार देकर महायात्रा करूगा, परन्तु अदृष्ट ने कुछ और ही रचना कर डाली, स्वय सिहासन की जगह तुझे आज पुत्र वधू सहित अग्नि रथ पर बैठा मै देख रहा हू । हाय इसलिए मैंने तेरा सानिध्य कराया था, मैंने रूद्र रचना की थी । हाय ! पुत्र, हाय ! वीर श्रेष्ठ कहते हुए" रावण जमीन पर गिर पडता है । [16] इस तरह रावण के विलाप को सुनकर पाठक उसके सहृदय मे खो जाता है ।

"वृन्दावन लाल वर्मा जी" का उपन्यास "माधव जी सिंधिया" और **"चतुरसेन शास्त्री जी"** का उपन्यास "सहयाद्रि की चट्टाने" (1961) 17वीं और 18वीं शताब्दी पर मराठो और मुगल सत्ता को केन्द्र विन्दु बनाकर लिखे गये हैं । बस अतर इतना ही है कि वर्माजी ने 'शिवाजी' के परवर्ती वशो को कथानक का आधार बनाया है और शास्त्री जी ने 'शिवाजी' को कथानक का आधार बनाकर उपन्यास की रचना करते हैं । दोनो ही लोगो ने इस उपन्यास मे मराठा शक्ति के उदय और मुगलों के पतन की व्याख्या अपने–अपने आधार पर करते हैं । दोनो लोगो ने यह स्पष्ट करने की

❋

कोशिश की है, कि मराठे कठोर, प्राकृतिक प्रदेश के निवासी होने के कारण स्वअस्तित्व की रक्षा मे सघर्षरत आत्मनिर्भर एव स्वाधीन प्रकृति के बन गए है । महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति और भूमि ने उन्हे कर्मठ और कठोर बना दिया है । इस लडाकू प्रवृत्ति को महाराष्ट्र के सत और महात्माओ ने उन्हे प्रेरणा दी थी । मराठे दुखियो के लिए त्याग और अत्याचारी के लिए अवसरवादी हो जाते है । हार को वे क्षणिक मानते है और अवसर पाते ही तीक्ष्ण रूप से आक्रमण कर विजय प्राप्त कर लेते है । शिवाजी ने मराठो को शक्तिशाली बनाया और बाद मे सत्ता ब्राह्मण पेशवा के हाथ मे जाने से क्षीण हो जाती है । स्वार्थ, इर्ष्या, और धन की लूटमार सबका उद्देश्य बन गया है ।

वर्माजी के अनुसार मराठो के पराजय मे माधव जी सिंधिया जैसा व्यक्तित्व उभर कर सामने आता है । उसका विचार स्वार्थी मराठो से मेल नही खाता है । वह हर जगह मराठो की शक्ति मजबूत कर दिल्ली राजपूताना आदि पर पुन अपना अधिकार कर लेता है और उत्तरी भारत मे मराठा शक्ति की धाक जमा देता है, परन्तु माधव की सफलता विद्यमान के कारण अधूरी रह जाती है । वैसे तो इतिहास मे 'माधव जी सिंधिया' थका और शिथिल व्यक्तित्व का मराठा पर वर्माजी ने कल्पना का समावेश कर उसे बल देने की कोशिश की है और श्रद्धा से परखा है । माधव जी के वास्तविक चरित्र से कथा एकात्मक नहीं हो पाती है । माधव का "गन्ना" के प्रति प्रेम से वर्माजी ने उपन्यास मे रसिकता लाने की कोशिश की है । गन्ना की भी माधव के प्रति अपार प्रेम है । 'गन्ना' मुन्नी' सिह के वेश मे 'माधव जी' से मिलती है । फिर भी 'माधव' का प्रेम वासना से युक्त नहीं है, बल्कि व्यक्तिगत है । 'माधव' 'गन्ना' से कहता है–"गन्ना मैं आग बबूला नही हू , मैं प्रकाश बिन्दु हू । 'माधव' मे तुम प्यार का ओछापन नहीं पाओगी । अपना गायन तुम माधव को सुनाती रहना"। दोनो सासारिक सघर्षों को झेले हुए प्रौढ हृदय से एक दूसरे के समीप आ जाते है । शारीरिक सतोष की अपेक्षा आत्मिक निकटता अधिक है ।

वर्माजी ने इस पद दलित नारी 'गन्ना' के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उस समय की बेबश, लाचार नारियो की ओर सकेत करते हैं । माधव के विषपान के बाद वह खुद मर जाती है। वर्माजी ने यह भी दिखाया है कि असमर्थ नारिया उस समय लोलुप प्रिय के मन बहलाव की सामग्री कैसे बन जाती थी ।

जबकि 'शास्त्री जी' ने अपने उपन्यास में 'शिवाजी' के व्यक्तित्व और प्रतिभा को उभारा है । यहा 'शास्त्री' जी 'शिवाजी' के चरित्र को इतिहास सम्मत् रखते है, जबकि 'वर्माजी' ने 'माधव जी' के चरित्र को बदल कर कल्पना के रूप मे पेश करते हैं । 'माधव' दुर्दम्य साहसी नहीं है जबकि शिवाजी जो उनके पूर्वज हैं, वह दुर्दम्य साहसी हैं और शिवाजी यदि किसी से सबसे अधिक प्रेम और आदर सम्मान करते हैं तो वह हैं, उनकी मा "जीजाबाई" । माता के प्रेरणा लेकर शिवाजी

❋

हर कदम पर 'औरगजेब' को पराजित करते है । कभी सिर नही झुकाते है, जबकि वर्माजी के 'माधव जी' और सारे पात्र पानीपत के सग्राम मे मारे जाते है । कोई देश की सुरक्षा करने मे समर्थ नही है । यहा पर 'शास्त्री जी' का दृष्टिकोण बदला है और वह उपन्यास को विशुद्ध ऐतिहासिक श्रेणी मे लाकर खडा कर देते हैं । इस तरह उपर्युक्त विवरणो को ध्यान मे रखकर हम वर्माजी और 'शास्त्री जी' के औपन्यासिक समय और 'ऐतिहासिक' 'राजनीतिक' गतिविधियो की जानकारी आसानी से प्राप्त कर सकते है । एक बात उल्लेखनीय है कि जहा 'वृन्दावन लाल वर्मा जी' ने मध्यकाल को ध्यान मे रखकर अनेक उपन्यास जैसे– 'अहिल्याबाई,' 'मृगनयनी,' 'महारानी दुर्गावती,' आदि उपन्यासो की रचना की है, वहीं 'शास्त्री जी' ने इस समय ऐतिहासिक घटनाओ को चित्रित करने मे मौन दिखाई पडते हैं । दूसरी तरफ 'शास्त्री जी' ने जहा 10वीं से 15वी शताब्दी तक की दिल्ली सल्तनत की घटनाओ को अपने उपन्यासो मे जैसे– 'बिना चिराग का शहर,' 'सोमनाथ,' 'लाल पानी,' 'रक्त की प्यास,' जैसे उपन्यासो की रचना की है । वही वर्माजी के उपन्यास इन घटनाओ के लिए मौन दिखाई पडते है, क्योकि वर्माजी की मुख्य प्रेरणा बुन्देलखण्ड के राजनीतिक जीवन से मिली थी और मध्यकाल मे मुसलमानो का आक्रमण स्थायी और राज्यसत्ता स्थापित हो चुकी थी, और मुगलो के समय से भारत की स्वतत्रता तक बुन्देलखण्ड मुसलमानो और अग्रेजो की गतिविधियो का केन्द्र बना था, जिसे वर्माजी ने देखकर चितन कर इस समय को ही ज्यादा अपने उपन्यासो का आधार बनाया है, जबकि शास्त्री जी का किसी विशेष भू–खण्ड से उपन्यास की प्रेरणा नहीं मिली थी । शास्त्री जी समस्त गतिविधियो को ध्यान देकर जहा इतिहास प्रसिद्ध घटनाये होती रहीं, उसी को अपने उपन्यास का आधार बनाया है । 'शास्त्री जी' क्रूर प्रवृत्ति के शासको को मानवीय सवेदना के साथ अपने उपन्यास मे देने की कोशिश की है, जिसमे 'महमूद', 'सोमनाथ का' और 'रावण' वयरक्षाम का उदाहरण के लिए देखा जा सकता है ।

इसी सन्दर्भ मे एक बात और ध्यान मे आती है कि वर्माजी ने इतिहास प्रसिद्ध नारियो का चित्रण अपने उपन्यास मे बडे ही साहस से वर्णित करते है, जबकि 'शास्त्री जी' के किसी भी उपन्यास मे इतिहास प्रसिद्ध नारी की गौरव गाथा नही दिखाई पडती है । बल्कि 'शास्त्री जी' उपेक्षित नारियो को अपने उपन्यास मे स्थान दिए है और इस तरह कल्पना के रग भर देते है कि वह किसी वीर नारी से कही भी किसी भी माने मे फीकी नहीं प्रतीत होती है । 'वर्माजी' इतिहास की घटनाओ को खूब सच्चाई के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं । 'शास्त्री जी' इतिहास की घटना को "इतिहास रस" मे बदल देते है । शास्त्री जी के पात्र– 'सयोगिता,' 'अम्बपाली,' 'शोभना,' 'मजुधोसा,' 'सुनयना,' 'मातंगी' आदि वर्माजी के नारी पात्र 'रानी लक्ष्मीबाई,' 'रानी दुर्गावती,' 'अहिल्याबाई,' 'कचनार' आदि से किसी माने में कम या नीचे नही दिखाई पडते हैं । शास्त्री जी के

❋

नारियो की सुन्दरता वर्माजी के नारियो की सुन्दरता और विवेक से किसी भी तरह कम नही है । इसलिए दोनो ही उपन्यासकार 'अपने–अपने समय के कथानक को श्रृखलाबद्ध करने मे मर्मज्ञ है । अत मे सिर्फ यही कहा जा सकता है कि **'कल्पना'** और **'इतिहास-रस'** के कारण शास्त्री जी, वर्माजी से भिन्न है । वर्माजी का दृष्टिकोण उपन्यास मे ऐतिहासिक उपन्यास के प्रथम शुद्ध प्रर्वतन के रूप मे है और शास्त्री जी किसी एक राह को न अपनाते हुए उपन्यास लेखन परम्परा से इतिहास वृत्ति से थोडा अलग अपनी मौलिकता को पेश करते है, ताकि पाठक उपन्यास को पढकर नीरस न हो, उसे आनन्द आये, रस प्राप्त हो और वह पाठक आत्म–विभोर हो जाये, जो उपन्यास की कला का अनिवार्य तत्व होता है । अगले खण्ड मे "कथानक" और "भाषा–शैली" तथा पात्रो की अनुकूलता उपन्यास के आधार पर क्या है । इस पर तुलनात्मक विचार करने की कोशिश करेगे ।

(ग)

वृन्दावन लाल वर्मा और आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में इतिहास और संस्कृति के औपन्यासिक कथा शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन

❖पात्र-कथानक

"वृन्दावन लाल वर्माजी" के कथानको और चरित्रो का स्वाभाविक वेग के समान इनकी शैली भी सहज और व्यवहारिक, है । भाषा बुन्देल खण्ड की नदियो की प्रवाह की तरह स्वच्छन्द गति से चलती है, प्राकृतिक वर्णनो, काव्यात्मक चित्रणो और पात्रो के कथोप कथनो मे सर्वत्र भाषा प्रसगानुकूल कोमल अथवा परपुरूष धारण करती हुई छोटे, बडे वाक्यो की माला पहने, भोली–भाली पहाडी बालिका की तरफ गतिशील रहती है । निश्चय ही 'वर्माजी' की शैली मे व्यक्तित्व है ।

ऐतिहासिक उपन्यासो या नाटको मे एक मुख्य बात देखने की यह होती है कि लेखक ने उनमे कल्पना और इतिहास का कहा तक सामजस्य उपस्थित किया है । यहा पर लेखक के उद्देश्य की बात का प्रश्न खडा हो जाता है । लेखक पाठको को केवल इतिहास की मनोरजक घटनाओ से अवगत कराना चाहता है या इतिहास की घटना चक्रो को लेकर इनमे अपने युग की प्राण–प्रतिष्ठा करना चाहता है, जो लेखक निरूद्देश्य भाव से इतिहास के मनोरम घटना चित्र देना चाहता हैं, उनके लिए कल्पना की ग्रहण का सवाल विशेष रूप से उत्पन्न नहीं होता है । वे मनोरजन उत्पन्न करने वाले किन्ही भी घटनाओ को ले सकते है और इनके बीच के अवकाश को वे मानवीय व्यापारो से भर सकते हैं । किन्तु दूसरे प्रकार के लखको का उत्तरदायित्व बडा गम्भीर होता है । वे उन्ही घटनाओ को लेगे जिनसे उनके उद्देश्य की सिद्धि मे सहायता मिले । वे या तो स्वत इतिहास की ऐसी घटनाओ और पात्रो को चुनेगे, जो अपनी ऐतिहासिक सच्चाई के साथ किसी भी युग को उच्च से उच्च मानवीय गुणो का सदेश देने मे सक्षम हो जाय, जैसे–'राम,' 'झासी की रानी,' 'शिवाजी,' आदि अथवा वे क्रूर, कुरूप और पतन 'सीता' पात्रो को समानान्तर कुछ ऐसी कल्पित कथाओ और पात्रो की सृष्टि करेगे, जो कठोर कुरूपताओ से लड़कर जीवन के उदात्त वैभव की प्रतिष्ठा कर सके । यो तो कल्पना का उपयोग सर्वत्र अपेक्षित है, किन्तु ऐसे अवसरो पर उसकी आवश्यकता बढ जाती है, वहा इतिहासकार इतिहास के बिखरे, खण्डहरो मे से

अपने काम की चीज चुन लेता है और उन्हे कल्पना मे पिरो–पिरोकर मनोकूल नई सृष्टि करता है।

'वृन्दावन लाल वर्मा' के उपन्यासो मे अनेक युग की कोई ज्वलन्त समस्या नहीं खडी होती है । वर्माजी रोमाटिक परम्परा के लेखक है, और जिन्होने अपने उपन्यासो मे समाज के नये प्रश्नो को न उठाकर उसके चिरन्तन उसके चिरन्तन उन्मुक्त भावो को ही चित्त देते हैं, जबकि शास्त्री जी अपने–अपने उपन्यासो मे समाज की अनेक विषगतियो और नये–नये प्रश्नो को उभार कर लेखक स्वय उत्तर भी देता है ।'वर्माजी' प्रेम के उदात्त और कोमल स्वरूप की व्यजना मे ही रत दिखाई पडते है, लेकिन इस प्रेम का रूप नहीं है, वह त्यागशील है, सयम जानता है, शौर्यमय है, जाति पाति के बन्धनो को अस्वीकार करने वाला है, वह अनेक विषमताओ, ईर्ष्या, द्वेषो और कुचक्रो के काटो से भरी डाल के मस्तक पर मुस्कुराने वाला गुलाब का फूल है । "झासी की रानी लक्ष्मीबाई" उपन्यास मे इतिहास का सत्य है, कल्पना नहीं, "गढ–कुण्डार" की ऐतिहासिक घटनाए बडी ही कुचक्रपूर्ण तथा अन्त मानवीय है अत लेखक को अपने उद्देश्यकी सिद्धि के लिये कल्पना से "तारा" और "दिवाकर" जैसे पात्रो की सृष्टि की है । "कचनार" मे भी वर्मा जी ने इसी तरह दो सामानान्तर कथाओ की सृष्टि की है । "विराट की पद्मिनी" और "कचनार" मे लेखक ने कल्पना का अत्याधिक सहारा लिया है । ऐतिहासिक घटनाए कम होने की कला दृष्टि से ऐ दोनो उपन्यास अधिक सफल हुए है । "गढकुण्डार" "लक्ष्मीबाई" और "मृगनयनी" मे ऐतिहासिक तथ्य अपेक्षाकृत अधिक दिखाई पडते है । [1]

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' के उपन्यासो मे कथा के सघटन मे उनके पात्रो का सक्रिय सहयोग प्राप्त रहता है, यह उचित है कि शास्त्री जी अधिकाश उपन्यास की कथाए पूर्वनियोजित होती हैं, किन्तु तो भी उनके पात्रो के क्रियाकलाप से ही घटनाओ को जन्म मिलता है, और वही घटनाए उनके पूर्व नियोजित कथानक को गति प्रदान करती है, इस प्रकार उनके पात्र कथा के परिध मे बधे होने के साथ–साथ स्वाभाविक एव सजीव होते है । इसके लिये उन्होने पात्र निर्माण की एक विशेष विधि का प्रयोग किया है । वह अधिकाश एक विशेष वातावरण एव परिस्थित मे कुछ मन स्थिति वाले पात्रो के व्यक्तित्व का निर्माण करके कथा का सूत्रपात्र करते हैं । इसके उपरान्त व्यक्ति या परिस्थिति की प्रतिक्रिया से कथानक अग्रसर होता है । व्यक्ति के क्रिया–कलाप नई–नई परिस्थितियो का निर्माया करते है और परिस्थितियो के अनुसार ही चरित्र का विकास होता है । यद्यपि विवशता पूर्वक घटनाओ के साथ आबद्ध है । फिर भी उनका मनोबल इतना प्रबल है कि घटनाओ को साथ लिये चलता है । परिस्थिति का मानव पर क्या प्रभाव पडता

✲

है तथा मानव किस तरह स्वय नई परिस्थितियो की सृष्टि करता है, इसका 'चतुरसेन शास्त्री जी' ने सुन्दर आभास दिया है ।

'शास्त्री जी' के पात्रो मे व्यक्तित्व की पूर्णता प्राप्त होती है । पूर्णता से हमारा तात्पर्य– पात्रो के जीवन के पूर्ण चरित्र से है । ऐतिहासिक पात्रो के जो सकेत हमे मिलते हैं, वे अपूर्ण और साकेतिक है । उन पात्रो के जीवन-से सम्बन्धित कुछ ही घटनाये हमे ज्ञात होती हैं किन्तु इस कुछ ही घटनाओ का सम्बल लेकर उपन्यासकार उपन्यास की कथा का सम्पूर्ण ढाचा खडा कर देता है । व्यक्तित्व के भीतर पात्र का आकार–प्रकार, रूप–रग, वेष–भूषा आदि सम्मिलित रहती है, जिसके द्वारा उसे हम पहचानते है । यदि उपन्यास के भीतर इन बातो का विवरण नही होता तो हम अपनी कल्पना और अनुभव के आधार पर उसके व्यक्तित्व का एक रूप बना लेते हैं । यह व्यक्तित्व जितना ही प्रभावशाली हो तथा अन्य सजातीय पात्रो से भिन्न जान पडे, उतना ही अच्छा होता है ।

दूसरी विशेषता यह होती है कि उसके बौद्धिक गुणो के भीतर उसका अध्ययन, चतुरता, सकट मे वृद्धि, वैभव आदि की विशेषताए आती है । इसके लिए उसके गुण यदि लोक कल्याणकारी हुए तो हम सम्मान और प्रशसा करते है और यदि अकल्याणकारी हैं तो हम निदा करते हैं । इन्हीं गुणो का पाठक के ऊपर प्रभाव पडता है ।

तीसरी विशेषता चारित्रिक गुणो की है, जिसका प्रभाव सबसे अधिक पडता है । उसके भीतर दूसरो के सुख मे सुखी और दुख मे दुखी होने की कितनी शक्ति है । वह कितना सवेदनशील और भावुक है । परिस्थितियो की घात–प्रतिघात सहकर भी उसमे कितनी करूणा और सहृदयता है, इन बातो पर हमारा ध्यान उसके प्रति प्रेम और घृणा जागृति होता है । चारित्रिक विशेषताओ मे उसके आचारण और दूसरो के प्रति व्यवहार को परखा जाता है । इन विशेषताओ का प्रत्यक्ष स्पष्टीकरण उपन्यासकार की कुशलता है । [2]

उपर्युक्त सदर्भों को ध्यान मे रखकर ही वर्माजी के और शास्त्री जी के पात्र कथानक पर विचार करना आवश्यक है । वर्माजी के उपन्यास "गढ कुण्डार" मे मुख्य कथा खगारो का नाश एव बुन्देलो का कुण्डार पर आधिपत्य स्थापना है, परन्तु इस कथा के साथ–साथ अग्निदत्त और मानवती तथा दिवाकर एव तारा का प्रेम प्रसग भी चलता है, साथ–साथ ही अन्य छोटी–छोटी उप कथाए भी चलती हैं, उठती है और विलीन हो जाती हैं, जैसे– पवारो और पडिहारो का आपस मे युद्ध के लिए मुसलमानो का भरतगढी पर आक्रमण आदि कथाए हैं । यह ध्यान देना उचित है कि प्रासगिक कथाओ का मुख्य कथा मे क्या योगदान है । खगार नरेश का मत्री पुत्र 'अग्निदत्त' खंगार कुमारी 'मानवती' से प्रेम करता है । वह भी उसे प्रेम करती है, किन्तु उसका विवाह कुण्डार

※

के मत्री पुत्र राजधर से होना निश्चित होता है । इसी क्रम मे 'अग्नि' 'नागदत्त' से प्रताडित होकर कुण्डार से निष्कासित हो जाता है और प्रतिक्रिया के आवेश मे अपने छल, बल और धन से बुन्देलो की सहायता करके खग़ारो के नाश और बुन्देलो के राज्य रोहण का कारण बनता है । इस कथा मे प्रधान कथा के साथ प्रासगिक कथा का योगदान है ।

तारा और दिवाकर की प्रणय कथा दूसरी प्रासगिक कथा है । इसका मुख्य कथा से कोई सम्बन्ध नहीं है । फिर भी मुख्य कथा मे कोई बाधा नही पडती है । पडिहारो और पवारो का युद्ध वातावरण प्रस्तुत करने मे सहायता करता है साथ ही प्रेम प्रसग का भी वर्णन है ।

वर्माजी के "विराट की पद्मिनी" मे अलीमर्दान और नायक सिह की कथाओ की मुठभेड देवी सिह का राज्य पाना छोटी रानी का 'अलीमर्दान' के साथ सहयोग, रामदयाल और गोमती का सम्बन्ध आदि प्रासगिक कथाये हैं । जबकि 'कुजर' और 'कुमुद' की कथा मुख्य कथा है तमाम प्रसगो के माध्यम से कथा अपने लक्ष्य पर पहुचती है । कही जोड नही मालुम पडता है, इसलिए इसमे अधिक चुस्ती है ।

वर्माजी के उपन्यास "झासी की रानी" मे कथा सरल ही है । यह उपन्यास एक तरह रानी के ही जीवन को चित्रित करती है । ठीक–ठीक जीवन चरित्र कहना अनुचित होगा । इसे औपन्यासिक जीवन चरित्र कह सकते हैं, इसमे अनेक घटनाए आती हैं पर कोई प्रासगिक कथा नही है । छोटी कथा समाज मे उत्पन्न होती है पर रानी के लिए कोई विशेष कार्य नहीं करती हैं। रानी अपने भावी कार्यक्रम को सोच–विचार कर बैठी रहती है और परिस्थिति अनुकूल होने पर उन्हे कार्यान्वित करने के लिए अग्रसर होती है । रानी के दृढ चरित्र को देखकर भावी परिणामो की रचना पहले से ही कर लेते हैं । रानी का चरित्र, 'कर्त्तव्य', 'भावना', 'त्याग' और 'ग्रहण', 'प्रेम' और 'युद्ध' का अनोखा मिश्रण है । वह जीवन की कोमल भावनाओ, कलाओ और सस्कृतियो की रक्षा के लिए स्वाधिकार की रक्षा के लिए अनिवार्य समझती है और उसी अधिकार की रक्षा के लिए जीवन भर तलवार से प्यार करती हैं और भारतीय नारी के हृदय मे एक दिव्य ज्योति भरती हुई त्याग और बलिदान से स्वातत्र्य रक्षा' की अमरगीत लिख जाती हैं, जो युग–युग तक त्रस्त और निराश लोगो के पथ का सम्बल बनता रहेगा ।

वर्माजी का उपन्यास "मृगनयनी" (1950) की कथावस्तु अधिक जटिल हो गई । ग्वालियर 'राजा मानसिह' अपने राज्य के अन्तर्गत राई ग्राम की कन्या और प्रसिद्ध सुन्दरी तीरन्दाज बालिका से शादी कर लेता है । अत मे युद्ध को जीतता है, साथ ही कई प्रासगिक कथाये आती हैं और अंत तक चलती जाती हैं । मृगनयनी का भाई 'अटल' 'लाखी' से प्यार करता है । दोनो प्रेमी देश की सेवा के लिए बलिदान कर देते हैं, 'प्रेमकथा' को मुख्य कथा के साथ बड़ी कुशलता के साथ

जोड दिया गया है ।'मानसिह' की प्रेमकथा के साथ 'गियासुद्दीन' की प्रासगिक कथा से जुडकर कथानक मे एक कौतुहल तथा मोड पैदा करती है ।

इस तरह उपर्युक्त तथ्यो पर विचार से स्पष्ट होता है कि 'वर्माजी' की कथावस्तु मे बडा आकर्षण है । ये कथा बुन्देलखण्ड की ऐतिहासिक पृष्ठो के जीते–जागते चित्र हैं । उन चित्रो मे सत्यो को मानव जीवन की विभिन्न भावनात्मक प्रतिक्रियाओ के साथ सजाकर रखा गया है । वर्माजी के कथानक का रोमास अपनी स्वाभाविक अल्हणपन के साथ सजाकर रखा गया है । उपन्यास मे जिस रोचकता को महत्व दिया जाता है, वह पर्याप्त मात्रा मे इनके उपन्यास मे विद्यमान है । ये कथानक के मार्मिक स्थलो को पहचानते हैं और उन्हे प्रस्तुत करने की भी कला इनमे है । "कचनार" (1948) मे 'डरू' जब भाग जाता है तो वह किस प्रकार जगल मे रात भर रहता है । किस प्रकार बन्दरो और शेर से उसका सामना हुआ, इन सभी बातो को लिखने का लोभ लेखक सवरण नहीं कर सका है । इतना तो पाठक की कल्पना के ऊपर छोड दिया गया है। नदी नालो और पहाडो को भी वर्माजी रमी हुई दृष्टि से चित्रण करते हैं, किन्तु इन सभी विवरण के विषय मे ध्यान रखना है कि वर्माजी के वर्णनो मे जादू है ।'रोमास' उनकी मूल वृत्ति होने के कारण उनके कथानक कुछ अनावश्य होती हुए भी इतने मोहक तथा आकर्षक लगते है कि उनमे काव्य का एक स्वतत्र आनद मिलने लगता है । कही 'वर्माजी' के निरीक्षण दोष भी आ गए है, जैसे– 'विराट की 'पद्मिनी' मे स्वर्ण को लजाने वाली लट कहकर भारतीय केशो के सौन्दर्य उनकी श्यामता मे है । 'गढ कुण्डार' मे अमरूद के बाग की चर्चा आती है । यही विशेषताए वर्माजी के अन्य उपन्यासो मे देखने को मिलती हैं । [3]

शास्त्री जी के "वैशाली की नगरवधू" उपन्यास का नायक 'सोमप्रभ' कर्त्तव्य परायण वीर एव निर्भीक है, साथ ही उदार एव त्यागी भी है । दूसरे के हित के लिए महान से महान त्याग करने के लिए प्रस्तुत रहता है । वह राजकुमार विद्डम की हर स्थिति मे साथ दिया और उसे गद्दी पर बैठाया तथा प्रेमिका चन्द्रप्रभा को भी त्याग देता है । उसके लिए पूरे उपन्यास मे इसके द्वारा कथानक मे रूचि भरी हुई है । इस उपन्यास के लगभग सभी पात्र इसके व्यक्तित्व से प्रभावित होते हुए दिखाई पडते हैं । इस उपन्यास से इस पात्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है और सभी मुख्य घटनाओ को आगे बढाने मे वह सहायक है । इसकी घटनाये कथाओ को आगे बढाती हैं । यह इस उपन्यास का सर्वाधिक महत्वपूण पात्र है । शास्त्री जी के "सोमनाथ" का पात्र महमूद के कारण ही घटना चक्र इसी चरित्र के कारण गति पाते हैं । कथा का प्रारम्भ और अंत इसी की घटना सूत्र से आगे बढता है ।'सोमनाथ महालय' को विजय करने की दृढ़ इच्छा से उपन्यास मे प्रवेश करता है, और उद्देश्य प्राप्ति के लिए साधू वेष मे महालय के चक्कर लगाता रहता है ।

✵

'भीमदेव''गगसर्वज्ञ' के विरोध के फलस्वरूप वह सफल नही हो पाया । पुन आक्रमण कर महालय को नष्ट करता है । महालय को लूटने के अतिरिक्त इसका 'उद्देश्य भीमदेव की प्रेमिका और महालय की देवदासी 'चौला' को भी प्राप्त करना चाहता है, किन्तु 'चौला' के हाथ न लगने से 'शोभना' को प्राप्त कर लेता है ।'शास्त्री जी' 'महमूद' के चरित्र के बारे मे स्वय लिखते है कि "महमूद का सच्चा चरित्र चाहे जो वह हो, पर वह एक दृढ योद्धा आक्राता और वीर पुरुष था । उसका जीवन ही कठिन अभियानो मे बीता था । मुझे याद नही कि वह मनुष्यो का शत्रु, खूनी और डाकू है । अतत वह मनुष्य है यह मैं केसे भूल सकता हू।" [4]

शास्त्री जी ने 'महमूद' के अदर कठोरता और कोमलता दोनो का ही समन्वय किया है । 'महमूद' स्वभाव से दृढ, कार्यों मे साहसी, शत्रुओ के लिए कठोर, और मित्रो के लिए कोमल था । 'फिरदौसी' और 'अलबरूनी' जैसे विद्वानो का पोषक है । 'शास्त्री जी' ने कठोरता के साथ उसके प्रेमी कोमल हृदय को भी 'शोभना' के एक कथन से स्पष्ट करते है,– "जाने मन प्यार की इस चोट से मैं अब तक बेखबर था आज देखता हू कि जैसे मैने अपनी सारी जिन्दगी बर्बाद ही की है । अब 'महमूद' जिदा नहीं रह सकता" । [5]

शास्त्री जी उसके पूर्व स्वभाव मे कोमलता को 'महमूद' और 'रमाबाई' के इस सवाद से स्पष्ट करते हैं ।

"बहुत से लोग मुझसे राज्य की दौलत के लिए लडे, लेकिन इसान के लिए आज तक मुझसे कोई नहीं लडा, और इसान के लिए लडने वाली औरत का हुक्म मानकर मै इसी क्षण देवपट्टम को छोडकर जाने का हुक्म देता हू "। शास्त्री जी महमूद के मानवीय गुण मे कल्पना का समावेश करते हैं । [6]

शास्त्री जी ने 'अम्बपाली' की सुन्दरता का मार्मिक चित्रण करते हैं । वह कहते हैं कि–"मैंने साहित्य और श्रृगार मे उस मूर्ति को डुबकिया देकर मैंने अपने साथ उसे इस प्रकार अगीभूत कर लिया है कि एक दिन मैंने शीतल स्निग्ध चादनी रात मे सोया हुआ था, तो मैंने आकाश मे वह उज्जवल सजीव मूर्ति स्पष्ट देखी, उसके ओठ हिलते हुए आचल हवा मे फरफराता हुआ, नेत्र आवाह्न करते हैं स्पष्ट मैंने देखा । मेरे शरीर मे सम्पूर्ण जीव रोष कल्पना के वसीभूत हो गये और मैंने कहा नाचो अम्बपाली, और अम्बपाली नाचती है । मैंने इन्हीं आखो से उसे स्वच्छ नील गगन मे चन्द्रमा के उज्जवल आलोक मे उसे नाचते देखा । मुझे ऐसा लगा मैं भी आकाश मे उसके निकट पहुच गया हूं । फिर एकाएक मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह मूर्ति गायब हो गई और मैं वेग से नीचे आ गिरा ।" [7] शास्त्री जी के ऊपर के कथन बडी ही सज़ीव कल्पना द्वारा उपन्यास में रोमास पैदा कर देते हैं । शास्त्री जी ने 'सोमप्रभ', 'हर्षदेव' आदि पात्रो को कल्पना के

✱

रूप मे प्रस्तुत किया है, जो कथानक को लगातार गति देते रहते है । शास्त्री जी ने 'अम्बपाली' मे जहा एक तरफ दैवी आलोक से भर दिया है, वही दूसरी ओर उसने नारी सुलभ भावानाये भी देखने को मिलती हैं । इसी प्रकार 'शास्त्री जी' ने 'सोमनाथ' की 'शोभना' जो एक 15 वर्ष की विधवा है, उसकी सुन्दरता को चित्रित करते हैं । वह 'नगरवधू' से कम सुन्दर नहीं प्रतीत होती है , उसके व्यक्तित्व को शास्त्री जी ने इस प्रकार वर्णन किया है कि– "कृष्ण स्वामी की एक बाल विधवा पुत्री थी, उसका नाम था 'शोभना' । 'शोभना' शोभा की खान थी, आयु अभी केवल 15 की थी, उसका रग चम्पे के ताजे फूल के समान अथवा आम के फूले बौर के समान अथवा केले के नवीन पत्तो के समान था । 8 वर्ष की आयु पूरी होने के पहले वह विधवा हो जाती है । विधवा होने पर भी वह वैधव्य की आन मानती नहीं थी, वह हर समय खूब ठाट–बाट का श्रृगार किये रहते थी । सबके कहने पर वह आडम्बर पर हसने लगती थी । कुल मिलाकर वह एक "कनक छुरी सी कामिनी" थी, अथवा फूलो से लदी फदी एक डाल थी । [8] स्पष्ट है कि 'शास्त्री जी' ने उस समय विधवा औरतो के प्रति समाज के नजरिये पर खूब जमकर व्यग करते हैं । इस तरह की सुन्दर कल्पना और रोमास की सहायता से शास्त्री जी के सारे पात्र भरे पडे है, जो कि वर्माजी के पात्रो के आगे ऊपर उठ जाते हैं । शायद वर्माजी को कल्पना के इतने सुन्दर रग भरने मे सोचना पडा होगा, पर 'शास्त्री जी' के सारे उपन्यास इस तरह के मार्मिक चित्रण से भरे पडे है ।

इस तरह ऊपर पात्रों के सैद्धान्तिक विवेचन पर शास्त्री जी के पात्र उसी रूप मे प्रस्तुत किए गए हैं । 'शास्त्री जी' के पास कल्पना का अथाह सागर था, जिसमे वह नहा–नहा कर रस विभोर हो जाते हैं और उपन्यासो मे रगत चढा देते हैं । इस तरह शास्त्री जी के पात्रो का प्रधान गुण है कि वे एकदम सजीव प्रतीत होती है । वे काल्पनिक होते हुए भी काल्पनिक से न लगकर हमारे जीवन मे देखे सुने लगते है । उनके दु.ख अपने दु ख और सुख अपने सुख लगते हैं । उनके प्रति हमारे हृदय मे भी ममता, घृणा, सौहार्द, करूणा, प्रेम जग जाता है । हम उनके साथ चारो ओर चलने–फिरने लगते हैं। अलौकिकता और निर्जीवना पात्रो के व्यक्तित्व को साधरणीकरण नहीं होने देती हैं । 'शास्त्री जी' के अधिकाश उपन्यास ऐतिहासिक हैं । ऐतिहासिक पात्रो मे सजीवता भरना और भी आवश्यक है । कारण है कि इतिहास हमे शुष्क नर ककालो एव घटनाओ की ओर इगित मात्र कर देता है । उसमे मास और रक्त का सचार करके प्राण फूक कर सजीवता भर देना ही ऐतिहासिक कथाकार की वास्तविक कला है । इस कला मे 'आचार्य जी' पूर्ण सफल हुए हैं ।

सजीव पात्र स्वाभाविक ही हो ऐसा जरूरी नहीं है । विशेषकर पौराणिक पात्रो स्वाभाविकता का सर्वत्र निर्वाह और भी कठिन है । 'शास्त्री जी' के राम–रावण के चरित्र मे

आलौकिकता नही बल्कि आसाधरणता है, किन्तु मेघनाद के चरित्र मे आलौकिकता का समावेश है, जैसे–'मेघनाद' के द्वारा समुद्र मे बास डालने से दिव्य धनुष का बन जाना ।

शास्त्री जी इस तथ्य से भी भली भाति परिचित थे, कि पात्र सजीव और स्वाभाविक तभी होगा जब उसके चरित्र चित्रण मे मनोवैज्ञानिकता का समावेश हो । मनोविज्ञान के सहारे ही मनुष्य के अत स्तल हृदय का उद्घाटन हो सकता है । इन सभी विशेषताओ को ध्यान मे रखते हुए शास्त्री जी के पात्र कथानक को अनुकूलता प्रदान करते है, कथानक का प्रतिकूल होनो लेखक के पतन का सूचक है, जिस पर 'शास्त्री जी' हर क्षण ध्यान रखा है । अनुकूल समय, परिस्थिति, वातावरण आदि मे ही सही उपन्यास की रचना सम्भव है ।

❖ भाषा-शैली

"वृन्दावन लाल वर्माजी" के उपन्यासो मे एक विशेषता 'भाषा शैली' की है, जो गढ कुण्डार उपन्यास से ही एक अभिनव परिवर्तन के रूप मे दिखाई देती है, वृन्दावन लाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासो की भाषा शैली को एक नई दिशा, एक नया मोड प्रदान करते है । "गढ कुण्डार" और "विराट की पद्मिनी" तथा "झासी की रानी" उपन्यासो की भाषा स्वाभाविक, सरल, सुबोध और परिमार्जित है । उनकी भाषा क्लिष्टता से दूर है, छोटे–छोटे वाक्यो से सजी हुई है । कही–कहीं भाषा का अलकृत स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है– "स्वर मे कोई क्षोभ न था परन्तु कोमल होने पर भी उसमे सगीत की मजुलता न थी । जैसे कोमल ने दूर किसी सघन वन मे वायु के झोंको के प्रतिकूल फूक लगाई हो " । यह उक्ति "विराट की पद्मिनी" उपन्यास की है । वर्माजी की भाषा पात्रानुकूल भी है । हिन्दू हिन्दी बोलता है, मुसलमान सरल उर्दू और अग्रेज अग्रेजी मिश्रित सरल हिन्दी बोलता है । पात्रो के पद और प्रवृत्ति के अनुसार भाषा परिवर्तन 'वर्माजी' करते रहते है ।'गढ कुण्डार' मे 'अर्जुन कुमार' और 'हठी चदेल' तथा 'झलकारी दुलैया' और 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' की भाषा मे पर्याप्त अतर है, वर्माजी के उपन्यासो मे 'बुन्देलखण्डी शब्द' भी मिलते हैं, मुहावरो का प्रयोग भी उन्होने भी किया है । कही–कही भाषा अशुद्ध हो भी गई है, किन्तु ऐसे स्थल कम ही दिखाई पडते हैं । वर्माजी के उपन्यासो मे भाषा की समृद्धि और प्राजलता बहुत अधिक है, किन्तु सही यह है कि उनके स्वातत्रपूर्ण एव स्वातत्रयोत्तर ऐतिहासिक उपन्यासो मे सर्वत्र एक रूपता के दर्शन होते हैं । वर्माजी के सभी उपन्यासो की शैली कथात्मक है। वर्माजी की भाषा शैली कहीं प्रवणता लिये है, तो कहीं वर्णनात्मकता है । झासी के पतन पर रानी के हृदय द्रावक वर्णण करे हुए लेखक भाषा को स्पष्ट करता है– "महल की चौखट पर बैठकर वह रोई, लक्ष्मीबाई रोई । वह जिसकी आंखों ने कभी आसुओ से परिचय नहीं किया था, वह जिसके

कोष मे निराशा का शब्द न था, वह जो भारतीय नारित्व गौरव की शान थी, मानो उस दिन हिन्दुओ की दुर्गा रोई "। [9]

वर्णनात्मक शैली का एक उदाहरण वर्मा जी का इस प्रकार है– "गोरो ने शहर के सब फाटको पर अपना कब्जा कर लिया । X X X 5 वर्ष की आयु से 80 वर्ष की आयु तक के जितने पुरूष मिले उनका कत्ल शुरू कर दिया । हलवाई पुरा मे आग लगा दी, इसके बाद महल के एक–एक इच के लिए युद्ध हुआ । जब महल के सब सिपाही खत्म हो गए तो उस पर भी कब्जा हो गया । सब सामान लूटा, एक बक्श मे से 'यूनियन जैक' झण्डा मिला X X X महल के सिर पर आग लगा दिया गया । महल के केवल उस भाग को छोडकर जिस पर यूनियन जैक लहरा रहा था, बाकी महल मे आग लगा दी गयी । नाटक शाला भी न बची । सुन्दर पर्दे जिनकी सहायता से शकुन्तला, रत्नावली और हरिश्चन्द्र नाटक खेले जाते थे, खाक कर दिये गये । [10]

आचार्य "चतुरसेन शास्त्री जी" ने अपने उपन्यासो मे 'तत्सम शब्दावली' का प्रयोग किया है । युग को साकार करने के लिए कही–कहीं शास्त्री जी ने 'सस्कृत भाषा' के पूरे के पूरे उद्धरण दे दिये है । इनकी अलकार युक्त तत्सम प्रधान भाषा का एक उदाहरण– "वय रक्षाम" का यहा प्रस्तुत है– "फिर सब चिन्ताओ की सब भस्म राशि सागर मे विसर्जित कर लँकापति रावण लुटे हुए पथिक की भाति अधोमुख आसू बहाता राक्षसो, राक्षस पत्नियो सहित लका मे लौट आया।[11] इस पक्ति मे शास्त्री जी ने भाषा की चित्रात्मक, अलकारिक मर्म स्पर्शी शक्ति उजागर कर दी है। ऐसी ही सम्पूर्ण भाषा शैली के कारण उपन्यासो मे चेतना आ गई है ।

शास्त्री जी की भाषा प्रौढ और परिमार्जित भी है । भाषा तत्सम से युक्त समास युक्त उच्च कोटि की है । वर्णनात्मकता शैली की विशिष्टता है, और वैशाली की नगर वधू मे शास्त्री जी ने चित्रात्मक भाषा के प्रयोग को सजीव बना दिया है । इस सन्दर्भ मे विष कन्या के नाग से दश ग्रहण करने की कथा उल्लेखनीय है । "कुण्डनी ने उस नाग का फन पकडकर उसके नेत्रो से नेत्र को मिलाकर रखा । कभी वह शम्बर के पास ऐसे भाव दिखाती, मानो वह चुम्बन के लिए प्रार्थना कर रही हो, कभी सोम के निकट जाकर अपना अभिप्राय समझाती है । सोम के निकट जा लीला विलास से उन्हे उन्मुक्त करती है "। इसी समय कुन्डनी को सर्पदश काट लेता है, यह देखकर सभी आश्चर्य चकित रह जाते है । वह विष के वेग से लहराने लगी है ।

काव्य की अलकृत भाषा के कारण शास्त्री जी खरे उतरने हैं । चित्रात्मक और अलकृत भाषा शैली का एक उदाहरण शास्त्री जी का इस प्रकार स्पष्ट होता है– "मार्ग मे पडे हुए सर्प को अकस्मात देखकर जैसे मुनष्य चीत्कार कर उठता है, उसी भाति चीत्कार करके कुमारी सोम को छोड़कर दो परग पीछे हट गई, और भीगे नेत्रो से सोम की ओर देखने लगी "। [12] एक अन्य

उदाहरण 'अम्बपाली' के माध्यम से है– "चलती बार 'अम्बपाली' जो शब्द कह गई थी, उससे उनके हृदय तीर से विद्ध पक्षी की भाति आहत हो गए थे "। इस तरह की भाषा मे 'शास्त्री जी' ने पदलालित्य और प्रतीक योजना उपन्यास मे सौन्दर्य के रूप मे प्रस्तुत करते है । 'पदलालित्य' का अनोखा उदाहरण शास्त्री जी इस प्रकार देते है– "उसके सुचिक्कण, घने, पादचुम्बी केश, कुन्तल मृदुपवन मे मोहक रूप मे फैल रहे है । स्वर्ण मृणलसी कोमल भुज लताए सार्पिण की भाति वायु मे लहरा रही हैं । कोमल कदली स्तम्भ सी जघाए व्यववस्थित रूप मे गतिमान होकर नितम्बो पर आघात साकार कटि प्रदेश को ऐसी हिलोर सी दे रही है, जैसे– रामुद्र मे जवार आया हो "।[13]

(घ)

उपन्यास की ऐतिहासिक सॉस्कृतिक धारा में वृन्दावन लाल वर्मा और चतुरसेन शास्त्री का वैशिष्ट्य एवं प्रासंगिकता

(क)
वृन्दावन लाल वर्मा

हिन्दी की ऐतिहासिक उपन्यास धारा के उन्नायक 'वृन्दावन लाल वर्मा' ने अपने उपन्यासो की भूमिकाओ मे सहित्य सिद्धातो की चर्चा नही की है । उपन्यासो मे वर्णित घटनाओ मे केवल इतिहास पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किए हैं । भूमिकाओ मे कही–कहीं उन्होने घटनाओ, स्थानो तथा पात्रो के वास्तविक अथवा काल्पनिक होने का उल्लेख मात्र किया है । यह समस्त भूमिकाये परिचय मात्र हैं, जिनमे उन्होने प्रयुक्त यथार्थ तथा कल्पना की सीमा निर्धारित की है । अपवाद स्वरूप कतिपय स्थानो साहित्य सिद्धात सम्बन्धी एकाधिक उक्तिया अवश्य हो जाती हैं । 'वर्माजी' के ऐतिहासिक उपन्यासो के कतिपय पात्र कला मे विशिष्ट रूचि रखते है अथवा स्वय कलाकार हैं । इन पात्रो की परिधि समस्त ललित कलाओ तक विस्तृत है । अत परस्पर कथोपकथन मे बहुधा कला सम्बन्धी मत स्वत अभिव्यक्त हो जाते है ।

वर्माजी ने स्वीकार किया है कि प्रत्येक कलाकार के मन मे सौन्दर्य की भावना होती है, और जिस समय कलाकार अपनी कृति का सृजन करता है, वह उस सौन्दर्य की अवधारणा के विरूद्ध नहीं जा सकता । 'गयासुद्दीन' कला का पारखी भी है तथा कलाकारो का सहायक भी । कलाकारो के प्रति उसकी सहानुभूति उसे उनकी समस्याओ को समझने के लिए बाध्य करती हैं । अतएव कलाकार सम्बन्धी उसकी उक्तिया नि·सकोच भाव से वर्माजी के विचारो के रूप मे ग्रहण की जा सकती हैं । एक उक्ति दृष्टव्य है, "अपने मन के सलोनेपन के तकाजे से कैसे लडा जाय वे गरीब?" अर्थात् कलाकार अपने मन सचित अवधारणा को ही अपनी कृतियो मे साकार करता है। यह कथन ऐतिहासिक रोमास लेखक के अत्यधिक अनुकूल है । [1]

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक 'हीगल' ने हेतु के विषय मे लिखते हुए स्वीकार किया है कि सौन्दर्य के प्रति आकर्षण अथवा प्रेमभाव मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है । सौन्दर्यानुभूत के क्षणो मे हमारी आत्मा मे आनन्द का एक श्रोत आविर्भूत होता है और इस श्रोत के उच्छलन को कविता (साहित्य) कहते हैं । अतः सौन्दर्यजन्य आनन्द ही साहित्य का मूल कारण है । मन मे उपस्थित सौन्दर्यावधारणा के विषय मे हीगल तथा वृन्दावन लाल मे पर्याप्त साम्य है, किन्तु हीगल मात्र कविता के विषय मे चिन्तन कर रहा था । [2]

''हीगल''- ने सौन्दर्याकर्षण को जन्मजात स्वीकार किया है, किन्तु न तो 'क्रोचे' की सहजानुभूति जन्मजात है न वर्मा जी का ''मन का सलोनापन'' । ऐसी स्थिति मे सौन्दर्य की अवधारणा अथवा मन के सलोनेपन के निर्माण के तत्वो तथा प्रक्रिया की समस्या का समाधान अपेक्षित है । सौन्दर्य की यह अवधारणा या तो जन्मजात हो सकती है , अथवा अर्जित की जा सकती है और अर्जन का एकमात्र साधन परम्परा है। वर्माजी ने इस प्रश्न पर अपने विचारो को स्पष्ट नहीं किया, परन्तु परम्परा के महत्व को अवश्य स्वीकार किया है । ''कारीगरो ने जो कुछ पुराने जमानो से कारीगरी के रिवाज मे सीखा है, उसी को तो पेश कर रहे है '' । [3]

अत वर्माजी के अनुसार साहित्य (कला) का हेतु साहित्यकार की अपनी सौन्दर्य भावना की अभिव्यक्ति है, जिसका निर्माण परिस्कार मुख्यत परम्परा के द्वारा होता है ।

वर्माजी के उद्देश्य अथवा प्रयोजन सम्बन्धी विचार सामान्य उपन्या, साहित्य अथवा समस्त ललित कलाओ की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यास के सन्दर्भ मे अधिक उपयुक्त है ।''किशोरी लाल गोस्वामी'' विषयक अपनी उक्ति मे अवश्य वर्माजी के साहित्य का प्रयोजन स्पष्ट किया है, ''यदि हमारे अधिकाश उपन्यास लेखक किसी सामाजिक कुरीति को दूर करने के उद्देश्य से कमर कसकर पुस्तक लिखे तो हिन्दी पढने वालो का बडा उपकार हो ।''[4] इस उक्ति के अनुसार साहित्य सृजन का प्रयोजन समाज सुधार अथवा समाजोत्थान है जो शास्त्रीय प्रयोजन 'शिक्षण' से अभिन्न है । 18वीं शताब्दी के 'इग्लैण्ड' मे तो उपन्यास का एकमात्र प्रयोजन शिक्षण ही स्वीकार कर लिया गया था । उसका कारण कदाचित् तत्कालीन समाज की धार्मिक भावना थी और हमारी उपन्यास भावना वर्मा जी के समय तक इससे आगे नही बढ पाई थी । समाजोत्थान हेतु लिखने वाले कतिपय साहित्यकारो ने यथार्थ चित्रण की ओट मे साहित्य मे आश्लीलत्व बाहुल्य का समर्थन किया था । वर्माजी इस प्रवृत्ति के विरोधी थे । ''नग्नी–2 बातो को पाठको के सामने रखना उनके रूचि को बिगाडना है, चाहे आगे चलकर ऐसे चरित्र वालो को दण्ड दिलवाया गया हो, पर उनका अश्लीलता के साथ वर्णन करना बुरा है ।'' [5] वे उच्च उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी निकृष्ट माध्यम की स्वीकृति नही देतें है ।

''मृगनयनी'' की भूमिका में उन्होने एक अन्य प्रयोजन भी स्वीकार किया है । ''1949 के अत मे ग्वालियर की एक सम्मानित पाठिका मे मुझसे 'मृगनयनी' और मानसिह तोमर के ऐतिहासिक रूमानी कथानक पर उपन्यास लिखने का अनुरोध किया।'' यह वक्तव्य रूमानी कथानक के विषय मे तो है ही, स्वय अपने आपमें भी कम रूमानी नही है । इसके अनुसार 'मृगनयनी' तथा उसके अनुरूप लिखित अन्य उपन्यासो का प्रयोजन व्यक्ति विशेष के अनुरोध की रक्षा मात्र है । किसी सीमा तक यह अनुरोध साहित्य हेतु के अन्तर्गत भी लिया जा सकता है, क्योकि अनुरोध सृजन

❋

की स्फूर्ति प्रदान करता है । हिन्दी साहित्य के इतिहास मे ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते है, जहा किसी नृप, सामत, प्रेमिका अथवा मित्र के अनुरोध की रक्षा हेतु ग्रन्थो की रचना की है । [6]

ऐतिहासिक रोमास के साथ ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना करने के कारण उनका महत्व मात्र–सृजनात्मक उपन्यासकार का न रहकर अन्वेषक तथा शोधकर्ता का भी है ।

ऐतिहासिक उपन्यासो के विषय मे अपनी भूमिका तथा परिचय मे वर्माजी ने विस्तार से लिखा है, किन्तु अधिकाशत उन्होने सामग्री की प्रमाणिकता तथा स्रोत विषयक सकेत दिए है । इसके अतिरिक्त कतिपय उक्तिया ऐतिहासिक उपन्यास के स्वरूप तथा उसके उद्देश्य के विषय मे है । अत प्रस्तुत सदर्भ मे उनके विचारो को स्रोत तथा सामाग्री, ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप तथा ऐतिहासिक उपन्यास का उद्देश्य तीन शीर्षको के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है ।

शोधपूर्वक लिखे गये ऐतिहासिक उपन्यासो की सामग्री का प्रथम स्रोत ऐतिहासिक तथ्य ही हो सकते है, जो इतिहास ग्रन्थ मे सुरक्षित है ।'वर्माजी' ने इतिहास ग्रन्थो को ही अपनी रचना के उपजीव्य स्वरूप स्वीकार किया है । उन्होने 'अग्रेजी', 'हिन्दी', 'मराठी' तथा 'फारसी' के इतिहास ग्रथो का मथन किया है, तथा उनके आधार पर उपन्यास वर्णित तथ्यो को पुष्ट किया है ।

(क) " यह फारसी की तारीख 'मीराते सिकन्दरी' मे दर्ज है ।"

(ख) "इधर इतिहास के अध्ययन और तथ्य के अनुशीलन के इस धरोहर के मूल्य को कम कर दिया । सामने केवल पारसनीस की पुस्तक 'रानी लक्ष्मीबाई का जीवन चरित्र' थी । 'पारसनीस' के अन्वेषण काफी मूल्यवान होते हुए भी उनका विचार कि रानी, झासी का प्रबन्ध अग्रेजो की ओर से गदर के जमाने से करती रहीं, परदादी और दादी की बतलाई हुई परम्पराओ के सामने मन मे खपता नहीं था ।" [7]

इतिहास ग्रथो को उन्होने विभिन्न पट्टे–परवानो, पत्रो तथा अन्य लेखो से परिपुष्ट किया है, उनकी चर्चा उन्होने 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' के परिचय मे की है। कितु स्वार्थ तथा पूर्वाग्रहवश इतिहास लेखको के असत्य–कथन ने इतिहास–ग्रन्थो को भी निभ्रात नहीं रहने दिया, अत उनके भी परीक्षण की आवश्यकता प्रतीत होती है । महान इतिहासकारो के वक्तव्यो तथा तुच्छ एव नगण्य स्रोतो के वैषम्य की भी वर्मा जी ने खोज की है, तथा पुष्ट प्रमाणों से सतुष्ट होकर लेखनी उठाई है ।

सामग्री का द्वितीय स्रोत परम्पराये, किवदन्तियां, जनश्रुतिया, रूढिया तथा तत्कालीन विश्वास ही है । वर्माजी ने प्राय. इन सबका उपयोग किया है ।

❋

(क) "सामग्री तो––हम लोगो को परम्पराओ और किवदतियो से मिली है ।" [8]

(ख) "मैने पहली परम्परा को मान्यता दी है ।" [9]

(ग) "मैंने इस किवदन्ती का दूसरे प्रकार से उपयोग किया है ।" [10]

(घ) "प्रधान घटनाये सब सही है, जनश्रुतिया और परम्पराओ का भी मैने सहारा लिया है ।" [11]

(ङ.) "तत्कालीन अध विश्वासो और रूढियो का वर्णण उपन्यास मे आया है ।" [12]

जन–श्रुतियो एव किवदतियो का प्रयोग अधिक प्रमाणिक नही माना जा सकता । अत ऐतिहासिक उपन्यासो मे उनका प्रयोग अधिक श्लाध्य नही है, किन्तु तर्क निष्कर्ष पर उत्तीर्ण होने वाले ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर जन–श्रुतियो का स्वच्छ चितन के पश्चात् उपयोग किया जाए, तो वे इतिहास ग्रथो की पूरक भी हो सकती है । 'वर्मा जी' की भूमिकाओ से स्पष्ट है कि उन्होने इनका प्रयोग उचित परीक्षण के पश्चात् ऐतिहासिक भ्रान्तियो के निराकरण तथ्यो के पोषण हेतु किया है ।

'वर्माजी' ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना से बहुत पूर्व जो सकल्प किए थे, उनमे इतिहास विषयक भ्रान्तियो का नाश कर अपने राष्ट्र का गौरव गान मुख्य था। "मैने उसी दिन गाठ बाधी कि खूब पढूगा और सही बातो का पता लगाकर कुछ लिखूगा भी ।" इस प्रण की रक्षा हेतु ऐतिहासिक उपन्यास मे इतिहास की पूर्ण रक्षा अनिवार्य थी । वस्तुत ऐतिहासिक उपन्यास लेखन से पूर्व वर्माजी ने इतिहास ग्रन्थ लेखन की बात सोची थी, परन्तु कतिपय अज्ञात कारणो के फलस्वरूप उन्होने 'इतिहास ग्रन्थो' की रचना न कर ऐतिहासिक उपन्यासो का सृजन किया । वर्माजी ने इतिहास को कल्पना के अनुरूप क्या रूप दिया है । अत ऐतिहासिक उपन्यास मे साहित्य एव कल्पना के अनुपात विषयक उनके विचारो का विश्लेषण यहा आवश्यक है । जो व्यक्ति इतिहास की प्रतिष्ठा तथा सत्य के अन्वेषण का प्रण लेकर साहित्य सृजन करे, प्रत्येक घटना की ऐतिहासिक प्रमाणिकता प्रस्तुत करे तथा उपन्यासिक सौन्दर्य की चिन्ता इस कारण त्याग दे, क्योकि उससे ऐतिहासिक यथार्थ की हानि होती है । [13] 'वृन्दावन लाल वर्मा' अपने उपन्यासो को इतिहास ग्रन्थो को समीपतम् रखते हुए कल्पना की उपेक्षा नही कर पाये हैं । वे कहते हैं कि– "मैंने निश्चय किया है कि मैं उपन्यास लिखूगा, ऐसा जो इतिहास के रग–रेसे से सम्मत हो और उसके सदर्भ मे हो । इतिहास के ककाल मे मास और रक्त का सचार करने के लिए उपन्यास मुझे अच्छा साधन प्रतीत होता है । इस तरह 'वर्माजी' का दृष्टिकोण सम्पूर्ण इतिहास का पुर्नजीवन करना है ।

❋

अत वर्माजी यह स्वीकार करे है कि ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास की पूर्ण रक्षा होनी चाहिए । ऐतिहासिक तथ्यो एव भौगोलिक वातावरण के साथ सामाजिक जीवन के अच्छे–बुरे गुणो का पूर्ण विवरण होना चाहिए । इसे ऐतिहासिक उपन्यास के चित्रण मे देशकाल की सज्ञा भी दी जा सकती है । कल्पना का प्रयोग ऐतिहासिक उपन्यास मे अनिवार्य है किन्तु यह कल्पना भी इतिहास मूलक होनी चाहिए । ऐतिहासिक उपन्यास वर्तमान तथा भविष्य के लिए भी सार्थक होना चाहिए, किन्तु वर्तमान एव भविष्य की इन समस्याओ को कल्पना के आधार पर इतिहास के माथे नही बढा जा सकता । अत भूतकाल मे उन समस्याओ का अस्तित्व भी अनिवार्य है । [14]

'वृन्दावन लाल वर्मा' साहित्यकार को न ही सकलनकर्ता मात्र बनाना चाहते है और न ही वे मौलिकता के विरोधी है । इस सम्बन्ध मे 'कलाकार का दण्ड' मे अत तक भी भारतीय कलाकार के प्रति यह उक्ति महत्वपूर्ण है । "जान पडता है कि आपके आचार्यों ने जैसा कि पुस्ताको मे लिख दिया है, वैसा ही अनुशरण करते हो । कुछ अपनी निज की भी व्युत्पत्ति रखनी चाहिए" । व्युत्पत्ति को हम अनुभूति और विवेक से प्राप्त लेखक की मौलिक दृष्टिकोण मे स्वीकार कर सकते है । वस्तुत इतिहास के आधार पर उपन्यास लिखने वाला अपना दृष्टिकोण रखता है, परन्तु वह केवल इतिहास लिखने वाले की अपेक्षा अधिक स्वतत्र होता है । दृष्टिकोण के इस अतर से ही ऐतिहासिक उपन्यासकार का तथ्यो की विकृति के आभाव मे भी अपनी मौलिकता को अभिव्यक्ति दे सकता है । इस तथ्य को वर्माजी ने समझा ही नही, स्वय पर घटाया भी है । "मैं इतिहास के तथ्यो को सुरक्षित रखने की सदा चेष्टा करता आया हू, चाहे वह नाटक हो, चाहे वह उपन्यास परन्तु हो सकता है ।"*प्रोफेसर फ्रूड*"के शब्दो मे – facts of history are there like playingcards, one may built out of them a house, another a church and yet another a tomb ---- मुझसे भी कही–कहीं यह हो गया हो, यद्यपि मै सदा सतर्क रहा हू कि इतिहास के तथ्यो एव तत्वो का मनमाना उपयोग करू । [15] 'टूटे काटे' उपन्यास की रचना तक आते–आते वर्माजी 'कथ्य' अथवा लेखक के स्वतत्र दृष्टिकोण को इतना महत्वपूर्ण स्वीकार कर चुके थे कि इतिहास मात्र साधन हो गया था और साध्य थे लेखक के विचार : "......कहानीवाले को तो जो कुछ दिखाई पडा इतिहास की ओट लेकर 'टूटे कांटे' मे कह लिया ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर वर्माजी के मतानुसार ऐतिहासिक तथ्य (घटनाएं) एवं तत्कालीन देशकाल, इतिहास मूलक कल्पना, शाश्वत् समस्यायें लेखक का स्वतंत्र मौलिक दृष्टिकोण तथा तर्क सम्मतता ऐतिहासिक उपन्यास के अनिवार्य तत्व हैं ।

❋

यहा यह विचारणीय है ,कि ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना का प्रयोजन क्या है। इस सन्दर्भ मे वर्माजी की यह उक्ति द्रष्टव्य है "लोक–कथाओ मे जो सम्मोहन है वह उनके पुरानेपन, व्यापकता और जनमत के मर्म को प्रभावित करने की रूढि के कारण होता है । जहा किसी ने कहा– एक कहानी सुनो– कि श्रोता की आलोचक वृत्ति नशा सा पीकर रह जाती है और सभव–असम्भव सब प्रकार की बातो को मानने के लिए तैयार होते है । शायद कहानी के सार मे से कोई उपदेश भी ले बैठता हो "। [16] वर्माजी के इस उद्धरण से प्रतीत होता है कि वे कथा को ही मुख्य मानते हैं तथा उनकी दृष्टि मे उद्देश्य का महत्व नगण्य है । विशेषकर अतिम वाक्य की ध्वनि अत्यधिक स्पष्ट है कि वे 'उपदेश' के (जो कि प्रयोजन है) देने की कोई चेष्टा नहीं करते, वह आये तो ठीक है अन्यथा उससे कोई विशेष हानि नही होती । रूमानी लेखक की उपदेश के प्रति उदासीनता कोई आश्चर्य नही है । ये उपदेश, विशेषकर प्रत्यक्ष उपदेश के समर्थक नही हैं । "प्रत्यक्ष उपदेश के मैं बिल्कुल विरूद्ध हू, उसकी कोई एस्थेटिक वैल्यू नही, चाहे उपन्यास का क्षेत्र हो, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक या नैतिक।" [17] किन्तु उपदेश का विरोध 'प्रयोजन' मात्र का ही विरोध नही है । विशेषकर 'वर्माजी' के सन्दर्भ मे यह सर्वथा असत्य है। एकाधिक बार उनसे यह प्रश्न किया गया है कि आखिर उन्होने ऐतिहासिक उपन्यास ही क्यो लिखे ? उनके समस्त उत्तर ऐतिहासिक उपन्यास की उपदेश्योन्मुखता पर बल देते है । विदेशियो और विधर्मियो की लेखनी ने इस देश के इतिहास पर जो कालिमालेपन किया था, उसका निराकरण कर ऐतिहासिक सत्य को प्रस्तुत करने तथा तदुत्पन्न भ्रातिया का निवारण करने के लिए ही 'वर्माजी' ने कलम उठाई थी ।

(क) मैने उसी दिन गाठ बाधी कि खूब पढूगा और सही बातो का पता लगाकर लिखूगा भी । पर प्रण किया कि इतिहास और परम्परा के पीछे पडकर कुछ लिखूंगा । [18]

(ख) "उसने निश्चय किया, 'मैं गलत नही लिखूगा' । पढूगा और खोज करूगा ।"

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासो का उद्देश्य ऐतिहासिक सत्य की खोज तथा विभिन्न लेखको द्वारा प्रसारित अनेक भ्रान्तियो का निराकरण है । परन्तु यह प्रयोजन स्वय मे अतिम लक्ष्य नही हो सकता । यह साहित्य की अपेक्षा इतिहास से अधिक सम्बन्धित है । अत जिन कारणो से वर्माजी इतिहास ग्रथ लेखन का विचार त्यागकर ऐतिहासिक उपन्यास लिखे थे, उन्ही कारणो से इस प्रयोजन को वे अतिम प्रयोजन नहीं मानते . "किन्तु प्राचीन के उद्घाटन मात्र की रूचि न थी और न उद्देश्य था ।" [19] **"डॉ० शशि भूषण सिंहल वर्मा जी"**- के वैयक्तिक वार्तालाप के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि–".... वर्माजी के चित्र पर वीर–प्रसू–भूमि बुन्देलखण्ड की गाथाओ और वश की परम्पराओ के सस्कार थे ही, उनका स्वस्थ शरीर कुछ कर दिखाने को,

किसी नेतृत्व को ग्रहण करने को लालायित था ।" [20] इस प्रयोजनक की स्वीकृति वर्माजी ने स्वय भी दी है, " और दिखलाऊगा कि जैसी यहा (बुन्देलखण्ड) की प्राकृति, पहाड, जगल, झीलो, नदिया और मैदान–मनोहर हैं, वैसा ही यहा का इतिहास शक्तिशाली और स्फूर्तिदायक है।" [21] अत वर्माजी का ऐतिहासिक सत्यानुसधान इतिहास के माध्यम से अपने राष्ट्र विशेषकर बुन्देलखण्ड के गौरव गान हेतु था ।

वर्माजी के ऐतिहासिक उपन्यासो का तृतीय प्रयोजन, ऐतिहासिक रोमासो अथवा रोमानी प्रवृत्ति से अधिक सम्बद्ध है । बहुधा रोमास को औपन्यासिक कल्पना की उच्चतम उडान स्वीकार करने के कारण सार्थकतावादियो द्वारा 'निष्प्रयोजन' घोषित किया गया है । वर्माजी इस विचार के विरूद्ध रोमास की सार्थकता का भी विवेचन विभिन्न उदाहरणो के माध्यम से करते है "अच्छी नीति के बाद सबेरे की अरूणिमा देखने के लिए जी क्यू ललचाता है ? चलते रास्ते बगीचे के फूलो को देखकर एक क्षण ठहर जाने क लिए मन क्यो मचलता है ? मानव प्रकृति । मानव त्याग तक अपनी तत्कालिक एकरूपता (monotony) पर हावी होने के लिए करता है । रोमास इस प्रवृत्ति का बडा सा साथी है । क्रिकेट और कबड्डी को देखकर बिना हाथ–पैर हिलाए आपका मन खेलो को खेलने लगता है । मन के उस खेल से एक ताजगी आती है, ताजगी से शक्ति । यही उसका उपयोग है, यही कम से कम उसकी एक प्रकट आवश्यकता है ।" ऐतिहासिक रोमास अथवा ऐतिहासिक उपन्यास पाठक को अनुप्रेरित करता है, उसे जागृत करता है, उसे स्फूर्णा प्रदान करता है । पाश्चात्य आलोचको ने इस प्रयोजन को "टू मूव" मे अभिव्यक्ति दी है ।

समग्रत ऐतिहासिक उपन्यासो तथा रोमासो के वर्माजी के अनुसार चार प्रयोजन हो सकते है । **(अ)** ऐतिहासिक सत्य का अनुसधान तथा विभिन्न लेखको द्वारा प्रसारित भ्रातियो का निराकरण । **(आ)** इतिहास के माध्यम से समस्त राष्ट्र तथा विशेषकर 'बुन्देलखण्ड' के अतीत का गौरवगान । **(इ)** जनता मे स्फूर्ति का सचार । **(ई)** इतिहास के माध्यम से आधुनिक समस्याओ का समाधान ।

एकाधिक प्रयोजन होने के कारण इनमे प्रमुख तथा गौण प्रयोजनो के वर्गीकरण का प्रश्न महत्वपूर्ण है । वर्माजी के मतव्यों का अनुशीलन स्पष्ट करता है कि वे ऐतिहाससिक सत्यानुसधान को सर्वाधिक महत्व देते हैं ।

"मृगनयनी" से वर्माजी ने कला के सम्बन्ध मे अनेक मौलिक विचार प्रस्तुत किए हैं । कला (जिसमें साहित्य भी सम्मिलित है) को सामान्यत मानव हृदय के परिष्कार का अन्यतम साधन स्वीकार किया जाता है । किन्तु सामान्य जीवन इस तथ्य की सत्यता मे सदेह के अनेक अवसर उपस्थिति करता है । 'मृगनयनी' उपन्यास में सिपाहियो द्वारा बैजू के सगीत का स्वाग

कराकर वर्माजी ने इस सदर्भ मे एक सुदर उदाहरण प्रस्तुत किया है । सगीत, जो अपने माधुर्य से बनचारी, मृग–मृगियो को आकर्षित करता है, पाषाण को द्रवित कर देता है, क्रूर व्यक्तियो के वज्र हृदय को कमल पखुडी बना देता है, वही सगीत इन सिपाहियो का प्रभावित करने मे असमर्थ क्यो है ? इस समस्या पर मृगनयनी तथा मानसिह का विचार–विनिमय अत्यत महत्वपूर्ण है । [22]

बोली, 'ऐसे लोगो के मन पर कला का आदर धीरे–धीरे ही बैठता है ।'

"नगर मे जगह–जगह लोग नायक बैजू की परिपाटी सीखने लगे है । उनमे कला की समझ आने लगी है, कला का आदर करते हैं, पर ये मेरे इतने निकट रहते हुए भी उजड्ड और भद्दे ही बने रहे ।"

कला प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित नही करती, उससे वही प्रभावित हो सकता है, जो उसके गुणो को ग्रहण करे, और कला के गुणो को ग्रहण करने के लिए परिष्कृत सहृदयता की अपेक्षा है, जो अभ्यास के पश्चात् ही सम्भव है ।

जीवन मे कला का सतुलन भी अत्यत महत्वपूर्ण है । कला को इतना महत्व नहीं दिया जाना चाहिए कि वह हमे कर्त्तव्य से च्युत कर दे । अत जीवन मे कला और कर्त्तव्य के बीच सामजस्य और सतुलन बनाये रखने की आवश्यकता है । 'मृगनयनी' उपन्यास का उद्देश्य ही इस विचार को प्रस्तुत करना है । अत तत्सम्बन्धी अनेक उक्तिया यत्रतत्र से उपलब्ध हो जाती है "सचमुच वह कला क्या जो कर्त्तव्य को लगडा कर दे, और कर्त्तव्य भी क्या जो कला का अग–भग हो जाने दे ?" [23]

वृन्दावन लाल वर्मा के सिद्धात, शास्त्र तथा परम्परा–विरोधी न होते हुए भी सर्वथा मौलिक है । हेतु के अन्तर्गत सौन्दर्यावधारणा को महत्वपूर्ण स्थान देने वाले ये हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार हैं । ऐतिहासिक उपन्यास के प्रेरक तत्व साहित्य–हेतु के अत्यधिक समीप होते हुए भी उससे एकरूप नही होते । देश के गौरव–गान तथा ऐतिहासिक सत्य के अन्वेषण का इतना सशक्त आयास, प्रसाद के शिवाय अन्यत्र दुर्भभ है । कला के दो रूपो की चर्चा तथा जीवन मे उसके सुलन विचार, चिन्तन के नवीन आयाम है ।

❋

(ख)
आचार्य चतुरसेन शास्त्री

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री' के ग्रथो की सख्या बहुत अधिक है, किन्तु साहित्यिक गुणो की अल्पता के कारण उन्हे वह प्रतिष्ठा प्राप्त न हो सकी, जिसके वे आकाक्षी थे। मान्यता–प्राप्ति–हेतु शास्त्री जी ने बहुत कुछ लिखा, जिसमे उनके पीडित अह का आक्रोश मुखर है । सामान्यत उन्होने साहित्य–चितन मे अधिक रूचि नही ली है । किन्तु उपन्यासो की भूमिकाओ मे उन्होने अनेक सिद्धातो का प्रतिपादन किया है, जिनमे यत्र–तत्र आत्मविरोध भी है ।

शास्त्री जी की मान्यता है "जीवन का जो अनन्त प्रवाह बह रहा है, उसका मूल स्रोत एक अनिर्वचनीय आनन्द है, यह आनन्द एक कण–मात्र जब सस्कारभावित हृदय को छू जाता है तब उसके हृदय की वीणा का कोई तार बज उठता है, उसी से साहित्य की रचना होती है ।"[1] इस उक्ति से साहित्य–हेतु सम्बन्धी दो सर्वथा विरोधी विचार सम्मुख आते है । आस्तिक दृष्टि से "जीवन का मूल स्रोत" तथा 'अनिर्वचनीय आनन्द' ईश्वर है और 'सस्कार भावित हृदय को छूने' का तात्पर्य 'प्रतिभा' का दान है । अत साहित्य का हेतु प्रतिभा है । नास्तिक अथवा भौतिक दृष्टि से जीवन का आनन्द–स्वरूप वह मूल स्रोत जीवनी–शक्ति है, उसका स्पर्श जीवनेच्छा है । इस प्रकार साहित्य–हेतु 'जीवनेच्छा' है, जो पाश्चात्य मनोविज्ञानवेत्ता युग के विचारो के अत्यत निकट है । उसी प्रसग मे उन्होने आगे लिखा है "इस प्रकार जीवन के प्रतिघात से जो आवेग मानव–हृदय मे उत्पन्न होता उसका विभातिक रूप ही साहित्य है ।" अत अपने आवेगो अथवा भावो की अभिव्यक्ति की इच्छाही साहित्यकार को साहित्यसृजन की ओर प्रेरित करती हैं । इस समबन्ध मे "डॉ0 नगेन्द्र" की यह उक्ति भी दृष्टव्य है " सृजन आत्म–साक्षात्कार के क्षणो की अनिवार्य प्रक्रिया है, जिसमे वृत्ति अतर्मुखी हो जाती है । [2] "आत्माभिव्यक्ति" को साहित्य–हेतु के रूप मे स्वीकार करना प्रकारातर से कोचे के अभिव्यक्तिवाद की ही पुष्टि है ।

"सोमनाथ" की भूमिका मे उन्होने स्वीकार किया है "मित्रो की चुनौती मुझे याद थी । वही– नहले पर दहले वाली । 'नगरवधू' पर अभी भी मुझे मोह था । 'अम्बपाली', 'सोमप्रभ,' 'विम्बसार', 'चम्पा' की 'राजकुमारी', 'कुण्डनी' आदि साधारण रेखाचित्र हैं। परन्तु 'सोमनाथ' मे तो मुझे–नहला पर दहला मारना था, प्रभावशाली नए चित्रो की सृष्टि करनी थी ।" [3] अत 'सोमनाथ' की रचना किसी के नहले पर दहला मारकर अपने अह की तुष्टि के लिए थी । 'अहं की तुष्टि' को प्रेरक शक्ति मानकर हम साहित्य–हेतु के रूप मे स्वीकार कर सकते हैं । इससे पूर्व–स्वीकृत साहित्य हेतु 'आत्माभिव्यक्ति' भी इस दिशा की ओर सकेत करता है । 'आत्माभिव्यक्ति' किसलिए? 'तुलसी' जैसे सत नम्र भाषा मे उत्तर देते हैं , 'स्वात सुखाय' किन्तु

नहले पर दहला मारने वाला जीव कहेगा– 'अपनी तुष्टि के लिए' । 'गोली' की भूमिका की कतिपय पक्तिया इसकी पुष्टि करती हैं "साहित्य रचना करता हू अपने लिए । अपनी आत्मतुष्टि के लिए । उसमे न प्रचार की भावना है, न द्वेष भावना । केवल मनुष्य को प्यार करने और उसे सुखी और भयहीन देखने की मेरी कामना रहती है, वही कामना मेरे साहित्य की प्रेरक शक्ति है।" मानव प्रेम की चर्चा चाहे की गई हो, किन्तु इतना स्पष्ट है कि वे आत्म–तुष्टि अथवा अह की तुष्टि को ही अपने साहित्य का हेतु स्वीकार करते है । अत इसे ही अतत 'चतुरसेन शास्त्री जी' के अनुसार सर्वप्रमुख साहित्य हेतु स्वीकार किया जाना चाहिए । परवर्ती उपन्यासकारो मे ये विचारधारा पूर्णत लुप्त नहीं हुई है, अज्ञेय ने भी इसी साहित्य हेतु को समारोह पूर्वक स्वीकार किया है । [4]

'चतुरसेन शास्त्री' स्वीकार करते है कि मनुष्य ने भावात्मक वृत्तियो के साथ ऋणात्मक वृत्तिया भी प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है । अत साहित्य का कार्य ऋणात्मक वृत्तियो का मूलोच्छेदन तथा भावात्मक वृत्तियो का पोषण होना चाहिए "मानव ने देवत्व का आरोप करना साहित्य का चरम ध्येय है । मानव के शरीर मे मानवता के साथ–साथ देवत्व और पशुत्व के भी बीज हैं, पशुत्व उसमे कम नही हैं । उस पशुत्व से मानव को पृथक करके मानवता मे देवत्व की अभिव्यक्ति करना साहित्य का श्रेष्ठ कर्म है ।" मानव ने देवत्व के अस्तित्व की अवधारणा आस्तिक अवधारणा है, जो भूततत्व की अपेक्षा आत्मतत्व पर अधिक बल देती है ।'शास्त्री जी' इस सदर्भ मे साहित्य को स्थायी आत्मभोजन के रूप मे स्वीकार करते है । " यह साहित्य ऐसा होना चाहिए जिसकी पुनीत गगा मे स्नान करके कोटि–कोटि मानव हृदय चिरकाल तक पाप–ताप से रहित होकर निर्मल और सबल होते रहे । उन्हे स्थायी आत्मभोजन मिलता रहे ।" शास्त्री जी इस रूप मे उन सुधारवादी साहित्यकारो की श्रेणी मे आते हैं, जो परिष्कृत साहित्य मे समाज की आत्मिक स्तर को उच्च करना चाहते है ।

साहित्य के स्वरूप के विषय मे 'शास्त्री जी' ने एकाधिक स्थानो पर विचार प्रकट किए हैं, किन्तु न तो उन्होने स्वरूप का स्पष्ट वर्णन किया है और न साहित्य के लक्षणो को गिनाया है । भावुकता पूर्ण शैली मे यत्र–तत्र कुछ कह दिया है । तथापि उनकी उक्तियो मे साहित्य के तत्वो के रूप मे सत्य, सौन्दर्य, आनन्द तथा असीमता की समान रूप से प्रतिष्ठा उपलब्ध है । उन्हीं के आधार पर उनके साहित्य स्वरूप सम्बन्धी सिद्धातो का निरूपण किया जा सकता है ।

शास्त्री जी ने सत्य को देखा है, उसकी प्रतिक्रिया से वे चितित नहीं है । "सत्य की व्याख्या साहित्यकार की निष्ठा है, उसी सत्य की प्रतिष्ठा मे मुझे प्राग्वेदकालीन नृवश के जीवन पर प्रकाश डालना पडा है । अनहोनी, अविश्रुत, सर्वथा अपरिचित तथ्य आप मेरे इस उपन्यास मे

देखेगे । आप अवश्य ही मुझसे सहमत न होगे, परन्तु आपके गुस्से के भय से तो मै अपने मन के सत्य को मन मे रोक रूखूगा नही । अवश्य कहूगा और सबसे पहले आपसे ।" [5]

प्रत्येक मनीषी ने सत्य को सदा प्राणाधिक प्रिय माना है । साहित्यकार के रूप मे चतुरसेन शास्त्री की इस उक्ति मे बहुत नवीनता नही है , किन्तु सत्य का यह रूप अवश्य विचारणीय है । यहा 'सत्य' को 'यथार्थ' के रूप मे स्वीकार किया गया है । सत्य यथार्थ की स्थूलताओ से मुक्त होकर प्रिय होता है । यह सत्य उग्र है, कटु है, अन्य व्यक्ति को उत्तेजित कर सकता है । अत यथार्थ से अभिन्न है, जिस सदर्भ मे 'शास्त्री जी' ने सत्य का यह स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह अश्लील से अश्लील तथ्यो को भी उघाडकर रख देने का पोषण करता है, क्योकि वे भी यथार्थ है । सत्य के इसी यथार्थ रूप को उन्होने अपने साहित्य मे मुख्य स्थान दिया है । अपने समस्त ऐतिहासिक उपन्यासो मे दी गयी सामाजिक–असामाजिक, श्लील–अश्लील घटनाओ के लिए व्यापक अध्ययन के पश्चात् उन्होने ऐतिहासिक आधार प्रस्तुत किया है । इस प्रकार भूत या वर्तमान मे घटित ठोस यथार्थ को ही उन्होने सत्य के आसन पर प्रतिष्ठित किया है।

दूसरी ओर शास्त्री जी' सत्य को भावना के समीप तथा विज्ञान से दूर मानते है 'साहित्यकार जो कुछ सोचता है, जो कुछ वह अनुभव करता है, वह एक मन से दूसरे मन मे, एक काल से दूसरे काल मे, मनुष्य की बुद्धि का सहारा लेकर जीवित रहता है । यही साहित्य का सत्य है । इसी सत्य के द्वारा मनुष्य का हृदय मनुष्य के हृदय से अमरत्व की याचना करता है । साहित्य का सत्य ज्ञान पर अवलम्बित नही है, एक ज्ञान दूसरे ज्ञान को धकेल फेकता है । नये आविष्कार पुराने आविष्कारो को रद्द करते चले जाते है, पर हृदय के भाव पुराने नही होते है। भाव ही साहित्य को अमरत्व देता है । उसी से साहित्य का चिर सत्य प्रकट होता है ।" [6] वस्तुत वे सत्य को ज्ञान से दूर इसलिए मानते है कि ज्ञान नए ज्ञान के आगमन के साथ पुराना पड जाता है, जबकि भावना सदैव नवीन, नित नवीन बनी रहती है । सत्य भी सदा नवीन है, अत वह शाश्वत है । युग–युग तक अस्तित्व धारणा करने वाला सत्य ही शास्त्री जी के अनुसार साहित्यकार का अभीष्ट सत्य है ।

साहित्य एव सौन्दर्य–शास्त्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है । सौन्दर्य हीन साहित्य की कल्पना ही नही की जा सकती है । साहित्य वस्तुत मानव के अत सौन्दर्य तथा वाह्य सौन्दर्य का मिलन बिन्दु है भाव–सौन्दर्य तथा कला–सौन्दर्य क्रमश. इन्ही दोनो के पर्याय हैं ।'चतुरसेन शास्त्री' ने इस तथ्य को स्वीकार किया है– "केवल सत्य की ही प्रतिष्ठा से साहित्यकार का काम पूरा नहीं हो जाता । उस सत्य को सुन्दर बनाना पडता है, साहित्य का सत्य यदि सुन्दर न होगा तो विश्व

उसे कैसे प्यार करेगा ? उस पर मोहित कैसे होगा ? इसलिए सत्य मे सौन्दर्य की स्थापना करनी पडती है । सत्य मे सौन्दर्य की स्थापना के लिए आवश्यकता है सयम की । सत्य मे जब सौन्दर्य की स्थापना होती है, तब साहित्य कला का रूप धारण कर जाता है ।" [7]

उनकी लेखनी का व्यवहारिक पक्ष कुछ भी रहा हो, किन्तु समग्रत उनका सैद्धान्तिक पक्ष उनकी सौन्दर्य की मान्यता को अधिक पुष्ट करता है । यथा

(क) "साहित्य कला का चरम विकास है और समाज का मेरूदण्ड , धर्म और राजनीति का वह प्राण है, इसलिए इसमे दो गुण होने अनिवार्य है– एक वह कि आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करे और दूसरे वह मानवता के धरातल को ऊचा करे ।" [8]

(ख) "अरे, एक निराश, बेवस राष्ट्र को ऐसी कविता से क्या लाभ है, जो स्वय पीडा, वेदना और निराशा से व्यथित हैं ? उसे तो ऐसी कविता चाहिए जिसमे 'उल्लास', 'आनन्द', 'ओज', 'उत्साह' हो ।" [9]

(ग) "अत उसमे जो घर्षणा के योग्य था, उसकी घर्षणा कर उसमे जो पुजार्ह था, उसकी मैने पूजा की । और ऐसा करके मैने अपना साहित्यिक धर्म पालन किया।" [10]

इन समस्त उद्धरणो की ध्वनि है कि साहित्य का सत्य शुभ, मानव तत्व का पोषण करने वाला, भावात्मक अवधारणाओ से युक्त तथा बुद्धि नहीं, हृदयाघृत होता है, स्पष्ट है कि ऐसा सत्य ठोस यथार्थ नही हो सकता, अत इसमे ज्ञान विज्ञान की उतनी आवश्यकता नही है, जितनी भावना एव काल्पना की । भावना और कल्पना का सत्य कदापि कठोर, उग्र एव कटु न होगा, जिसे सत्य के स्वरूप को स्पष्ट हुए शास्त्री जी ने प्रतिपादित किया है ।

काल की शक्ति अनत है, वह जिसको अपने वृत्त मे आबद्ध करता है, उसे अपने साथ ही अतीत मे परिणत कर देता है, किन्तु साहित्य उससे स्वाधीन है । किसी एक काल के साथ जो रचना आबद्ध हो गई, वह शाश्वत् साहित्य मे परिगणित नहीं की जा सकती । साहित्य जिस भूल मानव भावना को लेकर चलता है, वह शाश्वत है, अत साहित्य को भी शाश्वत होना चाहिए । शास्त्री जी के शब्दो मे– "इस अनुभूति से ओत–प्रोत होकर कोमलतर भावो का हृदय मे उदय होता है, जिसे इन्द्रिय गोचर कर मानव जनपद युग–युग तक आधापित रहता है ।" [11] जो साहित्यकार इस प्रकार शाश्वत साहित्य की रचना करना है वह वर्तमान ही नही समस्त काल के लिए नेता स्वीकार कर लिया जाता है । वस्तुत साहित्य को 'अकाल' ही होना चाहिए ।

'चतुरसेन शास्त्री' ने आनन्द का साहित्य के साथ तादात्म्य ही स्थापित कर दिया है "साहित्य की सारी ही परम्परा 'रस' है । लोकोत्तर आनन्द ही रस कहलाता है ।" किन्तु साहित्य केवल सुखात्मक भाव पर ही अवलम्बित नहीं रह सकता । उसमे बहुत बडा भाग दु:ख एव वेदना

❋

का है, भारतीय रस–परम्परा के अनुकूल 'शास्त्री जी' ने वेदना पर आधृत–रस को भी आनन्दात्मक ही स्वीकार किया है और उसे 'पीडानन्द' की सज्ञा दी है । अधिक रस तब उत्पन्न होता है, जब मानव हृदय पीडानन्द की अनुभूति करता है । इससे स्पष्ट है कि साहित्य भौतिक तथ्यो पर आधृत्य नही रह सकता ।'शास्त्री जी' ने सत्य का स्वरूप स्पष्ट करते हुए जिस 'कटुयथार्थ' को सत्य के रूप मे प्रतिष्ठित किया है, वह साहित्य का सत्य नही हो सकता । साहित्य का सत्य उससे भिन्न 'आनन्दात्मक' सत्य है ।

उपरिविश्लेषित अवधारणाओ के आधार पर, 'चतुरसेन शास्त्री' के अनुसार 'शाश्वत', 'सुन्दर' तथा 'आनन्दात्मक' सत्य की सज्ञा साहित्य है । किन्तु यह परिभाषा इस प्रतिबन्ध के साथ ही स्वीकार की जा सकती है, कि 'शाश्वत', 'सौन्दर्य', 'आनन्द', तथा 'सत्य' को उसी रूप मे स्वीकार किया जाए, जिस रूप मे स्वय 'शास्त्री जी' उन्हे स्वीकार करते है।

उपन्यास विषयक 'शास्त्री जी' की समस्त मान्यताए ऐतिहासिक उपन्यास से ही सम्बद्ध है । उनकी इन मान्यताओ को मुख्यत ऐतिहासिक उपन्यास तथा गौणत सामान्य उपन्यास से सम्बद्ध मानकर तीन उप शीर्षको के अतरर्गत विचार किया जा सकता है– सामग्री एव स्रोत, स्वरूप तथा प्रयोजन ।

शास्त्री जी अपने उपन्यासो मे जिन ग्रथो से किसी प्रकार की कोई सामग्री अथवा सकेत ग्रहण किए हैं, प्रमाण स्वरूप उनका स्पष्ट उल्लेख किया है ।

(क) "फिर भी मुझे तत्कालीन वातावरण तथा घटनाओ की रूपरेखा बनाने मे गुजराती साहित्य और गुर्जर विद्वानो के लिए सस्कृत–प्रकृति अनेक ग्रथो का मनन करना पडा ।" [12]

(ख) "इस पुस्तक मे सब कथानक पृथ्वीराज रासो के आधार पर वर्णित है । केवल कथानक ही नही, भाषा–भाव और वर्णन शैली भी रासो ही की है ।" [13]

(ग) "इस समय तक भी कच्छ का कोई सागोपाग अच्छा इतिहास उपलब्ध नही है । बाम्बे गजटियर की पाचवी जिल्द मे कच्छ के इतिहास पर कुछ प्रकाश डाला गया है । तथा आर्कियोलाजीकल सर्वे की रिपोर्ट मे थोडा छुट–पुट वर्णन है, इलियट के अनुसार –

'हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई ईट्स' और ***'हिस्टोरियन्स'*** नामक इतिहास ग्रन्थ मे कच्छ राज्य का थोडा वर्णन किया गया है । मिसेज पोस्टन्स के पत्र और 'रैण्डम स्केचेज' नामक ग्रथ मे कच्छ का यकिंचित विस्तृत वर्णन है । भारतीय लेखको मे आत्माराम केशव जी द्विवेदी ने एक छोटा सा 'कच्छ देश का इतिहास' ग्रथ गुजराती मे लिखा है । इन्ही सब ग्रथो के आधार पर इस ग्रथ की आधार भूमि है ।" [14]

❋

स्थूल प्रमाण–चिन्हो मे सर्वप्रथम सिक्को का उपयोग 'शास्त्री जी' ने किया है । सिक्को के पश्चात् द्वितीय स्थान मूर्तियो का है । स्थान विशेष अथवा परिवार विशेष मे कि‍ा मत का प्रचार रहा है, अथवा किस देवता को मान्यता प्राप्त रही है । इसे उपलब्ध मूर्तियो के आधार पर प्रमाणित किया जा सकता है । इस वर्ग मे अन्तिम स्थान भवनो अथवा स्थापत्य कला का है । भवनो मे भी मन्दिर अत्यन्त महत्वपूर्ण है । मन्दिरो मे अपनी श्रद्धा एव धर्म–भीरूता के कारण निर्माणकर्ता अपने विषय मे पूरी ईमानदारी से प्रमाण छोड जाता है । मन्दिरो के द्वारा उनके निर्माणकर्ताओ के न केवल धार्मिक एव कलात्मक आदर्शो का ही ज्ञान होता है, वरन् स्थापत्य कला के इतिहास का अवलम्ब ग्रहण कर उनका काल ज्ञात हो सकता है । [15]

वैसे ये स्रोत ऐतिहासिक प्रामाणिकता न भी दे तो भी साहित्यकार की कल्पना का दिशा–निर्देश तो करते ही है । ऐतिहासिक प्रामाणिकता की शास्त्री जी ने अधिक चिन्ता भी नही की है "अब मुझे इस बात की परवाह नही थी कि मै इतिहास से इधर–उधर हो जाऊगा तो क्या होगा ? मनमानी कुलांचे भरने के लिए मैं तैयार बैठा था ।"

सोमनाथ के आधार को स्पष्ट करते हुए चतुरसेन शास्त्री ने एक विस्तृत भूमिका प्रस्तुत की है, जिसमे उन्होने अपने दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया है "श्री मुशी चूकि मुझसे प्रथम 'जय सोमनाथ' लिख चुके थे– इसलिए इस कथा मे मैने श्री मुशी को आप्त पुरूष मान्य किया ।" उनकी अनेक काल्पनिक स्थापनाओ को सत्य की भाति ग्रहण कर लिया, इससे एक तो मेरे उपन्यास मे परम्परामूलक रसोदय हुआ । दोनो उपन्यास पढने पर पाठक के मन पर उस घटना का द्विगुण प्रभाव होगा । विरोधी भावना नही पैदा होगी, इससे रस भग का दोष नहीं आयेगा, यही मैने सोचा । ऐतिहासिक सत्यो की मैंने परवाह नही की । इतना ही काफी समझा कि 'महमूद' ने 'सोमनाथ' को आक्रात किया था । उसने गुजरात की लाज लूटी थी ।" यह 'शास्त्री जी' के उपन्यास लेखन की व्यवहारिक विधि है । इतिहास के तथ्यो को उन्होने अधिक महत्व नही दिया। कल्पना के पख उन्मुक्त कर दिए थे । उनके लिए इतिहास, कल्पना को दिशा इगित करने का निमित्त मात्र है, उसकी नियत्रणकारिणी शक्ति नही। इस तथ्य का सिद्धात रूप मे उन्होने अत्यत स्पष्ट शब्दो मे कथन किया है . "यह प्रकट है कि ऐतिहासिक उपन्यास, काव्य और कहानियो मे जो ऐतिहासिक तथ्य होते है, वे विशुद्ध ऐतिहासिक नही होते है । उनमे बहुत कल्पना और विकृत मिली होती है। पाठको को यह आशा नही करनी चाहिए कि काव्य या कहानी को पढकर वे ऐतिहासिक ज्ञान अर्जन करेगे ।" [16]

इतिहास की अवहेलना कर कल्पना के आधार पर ही 'इतिहास–रस' की स्थापना हो सकती है, किन्तु इस स्थल पर "वयं रक्षामः"– जिस उपन्यास पर स्वय लेखक को गर्व है– की

❋

उपेक्षा नही की जा सकती । उन्होने स्वय स्वीकार किया है "वय रक्षाम" एक उपन्यास अवश्य है परन्तु वास्तव मे वह 'वेद', 'पुरान,' 'दर्शन' और वैदेशिक इतिहास ग्रथो का दुस्सह अध्ययन है ।

एक ओर ऐतिहासिक सत्यो की अवहेलना कर **"इतिहास–रस"** की निष्पत्ति करने वाला व्यक्ति दूसरे ही क्षण ऐतिहासिक सत्यो की अभिव्यक्ति कर शहीदो की पक्ति मे स्थान पाने को उत्सुक है "मै तो अब यह काम कर ही चुका । अब आप कितनी मार–मारते है, यह आपके रहम पर छोडता हू ।" इतने पर भी यदि किसी निष्कर्ष पर पहुचना ही हो तो कहा जा सकता है कि यह लेखक यदि किसी युग के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक सत्य पा सका तो सत्यवादी बन बैठा, अन्यथा अपनी असमर्थता को इतिहास–रस की स्थापना मे छिपाने का दम्भ करता है ।

'वृन्दावन लाल वर्मा' के ही अनुरूप 'चतुरसेन शास्त्री' की भी इतिहास के अनुसधान की ओर प्रवृत्ति रही है । इतिहास अथवा किसी भी क्षेत्र का अनुसधाता उस क्षेत्र मे उपस्थिति भ्रातियो का निवारण करना अपना प्रथम कर्त्तव्य मानता है । 'वृन्दावन लाल वर्मा' ने इस क्षेत्र मे पर्याप्त कार्य किया है । 'चतुरसेन शास्त्री' ने अपने प्रथम प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' के प्रवचन' मे इस ओर सकेत किया है– "यह सत्य है कि यह उपन्यास है, परन्तु इससे भी अधिक सत्य यह है कि यह एक गभीर रहस्यपूर्ण सकेत है जो उस काले पर्दे के प्रति है, जिसकी ओट मे आर्यों के 'धर्म', 'साहित्य', 'राज्यसत्ता' और 'सस्कृति' की पराजय ओर मिश्रित जातियो की प्रगतिशील सस्कृति की विजय सहस्राब्दियो से छिपी हुई है, जिसे सम्भवत किसी इतिहासकार ने आख उघाडकर देखा नहीं है ।" [17]

प्रचलित भ्रान्तियो का निवारण तभी हो सकता है, जबकि वास्तविक ज्ञान अथवा सत्य को लाकर पाठक के सम्मुख प्रस्तुत किया जाय । 'सोना और खून' 'वय रक्षाम' इत्यादि उपन्यासो की रचना इसी प्रयोजन की सिद्धि निमित्त हुई है । किन्तु यदि 'सत्य' का उद्घाटन ही उपन्यासकार का लक्ष्य है तो वह उपन्यास की रचना न कर इतिहास–ग्रथ की रचना क्यो नही करता ? इस प्रश्न का उत्तर भी 'चतुरसेन शास्त्री' ने 'सोना और खून' की भूमिका मे प्रस्तुत किया है– "इस उपन्यास मे मेरी दृष्टि उपन्यास तत्व की स्थापना करने की प्रमुख नहीं है । प्रमुख दृष्टि मध्यम श्रेणी के साधारण पढे–लिखे भारतीय जनो के समक्ष–भारत से यूरोप के सम्पर्क, उसके भीतरी, बाहरी सास्कृतिक और आर्थिक प्रभाव का वर्णन करना है ।" [18]

एक अन्य प्रयोजन की चर्चा भी उपलब्ध भी है : "पाठको का यह आशा नही करनी चाहिए कि उपन्यास, काव्य या कहानी को पढकर वे ऐतिहासिक अर्जन करेगे । ऐसी पुस्तको मे तो उन्हें इतिहास के स्थान पर केवल 'इतिहास–रस' ही की प्राप्ति होगी ।" उपरि–उद्धृत उक्ति, जिसमे पाठक को ज्ञान अथवा जानकारी देने का दावा किया गया है–से इसका विरोध होते हुए

❋

भी यह एक नवीन प्रयोजन 'रस' का उल्लेख करती है । रसास्वादन अथवा आनन्द की प्राप्ति प्राचीन शास्त्रसम्मत प्रयोजन है, जिसे प्राय समस्त भारतीय एव पाश्चात्य विद्वानो की मान्यता प्राप्त है । अतर यदि कही है तो उसके स्वरूप मे ही है ।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के सिद्धातो मे पर्याप्त आत्मविरोध तथा अस्पष्टता है– आचार्य कर्म के लिए ऐसा व्यक्ति कदाचित् उपयुक्त नही है । फिर भी साहित्य के अनेक पक्षो मे सम्बद्ध उनके सिद्धातो का अस्तित्व तो है ही । उनका साहित्य–हेतु 'आत्माभिव्यक्ति' अथवा 'आत्मतुष्टि' – पाश्चात्य चितन के अधिक समीप है । प्रयोजन के क्षेत्र मे वे सामान्य सुधारवादी साहित्यकारो के समान है ।

ऐतिहासिक उपन्यास के विषय मे वे 'वृन्दावन लाल वर्मा' के अत्यत समीप प्रतीत होते है । दोनो की सामग्री ओर स्रोत समान है , किन्तु 'शास्त्री जी' मे 'वृन्दावन लाल वर्मा' की अनुसधान सम्बन्धी तीव्रता तथा स्पष्टवादिता का सर्वथा अभाव है । 'वृन्दावन लाल वर्मा' ऐतिहासिक उपन्यास मे साहित्य के मूल्य पर भी इतिहास सम्मतता प्रस्तुत करते है, 'किन्तु शास्त्री जी मे उनके विपरीत 'इतिहास–रस' का मनोरजन अधिक है, जो उनके ऐतिहासिक उपन्यास के प्रयोजन से भी स्पष्ट होता है ।

सन्दर्भ-सूची

(क)

क्र0	पुस्तक	लेखक	पृष्ठ
1	ऐतिहासिक उपन्यास– समालोचक (फरवरी 1959)	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 161
2	वैशाली की नगरवधू (भूमिका)	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	
3	वही	वही	वही
4	हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास और मृगनयनी	डॉ0 शान्ति स्वरूप गुप्त	पृष्ठ स0 – 67, 69
5	वही	वही	वही
6	ऐतिहासिक उपन्यास–प्रकृति और स्वरूप	डॉ0 गोविन्द जी	पृष्ठ स0 – 66
7	वही	वही	पृष्ठ स0 – 67
8	वही	वही	पृष्ठ स0 – 68
9	हिन्दी उपन्यास – एक अर्न्तयात्रा	डॉ0 रामदरस मिश्र	पृष्ठ स0 – 185,186
10	हिन्दी उपन्यास मे कथाशिल्प का विकास	डॉ0 प्रताप नारायण टण्डन	पृष्ठ स0 – 330
11	हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डॉ0 त्रिभुवन सिंह	पृष्ठ स0 – 183

(ख)

क्र0	पुस्तक	लेखक	पृष्ठ
1	हिन्दी का ऐतिहासिक उपन्यास और मृगनयनी	डॉ0 शाति स्वरूप गुप्त	पृष्ठ स0 – 61
2	वही	वही	पृष्ठ स0 – 62
3	मेरी आत्म कहानी	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	पृष्ठ स0 – 521
4	वही	वही	पृष्ठ स0 – 510,511
5	वही	वही	पृष्ठ स0 – 551
6	वृन्दावन लाल वर्मा – उपन्यास और कला	शिव कुमार मिश्र	पृष्ठ स0 – 26, 27
7	आचार्य चतुरसेन के ऐतिहासिक उपन्यास	डॉ0 इन्दु वशिष्ठ	पृष्ठ स0 – 145
8	वृन्दावन लाल वर्मा – उपन्यास और कला	शिव कुमार मिश्र	पृष्ठ स0 – 31, 35
9	वैशाली की नगरवधू	आचार्य चतुरसेन	पृष्ठ स0 – 20
10	वृन्दावन लाल वर्मा – उपन्यास और कला	शिव कुमार मिश्र	पृष्ठ स0 – 53, 54
11	देवागना	आचार्य चतुरसेन	पृष्ठ स0 – 50
12	वृन्दावन लाल वर्मा – उपन्यास और कला	शिव कुमार मिश्र	पृष्ठ स0 – 44–50
13	सोना और खून	आचार्य चतुरसेन	पृष्ठ स0 – 01
14	उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा	डॉ0 शशि भूषण सिंहल	पृष्ठ स0 – 147,
15	वही	वही	पृष्ठ स0 – 149
16	वय रक्षाम	आचार्य चतुरसेन	पृष्ठ स0 – 747

(ग)

क्र.	ग्रंथ	लेखक	पृष्ठ
1	उपन्यास की एक अर्तयात्रा	डॉ0 रामदरस मिश्र	पृष्ठ स0 – 186 87
2	आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य	डॉ0 शुभकार कपूर	पृष्ठ स0 – 284, 285
3	हिन्दी उपन्यास एक अर्तयात्रा	डॉ0 रामदरस मिश्र	पृष्ठ स0 – 188–194
4	आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य	डा0 शभकार कपूर	पृष्ठ स0 – 266
5	सोमनाथ	आचार्य चतुर सेन	भूमिका
6	आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य	डॉ0 शुभकार कपूर	पृष्ठ स0 – 267
7	आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य	डॉ0 शुभकार कपूर	पृष्ठ स0 – 278
8	वही	वही	पृष्ठ स0 – 279
9	हिन्दी उपन्यासो मे महाकाव्यात्मक चेतना	सुषमा रानी गुप्ता	पृष्ठ स0 – 319
10	वही	वही	पृष्ठ स0 – 320
11	वय रक्षाम	आचार्य चतुरसेन	एक परिचय
12	सोमनाथ	आचार्य चतुरसेन	एक परिचय
13	वैशाली की नगरवधू	आचार्य चतुरसेन	वही

(घ)

वर्माजी के सन्दर्भ में

क्र.	ग्रंथ	लेखक	पृष्ठ
1	मृगनयनी तथा झासी की रानी लक्ष्मीबाई	वृन्दावन लाल वर्मा	भूमिकाये
2	मृगनयनी	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 71
3	गयासुद्दीन की उक्ति (मृगनयनी)	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 71
4	'प्रभा' जून–1913 (प्रकाशन)	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 158
5	'प्रभा' जून–1913 (प्रकाशन)	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 158
6	हिन्दी उपन्यास का सृजन और सिद्धात (सौरभ प्रकाशन दिल्ली)	नरेन्द्र कोहली	पृष्ठ स0 – 66
7	झासी की रानी लक्ष्मीबाई (परिचय)	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 1
8	रामगढ़ की रानी (परिचय)	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 1
9	मृगनयनी (परिचय)	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 3
10	वही	वही	पृष्ठ स0 – 5
11	रामगढ की रानी (परिचय)	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 7
12	अहिल्याबाई (परिचय)	वृन्दावन लाल वर्मा	पृष्ठ स0 – 3
13	उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा	डॉ0 शशिभूषण सिंहल	परिशिष्ट–1 का द्वितीय पत्र

14 अहिल्याबाई — वृन्दावन लाल वर्मा — पृष्ठ स0 – 3

15 उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा — डॉ0 शशि भूषण सिंहल — पृष्ठ स0 – 292–93

16 सोना — डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा — परिचय

17 उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा — डॉ0 शशि भूषण सिंहल — पृष्ठ स0 – 280

18 साहित्य सदेश जुलाई, अगस्त 1956 — डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा — पृष्ठ स0 – 76

19 साहित्य सदेश जुलाई, अगस्त 1956 — डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा — पृष्ठ स0 – 76

20 वही — वही — वही

21 हिन्दी उपन्यास का सृजन और सिद्धात — डॉ0 नरेन्द्र कोहली — पृष्ठ स0 – 73

22 मृगनयनी — डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा — पृष्ठ स0 – 420

23 हिन्दी उपन्यास का सृजन और सिद्धात — डॉ0 नरेन्द्र कोहली — पृष्ठ स0 – 74

24 साहित्य सदेश–जुलाई अगस्त 1956 — डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा — पृष्ठ स0 – 76

25 हिन्दी उपन्यास का सृजन और सिद्धात — डॉ0 नरेन्द्र कोहली — पृष्ठ स0 – 75

(ख) शास्त्री जी के सन्दर्भ में

1 मौत के पजे मे जिदगी की कलह (निबन्ध साहित्य) — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 127

2 विचार और विश्लेषण — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 109

3 सोमनाथ — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 08

4 अज्ञेय के काव्य सिद्धात — डॉ0 सुरश चन्द्र गुप्त

5 अवतिका–अगस्त 1954 — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 92

6 वय रक्षाम (पूर्वार्द्ध) — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 2, 3

7 वय रक्षाम (पूर्वार्द्ध) — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 3

8 वैशाली की नगरवधू (उत्तरार्द्ध) — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 896

9 जीवन साहित्य, जनवरी 1941 — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 298

10 सोमनाथ (आधार) — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 10

11 मौत के पजे मे जिदगी की कलह — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 125

12 सोमनाथ (आधार) — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 08

13 पूर्णाहुति (दो शब्द) — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 13

14 लाल पानी (दो शब्द) — आचार्य चतुरसेन

15 सोमनाथ (आधार) — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 40

16 वैशाली की नगरवधू (उत्तरार्द्ध) — आचार्य चतुरसेन — पृष्ठ स0 – 793

17 वैशाली की नगर वधू (पूर्वार्द्ध) — आचार्य चतुरसेन — एक परिचय

18 सोना और खून (पूर्वार्द्ध) — आचार्य चतुरसेन — दो शब्द

अध्याय - पंचम

अध्याय-5

उपसंहार

(क) वृन्दावन लाल वर्मा

हिन्दी–साहित्यकार जगत् के प्रसिद्ध कलाकार वर्माजी ने हिन्दी–उपन्यास साहित्य मे एक नवीन धारा को सुफतापूर्वक प्रवाहित किया है और हिन्दी साहित्य को अमूल कृतिया प्रदान कर उसके एक बडे अभाव की पूर्ति की है । अपने प्रयत्न की इस दिशा मे वे हिन्दी के **'वाल्टर स्कॉट'** है । जिस प्रकारा 'वाल्टर स्कॉट' ने उपन्यासो की रचना कर अग्रेजी साहित्य को समृद्ध ओर गौरवान्वित किया है उसी प्रकार वर्माजी ने भी औपन्यासिक कृतियो का सृजन और गौरवान्वित किया है, उसी प्रकार वर्माजी ने भी औपन्यासिक कृतियो का सृजन कर हिन्दी उपन्यास भडार का समृद्ध बनाने मे अनुपम योगदान तो दिया ही है, साथ ही उसके (हिन्दी के) मस्तक को ऊचा भी उठाया है । अपने उपन्यासो मे उन्होने जीवन को उसके समय रूप मे देखने का प्रयास किया है यही कारण है कि उनमे एक व्यापकता और विशालता मिलती है । उनके सामाजिक उपन्यास भी यथार्थ जीवनानुभूतियो से प्रेरित है किन्तु ऐतिहासिक उपन्यासो के प्रकाश मे वे धूमिल से पड गये है और लोग उन्हे (वर्माजी को) ऐतिहासिक उपन्याराकार के रूप मे ही अधिक स्मरण करते है ।

उन्होने अपने समस्त ऐतिहासिक उपन्यासो मे (एक "भुवन विक्रम", जिसमे उत्तर वैदिक काल की कथा है, को छोडकर) विक्रम की चौदहवीं शताब्दी से लेकर आधुनिक युग के ऐतिहासिक काल–खण्डो को ही ग्रहण किया है और मुख्यत मध्य भारत और बुदेलखड की वीरागनाओ एव वीर पुरूषो को अद्‌भुत एव जीवन्त रूप मे चरित्र किया है, जिनमे उन्हे ऐतिहासिक वातावरण–निर्माण, तत्कालीन 'सामाजिक–धार्मिक,' 'राजनीतिक' 'परिस्थितियो,' 'नवोद्‌बुद्ध' 'सामयिक' प्रक्रियाओ एव राष्ट्रीय भावनाओ के उपयोग मे निश्चय ही अभूतपूर्व सफलता मिली है । अपने उपन्यासो मे कही भी, कभी भी उन्होंने ऐतिहासिक सत्यो की न तो हत्या की है, और न उन्हे तोडा–मरोडा ही है । उनके उपन्यासो मे आए ऐतिहासिक परिस्थितियो और घटनाओ के विवरण तथा ऐतिहासिक पात्रो के चरित्र–चित्रण की शैली यथार्थवादी है और उनके प्रगाढ अध्ययन का परिचायक है । उनके उपन्यासो मे आए सभी प्रमुख और नारी चरित्र आदर्शवादी है ।

इतिहास के पृष्ठो मे दबे–पडे तत्कालीन जीवन की सच्ची पकड वर्माजी को है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे मानव जीवन रोता–मुस्कुराता, माता, प्रेम करता, परस्पर युद्ध–सघर्ष करता मूर्तिमान हो उठा है । उनके उपन्यासो मे सम्पूर्ण तत्कालीन जीवन अपनी कथा की भौगोलिक

सीमाओ के सौन्दर्य एव वातावरण तथा किवदतियो मे बिखरे तत्वो आदि के सहारे अपनी बोली–वाणी मे जीता–जागता मुखरित हो उठा है ।

वर्माजी मे वातावरण–निर्माण की अद्भुत क्षमता है । ऐतिहासिक वातावरण को सजीव रूप देने मे उनकी समता करने योग्य कोई दूसरा उपन्यासकार नही । उनके ऐतिहासिक उपन्यासो मे भौगोलिक ज्ञान की पूर्णता तथा ऐतिहासिक सामग्री की सत्यता दोनो देखने को मिलती है । उन्हे अपने उपन्यासो के कथनको से सम्बद्ध स्थानो का भौगोलिक ज्ञान प्राप्त है । उनका बुन्देलखण्ड पर्यटन विस्तृत और पूर्ण जान पडता है। झासी और उसके आस–पास की भूमि से उनका बडा नजदीकी परिचय है । वहा के पहाड, पहाडियो, नदी–नालो, खोह–भरको, गढ–गढियो, किलो, वन–मैदानो, आकर्षक मनोहर उपत्यकाओ, हरी–भरी तलहटियो, प्रखर प्रवाह कल–कल निनादिनी नदियो, अतीत वीरता के स्मारक दुर्गों, खडहरो, भग्नावशेषो का उन्हे सम्यक् परिचय है । यह परिचय उनके उपन्यासो को वास्तविकता का पुट देने मे बडा सहायक हुआ है । वातावरण–निर्माण के लिए उन्होने जहा कही भी प्रकृति का उपयोग किया है, उनके चित्रण मे चारूता, मौलिकता और आकर्षण सब कुछ है ।

वर्माजी मे इतिहास ज्ञान और विधायक कल्पना दोनो का योग है । इसी की बदौलत वे ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए भी उच्चकोटि की साहित्यिक कृतियो का निर्माण कर सके है । उनके ऐतिहासिक उपन्यासों की मुख्य विशेषता यह है कि उनके कथानक ऐतिहासिक तथ्यो की उपेक्षा नही करते और कल्पना के तत्व के समावेश से रोचक भी बने रहते है ।'वर्माजी' को हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र मे'भारतीय इतिहास' के गौरवमय पृष्ठो के आधार पर अत्यत कलात्मक उपन्यासो की रचना करने का श्रेय प्राप्त है । ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना के पीछे इनका उद्देश्य रहा है– इतिहास अपने सही एव यथातथ्य रूप मे पाठको के सामने आवे । उन्होने स्पष्ट लिखा है– 'मेरी सम्मति मे इतिहास के साथ खिलवाड करना अनुचित है । ऐसे उपन्यासो के प्रणयन के समय उनके सामने कुछ साक्ष्य सामग्री अवश्य रही है । उन्होने अपने उपन्यासो के प्रारम्भ मे अपनी इतिहास सम्बन्धी कई वर्षों की प्रामाणिक खोज, गहरे अध्ययन का परिचय दिया है । ऐतिहासिक पात्रो और घटनाओ मे प्राण फूकने मे वे पूरे सिद्धहस्त हैं।'कल्पना' और 'इतिहास' के समुचित समिश्रण के फलस्वरूप उनकी कला अत्यधिक समृद्धि और सफल हुई है । उनके उपन्यासो मे ऐतिहासिक तथ्यों की रक्षा के साथ–साथ साहित्य का सुदर स्वर–गुजार निहित है । उनके प्रयत्नो से इतिहास की रक्षा के साथ–साथ सहित्य भी अपना पूर्ण निखार पा सका है । इतिहास और साहित्य का अपूर्व संयोजन और सतुलन उनकी कला की विशेषता है । उनके

उपन्यासो मे इतिहास और कल्पना दोनो एक दूसरे के लिए प्रावधान नही बन सके है, वरन् दोनो का समुचित सतुलन और विन्यास हुआ है ।

उपन्यासकार के दायित्व के सम्बन्ध मे उनके मन्तव्य– 'केवल मनोरजन या मनोविश्लेषण लेखक का सामाजिक कर्त्तव्य नहीं है"– के आधार पर उनकी उपन्यास कला के ध्येय का निर्धारित करने मे अथवा उनके उपन्यासो की मूलभूत चेतना के स्वरूप को निश्चित करने मे शका की सभावना नही रह जाती है । उनके उपन्यासो मे जीवन की वास्तविकताओ, यथार्थताओ उनके विभिन्न सदर्भों, पहलुओ, का बहुविध परिचय तो मिलता ही है, साथ ही उनके प्रति उनकी एक रचनात्मक दृष्टि भी मिलती है, निर्माणपरक दायित्व भी मिलता है । 'वर्माजी' की यह खास तौर से विशेषता है कि जहा एक ओर उन्होने समसामयिक जीवन के प्रश्नो का, अतीत के आदर्शों से समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, वही दूसरी ओर अतीत के आदर्शों को आधुनिकता प्रदान करने की चेष्टा भी की है । यही कारण है कि उनके सामाधान युग जीवन से विच्छिन्न प्रतीत नहीं होते । उन्होने अपने समय के भारतीय जीवन को निकट से देखा और अध्ययन किया है कि समाज व्यवस्था की असगतियो, जाति–भेद, विवाह पद्धति, मिथ्याभिमान, धार्मिक सकीर्णता, अधविश्वास आदि से वे पूर्ण परिचित है । इसमे सदेह नही । सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियो के उथल–पुथल, जीवन मूल्यो के प्रति अनास्था, सास्कृतिक सकट, आर्थिक शोषण और विषमता, कुण्ठाओ की घुटन और विघटन से पीडित, भारत को सदेश देने की जीवनी शक्ति उनके उपन्यासो मे है, इसलिए हिन्दी उपन्यास साहित्य प्रथम महाराथी, 'मुशी प्रेमचन्द्र' के पश्चात् हम 'वर्माजी' को दे सकते है ।

वर्माजी ने अपने साहित्य मे जिस दिशा को अपनाया है, उसका कोना–कोना छान डाला है और विविध दृष्टिकोण से उसे प्रकाशमान किया है । अपने उपन्यासो मे उन्होने जिन सजीव चित्रो का अकन किया है वे हिन्दी साहित्य जगत मे युग–युग तक आने वाले पाठको के सम्मुख अपने कलापूर्ण स्वरूप मे उपस्थित रहेगे । उन्होने अपने इतिहास को अपनी लेखनी मे बाधकर आदर्श रूप मे खडा कर दिया है । उन्होने हिन्दी साहित्य को कुछ ऐसे अमर चरित्र प्रदान किए है, जिनके त्याग और बलिदान की अमर कहानिया पढकर पाठक सदा रोमाचित और विह्वल होते रहेगे । उनका साहित्य नकल या प्रभावी साहित्य नहीं है, वरन् मौलिक है । उनकी अपनी भूमि है, अपनी धारणाये, दृष्टिकोण, समस्याये आदि हैं । उनके उपन्यास, उनके सस्कारो, प्रभावो और चितन की देन है । उन्होने इतिहास को वर्तमान की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है । उनके उपन्यासो मे अतीत, इतिहास और वर्तमान का सुन्दर समन्वय हुआ है । उनकी दृष्टि राष्ट्र के पुर्ननिर्माण पर रही है । भारत के पतन के मूल कारण समाज को उन्होने अपने ऐतिहासिक,

सामाजिक दोनो प्रकार के उपन्यासो मे अपनी प्रयोगशाला बनाया है। सामाजिक कुरूतिया– व्यर्थ जात्याभिमान, अहम्मन्यता, पारस्परिक फूट, कलह, पतितो के प्रति निष्ठिर व्यवहार, दहेज–प्रथा, दोषित विवाह पद्धति, दासी प्रथा, मजदूर–किसान की दीन–हीन दशा आदि का अपने उपन्यासो मे स्पष्ट सकेत किया है । स्वतत्रता आदोलन की अपनी योजना उन्होने 'झासी की रानी लक्ष्मीबाई' मे रखी है, और इस उद्योग मे साधन के रूप मे अपनाई जाने वाली हिसा–अहिसा के प्रश्न पर अपने दृष्टिकोण से विचार 'अचल मेरा कोई' उपन्यास मे प्रस्तुत किया है । स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सहकारिता के मार्ग पर गावो की आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक उन्नति की योजना की रूप रेखा, 'अमरबेल और उदय किरण' उपन्यास मे प्रस्तुत किये है । उन्होने स्पष्ट घोषणा की है– 'जीवन मे सुख और प्रगति का मूलमत्र कोरा वैभव, प्रदर्शन, मिथ्याभिमान नही है, बल्कि शारीरिक श्रम एव उत्साह है ।

वर्माजी ने ऐतिहासिक पृष्ठभूमियो पर भारतीय सस्कृति के प्रभावोत्पादक चित्रो को खूब उभार कर अकित किया है । इसका मतलब यह नही है कि वर्माजी सॉंस्कृतिक पुनुरूत्थान के समर्थक है । उनके तत्कालीन सॉंस्कृतिक चित्रो मे वर्तमान और भविष्य के लिए भी जीवन तथा सदेश है । देश भक्ति और राष्ट्रीयता का उनके उपन्यासो मे पूरा समावेश हुआ है । पराधीन बनकर निष्क्रिय हो जाने की समस्या पर उन्होने परामर्श दिया है– कर्त्तव्य पथ पर दृढ रहने का, देश को स्वाधीन करने के लिए प्रयत्नशील बनने रहने का, वर्तमान रिक्तता को दूर करने हेतु पूर्व पुरूषो के शीलादर्श को ग्रहण करने का, पारस्परिक कलह, विद्वेष, फूट, अहमन्यता, आदि को त्यागकर एकता के सूत्र मे आबद्ध होने का सदेश दिया हे । उन्होने इतिहास के पौरूष दिप्त व्यक्तियो का आख्यान कर देशवासियो मे वीर रस का उद्रेक कर उनमे देशभक्ति भावना को उत्तेजित करने का प्रयत्न करते है । ऐतिहासिक घटना प्रसगो, चरित्रो पर आधारित अपने उपन्यासो मे देश एव जाति विषयक प्रश्नो पर अधिक बल तो दिया ही है, साथ मे सामाजिक आसगतियो को व्यक्त कर उनमे सामजस्य तथा मर्यादा लाने की चेष्टा भ की है । अपने जिन उपन्यासो मे वैयक्तिक जीवन के आदर्शों को महत्व दिया है । वहा भी महत्व जातीय जीवन के गौरव तथा सामाजिक मर्यादा से ही जुडा हुआ है। उनके अधिकाश ऐतिहासिक प्रात्र प्रतीक के उत्कर्ष पर पहुचे हुए हैं । जिसके माध्यम से उन्होने तत्कालीन राजनीतिक प्रश्नो तथा उसके आतरिक आसगतियो पर पर्याप्त विचारोत्तेजक निष्कर्ष प्रस्तुत किया है । ऐतिहासिक उपन्यासो की रचना के पीछे उनका अभीष्ट केवल ऐतिहासिक वर्णन या मनोरजन मात्र कभी भी नहीं रहा है । उन्होने स्पष्ट लिखा है– "ऐतिहासिक उपन्यास मे तत्कालीन वातावरण की अवतारणा लेखक के

लिए अनिवार्य है । दूसरी कठिनाई है– आज और आने वाले कल के लिए भी तो उसमे कुछ हो, केवल ऐतिहासिक वर्णन या मनोरजन मात्र अभीष्ट नही है ।"

ऐतिहासिक उपन्यासो के क्षे मे 'किशोरी लाल गोस्वामी' से लेकर, 'रागेय–राघव' जितने उपन्यासकारो ने प्रवेश किया है । उनमे वर्माजी गुण और परिणाम दोनो दृष्टियो से आगे है । उन्होने अपने उपन्यास के विषय मे लिखा है– "मैं तथ्य का उपासक हू, तथ्य को सृजनात्मक ढग से प्रस्तुत करना मै सत्य की पूजा और कला का प्राण समझता हू ।" कला के लिए कला को एक सुन्दर वाक्य मात्र माना है । बिना किसी प्रेरणा और उद्देश्य के वे कला की स्थिति स्वीकार नही करते । उन्होने लिखा भी है– "कला के लिए कला तो निरर्थक है, बिना किसी प्रेरणा के कला का विकास हो नही सकता । यही कारण है कि उनके उपन्यास कोरी कला के प्रदर्शन मात्र के लिए नही लिखे गऐ है ।

वर्माजी ने अपने ऐतिहासिक उपन्यास मे जिन पात्रो को उभारा है, उनमे अधिकाश पात्र साधारण कोटि के है और अपने चरित्र बल और परिश्रम से ऊचे उठ जाते है । उनके सभी पात्र पूर्णतया मनुष्य है और उपन्यासकार ने उनमे किसी लोक प्रचलित चमत्कार का सयोजन नही किया है । परिणामत वे पूर्ण स्वाभादिक और सजीव उतरे है ।

नारियो के प्रति वर्माजी का दृष्टिकोण पवित्र और आस्थावान है । वे उनके प्रति अत्यधिक श्रद्धालु और उदार है । उनसे उन्हे प्रेरणा शक्ति प्राप्ति का विश्वास है । यही कारण है कि अपने उपन्यासो मे वर्माजी ने उनका बडा ही भव्य, आकर्षक, महिमा मडित और आदर्श रूप चित्रित किया है । उनकी नारिया वीर है, साहसी है, सयमी, स्वाभिमानी, कष्ट सहिष्णु, अस्त्र–शस्त्र सचालन मे कुशल, आदर्शप्रिय, धर्म परायण, अखण्ड सतित्व की जवलत शिखा है और पुरूषो के समान दीप्ति रखने वाली है । वे सतित्व और धर्म को नही भूलती । उन्हे भौतिकवाद का प्रलोभन मार्गच्युत, कर्त्तव्य विमुख नहीं करता है । उनकी अधिकाश नारिया जीवन को एक सदेश देती हैं और कर्त्तव्या–कर्त्तव्य का बोध कराती हुई प्रेरणा और स्फूर्ति प्रदान करती हैं ।

इसके लिए वर्माजी ने नारियो की सुदरता, कोमलता, भावुकता के साथ–साथ शीलता, साहस, शक्ति और त्याग की प्रतिमूर्ति हैं । यदि वे प्रेम करना जानती है, तो वे कर्त्तव्य धर्म का पालन भी करना जानती हैं । कर्त्तव्य की कठोरता के अतराल अपनी प्रणय को उसी भाति छिपाये रखती है, जिस भाति पलके आखो को छिपाये रखती हैं । वे आधुनिक बुद्धिवादी लेखको की नारियो की भाति ना तो बौद्धिक द्वन्द्व मे फसी, उलझी तथा मानसिक गुत्थियो का शिकार हैं और न ही कुप्रवृत्तियो की दास ही हैं, बल्कि वे प्रवृत्तियो पर शासन करने वाली है । वर्माजी के युद्ध, शौर्य और श्रृगार के वर्णन बडे सजीव हैं और वे व्यक्ति विशेष के शौर्य और पराक्रम का डका

पीटते है । अपने उपन्यासो मे उन्होने सघर्षशील वातावरण, युद्ध और मारकाट की बीच उन्होने श्रृगार–रस का बडा ही योजना प्रस्तुत किया है । उनका श्रृगार वर्णन बडा ही सयत और मर्यादित है । उसमे 'नगापन,' 'आलिगन,' 'चुम्बनादि' का चित्र नही आया है और न ही नग्न कुत्सित और अश्लील चित्रो को स्थान दिया है । उनके लगभग सभी उपन्यासो मे रोमास के चित्र अवश्य आये है, पर स्वस्थ और सबल रूप मे उनका अकन है । उनके रोमास सस्ते, साधारण कोटि के बाजारू नही है । उनका स्तर छिछला नही बल्कि ऊचा है । उनके रोमास से समबद्ध पात्रो मे पाश्चात्य साहित्य मे वर्णित रोमासो की तरह कर्मठता, साहस, सदासयता, सहृदयता, वीरता, त्याग, कर्मशीलता, कर्त्तव्य पालन आदि के भाव तत्व पाये जाते है । उनमे प्रेम का नहीं बल्कि उनके पीछे कार्य करने वाली शक्ति का वर्णन है, जिसके बदौलत वे प्रेम की भूमिका का निर्वाह करते हुए बडे से बडे कष्टो, सामाजिक सघर्षों का सफलता पूर्वक सामना कर ले जाते है । वे कर्त्तव्य के सम्मुख झुके होते है, पर कभी अर्कमण्य नही बनते, काखते–कराहते नही है , बल्कि प्रकाश पुज की भाति चमककर एक दूसरे मे विलीन हो जाते है । इसलिए वास्तविक रोमास वहा होता है जहा जीवन समर मे सादित कदम रखकर प्रेम करने, बडे से बड कष्टो के सम्मुख सिर न झुकाने, हार न मानने की धुन रहती है । उनके उपन्यासो के प्रेमी युग मे 'राष्ट्र प्रेम,' 'कर्त्तव्य' के सम्मुख व्यक्तिगत प्रेम को वे न्यौछावर कर देते है । इस प्रकार 'वर्माजी' की कृतियो मे मानवतावादी जीवन दर्शन का सफल और स्पष्ट निरूपण हुआ है ।

वर्माजी के उपन्यासो मे कही भी निराशा का स्वर नही है । उनमे नैरास्य जलित मन स्थिति उत्पन्न नही होती है, बल्कि उनमे आशावाद का अरूणिम सूर्य सदा दीपता रहता है । उनके सभी उपन्यास आदर्श मूलक है, उन्हे पढने से प्रेरणा मिलती है । जीवन सघर्ष मे गतिमय होने की दृढता मिलती है । उनके सम्मुख शास्त्री जी की तरह कोई कल्पना की उडान नही है ।

अतत निष्कर्ष रूप मे यही बात स्पष्ट हो जाती है कि वर्माजी के उपन्यास किसी की हू–ब–हू नकल नही है । उनका ऐतिहासिक क्षेत्र मे नवोन्मेषी दृष्टि और मौलिकता का परिचय मूल्य रखता है । उनके उपन्यास मे आदर्श और सस्कृति की रक्षा मे भारतीयता का समुचित निर्वाह हुआ है, परन्तु मानवतावादी भावना से युक्त जो एक कुशल और महान कलाकार से अपेक्षित है । तभी तो उनके उपन्यास का विदेशी भाषाओ मे अनुवाद हो रहा है । "प्रभाकर माचवे" ने ठीक ही लिखा है– "साहित्य के इतिहास मे सस्मरणीय ऐतिहासिक उपन्यास लेखक केवल चार–पाच ही है– 'राहुल सास्कृत्यायन,' 'भगवत शरण उपाध्याय,' 'हजारी प्रसाद द्विवेदी,' 'यशपाल,' 'रागेय राघव' तथा 'चतुरसेन शास्त्री जी' है और इन सबमे गुण और परिणाम दोनों दृष्टियों से सर्वाधिक और अच्छा लिखने वाले श्री 'वृन्दावन लाल वर्मा जी' की रचनाओ मे– 'हजारी प्रसाद

जी' की 'वाग्वेदग्ध्य' या यशपाल एव राहुल जी का सोद्देश्यमत प्रचार नही मिलता, इतिहास के प्रति निर्भय प्रमाणिकता का 'भगवत शरण' या 'रागेय राघव' का सा आग्रह भी नही मिलता ।" इस तरह वर्माजी का ऐतिहासिक उपन्यास काल मे शीर्ष स्थान है । उनके सामाजिक उपन्यास भी कुछ कम महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली नही है । इसके विपरीत 'शास्त्री जी' के सामाजिक उपन्यास अत्यधिक महत्वपूर्ण एव ऐतिहासिक उपन्यास वर्माजी की अपेक्षा कुछ कम महत्वपूर्ण दिखाई पडते है ।

- ❖ वृन्दावन लाल का उपन्यास साहित्य (विस्तार से देखे) डॉ० माहिनी सहाय
- ❖ उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा (विस्तार से देखे) डॉ० शशि भूषण सिहल
- ❖ वृन्दावन लाल वर्मा – उपन्यास और कला (विस्तार से देखे) डॉ० शिव कुमार मिश्र

उपसंहार

(ख) आचार्य चतुरसेन शास्त्री

आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' ने हिन्दी साहित्य के भण्डार के श्रीवृद्धि अपने विपुल साहित्य से करके हिन्दी जगत के महारथियो मे अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है, और इनके साहित्य मे उपन्यासो का भी विशिष्ट स्थान है । उसका प्रमुख कारण है कि उनका विश्वास था कि– "जीवन की सच्ची और परिपूर्ण व्याख्या उपन्यास मे ही हो सकती है, नाटक मे नही । आधुनिक साहित्य मे नाटक लगडाता हुआ चलता है । वह उपन्यास के मथरगति का किसी हालत मे मुकाबला नही कर सकता ।" इस प्रकार उन्होने नाटक मे तो विशेष रूचि तो नही दिखाई और काव्य को भी उन्होने उपन्यास से हेय बताया है । आधुनिक काल के प्रमुख कवियो की छाया से भी उन्होने अपनी नाक नही सिकोडी । उन्होने कहा था- "यदि मुझे अधिकार मिल जाये तो 'प्रसाद', 'महादेवी', और 'पत' को फासी और बाकी छायावादी कवियो को काले–पानी की सजा दे दू । यह काव्य धारा क्या बावले की बड है ।" कदाचित् इसी कारण आचार्य जी ने अपनी साहित्यिक प्रतिभा के प्रस्फुरण के लिए उपन्यास को अधिक प्रश्रय दिया और उपन्यासो मे भी ऐतिहासिक उपन्यास ही उनके कार्य क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र रहे है । इन ऐतिहासिक उपन्यासो का अध्ययन करने पर हमने स्पष्ट रूप से देखा है कि 'शास्त्री जी' का 'साहित्य क्षेत्र' इतिहास की अपेक्षा कही अधिक विस्तृत और उदार है । उसमे मानव जीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत होता है, और फलत हमारी मनोरागो को उद्‌बद्ध करने की क्षमता इतिहास की तभी उत्पन्न हो पाती है, जब उसे साहित्यिक रूप दिया जाय । इतिहासकार की अपेक्षा शास्त्री जी ने अपने उपन्यासो मे इतिहास कल्पना को अधिक आश्रय देकर मानवीय–रस भर देने की कोशिश की है, परन्तु निष्पक्ष रूप से इतिहास के अनुशीलन मे सीमित रहने वाले मनोवेगो को साहित्य के प्रशस्त क्षेत्र मे लाकर उसे व्यापकता प्रदान करते है । इनके उपन्यासो मे कल्पना के रमण के लिए व्यापक क्षेत्र रहा है । फलत इतिहास–रस' के प्रसार और मानवीय सहानुभूति के विस्तार के लिए अधिक कार्य किया है । शास्त्री जी ने अपने उपन्यास 'सोमनाथ' मे 'महमूद' को मानव के रूप मे चित्रित करते है, और उसे अमर सजीवनी देकर मानवीय गुणो से भर देते है । 'शास्त्री जी' मे यह प्रतिभा थी कि उन्होने कल्पना के प्रकाश से रमणीय रूप को उपन्यासो मे चमका दिया है । इस क्षेत्र मे हम 'शास्त्री जी' को वर्माजी से अधिक जागरूक पाते है । सामान्यत 'मृगनयनी' वर्माजी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है, लेकिन शास्त्री जी के पात्र वर्माजी के उपन्यासो से कही कम नही प्रतीत होते है । श्री वृन्दावन लाल वर्मा ने 'गढ कुण्डार' और 'विराट की पद्‌मिनी' लिखकर हिन्दी साहित्य के

ऐतिहासिक उपन्यासो के तृतीय युग का श्रीगणेश किया 'वर्माजी' एक बीते जमाने की याद और आने वाले युग की बानगी जैसे हमारे बीच मे खडे है । आचार्य 'चतुरसेन शास्त्री जी' ने वर्माजी के विषय मे लिखा है– "इन ऐतिहासिक उपन्यास लेखको मे वर्माजी अग्रगण रहे है, और वर्माजी ने शास्त्री जी के बारे मे लिखा है कि– "पैनी सूझबूझ कहानी की शिल्पकला का प्रभुत्व शब्दो और मुहावरो का चयन, अपनी बात का प्रतिभाशाली प्रस्तुतीकरण और अपने विश्वातो की निर्भीक अभिव्यक्ति इत्यादि मे आचार्य चतुरसेन शास्त्री को निजी परिधि की समर्थता रही है । 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान मे उनका 'गोली' उपन्यास प्रकाशित हुआ । मै क्रमश निकलने वाली कहानी कभी नही पढता, क्योकि श्रृखला टूट जाती है । परन्तु शास्त्री जी का गोली उपन्यास इतना रोचक है कि मैने उसे आद्योपान्त पढा, पुराने बाजीगर की कारीगर की कारीगरी थी । हिन्दी जगत के श्रेष्ठतम् ऐतिहासिक उपन्याराकार वर्माजी द्वारा इस तरह के कथन से शास्त्री जी के महत्व को समझा जा सकता है ।"

"श्रीमन्ननाथ गुप्त" ने आचार्य जी के विषय मे लिखा है– "चतुरसेन केवल आलोचको के अनुसार एक महान लेखक नही थे, बल्कि जनता ने उन्हे अपनाया और प्रेमचन्द्र के बाद किसी के उपन्यास इतने बिकते थे, तो वे शास्त्री जी के थे । श्री "इन्द्रविद्यावाचस्पति" के अनुसार– "वे जो कुछ लिखते थे, उसमे फौलाद भर देते थे । इस प्रकार अपने विशाल वाङ्मय मे भारतीय मनीषा का ओज और अमृत उडेलने वाले आचार्य चतुरसेन शास्त्री के कृतित्व की विराट वाटिका मे झॉकने भर के लिए प्रस्तुत अध्ययन एक वातायन मात्र है । जिसमे से इस विचारक और कलाकार की साधना एव शिल्प का इतना आभाष अवश्य प्राप्तव्य है कि उसकी वाटिका के दर्शन की अभिलाषा मन मे जागृत हो सके । विश्वास है कि भावी तरूण अनुसधाताओ मे से कुछ इस ओर अवश्य प्रवृत्त होगे और तब शोधकर्ता स्वय को विशेष रूप से कृत्कृत्य अनुभव कर सकेगा ।

आचार्य जी ने अपने ज्ञान को उसकी सम्पूर्ण सपदा को कई क्षेत्रो मे लुटाया है। सामाजिक जीवन की कटुताओ और विषमताओं को उन्होने बहुत निकट व सूक्ष्म दृष्टि से देखा है। उन्होने सबसे अधिक कुण्ठाग्रस्त व त्रस्त नारी को पाया । इसलिए उसके प्रति सम्पूर्ण करूणा विचलित होकर उपन्यासो के रूप में वह निकलती है । इस सत्य को स्वीकार करते हुए उन्होने एक स्थल पर लिखा है– "मै मुनष्य की पीर नही सह सकता हू । खासकर स्त्रियो और बच्चो पर मेरा बडा मोह है । उनके दु:ख–दर्द को दखते ही मै आपे से बाहर हो जाता हू । इसका कारण यह था कि अपने जीवन पथ मे सिसकती और प्रवचिता नारी के दर्शन किए, जिसने हृदय मे करूणा को सचारित किया । उपन्यासो मे नारी के कई रूप हमे मिलते है । 'आदर्श गृहस्ती,' 'आदर्श पत्नी,' 'आदर्श माता,' 'आदर्श प्रेमिका,' 'आदर्श बहन,' 'आदर्श राष्ट्र' सेविका तथ वेश्या का भी

आदर्श रूप ही मिलता है । लेकिन इन सभी के प्रति प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से 'आचार्य जी' ने सहानुभूति प्रकट की है । नारी कुलटा व कलकिनी होकर भी आदर की पात्री है। समय व सगति के प्रभाव मे आकर यदि वह विचलित हो जाती है तो एक अवस्था ऐसी भी उसके जीवन मे आती है, जब वह अपने किए पर लज्जित होकर प्रायश्चित करती है । जीवन मे पुन उस अनुचित कार्य को न करने के लिए शपथ ग्रहण करती है । उनके नारी पात्र गिरकर भी गिरे नही है, बल्कि उन्हे ऊचे स्थान पर पुन प्रतिष्ठित कर दिया गया है । त्यक्ता व विधवा के लिए समाज से अप्रत्यक्ष रूप से आग्रह किया गया है कि असहाय नारी को स्वीकार कर सुमार्ग पर लाने की चेष्टा करनी चाहिए, न कि उसे समाज के दुर्गन्धित गह्वरो मे धकेल कर और अधिक विनाश के लिए छोड दिया जाए, क्योकि नारी के भाग्य का नियन्ता ईश्वर न होकर पुरूष है । इसलिए उन्होने स्थान–स्थान पर नारी के माध्यम से उसके समाज मर्यादित व सीमित अधिकारो को मागा है । उसके उचित अधिकारो का समर्थन किया है ।

समाज मे नारी की सबसे अधिक सर्वस्व करने वाली धार्मिक भावनाए थी । धर्म की आड लेकर जिस पापाचार का व व्यभिचार का क्षेत्र समाज व उसके अगो को बना रखा था, उसके प्रति आचार्य जी की लौह–लेखनी के तीखे वार किए गए है । जीवन मे 'परिश्रम,' 'प्रेम', 'सहानुभूति,' 'सहिष्णुता,' 'मानवता,' आदि सभी की उपेक्षा कर मनुष्य ने इनमे विपरीत गुणो को अपनाया तथा स्वय के लिए विनाश व अवनति का मार्ग तैयार कर लिया है । इस कथित प्रसग से सम्बन्धित बहुत से उद्धरण आचार्य जी के उपन्यासो मे मिल जायेगे । उन्होने सुमार्ग व समस्याओ के निदान का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है ।

आचार्य जी के ऐतिहासिक उपन्यास सामाजिक व राजनैतिक पृष्ठभूमि का अवलम्ब लेकर निर्मित हुए है । जिसमे चिर सत्य के साथ–साथ 'इतिहास–रस' की अनुभूति होती है । इसी कारण क्रूर 'औरगजेब' व 'महमूद गजनी' जैसे पात्र भी आचार्य की मानव पूजा मे रग कर चित्रित किए गए है । उनकी क्रूरता प्रेमी हृदय का रूप धारण कर गई है । इस परिवर्तन का कारण यही कि इतिहास मे चित्रित औरगजेब व महमूद लेखक के भावना जगत से 'औरगजेब' व 'महमूद' से मेल नही खा सके । इसलिए लेखक ने अपनी कल्पना के आधार पर जो मानव व प्रेमी हृदय चित्रित किया है, वह एक अन्य प्रकार के शील और आदर्श का निर्माण कर हमारे हृदय मे सहानुभूति उत्पन्न करता है । कल्पना का आग्रह कर इतिहास मे जो परिवर्तन 'आचार्य जी' ने किया है । वह निसन्देह उनकी मौलिक देन है । उसका कारण भी उन्होने स्वय 'सोमनाथ' मे अभिव्यक्त किया है ।

आचार्य जी ने ऐतिहासिक उपन्यासो का आधार विगत् ससार की राजनीति व उसकी प्रतिक्रियाओ को बनाया है । इस राजनीति का क्षेत्र छठी, सातवी शताब्दी से लेकर उन्नीसवी शताब्दी तक का है । मुख्यत अठारवीं व उन्नीसवी शताब्दी को उपन्यास मे विशेष स्थान प्राप्त हुआ है । इसके अन्तर्गत देश की युगीन समस्याओ व राजनैतिक पार्टियो के सम्बन्ध मे आचार्य जी के विचार स्पष्ट होते है ।

जीवन और जगत के तत्वो पर गहन विचार कर आचार्य जी ने कहा कि– "सत्य के सौन्दर्य को लेकर व्यक्ति के अन्दर मानवता आरोपित की गई है । सत्य की पूरी राह चलकर मनुष्य' देवता उस छोर पर बैठा है, जहा गाधी उसे छोड गये है ।" जिनके विचार शुद्ध, अकपट, जीवन भयरहित, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर रहित सब मनुष्यो के मस्तिष्क ज्ञान से ऊपर हृदय प्यार से भरे हुए है । सही और सच्चा गणतत्र यही रागठित हो सकता है । वहा जहा गाधी का अपूजित देवता सत्य की राह के उस छोर पर अकेला बैठा है ।

आचार्य जी ने अपनी रचनाओ मे प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से अपने देश, अपनी सस्कृति अपने धर्म, अपने दर्शन तथा अपनी सात्विक धारा के प्रवाह मे कहते हुए जनजीवन का गुणगान किया है। जितनी भी अनैतिकता या भ्रष्टाचार आया है, वह विदेशो की देन है । उसके सम्बन्ध मे आचार्य जी का आक्रोश स्थान–स्थान पर देखने को मिलता है– "अग्रेज चले गये, पर अग्रेजियत हमे दबोचती चली आ रही है । हमारा खान-पान, रहन–सहन सब कुछ बदल रहा है । हमारा अभिजात्य वर्ग और भी तेजी से उधर चला जा रहा है । घरेलू जीवन का ढाचा बदल रहा है । पहले हमारे आनन्द और मनोरजन का केन्द्र हमारा परिवार था । अब हमारे सामाजिक जीवन का केन्द्र होटल और रेस्टोरेन्ट हो गये हैं । अब हम अपने अतिथि का सत्कार घर मे नही होटल मे करते है । हमारी वेश–भूषा तेजी से बदल रही है । पुरूषो के वेश मे पतलून ने प्रमुख स्थान ग्रहण किया है । चपरासी और मेहतर पतलून पहिनते है । स्त्रिया भी अर्धनग्न हो चुकी है । ज्यो–ज्यो नैतिकता का स्तर गिरता जायेगा, कामुक भावनाए बढती जाती हे । बर्थ कन्ट्रोल के क्लीनिको ने नैतिकता के पतन की ओर एक धक्का दिया है । इस प्रकार हमारा सामाजिक जीवन बर्बाद हो रहा है ।

जिन–जिन दिशाओ मे आचार्य जी की कलम चली, उस दिशा मे निसन्देह प्रगति हुई है। जिस सत्य का उन्होने जीवन मे अभ्यास किया था उसी को उन्होने प्रकट किया है । उनके साहित्य मे प्रेरणा–श्रोत हैं, उनकी आत्मा । उनके प्रत्येक शब्द मे आकाक्षाओ की ऐसी ज्वाला है । जिसका तेज कभी धूमिल नही पड़ेगा ।

जीवन मे 'आदर्श,' 'प्रेम,' 'परिश्रम,' 'सहानुभूति,' 'मानवता' के रूपो को वह चिर–सत्य की तरह स्वीकार करते थे ।

उनका 'साहित्य' 'राजनीति,' 'धर्म,' 'समाज,' 'दर्शन,' 'सस्कृति' आदि दिशाओ मे देखने के लिए मनुष्य को एक नवीन दृष्टि देगा । जहा पर वह हटर लेकर समाज के पीछे पडते है, वहा पर उनका शब्द रोध–शक्ति को आगे लेकर बढता है, ताकि वहा कोई जाये ना । उनका साहित्य समाज को उस निडरता का पाठ पढाता है, जहा कटु से कटु वस्तु के लिए भी अभिव्यक्ति का द्वार खुला है । सत्य की स्थापना मे विषपान करना पडता है किन्तु, एकदिन वही गरल, अमृतमय बनकर समाज की गदगी को दूर कर सकता है । कायर व भीरू देश का कल्याण नही कर सकते है, बल्कि उसके लिए पौरूषता और कठोरता की आवश्यकता है । आचार्य जी ने सभी स्थान पर अप्रत्यक्ष रूप से मानवता के धर्म का समर्थन किया है । इसी मानवता की शक्ति और विश्वास को लेकर ही मनुष्य विश्व विजय कर सकता है । निसदेह आचार्य जी अपने युग के शक्तिशाली लेखको मे थे, जिनका स्थान अपनी साहित्यिक विशेषताओं व गुणों के लिए उज्जवल व महान बना रहेगा ।

❖ आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य (विस्तार से देखे) . डॉ0 शुभकार कपूर

❖ उपन्यास चतुरसेन के नारी पात्र (विस्तार से देखे) डॉ0 सूतदेव हस

❋ ❋ ❋ ❋ ❋

❋
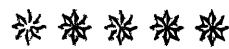
सहायक ग्रन्थ सूची

1 उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा	डॉ0 शशिभूषण सिहल	दिनमान प्रकाशन, दिल्ली
2 वृन्दावन लाल वर्मा, उपन्यास और कला	डॉ0 शिवकुमार मिश्र	
3 आधुनिक कथा साहित्य	श्री गगा प्रसाद पाण्डेय	प्रमोद पुस्तक माला, प्रकाशन–इलाहाबाद
4 आधुनिक भारत	बी0 एल0 ग्रोवर	
5 आधुनिक साहित्य	नन्द दुलार बाजपेयी	भारती भण्डार, लीडर – प्रेस, इलाहाबाद
6 ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार	डॉ0 गोपी नाथ तिवारी	साहित्य रत्न भण्डार,, आगरा, 1958
7 ऐतिहासिक उपन्यासो मे कल्पना और सत्य	वी0 एम0 चिन्तामणि	चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी,–1, 1951
8 काव्य की भूमिका	श्री रामधारी सिह 'दिनकर'	उदयाचल आर्य कुमार रोड पटना–4, 1958
9 कुछ विचार (निबन्ध सग्रह) भाग–1	मुशी प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस, बनारस 1939
10 चिन्तामणि (भाग–1)	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	इण्डियन प्रेस लिमिटेड, 1950
11 दबे पाव	वृन्दावन लाल वर्मा	
12 नया हिन्दी काव्य	डॉ0 शिवकुमार मिश्र	
13 प्रेमचन्द्र और उनका युग	रामविलास शर्मा	मेहरचन्द मुशी राम, नई सडक दिल्ली–6, 1955
14 प्रेमचन्द पूर्व हिन्दी उपन्यास	डॉ0 कैलाश प्रकाश	हिन्दी साहित्य ससार दिल्ली–6, 1962
15 भारत का इतिहास	आचार्य जावडेकर	सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली–6, 1961
16 भारत की सास्कृतिक कहानी	श्री रामधारी सिह 'दिनकर'	उदयाचल ,आर्य कुमार रोड, पटना–4

*****
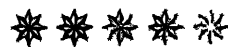
17 विचार–विमर्श (विवेचनात्मक) लेखो का सग्रह	सद्गुरू शरण अवस्थी	राम नारायण लाल प्रकाशक और बुक सेलर, इलाहाबाद ।
18 विशाख	जय शकर प्रसाद	
19 वृन्दावन लाल वर्मा (व्यक्तित्व और कृतित्व)	डॉ0 पदमसिह शर्मा	कमलेश बसल एण्ड क0 24, दरियागज, दिल्ली–6 1958
20 वृन्दावन लाल वर्मा (साहित्य और समीक्षा)	शियाराम शरण प्रसाद	साहित्य प्रकाशन माली बाडा, दिल्ली – 1960
21 सक्षित आत्मकथा (गाधी)	महादेव गोविन्द देसाई हरिभाऊ उपाध्याय	
22 सस्कृति के चार अध्याय	श्री रामधारी सिह	राजपाल एण्ड सस कश्मीरी गेट, दिल्ली–1956
23 साहित्य चिंता	डॉ0 देवराज	गौतम बुक डिपो, दिल्ली –1950
24 साहित्य विवेचन	क्षेमेन्द्र सुमन और योगेन्द्र कुमार	आत्माराम एण्ड सस दिल्ली – 1952
25 सिद्धात और अध्ययन भाग–2 (काव्य के रूप)	गुलाब राय	प्रतिमा पकाशन मदिर 206, हैदरकुली दिल्ली
26 हिन्दी उपन्यास	शिव नारायण श्रीवास्तव	सरस्वती मदिर, वाराणसी
27 हिन्दी उपन्यास	डॉ0 सुषमा धवन	राजकमल प्रकाशन दिल्ली–1961
28. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद	डॉ0 त्रिभुवन सिह	हिदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी–1
29 हिन्दी उपन्यास मे कथा शिल्प का विकास	डॉ0 प्रताप नारायण टण्डन	हिन्दी साहित्य भण्डार गगा प्रसाद रोड, लखनऊ–1964
30 हिन्दी उपन्यासो मे कल्पना के बदलते हुए प्रतिरूप	डॉ0 शीला कुमारी	अग्रवाल अभिव्यक्ति प्रकाशन यूनिवर्सिटी रोड, इलाहाबाद ।
31. हिन्दी उपन्यास में चरित्र–चित्रण का विकास	रणवीर राग्रा	भारतीय साहित्य मदिर फव्वारा दिल्ली,, 1961

❋ ❋ ❋ ❋ ❋
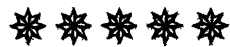
32 हिन्दी उपन्यास साहित्य मे यथ,र्थवाद	सर्वजीत राय	लोक भारती प्रकाशन 15, ए महात्मा गाधी मार्ग इलाहाबाद ।
33 हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास	डॉ0 राम नारायण सिह	मधुर ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर, 1971
34 हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास	डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी	अतरचन्द्र कपूर एण्ड सस देलही, 1952
35 हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	सस्करण वि0 स01919
36 हिन्दी साहित्य कोष		ज्ञान मण्डल लिमिटेड बनारस ।
37 युगीन भारत	पी0 शरन	
38 भारत मे ब्रिटिश राज्य	गगा शकर मिश्र	
39 हिन्दी साहित्य का इतिहास	धीरेन्द्र वर्मा	.
40 भारतीय सस्कृति का इतिहास	आचार्य चतुरसेन	
41 हिन्दी साहित्य	डॉ0 भोला नाथ तिवारी	
42 हिन्दू सभ्यता	डॉ0 राधा कुमुद बनर्जी	
43 झासी की रानी	डॉ0 वृन्दावन लाल वर्मा	
44 उपन्यास सिद्धात	श्याम जोशी	
45 उपन्यास कला	विनोद शकर व्यास	
46 भारतवर्ष का इतिहास	डॉ0 रतिभान सिह नाहर	
47 हिन्दी साहित्य का उद्भव और इतिहास	भगीरथ मिश्र	
48 हिन्दी साहित्य	हजारी प्रसाद द्विवेदी	.
49 भारत मे मुस्लिम शासन का इतिहास	एस0 आर0 शर्मा	
50 भारत मे अग्रेजी राज्य	सुन्दर लाल	.
51 मेरी उपन्यास विषयक धारणाये	समालोचक	.
52. कथाकार प्रेमचन्द	मनमनाथ गुप्त	.. ..
53 ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा	सियाराम शरण प्रसाद	.
54 विचार और विश्लेषण	डॉ0 नगेन्द्र	.
55 हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यासो मे इतिहास प्रयोग	डॉ0 गोविन्द जी	मेरठ प्रकाशन,
56. हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धात	. . .	. . . .
59 हिन्दी उपन्यास का सर्वेक्षण	महेन्द्र चतुर्वेदी	.. ...
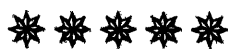
60 ऐतिहासिक उपन्यास और उपन्यासकार — डॉ0 गोपीनाथ तिवारी

61 हिन्दी उपन्यास का सृजन और सिद्धात — डॉ0 नरेन्द्र कोहली — सौरभ प्रकाशन, दिल्ली

62 हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास और मृगनयनी — डॉ0 शाति स्वरूप गुप्त

63 हिन्दी उपन्यास मे कथा शिल्प का विकास — डॉ0 प्रताप नारायण टण्डन

64 आचार्य चतुरसेन के ऐतिहासिक उपन्यास — डॉ0 इन्दु वसिष्ठ

65 आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य — डॉ0 शुभकार कपूर

66 आचार्य चतुरसेन के नारी पात्र — डॉ0 सूतदेव हस

67 हिन्दी उपन्यासो मे महाकाव्यात्मक चेतना — डॉ0 सुषमा रानी गुप्ता

68 हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास — डॉ0 सुरेश सिन्हा

69 आचार्य चतुरसेन लेखक और मानव — श्री हसराज रहबर

70 काव्य शास्त्र — डॉ0 भगीरथ मिश्र

71 मानक हिन्दी कोष — प्रधान सपाक धीरेन्द्र वर्मा

72 हिन्दी शिल्प का विकास — डॉ0 लक्ष्मी नारायण लाल

73 आधुनिक हिन्दी साहित्य — डॉ0 लक्ष्मी सागर वाष्र्णे

74 मानसरोवर प्रथम भाग — प्रेमचन्द

पत्र-पत्रिकाएँ

1 साप्ताहिक हिन्दुस्तान — 9 मार्च 1960

2 साहित्य–सदेश — उपन्यास अक, 1940

3 चतुरसेन त्रयमासिक प्रथम अक —

4 सुप्रभात दिपावली विशेषाक — 1959

5 त्रयमासिक आलोचना — उपन्यास विशेषाक

6 आजकल — जुलाई 1957

7 कल्याण — हिन्दू सस्कृति अक

8 नये पत्ते — जनवरी फरवरी 1953

9 नई धारा — अक 1 , 2 अप्रैल 1951

10 नव राष्ट्र — 9 फरवरी, 1958

11 साहित्य परिचय — जनवरी, फरवरी 1971 सयुक्ताग वर्ष 6 अक 1, 2,

❋❋❋❋❋